वर्धमान जीवन कोश

तृतीय खण्ड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्धमान जीवन-कोश

[तृतीय खण्ड]

CYCLOPAEDIA OF VARDHAMANA

जैन दशमलव वर्गीकरण संख्या

०३५४ तथा ६२२४

सम्पादक :

मोहनलाल बाँठिया, बी०कॉम

श्रीचंद चोरड़िया, न्यायतीर्थ (द्वय)

प्रकाशक :

जैन दर्शन समिति

१६-सी, डोवर लेन, कलकत्ता-७०००२९

सन् १९८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन आगम विषय कोश ग्रन्थमाला
पंचम पुष्प—वर्धमान जीवन-कोश, तृतीय खण्ड :
जैन दशमलव वर्गीकरण संख्या ०३५४ तथा ६२२४

अर्थसहायक—श्रीभगवतीलाल सिसोदिया ट्रस्ट, जोधपुर
मारफत—श्री जबरमल भंडारी, तथा अन्यगण

प्रथम आवृत्ति ५००
मूल्य भारत में रु० ७५,००
विदेश में Sh १००/-

मुद्रक :
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स,
२०५, रवीन्द्र सरणी,
कलकत्ता-७००००७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

प्रेक्षाध्यान के प्रणेता युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ, जिनका संयम जीवन युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के नेतृत्व में व्यतीत हुआ है। जिनका पवित्र चरित्र प्रत्येक आत्मा को कल्याणपथ का संबल बनता है। जिन्होंने आगम-साहित्य का सुचारु रूप से संपादन किया—जिन्होंने मुझे विद्यावान्-सुशिक्षित-संस्कारी बनाने के लिए प्रोत्साहित किया।

अस्तु जिनका सारा जीवन शौरसेनी-प्राकृत आगमों के उद्धार तथा प्रकाश में लाने का सजीव इतिहास है। जिनके निर्भीक व्यक्तित्व में श्रमण संस्कृति को निरन्तर अभिव्यक्ति मिलती रही है। जिनका रोम-रोम श्रमण संस्कृति की सेवा में समर्पित रहा है। जो नवीन पीढ़ी के लिए साधन-विहीन उज्झिषियों के लिए सतत् कल्पवृक्ष रहते आये हैं।

भारतीय वाङ्मय के गौरव, टमकौर भूमि के उन्हीं यशस्वी युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ को मैं वर्धमान जीवन कोश, तृतीय खण्ड सभक्ति, सविनय समर्पित करता हुआ अपूर्व आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ।

—श्रीचंद चोरड़िया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकलन-संपादन में प्रयुक्त ग्रन्थों की संकेत-सूची

—	अंगुत्तरनिकाय
अणुत्त०	अणुत्तरोववाइयदसाओ (आगम)
—	अयोगव्यवच्छेदिका
अन्ययो०	अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका
अंत०	अंतगडदसाओ (आगम)
अभय०	अभयकुमार चरित
अष्ट०	अष्टसहस्री
अभिधा०	अभिधान चिंतामणि संस्कृत कोष
अष्टपा०	अष्ट प्राभृत
अणुओ०	अणुओगद्दाराइं (आगम)
अणुओ० हारि०	अणुओगद्दाराइं हारिभद्रीय टीका
—	अर्ध मागधी कोष
—	आगम और त्रिपिटक
आयाचू०	आयारो-टीका चूर्णी
—	आप्ते संस्कृत अंग्रेजी छात्र कोष
आव० चू०	आवश्यक चूर्णी
आव० नि०	आवश्यक निर्युक्ति
आव० भाष्य	आवश्यक भाष्य
आव०	आवस्सयं सुत्तं (आगम)
आव० मलय०	आवश्यक मलयगिरि वृत्ति
आव० हारि०	आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति
आया०	आयारो (आगम)
—	आख्यानक मणिकोष
उत्त०	उत्तज्झयणाइं सूत्तं (आगम)
उत्त० वृत्ति	उत्तज्झयणाइं कमलसंयमीया वृत्ति
उत्त० भावृत्ति	उत्तज्झयणाइ भावविजया वृत्ति
उत्पु०	उत्तमपुरुषचरित्रम्
उत्तरपु०	उत्तरपुराण
—	उपदेशप्रासाद
—	उपदेशमाला सटीक
उवा०	उवासगदसाओ (आगम) टीका
—	ऋषि मंडल प्रकरण वृत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओव०	ओववाइयं (आगम)
कप्प०	कप्पसुत्तं सुबोधिका
—	कल्पसूत्र कल्पलता व्याख्या
कल्पचू०	कल्पसूत्र चूर्णि
कसापा०	कसायपाहुडं
क्रियाको	क्रियाकोश
—	चंदनमलया गिरिरास
चउप्प०	चउप्पन पुरिसचरिउ
जंबू०	जंबुद्दीवपण्णत्ती (आगम)
जीवा०	जीवाजीवाभिगमो (आगम)
ठाण०	ठाणं (आगम)
—	ठाणं टीका
चंद०	चंदपण्णत्ती
चतु०	चतुर्विंशति स्तवन
त्रिशलाका०	त्रिषष्टि श्लाका पुरुष चरित्र
—	तित्थोगालीपइन्नय विविध तीर्थकल्प
तिलोप०	तिलोयपण्णत्ती
—	तुलसीप्रज्ञा
दसवृ०	दसवैकालिक वृत्ति
दसवे०	दसवेआलियं (आगम)
—	दीर्घनिकाय
—	दर्शनसार
दसासु०	दसासुयखंधो
	धर्म संग्रह सटीक
धर्मो०	धर्मोपदेशमाला
ध्याको०	ध्यानकोश (अप्रकाशित)
—	धन्यशालिभद्र चरित्र
—	धर्मरत्न प्रकरण (वृत्ति)
नंदी०	नंदीसुत्तं (आगम)
—	न्यायविन्दु
णिसी०	णीसीहं (आगम)
निचू०	निशीथ चूर्णी
—	न्यायावतार
णाया०	णायाधम्मकहाओ
निरया०	निरयावलियाओ
—	परिशिष्टपर्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—	पाण्डव पुराण
—	पार्श्वनाथ चरित्र
—	पृहवीचन्द चरित्त (पृथ्वीचन्द्र चरित्र)
पुद्को० १	पुद्गल कोश (अप्रकाशित) खण्ड १
पुद्को० २	पुद्गल कोश (अप्रकाशित) खण्ड २
परिको०	परिभाषा कोश (अप्रकाशित)
पउम०	पउमचरियं
पण्हा०	पण्हावागरणाइं (आगम)
—	पंचाशक टीका
पाइ०	पाइअसद्दमहण्णवो
प्रवसा०	प्रवचनसारोद्धार
पंचवस्तुक०	पंचवस्तुक ग्रन्थ
पण्ण०	पण्णवणासुत्तं (आगम)
प्रवृत्ति०	प्रज्ञापना वृत्ति
भग०	भगवई (आगम)
भगवृ०	भगवती सूत्र वृत्ति
—	भत्तपइया प्रकीर्णक
—	भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति
—	मज्झिमनिकाय
—	मज्झिम पणासक
मिआवि०	मिथ्यात्वीका आध्यात्मिक विकास
—	महावीरचरिय
—	मत्स्यपुराण
महापु०	महापुराण
योग को०	योग कोश (अप्रकाशित)
—	यजुर्वेद (अजुर्वेद)
विह०	विहकप्पो
रत्नश्रा०	रत्नकरण्ड श्रावकाचार
राय०	रायपसेणेइयं (आगम) टीका
लेको	लेश्याकोश
लेश्याको०	संयुक्तलेश्याकोश (दिगम्बरसोर्स) अप्रकाशित
वर०	वररूचि व्याकरण
—	युक्त्यनुशासनम्
वड्ढच०	वड्ढमाणचरिउ
—	वायुपुराण
विवा०	विवाग (आगम)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरजि०	वीरजिणिंदचरिउ
---	वर्धमान देशना
वसु०	वसुदेव हिंडी
---	विविध तीर्थ कल्प
विशेभा०	विशेषावश्यक भाष्य
---	ववहारोसूय (आगम) टीका
वीरवर्धमानच०	वीरवर्धमान चरितम्
---	विनयपिटक
---	समत्तसत्तति
---	सिरिसिरि वालकहा
सप्ततिशत०	सप्ततिशत स्थान प्रकरण
स्वयंभू०	स्वयंभू स्तोत्र
---	सिरिदुसमाकाल समण संघथयं-अवचूरि
सूर०	सूरपण्णत्ती
---	संयुक्त निकाय
सम०	समवाओ
सम० टीका	समवायांग टीका
सूय० टीका	सूयगडो (आगम) टीका
---	सुत्तनिपातपालि
---	स्कंध महापुराण
हेम०	सिद्ध हेमशब्दानुशासनम्
हरिपु०	हरिवंशपुराण
---	ऋगवेद मंडल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशीर्वचन

भगवान् महावीर का जीवन अनेक दृष्टियों से अनेक लेखकों ने लिखा है। कुछ लेखकों ने स्वतन्त्र रूप से लिखा है और कुछ लेखकों ने साधार। स्वर्गीय श्री मोहनलालजी बांठिया और श्रीचंद चोरड़िया के संयुक्त प्रयास से कुछ वर्गीकृत कोशों का संकलन किया गया है। उनमें से लेश्याकोश, क्रियाकोश और वर्धमान जीवनकोश (प्रथमखण्ड-द्वितीयखण्ड) प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत ग्रंथ वर्धमान जीवनकोश प्रकाशनाधीन है। यह कोई स्वतन्त्र या मौलिक चिंतन से प्रसूत जीवन-जीवनवृत्त नहीं है। जैन आगमों और प्राचीन ग्रंथों के आधार पर इसका संकलन किया गया है। इसमें संकलनकर्ता को अध्ययन, रूचि, धृति और परिश्रम को एक साथ उजागर होने का अवसर मिला है।

साधारण पाठकों के लिए इस ग्रंथ का बहुत बड़ा उपयोग नहीं हो सकता। किन्तु जो विद्वान भगवान महावीर के जीवन संदर्भ में विशेष रूप से जिज्ञासु और संधित्सु है, उनके लिए ग्रंथमाला प्रकाश-स्तम्भ का काम करनेवाली है। विद्वान लोग इस ग्रन्थमाला का सलक्ष्य उपयोग कर श्री बांठिया और श्री चोरड़िया के श्रमको सार्थक ही नहीं करेंगे, अपने शोधकार्य में उपस्थित अनेक समस्याओं का समाधान भी पा सकेंगे ऐसा विश्वास है।

—आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन वाङ्मय का दशमलव वर्गीकरण

मूल विभागों की रूपरेखा

जै० द० व० सं० (हमारे अंकन)		यू० डी० सी० के अंकन
०	जैन दार्शनिक पृष्ठभूमि	+
०१	लोकालोक	५२३.१
०२	द्रव्य-उत्पाद-व्यय ध्रौव्य	+
०३	जीव	१२८ सी० एफ ५७७
०४	जीव परिणाम	+
०५	अजीव अरूपी	११४
०६	अजीव रूपी-पुद्‌गल	११७ सी० एफ ५३९
०७	समय-व्यवहार समय	+
०८	पुद्‌गल परिणाम	१
०९	विशिष्ट सिद्धान्त	+
१ —	जैन दर्शन	
११	आत्मवाद	१
१२	कर्मवाद-आस्रव-बंध	१२
१३	क्रियावाद-संवर-निर्जरा-मोक्ष	+
१४	जैनेतरवाद	१४
१५	मनोविज्ञान	१५
१६	न्याय-प्रमाण	१६
१७	आचार-संहिता	१७
१८	स्याद्‌वाद-नयवाद-अनेकान्त	+
१९	विविध दार्शनिक सिद्धान्त	+
२ —	धर्म	+२
२१	जैन धर्म की प्रकृति	२१
२२	जैन के धर्मग्रंथ	२२
२३	आध्यात्मिक मतवाद	२३
२४	धार्मिक जीवन	२४
२५	साधु-साध्वी-यति-भट्टारक-क्षुल्लकादि	२५
२६	चतुर्विध संघ	२६
२७	जैन धर्म का साम्प्रदायिक इतिहास	२७
२८	सम्प्रदाय	२८
२९	जैनेतर धर्म : तुलनात्मक धर्म	२९
३ —	समाज विज्ञान	+३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१	सामाजिक संस्थान	+
३२	राजनीति	३२
३३	अर्थशास्त्र	३३
३४	नियम-विधि-कानून-न्याय	३४
३५	शासन	३५
३६	सामाजिक उन्नयन	३६
३७	शिक्षा	३७
३८	व्यापार-व्यवसाय-यातायात	३८
३९	रीति-रिवाज लोककथा	३९
४—	भाषा विज्ञान-भाषा	४
४१	साधारण तथ्य	४१
४२	प्राकृत भाषा	४९१·१
४३	संस्कृत भाषा	४९१·२
४४	अपभ्रंश भाषा	४९१·३
४५	दक्षिणी भाषाएँ	४९१ ८
४६	हिन्दी	४९१·४३
४७	गुजराती-महाराष्ट्री	४९१·४
४८	राजस्थानी	४९१·४६
४९	अन्य देशी-विदेशी-भाषाएँ	४९१
५—	विज्ञान	५
५१	गणित	५१
५२	खगोल	५२
५३	भौतिकी-यांत्रिकी	५३
५४	रसायन	५४
५५	भूगर्भ विज्ञान	५५
५६	पुराजीव विज्ञान	५६
५७	जीव विज्ञान	५७
५८	वनस्पति विज्ञान	५८
५९	पशु विज्ञान	५९
६—	प्रयुक्त विज्ञान	६
६१	चिकित्सा	६१
६२	यांत्रिक शिल्प	६२
६३	कृषि विज्ञान	६३
६४	गृह विज्ञान	६४
६५	+	+
६६	रसायन शिल्प	६६
६७	हस्तशिल्प वा अन्यथा	६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८	विशिष्ट कला	६८
६९	वास्तु शिल्प	६९
७—	कला मनोरंजन क्रीड़ा	७
७१	नगरादि निर्माण कला	७१
७२	स्थापत्य कला	७२
७३	मूर्तिकला	७३
७४	रेखांकन	७४
७५	चित्रकारी	७५
७६	उत्कीर्णन	७६
७७	प्रतिलिपि-लेखन कला	७७
७८	संगीत	७८
७९	मनोरंजन के साधन	७९
८—	साहित्य	८
८१	छंद-अलंकार-रस	८१
८२	प्राकृत साहित्य	+
८३	संस्कृत जैन साहित्य	+
८४	अपभ्रंश	+
८५	दक्षिणी भाषा में जैन साहित्य	+
८६	हिन्दी भाषा में जैन साहित्य	+
८७	गुजराती-महाराष्टी भाषा में जैन साहित्य	+
८८	राजस्थानी भाषा में जैन साहित्य	+
८९	अन्य भाषाओं में जैन साहित्य	+
९—	भूगोल जीवनी-इतिहास	९
९१	भूगोल	९१
९२	जीवनी	९२
९३	इतिहास	९३
९४	मध्य भारत का जैन इतिहास	+
९५	दक्षिण भारत का जैन इतिहास	+
९६	उत्तरी भारत का जैन इतिहास	+
९७	गुजरात-महाराष्ट्र का जैन इतिहास	+
९८	राजस्थान का जैन इतिहास	+
९९	अन्य क्षेत्र व वैदेशिक जैन इतिहास	+

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·०३ जीव द्वार का वर्गीकरण

·०३०० सामान्य विवेचन
·०३०१ जीव औधिक
·०३०२ सिद्ध अरूपी
·०३०३ संसारी रूपी
·०३०४ नारकी
·०३०५ तिर्यंच
·०३०६ एकेन्द्रिय तिर्यंच
·०३०७ पृथ्वीकाय
·०३०८ अप्‌काय
·०३०९ अग्निकाय
·०३१० वायुकाय
·०३११ वनस्पतिकाय
·०३१२ प्रत्येक वनस्पतिकाय
·०३१३ साधारण वनस्पतिकाय
·०३१४ निगोद
·०३१५ विकलेन्द्रिय तिर्यंच
·०३१६ बेइन्द्रिय तिर्यंच
·०३१७ तेइन्द्रिय तिर्यंच
·०३१८ चतुरिन्द्रिय तिर्यंच
·०३१९ पंचेन्द्रिय जीव
·०३२० तिर्यंच पंचेन्द्रिय
·०३२१ मनुष्य
·०३२२ कर्मभूमिज मनुष्य
·०३२३ अकर्मभूमिज मनुष्य
·०३२४ अन्तर्द्वीपज मनुष्य
·०३२५ युगलिया
·०३२६ देव
·०३२७ भवनपति
·०३२८ वाणव्यंतर
·०३२९ ज्योतिषीदेव
·०३३० वैमानिकदेव
·०३३१ पर्याप्त—अपर्याप्त
·०३३२ सूक्ष्म—बादर
·०३३३ त्रस—स्थावर
·०३३४ संज्ञी—असंज्ञी
·०३३५ गर्भज—संमुर्च्छिम
·०३३६ सइन्द्रिय—अनेन्द्रिय
·०३३७ आहारक—अनाहारक
·०३३८
·०३३९
·०३४०
·०३४१ मिथ्या दृष्टि
·०३४२ सममिथ्या दृष्टि
·०३४३ सम्यक्त्वी
·०३४४ असंयती
·०३४५ संयतासंयती
·०३४६ संयती
·०३४७ प्रमत्त
·०३४८ अप्रमत्त
·०३४९ सवेदी
·०३५० अवेदी
·०३५१ सकषायी
·०३५२ अकषायी
·०३५३ छद्मस्थ
·०३५४ सर्वज्ञ-सर्वदर्शी-सामान्य केवली, तीर्थंकर
·०३५५ सलेशी
·०३५६ अलेशी
·०३५७ सयोगी
·०३५८ अयोगी
·०३५९ सक्रिय
·०३६० अक्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२ जीवनी का वर्गीकरण

६२००	सामान्य विवेचन		६२२५	इन्द्रभूति	गणधर
६२०१	ऋषभनाथ तीर्थंकर		६२२६	अग्निभूति	,,
६२०२	अजितनाथ	,,	६२२७	वायुभूति	,,
६२०३	संभवनाथ	,,	६२२८	व्यक्त	,,
६२०४	अभिनंदन	,,	६२२९	सुधर्म	,,
६२०५	सुमतिनाथ	,,	६२३०	मंडित	,,
६२०६	पद्मप्रभु	,,	६२३१	मौर्यपुत्र	,,
६२०७	सुपार्श्वनाथ	,,	६२३२	अकंपित	,,
६२०८	चंद्रप्रभु	,,	६२३३	अचलभ्राता	,,
६२०९	सुविधिनाथ	,,	६२३४	मैतार्य	,,
६२१०	शीतलनाथ	,,	६२३५	प्रभास	,,
६२११	श्रेयांसनाथ	,,	६२३६	धन्य अणगार	,,
६२१२	वासुपूज्य	,,	६२३७	नमिराजर्षि	,,
६२१३	विमलनाथ	,,	६२३८	करकंडू	,,
६२१४	अनंतनाथ	,,	६२३९	दुर्मुख	,,
६२१५	धर्मनाथ	,,	६२४०	नग्गई	,,
६२१६	शांतिनाथ	,,	६२४१	ब्राह्मी	,,
६२१७	कुंथुनाथ	,,	६२४२	सुन्दरी	,,
६२१८	अरनाथ	,,	६२४३	आर्यचंदना	,,
६२१९	मल्लीनाथ	,,	६२४४	मृगावती	,,
६२२०	मुनिसुव्रत	,,	६२४५	प्रभावती	,,
६२२१	नमिनाथ	,,	६२४६	पद्मावती	,,
६२२२	नेमीनाथ	,,	६२४७	सुलसा	,,
६२२३	पार्श्वनाथ	,,	६२४८	सुदर्शन सेठ	,,
६२२४	वर्धमान	,,			

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

यह युग विधिवद्ध व शोधका है। अतः जब कोई विद्वान् किसी विषय पर शोध करता है तो वह किसी परम्परा से प्राप्त तथ्य पर ही निर्भर नहीं रहता चाहे वह तथ्य ग्रन्थ, शिलालेख, या कहावत रूप से प्राप्त हुआ हो। जबकि सरल विश्वासी मानव जिस परम्परापर वह विश्वास रखता है उसके शास्त्र इतिहास पुराण को निर्विवाद रूप से सत्य मान लेता है तब आधुनिक अन्वेषक उस विषय पर जहाँ भी जो कुछ भी प्राप्त हो सके उसे प्राप्त करने का एवं प्राप्त तथ्यों से विशद रूप से निरीक्षण व विभिन्न दृष्टि कोणों से परखने का प्रयास करता है। ज्ञान-विज्ञान के किसी भी विषय या शाखा जिसमें विद्वानों की रूची जाग्रत हो सकती है उस विषय या शाखा से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के तथ्य ग्रंथों की खोज, प्रकाशन उनकी सहजतया प्राप्ति तथा विशद् अध्ययन शोध की इस असीमित प्रवृत्ति तथा तथ्य को समग्र रूप से यथाक्रम समझने के प्रयास को प्रोत्साहित किया है। शोध खोज के लिए प्राप्त विभिन्न प्रकार के विभिन्न विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थों की कोई कमी नहीं है। सत्य तो यह है कि इसने सत्य के अन्वेषक के कार्य को और भी जटिल बना दिया है समय सापेक्ष बना दिया है। अतः इनके कार्य को सहज और सुगम करने के लिए विभिन्न प्रकार संदर्भ ग्रन्थों की बड़ी उपयोगिता है। इस संदर्भ ग्रन्थों से भी अधिक उपयोगिता है वर्गीकृत कोष की।

जैन विद्या के क्षेत्र में अभिधान राजेन्द्र कोश, जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, जैसे कोश ग्रन्थ एवं ग्रंथ पंजिओं, प्रशस्ति संग्रह, हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचियाँ, पारिभाषिक शब्द सुचियाँ, ऐतिहासिक व्यक्ति एवं स्थानों का अभिधान, शिलालेख संग्रह व अन्य ऐतिहासिक प्रमाण जैसे वंशावलियाँ विज्ञप्ति पत्र आदि प्रकाशित हो चुके हैं। ये सभी संदर्भ ग्रन्थ जैन विद्या के अन्वेषकों के लिए बड़े सहायक होते हैं। किन्तु वर्गीकृत कोश ग्रन्थ जैसा कि प्रस्तुत ग्रन्थ हमारे हाथों में है, उपरोक्त सभी ग्रन्थों से कुछ भिन्न है।

जैन धर्म दर्शन और पुराण के वर्गीकृत कोश ग्रंथों के रचना क्षेत्र में शायद स्वर्गीय मोहनलाल जी बाँठिया ही प्रथम व्यक्ति है जिन्होंने इसके प्रयोजन को समझकर उसे क्रियान्वित करने का प्रयास किया है। सौभाग्य से इन्हें इस कार्य के लिए पंडित श्रीचन्दजी चोरड़िया जैसे समर्पित व समर्थ व्यक्ति का सहयोग भी प्राप्त हो गया। इस कार्य के लिए करीब एक हजार विषयों की योजना बनाई गई जिसमें अभी तक लेश्या कोश (सन् १९६६) व क्रियाकोश (सन् १९६९), वर्धमान जीवन कोश भाग १ (सन् १९८०), वर्धमान जीवन कोष भाग २ (सन् १९८४), मिथ्यात्वीका आध्यात्मिक विकास जो कोश के समकक्ष था (सन् १९७७) में प्रकाशित हो चुके हैं। एवं वर्धमान जीवन कोश का तीसरा भाग आपके सम्मुख है। वर्धमान जीवनकोश के प्रकाशन में उनका उद्देश्य यह था कि चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर के जीवन (५९९-५२७ ई० पू०) से सम्बन्धित समस्त तथ्य जहाँ से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी जो कुछ प्राप्त हो उसे संदर्भ एवं हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करना। इस कार्य के लिए उन्होने आगम ग्रन्थ उनकी टीकाएँ, श्वेताम्बर-दिगम्बर आगमेतर ग्रन्थ कुछ बौद्ध एवं ब्राह्मण्य ग्रन्थ एवं परवर्ती कालीन कोश अभिधान आदि का भी उपयोग किया है। वर्धमान जीवन कोश प्रथम भाग में भगवान् महावीर के गर्भप्रवेश से परिनिर्वाण तक का जीवनवृत्त संकलित किया गया है। भाग २ में उनके २७ या ३३ भवोंका विवरण है जो कि दिगम्बर व श्वेताम्बर परम्परा से लिया गया है। इससे तुलनात्मक अध्ययन सुगम हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें भगवान् महावीर के पांचो कल्याणक, नाम व उपनाम, उनकी स्तुतियाँ, समवसरण, दिव्यध्वनि, संघविवरण, इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधरों का पृथक्-पृथक् विवरण आदि संकलित है। आर्य चन्दना की भी जीवन प्रसंग है।

वर्धमान जीवन कोश तृतीय खण्ड—जो आप के सामने है। इसमें वर्धमान (महावीर) के चतुर्विध संघ के प्रमाण का निरुपण, भगवान् महावीर के तीर्थ में तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करने वाले जीवों का विवेचन, भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के बाद स्थिति, वीर स्तुति, उनके समय के साधुओं, श्रमणों, निर्ग्रन्थों की स्थितियाँ का विवेचन है। इसके अतिरिक्त भगवान् के शासन में पार्श्वनाथ की परम्परा, भगवान् महावीर और भावी तीर्थंकर महापद्म की समान आचार-विचार धारा, उनके समय के कूणिक राजा आदि का विवेचन है। सर्वज्ञ अवस्था के विहार स्थल तथा देवों का आगमन—आदि का निरुपण है।

इतना ही नहीं इस कोश में भगवान् महावीर के समसामयिकी घटना—१. परिषद् में श्रेणिक चेल्लणा देवी को देखकर साधु-साध्वियों द्वारा निदान, निदान तथा निदान रहित संयम का फल २. निह्नववाद तथा कूणिक और चेटक के साथ युद्ध का विवेचन है। उस समय के रथमूसल संग्राम व महाशिला कंटक संग्राम का विवेचन भी है। भगवान महावीर के सम्मुख सुर्याभ देव द्वाराकृत नाटक का भी विवेचन है।

अस्तु इस कोश में भगवान् महावीर समय के प्रवाद का भी उल्लेख किया है। पार्श्वपत्यीय अणगार, भगवान् महावीर के समय के व्यक्ति विशेष, प्रत्येक बुद्ध, भगवान् के सर्वज्ञ अवस्था में गोशालक का प्रसंग, जंबू स्वामी, उत्तरपुराण से पूर्वभव प्रसंग, वर्धमान के चतुर्मास आवास स्थल आदि का विवेचन है।

संपादक द्वय ने जैन आगमों, सिद्धान्त ग्रन्थों के जितने अवतरणों का अवलोकन व संकलन किया है, यह बहुत श्रमसाध्य एवं अपूर्व है। ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी बन गया है। ग्रन्थ में चर्चित अनेक पहलुओं पर स्वतन्त्र निबन्ध लिखे जा सकते हैं। पर दुर्भाग्यवश आज हमें बुद्ध व निगंठ नातपुत्त को छोड़कर अन्य किसी श्रमणनायक का संघ व साहित्य उपलब्ध नहीं होता है।

बौद्ध त्रिपिटिकों में जैन आचार, तत्वज्ञान, महावीर का व्यक्तित्व, उनकी संघीय स्थिति आदि की बृहत् ब्यौरा प्रस्तुत हुआ है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से एवं शोध व समीक्षा की दृष्टि से बहुत महत्व का है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐतिहासिक दृष्टि की सामग्री से जिस प्रकार बौद्ध त्रिपिटक तात्कालीन राजाओं का विवरण प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार जैन आगम भी करते हैं। श्रेणिक बिम्बिसार, अजात शत्रु कूणिक, चंद्रप्रद्योत, वत्सराज उदयन, सिन्धु सौवीर के राजा उद्रायण आदि राजाओं के सम्बन्ध में दोनों धर्मशास्त्रों में अपने-अपने ढंग से ब्यौरा प्रस्तुत किया है। उनमें से कुछ बौद्ध धर्म के अनुयायी थे तथा कुछ दोनों धर्मों के प्रति सहानुभूति रखने वाले थे।

विद्वान् अन्वेषकों के लिए तीर्थंकर भगवान महावीर के इस भांति के वर्गीकृत कोश ग्रन्थों की उपादेयता के विषय में कोई दो मत नहीं हो सकता। परिश्रम साध्य व समय सापेक्ष इस कार्य को इतने सुचारु रूप से सम्पादन करने के लिए हम विद्वान पण्डित श्री श्रीचंदजी चोरड़िया का आन्तरिक भाव से अभिनन्दन करते हैं। साथ ही जैन दर्शन के समिति और उनके कार्यकर्त्ताओं को भी इसके प्रकाशन के लिए धन्यवाद देते हैं।

—ज्योति प्रसाद जैन

ज्योति निकुंज
चारबाग-लखनऊ
१२ जुन, १९८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

स्व० श्री मोहनलाल जी बांठिया ने अपने अनेक अनुभवों से प्रेरित होकर, जैन विषय कोश की परिकल्पना प्रस्तुत की थी तथा श्रीचन्द जी चोरड़िया के सहयोग से प्रमुख आगम ग्रन्थों का मंथन एवं चिंतन करके, एक विषय सूची प्रस्तुत की थी। फिर उस विषय सूची के आधार पर जैन आगमों के विषयानुसार प्रायः १००० विषयों पर पाठ संकलित किये गये। इसका संकलन जैनदर्शन समिति के पास सुरक्षित है।

लेश्याकोश, क्रियाकोश, उन्होंने क्रमशः सन् १९६६ व १९६९ में प्रकाशित किये थे।

इसके बाद पुद्गलकोश, ध्यानकोश, संयुक्त लेश्याकोश आदि का कार्य स्व० श्री मोहनलालजी बांठिया ने पूर्ण किया था जो अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं। इन कोशों को जैन विश्वभारती लाडणूं, जल्दी ही प्रकाशित करेगी। 'परिभाषा कोश' का कार्य स्वर्गीय श्री मोहनलाल जी बांठिया के सान्निध्य में चला। मैं यह भी उल्लेख करना चाहूँगा कि स्व० श्री मोहनलाल जी बांठिया के इस प्रयत्न और प्रयास में सक्रिय सहयोग दिया—न्यायतीर्थ श्रीचन्द चोरड़िया ने।

तत्पश्चात् भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के सुअवसर पर स्वर्गीय साहित्य वारिधि की सत्प्रेरणा से वर्धमान जीवन कोश का शुभारम्भ १७-५-१९७५ को स्व० श्री मोहनलालजी बांठिया ने शुभारम्भ किया। जैन दर्शन समिति द्वारा श्री बांठिया ने अपने जीवन काल में श्रीचन्दजी चोरड़िया के सहयोग से वर्धमान जीवन कोश का काफी संकलन कर लिया था। परन्तु २३-९-१९७६ को उनका आकस्मिक स्वर्गवास हो गया। बांठिया के स्वर्गवास पर जैन दर्शन समिति को बहुत बड़ा धक्का लगा।

अस्तु वर्धमान जीवन कोश के साथ-साथ श्रीचन्दजी चोरड़िया अपनी स्वतंत्र कृति 'मिथ्यात्वीका आध्यात्मिक विकास' पुस्तक की तैयारी कर रहे थे। फलस्वरूप मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास पुस्तक ३०-११-१९७७ को जैन दर्शन समिति द्वारा प्रकाशित हुई। निःसन्देह दार्शनिक जगत में श्री चोरड़िया जी यह एक अप्रतिम देन है। इसकी भी प्रतिक्रिया अच्छी रही। अतः वर्धमान जीवनकोश के प्रकाशन में विलम्ब हुआ।

स्वर्गीय श्री बांठियाजी के स्वर्गवास के चार वर्ष पश्चात् वर्धमान जीवन कोश प्रथम खण्डका प्रकाशन (१९८०ई० में) हुआ। इसके फिर चार वर्ष पश्चात् वर्धमान जीवन कोश द्वितीय खंड का प्रकाशन (१९८४ ई० में) हुआ। वर्धमान जीवनकोश सर्वत्र समादृत हुआ। तथा जैन दर्शन और वाङ्मय के अध्ययन के लिए जिस रूप में इन दोनों खण्डों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को अपरिहार्य बताया गया और पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा के रूप में जिस तरह मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की गई, यही इसकी उपयोगिता तथा सार्वजनिनता को आलोकित करने में सक्षम है।

इसके बाद उनके साथी श्री जवरमलजी भंडारी, जैन दर्शन समितिके भूतपूर्व अध्यक्ष श्री नवरतनमल सुराना, मोहनलालजी वैद, श्री मांगीलालजी लूणिया, स्व० ताजमलजी बोथरा, धर्मचन्दजी राखेचा, हनुतमलजी बांठिया, चन्दनमलजी मणोत, बच्छराजजी सेठिया, नेमचन्दजी गधइया आदि महानुभावों ने इस कार्य को अपने हाथ में लेकर 'वर्धमान जीवन कोश, तृतीय खण्ड प्रकाशित करने की योजना बनायी। इसके प्रति समिति इन सज्जनों को धन्यवाद ज्ञापित करती है—

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशित करने में श्री जवरमलजी भंडारी के द्वारा भगवतीलाल सिसोदिया ट्रष्ट हमें १००००) रु० तृतीय खण्ड प्रकाशनार्थ देकर उत्साहित किया और अन्य सज्जनों के इस उत्साह के वातावरण में यथाशक्ति रूप से देकर और उत्साह बढ़ाया। इसके लिए समिति उन्हें धन्यवाद ज्ञापन करती है—

सहायक दाताओं के नाम निम्न प्रकार है—

१—श्री भगवतीलाल सिसोदिया ट्रष्ट-जोधपुर		१००००)
२—श्री तिलोकचंद हंसराज पब्लिक ट्रष्ट, कलकत्ता		५५००)
३—श्री भंडारी सेवानिधि, कलकत्ता		१५००)
४—श्री थानमल सुराना, चेरिटेबल ट्रष्ट, कलकत्ता		१०००)
५—श्री नवरतनमल सुराना, कलकत्ता		२५०)
६—श्री हनुमान चेरिटीट्रष्ट, जयपुर		२५०)
७—श्री ज्ञानचन्द गुलाबचन्द, कलकत्ता		२५०)
८—श्री जंवरीमल बैद	,,	२५०)
९—श्री नगराज बरड़िया	,,	२५०)
१०—श्री सोहनलाल दुगड़	,,	२५०)
११—श्री रावतमल हरखचंद	,,	२५०)
१२—श्री देवचन्द दुगड़	,,	२५०)
१३—श्री रतनचन्द नाहटा, अहमदाबाद		२५०)
१४—श्री सुजानमल चोरड़िया, टमकोर		२५०)
१५—श्री केशरीचन्द जीतमल, कलकत्ता		२५०)
१६—श्री चम्पालाल आंचलिया	,,	२५०)
१७—श्री मोहनलाल बैद	,,	२५०)
१८—श्री हनुतमल बांठिया	,,	२५०)
१९—श्री जयचन्दलाल सेठिया	,,	२५०)
२०—श्री स्वागत फंड सभा, जयपुर		२५०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१—श्री सिंघी फाउन्डेसन, कलकत्ता	२५०)
२२—श्री मोहनलाल बिनायकिया ,,	२५०)
२३—श्री मनालाल सुराना मेमोरियल ट्रष्ट, कलकत्ता	२५०)
२४—श्री कुंदनमल जयचंदलाल नाहटा चेरिटेबल ट्रष्ट, कलकत्ता	२५०)
२५—श्री बच्छराज सेठिया, कलकत्ता	२५०)
२६—श्री धर्मचन्द राखेचा ,,	२५०)
२७—श्री हीरालाल सुराना ,,	२५०)
२८—श्री अमृतलाल संचेती ,,	२५०)
२९—श्री मन्नालाल बिनायकिया ,,	२५०)

यद्यपि 'वर्धमान-महावीर' जीवन संबंध में अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है लेकिन यह वर्धमान जीवन कोश, शास्त्रों के आधार पर एक उच्च कोटि का कोश है जिसमें मूल आगम का आधार तो है ही—दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थों का आधार भी प्रचुर मात्रा में लिया गया है। कुछ बौद्ध और वैदिक ग्रन्थों का भी आधार रहा है। वर्धमान जीवन कोश, तृतीय खण्ड में भगवान् महावीर के चतुर्विध संघ के प्रमाण का निरूपण, भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के बाद स्थिति, वीर स्तुति, उनके साधु-निर्ग्रन्थों-श्रमणों का विवेचन, वर्धमान के २७ बोलों का यंत्र, उनके समय में पार्श्वनाथ भगवान् की संतानीय परंपरा, सर्वज्ञ अवस्था के विहार स्थल, उनके समय में देवों का आगमन आदि का विवेचन है। इस तरह यह जीवनवृत्त और जीवन प्रसंग का कोश है।

अस्तु हम आपके सामने वर्धमान जीवनकोश तृतीय खण्ड प्रस्तुत कर रहे हैं। इस ग्रन्थ का प्रतिपादन अत्यन्त प्राञ्जल एवं प्रभावक रूप में सूक्ष्मता के साथ किया गया है। यह भगवान् महावीर की जीवन-धारा को शास्त्रों के आधार पर बताने वाला अनुपम ग्रन्थ है। वर्धमान जीवन कोश के चतुर्थ खण्ड को भी जल्द ही प्रकाशित करने की योजना है। इसमें वर्धमान महावीर के व्यक्तिगत रूप से साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं का विवेचन होगा। उनके समय के राजा विशेष, अन्यतैर्थिक साधुओं का विवेचन आदि रहेगा।

परमाराध्य युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी ने हमारी प्रार्थना पर ध्यान देकर प्रस्तुत कोश पर आशीर्वचन प्रदान किया। तदर्थ उनके प्रति श्रद्धावनत है।

'L. D. Institute of Indology' अहमदाबाद के भूतपूर्व डाइरेक्टर दलसुख भाई मालवणिया—जो जैन दर्शन के उद्‌भट विद्वान है, उनके बहुमूल्य सुझाव बराबर मिलते रहे हैं तथा लखनऊ के डा० ज्योतिप्रसाद जैन जो जैन दर्शन के उच्चकोटि के विद्वान हैं। प्रस्तुतः ग्रन्थ पर 'Fore ward' लिखकर हमें अनुगृहीत किया है इसके लिये हम उन दोनों विद्वानों के प्रति अत्यन्त आभारी है।

स्व० मोहनलाल जी बॉठिया तथा श्रीचंदजी चोरड़ियाने अनेक पुस्तकों का अध्ययन कर प्रस्तुत कोश को तैयार कर हमें प्रकाशित करने का मौका दिया—उनके प्रति हम अत्यन्त आभारी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्व० श्री ताजमलजी बोथरा को भी हम भूल नहीं सकते। जिनका कोश कार्य में बराबर सहयोग रहा। जबरमलजी भंडारी जो हमारी संस्था को मार्ग-दर्शन देते रहे हैं एवं इस कोश को प्रकाशित करने में तन, मन, धन से सहयोग देते रहे हैं—उनके प्रति हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं। समिति आपकी सेवाओं को सदैव स्मरण रखेगी।

हमारी समिति के द्वारा प्रकाशित ४ पुस्तकें स्टोक में है। हमारी समिति के निर्णयानुसार १००) देने वाले सज्जनों को १३०) रु० की निम्नलिखित पुस्तकें दी जाती है।

१—मिथ्यात्वीका आध्यात्मिक विकास	१५)
२—वर्धमान जीवन कोश, प्रथमखण्ड	५०)
३— ,, ,, द्वितीयखण्ड	६५)
	१३०)

कतिपय व्यक्तियों ने अग्रिम ग्राहक बनकर हमारा उत्साह बढ़ाया है और हमें आशा है कि सभी जैन बन्धु इस कार्य में सहयोगी होंगे।

मेरे सहयोगी—जैन दर्शन समिति के सभापति श्री अभयसिंह सुराना, श्री नवरतन सुराना, उपसभापति श्री मोहनलालजी बैद, श्री मांगीलाल लूणिया, श्री धर्मचन्द राखेचा, श्री बच्छराज सेठिया, श्री चन्दनमल मणोत, श्री जंवरीमल बैद, श्री जबरमल भंडारी आदि समिति के उत्साही सदस्यों, शुभचिन्तकों एवं संरक्षकों की साहस और निष्ठा का उल्लेख करना मेरा कर्तव्य है। जिनकी इच्छाएँ और परिकल्पनाएँ मूर्तरूप में मेरे सामने आ रही है। स्व० श्री सूरजमल जी सुराना का भी हमें अभूतपूर्व सहयोग रहा है।

जैन दर्शन समिति ने जैन दर्शन के प्रचार करने के उद्देश्य से इसका मूल्य केवल ७५) रखा है। जैन-जैनेतर सभी समुदाय से हमारा अनुरोध है कि वर्धमान जीवन कोश तृतीय खण्ड को क्रय करके अंतत अपने संप्रदाय के विद्वानों, भंडारों में, पुस्तकालयों में उसका यथोचित वितरण करने में सहयोग दें।

'जैन पदार्थ विज्ञान पुद्‌गल' नामक पुस्तक स्व० श्री बांठिया ने बड़ी गंभीरता से लिखी। इसकी परिचर्चा देश-विदेश में हुई।

२०४५ के मर्यादा महोत्सव के अवसर युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी ने स्व० मोहन लाल जी बांठिया को उनकी सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए 'जैन तत्त्ववेत्ता' की उपाधि के विभूषित किया। २०४६ के मर्यादा महोत्सव के समय योग क्षेम वर्ष में भी आपने पुनः याद किया। पुनः 'जैन तत्त्ववेत्ता' की उपाधि से विभूषित किया।

सुराना प्रिन्टिग प्रेस के मालिक श्री भागचन्द सुराना तथा उनके कर्मचारी भी धन्यवाद के पात्र हैं। जिन्होंने अनेक बाधाओं को होते हुए भी प्रकाशित में सक्षम रहे।

कलकत्ता
६-११-९०

—**हीरालाल सुराणा**, मन्त्री
जैन दर्शन समिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर, क्षत्रियकुण्ड, लछुवाड़, पाल कालीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

भगवान् महावीर जैनधर्म के तीर्थंकर थे। किन्तु जैन ऐतिहासिक परंपरानुसार न तो वे जैन धर्म के आदि प्रवर्तक थे और न सदैव के लिए अन्तिम तीर्थंकर।

अनादिकाल से धर्म के तीर्थंकर होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म में अपने-अपने युगानुसार विशेषताएँ भी रहती हैं और उनके मौलिक स्वरूप में तालमेल भी बना रहता है।

दिगम्बर परंपरानुसार केवल ज्ञानको प्राप्त कर भगवान महावीर मगध की राजधानी राजगृह में आकर विपुलाचल पर्वत पर विराजमान हुए। उनके समवसरण व सभामण्डप की रचना हुई, धर्म व्याख्यान सुनने के इच्छुक राजा व प्रजागण वहाँ एकत्र हुए और भगवान उन्हें तत्वों की, द्रव्यों की जानकारी दी तथा जीवन के सुखमय आदर्श प्राप्त करने हेतु गृहस्थों को अणुव्रतों एवं त्यागियों को महाव्रतों का उपदेश दिया।

दिगम्बर परम्परानुसार आचारांग आदि बारह अंग साहित्य क्रमशः अपने मूलरूप में विलुप्त हो गया। महावीर-निर्वाण के पश्चात् १६२ वर्षों में आठ मुनियों को ही इन अंगों का सम्पूर्ण ज्ञान था। इनमें अंतिम श्रुत केवली भद्रबाहु कहे गये हैं। तत्पश्चात् क्रमशः समस्त अंगों और पूर्वों के ज्ञान में उत्तरोत्तर ह्रास होता गया और निर्वाण से सातवीं शती में ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गयी कि केवल कुछ महामुनियों को ही इन अंगों व पूर्वों का आंशिक ज्ञान मात्र शेष रह गया जिसके आधार से समस्त जैन शास्त्रों व पुराणों की स्वतन्त्र रूप से नई शैली में विभिन्न देश कलानुसार प्रचलित प्राकृतादि भाषाओं में रचना की गयी।

पुरिमताल नगर के स्वामी वृषमसेन, सोमप्रभ व श्रेयांस नरेश्वर ने भगवान् ऋषभदेव से दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार ८४ राजा ऋषभ तीर्थंकर के गणधर थे।

भगवान् महावीर ने निश्चय और व्यवहार की सापेक्षता का प्रतिपादन करते हुए कहा—मनुष्य स्थूल जगत में जीता है, पर वही अंतिम सत्य नहीं है। उसे समस्त सत्य की खोज का प्रयत्न निरंतर चालू रखना चाहिए।

भगवान् महावीर सत्य द्रष्टा थे। उन्होने सत्य को जाना, समझा और उसका प्रयोग किया। उन्होंने जिस सत्य को अभिव्यक्ति दी, उसके पीछे समत्व की भावना काम कर रही थी। समतावादी दर्शन अभिव्यक्ति में जितना सहज और सरल है, प्रयोग के लिए उतना ही कठिन है। भगवान् महावीर ने इस गूढ दर्शन को आत्मसात किया, क्योंकि वे जितने गहरे दार्शनिक थे, व्यावहारिक भी उससे कम नहीं थे। उन्होंने दर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और व्यवहार की दिशाएँ भिन्न-भिन्न नहीं रखी। भिन्नता में एकता और एकता में भिन्नता, यह उनके चिंतन की परिणति थी। एकांत आग्रह को वे सत्य की उपलब्धि में बाधक मानते थे। सत्य किसी सीमा में बंधा हुआ नहीं होता। उसकी उपलब्धि और उपासना का अधिकार सब व्यक्ति को है। जाति, वर्ण, प्रान्त, लिंग आदि की सीमाएँ सत्य को विभाजित नहीं कर सकतीं। प्रकाश, धूप और हवा की तरह सत्य भी सर्व सुलभ तत्त्व है।

भगवान् महावीर उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम के प्रवक्ता थे। वे अकर्मण्यता के समर्थक नहीं थे। उनका कर्म राज्य-मर्यादा के साथ नहीं जुड़ा। इसलिए राज्य के संदर्भ में होनेवाला उनके जीवन का अध्ययन विस्तृत नहीं बना। उनका कार्य क्षेत्र रहा अन्तर्जगत्। यह अध्याय बहुत विशद बना और इससे उनके जीवन की कथा वस्तु विशद बन गयी। उन्होंने साधना के बारह वर्षों में अभय और मैत्री के महान् प्रयोग किये। वे अकेले घूमते रहे। अपरिचित लोगों के बीच गए। न कोई आशंका और न कोई भय और न कोई शत्रुता। समता का अखंड साम्राज्य।

कैवल्य के पश्चात् भगवान् ने अनेकांत का प्रतिपादन किया। उनकी निष्पत्ति इन शब्दों में व्यक्त हुई—सत्य अपने आप में सत्य ही है। सत्य और असत्य के विकल्प बनते हैं परोक्षानुभूति और भाषाके क्षेत्र में। उसे ध्यान में रखकर भगवान् ने कहा—जितने वचन प्रकार हैं, वे सब सत्य है, यदि सापेक्ष हों। जितने वचन प्रकार है, वे सब असत्य है, यदि निरपेक्ष हों। उन्होंने सापेक्षता के सिद्धांत के आधार पर अनेक तात्त्विक और व्यावहारिक ग्रन्थियों को सुलझाया।

भगवान् के जीवन-चित्र इतने स्पष्ट और आकर्षक है कि उनमें रंग भरने की जरूरत नहीं है। मैंने इस कर्म में चित्रकार की किसी भी कला का उपयोग नहीं किया है। मैने केवल इतना-सा किया है कि जो चित्रकाल के सघन आवरण से ढंके पड़े थे, वे मेरी लेखनी के स्पर्श से अनावृत्त हुए हैं।

इस अवसर्पिणी काल से दस आश्चर्यों में एक आश्चर्य हरिवंशकुलोत्पत्ति है। कहा है :—दस अच्छेरगा × × × हरिवंसकुलुप्पत्ती ७ × × × ।

—ठाण० स्था १०।सू० १६०

टीका—तथा हरेः पुरुष विशेषस्य वंशः—पुत्र पौत्रा दिपरम्पराहरिवंशस्तल्लक्षणं यत्कुलं तस्योत्पत्तिः हरिवंशकुलोत्पत्तिः कुलं ह्यनेकधा अतो हरिवंशेन विशिष्यते, एतदप्याश्चर्यमेवेति, श्रूयते हि भरतक्षेत्रापेक्षया यत्तृतीयं हरिवर्षाख्यं मिथुनक क्षेत्रं ततः केनापि पूर्वविरोधिना व्यन्तरसूरेण मिथुनकमेकं भरतक्षेत्रे क्षिप्तं, तच्च पुण्यानुभावाद्राज्यं प्राप्तं, ततो हरिवर्षजातहरिनाम्नो पुरुषाद्यो वंशः सतथेति।

अर्थात्—कोशाम्बी नगरी में 'सुमुख' नामक राजा राज्य करता था। एक दिन वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रीड़ा करने गया। उस समय 'वीरक' माली की पत्नी 'वनमाला' को राजा ने देखा। देखते ही राजा उसे पाने के लिए ललचा उठा। कामान्ध बने राजा ने 'वनमाला' का अपहरण करवा लिया और 'वीरक' को धक्का देकर निकाल दिया।

'वीरक' को यह सारा दृश्य देखकर बहुत दुःख हुआ। अपनी पत्नी के वियोग में पागल बना नगर में घूमने लगा। "हा वनमाला ! हा वनमाला !" करता है परन्तु उसका दुःख मिटाने वाला कौन ?

एक दिन की बात 'वीरक' विलाप करता हुआ, महलों के नीचे से गुजरा। ऊपर महलों में 'वनमाला को लिए हुए महाराजा सुमुख बैठा था। ज्योंही उसके कान में 'वनमाला' का नाम पड़ा वीरकको देखा, सहसा उसकी भावना बदली। सोचा—मैंने उसकी पत्नी का अपहरण किया तो सचमुच अन्याय ही। इतने में अकस्मात् बिजली गिरी। वे दोनों मरकर 'हरिवर्ष क्षेत्र' में युगल रूप में पैदा हुए।

उधर वीरक मरकर सौधर्म देवलोक में 'किल्विषिक' देव हुआ। अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव को देखा तो 'सुमुख' और 'वनमाला' को युगल रूप में पाया। 'वीरक' ने सोचा --इनसे बदला तो अवश्य लेना है। यदि वे यहाँ से मरेंगे तो देवरूप में पैदा होंगे। अतः प्रतिशोध लेने के लिए उस युगल भरतक्षेत्र में 'चम्पापुर' में ला बैठाया और 'चंपापुर' का राजा-रानी बना दिया। आकाशवाणी से कहा—'इस युगल को मैं 'हरिवर्ष क्षेत्र' से लाया हूँ। वे सर्वथा राजा बनने योग्य है। इन्हें पशु, पक्षियों का मांस खूब खिलाना।

देव ने अपनी शक्ति से उस युगल के शरीर का प्रमाण भी कम कर दिया। उसका नाम यहाँ हरिराजा रखा। यहाँ से मरकर नरक में गया। इसी हरिराजा के नाम पर हरिवंश चला।

महाराज चेटक बैशाली के एक कुशल शास्ता थे। बैशाली गणतन्त्र में ९ मल्ली ९ लिच्छवी जाति के १८ राजा थे। उन सबके प्रमुख थे—महाराज 'चेटक'। भगवान् महावीर के ये मामा थे। ये केवल जैनधर्मी ही नहीं अपितु बारह व्रतधारी श्रावक भी थे। उन्हें अनेक राजाओं के साथ युद्ध में उतरना पड़ा। इतना संकल्प था कि निरपराधी पर ये प्रहार नहीं करते थे तथा एक दिन में एक बार एक बाण ही छोड़ते। इनका निशाना अचूक रहता। कूणिक के साथ किये गये महा भयंकर युद्ध में दस दिनों में कालिककुमार आदि दस भाइयों को इन्होंने एक बाण छोड़कर दस दिन में समाप्त कर दिया था। इतिहास प्रसिद्ध चेटक-कूणिक युद्ध को देवेन्द्रों की सहायता से कूणिक ने जीत लिया। वहाँ इन्हें विजित होना पड़ा फिर भी अपनी नीतिमत्ता से ये पीछे नहीं हटे। विरक्त होकर इन्होंने समाधि मरण किया और बारहवें स्वर्ग में गये।

महाराजा चेटक के सात पुत्रियाँ थी। जिनका वैवाहिक सम्बन्ध जैनधर्मावलम्बी बड़े-बड़े नरेशों के साथ किया गया—जो यों है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१—प्रभावती—वीतभय नगर के स्वामी 'उदायन' के साथ।
२—पद्मावती—चंपापुरपति दधिवाहन के साथ
३—मृगावती—कौशाम्बीपति शतानीक के साथ
४—ज्येष्ठा—कुंडनपुर पति नंदीवर्धन के साथ
५—शिवा—उज्जयिनी पति चंडप्रद्योत के साथ
६—सुज्येष्ठा—साध्वी बनी
७—चेतना—'राजगृहीपति' श्रेणिक' के साथ—आवश्यक कथा।

आवश्यक कथा

सत्यकी—वैशाली गणतन्त्र के अधिपति महाराज चेटक की पुत्री का नाम सुज्येष्ठा था। वह प्रव्रजित हुई और अपने उपाश्रय में कायोत्सर्ग करने लगी।

वहाँ एक पेढाल परिव्राजक रहता था। उसे अनेक विद्याएँ सिद्ध थीं। वह अपनी विद्या को देने के लिए योग्य व्यक्ति की खोज कर रहा था। उसने सोचा—यदि किसी ब्रह्मचारिणी स्त्री से पुत्र उत्पन्न हो तो ये विद्याएँ बहुत कार्यकर हो सकती है। एक बार उसने साध्वी को कायोत्सर्ग में स्थित देखा। उसने मंत्र विद्या से धूमिका का व्यामोह (वातावरण को धूमिल बना कर) से साध्वी में वीर्य का निवेश किया। उसके गर्भ रहा। एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सत्यकी रखा।

एक बार वह साध्वी अपने पुत्र के साथ भगवान के समवसरण में गयी। उस समय वहाँ काल संदीप नाम का विद्याधर आया और भगवान् से पूछा—मुझे किससे भय है? भगवान् ने सत्यकी की ओर इशारा करते हुए कहा—इस सत्यकी से। तब काल संदीप उसके पास आकर अवज्ञा करते हुए बोला—अरे। तू मुझे मारेगा। यह कहकर उसे अपने पैरों में गिराया।

एक बार पेढाल परिव्राजक ने साध्वियों से सत्यकी को ले जाकर उसे विद्याएँ सिखाईं। पाँच जन्म तक वह रोहिणी विद्या द्वारा मारा गया। छठे जन्म में जब आयुकाल केवल छह महिनों का रहा तब उसने उसे साधना छोड़ दिया। सातवें जन्म में वह सिद्ध हुई। वह उस सत्यकी के ललाट में छेदकर शरीर में प्रवेश कर गयी। देवता ने उस ललाट-विवर को तीसरी आँख के रूप में परिवर्तित कर दिया। सत्यकी ने देवता की स्थापना की। उसने कालसन्दीप को मार डाला और वह विद्याधरों का राजा हो गया। तब से वह सभी तीर्थंकरों को वंदना कर नाटक दिखाता हुआ विहरण कर रहा है।

पूर्व भारतीय अंचल में अवस्थित 'पावापुरी नगरी' का स्वामी था 'हस्तिपाल। राजा 'हस्तिपाल' भगवान् महावीर का अनन्य भक्त था। भगवान् महावीर ने हस्तिपाल' की विशेष प्रार्थना पर उसकी रथशाला में अपना चतुर्मास किया। यह प्रभु का अंतिम चतुर्मास सिद्ध हुआ। इसी रथशाला में भगवान् महावीर ने अनशन किया। सोलह प्रहर के अनशन से कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि में उसी रथशाला में निर्वाण प्राप्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वज्ञ अवस्था के विहार स्थल

जंभियग्राम में केवलयज्ञान

दीक्षा का तेरहवां वर्ष

१ जंभियग्राम
२ मेंढियग्राम
३ छम्माणि
४ मध्यम पावा
५ जंभियग्राम
६ राजगृह

चौदहवां वर्ष

७ ब्राह्मण कुंडग्राम (बहुशाल के चैत्य में)
८ विदेहजनपद
९ वैशाली

पन्द्रहवां वर्ष

१० वत्सभूमि
११ कौशाम्बी
१२ कोशल जनपद
१३ श्रावस्ती
१४ विदेह जनपद
१५ वाणिज्य ग्राम

सोलहवां वर्ष

१६ मगध जनपद
१७ राजगृह

सत्रहवां वर्ष

१८ चम्पा
१९ विदेह जनपद
२० वाणिज्य ग्राम

अठारवां वर्ष

२१ बनारस
२२ आलंभिका
२३ राजगृह

उन्नीसवां वर्ष

मगध जनपद
राजगृह

बीसवां वर्ष

वत्स जनपद
आलंभिया
कौशाम्बी
वैशाली

इक्कीसवां वर्ष

मिथिला
काकन्दी
श्रावस्ती
अहिच्छत्रा
राजपुर
काम्पिल्य
पोलासपुर
वाणिज्य ग्राम

बाइसवां वर्ष

मगध जनपद
राजगृह

तेईसवां वर्ष

कयंगला
श्रावस्ती
वाणिज्य ग्राम

चौबीसवां वर्ष

ब्राह्मण कुंडग्राम (बहुशाल चैत्य)
वत्स जनपद
मगध जनपद
राजगृह

4

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चीसवां वर्ष

चंपा
मिथिला
काकन्दी
मिथिला

छब्बीसवां वर्ष

अंग जनपद
चंपा
मिथिला

सताईसवां वर्ष

वैशाली
श्रावस्ती
मेंडिय ग्राम (साल कोष्ठक चैत्य)

अठाइसवां वर्ष

कोशल-पांचाल
श्रावस्ती
अहिच्छत्रा
हस्तिनापुर
मोकानगरी
वाणिज्य ग्राम

उन्नतीसवां वर्ष

राजगृह

तीसवां वर्ष

चम्पा
पृष्ठचम्पा
विदेह
वाणिज्य ग्राम

इकतीसवां वर्ष

कौशल-पांचाल
साकेत
श्रावस्ती
कांपिल्य
वैशाली

बतीसवां वर्ष

विदेह जनपद
कौशल जनपद
काशी जनपद
वाणिज्य ग्राम
वैशाली

तेतीसवां वर्ष

मगध
राजगृह
चंपा
पृष्ठ चंपा
राजगृह

चौंतीसवां वर्ष

राजगृह (गुणशील चैत्य में)
नालन्दा

पैंतीसवां वर्ष

विदेह जनपद
वाणिज्य ग्राम
कोल्लाग सन्निवेश
वैशाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छत्तीसवां वर्ष

कौशल जनपद
पांचाल जनपद
सूरसेन जनपद
साकेत
कांपिल्यपुर
सौर्यपुर
मथुरा
नंदीपुर
विदेह जनपद
मिथिला

सैंतीसवां वर्ष

मगध जनपद
राजगृह

अड़तीसवां वर्ष

मगध जनपद
राजगृह
नालंदा

उनचालीसवां वर्ष

विदेह जनपद
मिथिला

चालीसवां वर्ष

विदेह जनपद
मिथिला

इकतालीसवां वर्ष

मगध जनपद
राजगृह

बयालीसवां वर्ष

राजगृह
पावा

इसके अतिरिक्त :—
वैशाली
अहिच्छत्रा
राजपुर
नंदीपुर

भगवान् महावीर के तीर्थ में तीर्थंकर गोत्र बांधने वाले नौ व्यक्ति हुए हैं—

(१) श्रेणिक—ये मगध देश के राजा थे। इनका विस्तृत विवरण निरयावलिका सूत्र में प्राप्त हैं। ये आगामी चौबीसी में पद्मनाभ नाम के प्रथम तीर्थंकर होंगे।

(२) सुपार्श्व—ये भगवान महावीर के चाचा थे। इनके विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है। ये आगामी चौबीसी में सूरदेव नाम के दूसरे तीर्थंकर होंगे।

(३) उदायी—यह कौणिक का पुत्र था। उसने अपने पिता की मृत्यु के बाद पाटलीपुत्र नगर बसाया और वहीं रहने लगा। जैन धर्म के प्रति उसकी परम आस्था थी। वह पर्व-तिथियों में पौषध करता और धर्म-चिन्ता में समय व्यतीत करता था। धार्मिक होने के साथ-साथ वह अत्यन्त पराक्रमी भी था। उसने अपने तेज से सभी राजाओं को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपना सेवक बना दिया था। वे राजा सदैव यही चिन्तन करते कि उदायी राजा जीवित रहते हुये हम सुखपूर्वक स्वच्छंदता से नहीं जी सकते।

एक बार किसी एक राजा ने कोई अपराध कर डाला। उदायी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसका राज्य छीन लिया। राजा वहाँ से पलायन कर शरण पाने अन्यत्र जा रहा था। बीच में ही उसकी मृत्यु हो गयी। उसका पुत्र भटकता हुआ उज्जयिनी नगरी में गया और राजा के पास रहने लगा। अवन्तीपति भी उदायी से क्रुद्ध था। दोनों ने मिलकर उदायी को मार डालने का षड्यन्त्र रचा।

वह राजपुत्र उज्जनिनी से पाटलीपुत्र आया और उदायी का सेवक बन रहने लगा। उदायी को यह मालूम नहीं था कि यह उसके शत्रु राजा का पुत्र है। वह राजकुमार उदायी का छिद्रान्वेषण करता रहा परन्तु उसे कोई छिद्र न मिला।

उसने जैन मुनियों को उदायी के प्रासाद में बिना रोक-टोक आते-जाते देखा। उसके मन में भी राजकुल में स्वच्छंद प्रवेश पाने की लालसा जाग उठी। वह एक जैन आचार्य पास प्रव्रजित हो गया। अब वह साधु-आचार को पूर्णतः पालन करने लगा। उसकी आचार निष्ठा और सेवा भावना से आचार्य का मन अत्यन्त प्रसन्न रहने लगा। वे इससे अत्यन्त प्रभावित हुए। किसी ने उसकी कपटता को नहीं आँका।

महाराज उदायी प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को पौषध करते थे और आचार्य उसको धर्मकथा सुनाने के लिए पास में रखते थे।

एक दिन पौषध-दिन में आचार्य सायंकाल उदायी के निवास-स्थान पर गये। वह प्रव्रजित राजपुत्र भी आचार्य के उपकरण ले उनके साथ गया। उदायी को मारने की इच्छा से उसने अपने पास एक तीखी कैंची रख ली थी। किसी को इसका भेद मालूम नहीं था। वह साथ-साथ चला और उदायी के समीप अपने आचार्य के साथ बैठ गया।

आचार्य ने धर्म प्रवचन किया और सो गए। महाराज उदायी भी थक जाने के कारण वहीं भूमि पर सो गये। वह मुनि जागता रहा। रौद्र ध्यान में वह एकाग्र हो गया और अवसर का लाभ उठाते हुए अपनी कैंची राजा के गले पर फेंक दी। राजा का कोमल कंठ छिद गया। कंठ से लहु बहने लगा।

वह पापी श्रमण वहाँ से बाहर चला गया। पहरेदारों ने भी उसे श्रमण समझ कर नहीं रोका।

रक्त की धारा बहते-बहते आचार्य के संस्तारक तक पहुँच गयी। आचार्य उठे। उन्होंने कटे हुए राजा के गले को देखा। वे अवाक् रह गये। उन्होंने शिष्य को वहाँ न देखकर सोचा—"उस कपटी श्रमण का ही यह कार्य होना चाहिए, इसलिये वह कहीं भाग गया है। उन्होंने मन ही मन सोचा—राजा की इस मृत्यु से जैन शासन कलंकित होगा। और सभी यह कहेंगे कि एक जैन आचार्य ने अपने ही श्रावक को मार डाला। अतः मैं प्रवचन की ग्लानि को मिटाने के लिए अपने आपकी घात कर डालूं। इससे यह होगा कि लोग सोचेंगे—राजा और आचार्य को किसी ने मार डाला। इससे शासन बदनाम नहीं होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य ने अन्तिम प्रत्याख्यान कर उसी कैंची से अपना गला काट डाला।

प्रातःकाल सारे नगर में यह बात फैल गयी कि राजा और आचार्य की हत्या उस शिष्य ने की है। यह कपट वेषधारी किसी राजा का पुत्र होना चाहिए। सैनिक उसकी तलाश में गये, परन्तु वह नहीं मिला। राजा और आचार्य का दाह-संस्कार हुआ।

वह उदायी मारक श्रमण उज्जयिनी में गया और राजा से सारा वृत्तांत कहा। राजा ने कहा—अरे दुष्ट। इतने समय तक का श्रामण्य पालन करने पर भी तेरी जघन्यता नहीं गयी। तूने ऐसा अनार्य कार्य किया। तेरे से मेरा क्या हित सध सकता है। चला जा, तू मेरी आंखों के सामने मत रह। राजा ने उसकी अत्यन्त भर्त्सना की और उसे देश से निकाल दिया।

(५) दृढायु—इनके विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है।

६, ७—शंख और शतक—ये दोनों श्रावस्ती नगरी के श्रावक थे। एक बार भगवान् महावीर श्रावस्ती नगरी पधारे और कोष्ठक चैत्य में ठहरे। अनेक श्रावक-श्राविकाएं वन्दन करने आईं। भगवान् का प्रवचन सुना और सब अपने-अपने घर की ओर चले गये। रास्ते में शंख ने दूसरे श्रावकों से कहा—देवानुप्रियो! घर जाकर आहारादि विपुल सामग्री तैयार करो। हम उसका उपयोग करते हुए, पाक्षिक पर्व की आराधना करते हुए विहरण करेंगे। उन्होंने उसे स्वीकार किया। बाद में शंख ने सोचा—"अशन आदि का उपयोग करते हुए पाक्षिक पौषध की आराधना करना मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं है। मेरे लिए श्रेयस्कर यही होगा कि मैं प्रतिपूर्ण पौषध करूँ।

वह अपने घर गया और अपनी पत्नी उत्पला को सारी बात बताकर पौषधशाला में प्रतिपूर्ण पौषध कर बैठ गया।

इधर दूसरे श्रावक घर गये और भोजन आदि तैयार कराकर एक स्थान में एकत्रित हुए। वे शंख की प्रतीक्षा में बैठे थे। शंख नहीं आया तब शतक को[1] उसे बुलाने भेजा।

[नोट—वृत्तिकार ने शतक की पहचान पुष्कली से की है—(स्थानांग वृत्ति, पत्र ४३२ : पुष्कली नामा श्रमणोपासकः शतक इत्यपरनाम) भगवती (१२/१) में पुष्कली का शतक नाम प्राप्त नहीं है। वृत्तिकार के सामने इसका क्या आधार रहा—यह कहा नहीं जा सकता]

पुष्कली शंख के घर आया और बोला—भोजन तैयार है। चलो, हम-सब साथ बैठकर उसका उपयोग करें और पश्चात् पाक्षिक पौषध करें। शंख ने कहा—मैं अभी प्रतिपूर्ण पौषध कर चुका हूँ अतः मैं नहीं चल सकता। पुष्कली ने लौटकर सारी बात कही। श्रावकों ने पुष्कली के साथ भोजन किया।

प्रातःकाल हुआ। शंख भगवान् के चरणों में उपस्थित हुआ। भगवान् को वन्दना कर वह एक स्थान पर बैठ गया। दूसरे श्रावक भी आये। भगवान् को वन्दना कर उन सबने धर्म प्रवचन सुना।

१—पुष्कली नामा श्रमणोपासकः शतक इत्यपरनाम। —स्थानांगटीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चात् वे शंख के पास आकर बोले— इस प्रकार हमारी अवहेलना करना—क्या आपको शोभा देता है। भगवान् ने यह सुन उनसे कहा—शंख की अवहेलना मत करो। यह अवहेलनीय नहीं है। यह प्रियधर्मा और दृढ़धर्मा है। यह सुदृष्टि जागरिका में स्थित है।

(८) सुलसा—राजगृह में प्रसेनजित नाम का राजा राज्य करता था। उसके रथिक का नाम नाग था। सुलसा उसकी भार्या थी। नाग सुलसा से पुत्र प्राप्ति के लिए इन्द्र की आराधना करता था। एक बार सुलसा ने उससे कहा—तुम दूसरा विवाह कर लो। नाग ने कहा—मैं तुम्हारे से ही पुत्र चाहता हूँ।

एक बार देवसभा में सुलसा के सम्यक्त्व की प्रशंसा हुई। एक देव उसकी परीक्षा करने साधु का वेश बनाकर आया। सुलसा ने उसके आगमन का कारण पूछा। साधु ने कहा—तुम्हारे घर में लक्षपाक तैल है। वैद्य ने मुझे उसके सेवन के लिए कहा है। वह मुझे दो। सुलसा खुशी-खुशी घर में गई और तैल का पात्र उतारने लगी। देव माया से वह गिरकर टूट गया। दूसरा और तीसरा पात्र भी गिरकर टूट गया। फिर भी सुलसा को कोई खेद नहीं हुआ। साधु रूप देव ने यह देखा और प्रसन्न होकर उसे बत्तीस गुटिकाएँ देते हुए कहा—"प्रत्येक गुटिका के सेवन से तुम्हें एक-एक पुत्र होगा। विशेष प्रयोजन पर तुम मुझे याद करना। मैं आ जाऊँगा। यह कहकर देव अंतर्हित हो गया।

सुलसा ने—सभी गुटिकाओं से मुझे एक ही पुत्र हो—ऐसा सोचकर सभी गुटिकाएँ एक साथ खा ली। अब उदर में बत्तीस पुत्र बढ़ने लगे। उसे असह्य वेदना होने लगी। उसने कायोत्सर्ग कर देव का स्मरण किया। देव आया। सुलसा ने सारी बात कह सुनाई। देव ने पीड़ा शांत की। उसके बत्तीस पुत्र हुए।

(९) रेवती—एक बार भगवान् महावीर मेंढिक ग्राम नगर में आये। वहाँ उनके पित्त ज्वर का रोग उत्पन्न हुआ और वे अतिसार से पीड़ित हुए। यह जनप्रवाह फैल गया कि भगवान् महावीर गोशालक की तेजोलेश्या से आहत हुए हैं और छः मास के भीतर काल कर जायेंगे।

भगवान् महावीर के शिष्य मुनि सिंह ने अपनी आतापना तपस्या सम्पन्न कर सोचा—'मेरे धर्माचार्य भगवान् महावीर पीतज्वर से पीड़ित है। अन्यतीर्थिक यह कहेंगे कि भगवान् गोशालक की तेजोलेश्या से आहत होकर मर रहे हैं। इस चिंता से अत्यन्त दुःखित होकर मुनि सिंह मालुका कच्छवन में गये और सुबक-सुबक कर रोने लगे। भगवान् ने यह जानकर अपने शिष्यों को भेजकर उसे बुलाकर कहा—'सिंह! तूने जो सोचा है वह यथार्थ नहीं है। मैं आज से कुछ कम सोलह वर्ष तक केवली-पर्याय में रहूँगा। जा, तू नगर में जा। वहाँ रेवती नामक श्राविका रहती है। उसने मेरे लिए दो कुष्माण्ड फल पकाये हैं। वह मत लाना। उसके घर बिजोरा पाक भी बना है। वह वायुनाशक है। उसे ले आना। वही मेरे लिए हितकर है। सिंह गया। रेवती ने अपने भाग्य की प्रशंसा करते हुए, मुनि सिंह ने जो मांगा, वही दे दिया। सिंह स्थान पर आया। बिजोरापाक—महावीर ने खाया। रोग उपशांत हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुत्तरौपातिक में पोट्टिल अणगार की कथा है। उसके अनुसार ये हस्तिनागपुर के वासी थे। इनकी माता का नाम भद्रा था। इन्होंने बतीस पत्नियों को त्यागकर भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। अन्त में एक मास की संलेखना कर सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होंगे। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में उनके भरत क्षेत्र में सिद्ध होने की बात कही है। इससे लगता है कि ये अनगार कोई अन्य है।

आगामी चौबीसी में इनका स्थान इस प्रकार होगा—

१—श्रेणिक का जीव पद्मनाभ नाम के प्रथम तीर्थंकर।
२—सुपार्श्व का जीव सुरदेव नाम के दूसरे तीर्थंकर।
३—उदायी का जीव सुपार्श्व नाम के तीसरे तीर्थंकर।
४—पोट्टिल का जीव स्वयंप्रभ नाम के चौथे तीर्थंकर।
५—दृढायु का जीव सर्वानुभूति नाम के पाँचवें तीर्थंकर।
६—शंख का जीव उदय नामक सातवें तीर्थंकर।
७—शतक का जीव शतकीर्ति नाम के दसवें तीर्थंकर।
८—सुलसा का जीव निर्ममत्व नाम के पन्द्रहवें तीर्थंकर।

नोट—इनमें से शंख और रेवती का वर्णन भगवती में प्राप्त है परन्तु वहाँ उनके भावी तीर्थंकर होने का उल्लेख नहीं है। इसके कथानकों से यह स्पष्ट नहीं होता कि उनके तीर्थंकर गोत्र-बंधन के क्या-क्या कारण हैं।

भगवान् महावीर के शासनकाल में कतिपय व्यक्तियों ने तीर्थंकर-गोत्रकर्म का उपार्जन किया—उदाहरणतः

७—निर्ग्रन्थी पुत्र सत्यकी—वैशाली अधिपति महाराज चेटक की पुत्री का नाम सुज्येष्ठा था। वह प्रव्रजित हुई और अपने उपाश्रय में कायोत्सर्ग करने लगी।

वहाँ एक पेढाल परिव्राजक रहता था। उसे अनेक विद्याएँ सिद्ध थीं। वह अपनी विद्या को देने के लिए योग्य व्यक्ति की खोज कर रहा था। उसने सोचा—यदि किसी ब्रह्मचारिणी स्त्री से पुत्र उत्पन्न हो तो ये विद्याएँ बहुत कार्यकर हो सकती है। एक बार उसने साध्वी को कायोत्सर्ग में स्थित देखा। उसने मन्त्र विद्या से धूमिका व्यामोह (वातावरण को धूमिल बनाकर) से साध्वी में वीर्यका निवेश किया। उसके गर्भ रहा। एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सत्यकी रखा। एक बार वह साध्वी अपने पुत्र के साथ भगवान् के समवसरण में गई। उस समय वहाँ काल संदीप नाम का विद्याधर आया और भगवान् से पूछा मुझे किससे भय है? भगवान् ने सत्यकी की ओर इशारा करते हुए कहा—'इस सत्यकी से।' तब कालसंदीप उसके पास आकर अवज्ञा करते हुए बोला—'अरे! तू मुझे मारेगा! यह कहकर उसने अपने पैरों में गिराया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार पेढाल परिव्राजक ने साध्वियों से सत्यकी को ले जाकर उसे विद्याएँ सिखाईं। पाँच जन्म तक वह रोहिणी विद्या द्वारा मारा गया। छठे जन्म में जब आयु-काल केवल छह महीनों का रहा तब उसने उसे साधना छोड़ दिया। सातवें जन्म में वह सिद्ध हुई। वह उस सत्यकी के ललाट में छेद कर शरीर में प्रवेश कर गई। देवता ने उस ललाट-विवर को तीसरे आँख में परिवर्तित कर दिया। सत्यकी ने देवता की स्थापना की। उसने कालसंदीप को मार डाला और वह विद्याधरों का राजा हो गया। तब से वह सभी तीर्थंकरों को वंदना कर नाटक दिखाता हुआ विहरण कर रहा है।

८—अम्मड परिव्राजक—एक बार श्रमण भगवान् महावीर चम्पानगरी में समवसृत हुए। परिव्राजक विद्याधर श्रमणोपासक अम्मड ने भगवान् से धर्म सुनकर राजगृह की ओर प्रस्थान किया। उसे जाते देखकर भगवान् ने कहा—'श्राविका सुलसा को कुशल समाचार कहना।' अम्मड ने सोचा—'पुण्यवती है सुलसा कि जिसको स्वयं भगवान् कुशल समाचार भेज रहे हैं। उसमें कौन-सा गुण है। मैं उसके सम्यक्त्व की परीक्षा करूँगा।

अम्मड परिव्राजक के वेश में सुलसा के घर गया और बोला—आयुष्मति! मुझे भोजन दो, तुम्हें धर्म होगा?

सुलसा ने कहा—मैं जानती हूँ किसे देने में धर्म होता है।

अम्मड आकाश में गया, पद्मासन में स्थित होकर विभिन्न लोगों को विस्मित करने लगा। लोगों ने उसे भोजन के लिए निमन्त्रण दिया। उसने निमन्त्रण स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। पूछने पर उसने कहा—मैं सुलसा के यहाँ भोजन लूँगा। लोग दौड़े-दौड़े गये और सुलसा को बधाइयाँ देने लगे। उसने कहा—'मुझे पाखण्डियों से क्या लेना है। लोगों ने अम्मड से यह बात कही। अम्मड ने कहा—यह परम सम्यग्दृष्टि है। इसके मन में व्यामोह नहीं है। वह तब लोगों को साथ ले सुलसा के घर गया। सुलसा ने उसका स्वागत किया। वह उससे प्रतिबुद्ध हुआ।

वृत्तिकार ने बताया है कि औपपातिक सूत्र में (४० में) अम्मड परिव्राजक के महाविदेह में सिद्ध होने की बात कही है। वह कोई अन्य है।[१]

अर्हत् अर्थ का व्याख्यान करते हैं। धर्म-शासन के हित के लिए गणधर उनके द्वारा व्याख्यात अर्थ का सूत्र रूप में कथन करते हैं इस प्रकार सूत्र प्रवृत्त होता है।

गणधर आगम-वाङ्मय का प्रसिद्ध शब्द है। आगमों में मुख्यतया दो अर्थों में व्यवहृत हुआ है। तीर्थंकरों के प्रधान शिष्य गणधर कहे जाते हैं, जो तीर्थंकरों द्वारा अर्थागम के रूप में उपदिष्ट ज्ञान का द्वादश अंगों के रूप में संकलन करते हैं। प्रत्येक गणधर के नियन्त्रण में एक गण होता है, जिसके संयम-जीवितव्य के निर्वाह का गणधर पूरा ध्यान रखते हैं। गणधर का उससे भी अधिक आवश्यक कार्य है, अपने अधीनस्थ गण को आगम-वाचना देना।

---

१ स्थानांगवृत्ति—पत्र ४१४ : यश्चौपपातिकोपाङ्गे महाविदेहे सेत्स्यतित्यभिधीयते सोऽन्यइति सम्भाव्यते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर ने चौथे गुणस्थान के मनुष्य को दशाश्रुतस्कंध में श्रमणोपासक के नाम से अभिहित किया है।

भगवान् महावीर ५६ वर्ष के थे उस समय भगवान् के शिष्य जमाली ने संघभेद की स्थिति उत्पन्न की। भगवान् महावीर ५८ वर्ष के थे उस समय उनके शिष्य गौतम व भगवान पार्श्व के शिष्य केशी के साथ वाद-विवादहुआ था।

इस काल में प्रथम पाँच तीर्थंकर सातवें, आठवें, ग्यारहवें, बारहवें, उन्नीसवें तथा चौबीसवें तीर्थंकरों के प्रथम चार कल्याण का एक ही नक्षत्र था परन्तु परिनिर्वाण का अन्य नक्षत्र था। अवशेष तीर्थंकरों के (गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान, परिनिर्वाण) पाँचों कल्याणों का अलग-अलग एक ही नक्षत्र था। यथा मल्लिनाथ तीर्थंकर के चार कल्याण अश्विनी नक्षत्र में तथा परिनिर्वाण भरणि नक्षत्र में था। पद्मप्रभु स्वामी के पाँचों कल्याण चित्रा नक्षत्र में थे।

कुलं पेइयं माइया जाई

अर्थात् पितृवंश कुल तथा मातृवंश जाति कहा जाता है।

सर्वलब्धि संपन्न—

मासं पाओवगया सव्वेऽवि य सव्वलद्धिसंपन्ना।
वज्जरिसहसंघयणा समचउरंसा य संठाणे॥

—आव० निगा ६५६

मंडित गणधर को सभी लब्धियों से युक्त कहा गया है।

उनका देहिक गठन वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन तथा समचतुरस्र संस्थानमय था।

अन्यान्य गणधरों का भी ऐसा ही था।

दोहन के बिना दूध नहीं मिलता और मन्थन के बिना नवनीत नहीं मिलता। प्राचीन आर्य-साहित्य के दोहन-मंथन के लिए मेरी तीव्र आकांक्षा रही है।

बुद्ध और महावीर दो महान् समआमयिक व्यक्ति थे। उस युग में पूरण काश्यप, मंक्खली गोशाला, अजित केश कंबल, प्रकुध कात्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्र, ये अन्य भी धर्मप्रवर्तक थे। ऐसा त्रिपिटिक मानते हैं। महावीर ५२७ ई० पू० में तथा बुद्ध ५०२ ई० पू० में निर्वाण प्राप्त हुए थे। यह निर्णय अपने आप में सब प्रकार संगत लगता है। महावीर और बुद्ध के समकालीन राजा ; श्रेणिक बिम्बिसार, कूणिक, चंद्रप्रद्योत, वत्सराज उदयन, प्रसेनजित्, चेटक, सिंधु सौ वीर के राजा उद्रायण आदि थे।

बौद्ध ग्रन्थों, में जो समुल्लेख निगण्ठनातपुत्त व उनके शिष्यों से सम्बन्धित मिलते हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि महावीर-बुद्ध के युग में एक प्रतिष्ठित तीर्थंकर के रूप में थे व उनका निर्ग्रन्थ संघ भी बृहत् और सक्रिय था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तु महावीर और बुद्ध दोनों समसामयिक युगपुरुष थे, यह एक निर्विवाद विषय है। फिर भी जैन आगमों में बुद्ध का नामोल्लेख तथा बुद्ध व बौद्ध भिक्षुओं से सम्बन्धित कोई घटनाप्रसंग उपलब्ध नहीं होता। केवल सूत्रकृतांग सूत्र के कुछ एक पद्य बौद्ध मान्यताओं का संकेत देते हैं। पर अंग-साहित्य का जो अंश निश्चित रूप से बहुत प्राचीन है, उसमें बौद्धों के उल्लेख का सर्वथा अभाव है। जबकि जैसे बताया गया है—बौद्ध त्रिपिटकों में महावीर और उनके भिक्षुओं से सम्बन्धित नाना घटना प्रसंग उपलब्ध होते हैं। महावीर और बुद्ध दोनों ही श्रमण-संस्कृति के धर्मनायक होने के नाते एक दूसरे के बहुत निकट भी थे। त्रिपिटको के कतिपय समुल्लेख भी बुद्ध को तरुण और महावीर को ज्येष्ठ व्यक्त करते हैं।

प्रथक उपांग औपपातिक के वृत्तिकार अभयदेव सूरी थे। जिनका अस्तित्वकाल विक्रय की ग्यारवीं-बारहवीं शताब्दी था। राजप्रश्नीय, जीवाजीवाभिगम प्रज्ञापना, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति तथा सूर्यप्रज्ञप्ति—इन छह उपांगों के वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि थे। जिनका अस्तित्व काल विक्रम की बारहवीं शताब्दी था। कल्पिका (निरयावलिका), कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वण्हिदशा—इन पाँच उपांगों के वृत्तिकार श्रीशांतिचन्द्रसूरि थे—जिनका अस्तित्व काल विक्रम की बारहवी शताब्दी था। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति के वृत्तिकार शांतिचन्द्र सूरि भी थे। वे हीरविजय सूरि के शिष्य थे। जिनका अस्तित्व काल विक्रय की १६वीं शताब्दी था।

सूत्रकृतांग की चूर्णि में बारह अंगों को श्रुत पुरुष के अंगस्थानीय और शेष आगमों को उपांग कहा गया है।[१] कहा है—

सुअपुरसस्स बारसंगाणि मूलत्थाणीयाणि।
सेससुतक्खंधा उवंगाणि कलाप्यङ्गुष्ठादिवत् ॥

—सूय० नि० गा २ चूर्णि

आचार्य जिनप्रभ ने चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति—इन दोनों को भगवती के उपांग माने हैं।

जैन आगमों में अंगों का मुख्य स्थान है। उनको नियत श्रुत माना गया है। अंग-बाह्यश्रुत अनियत है। अङ्ग स्वतः प्रमाण है। अंग बाह्यश्रुत परतः प्रमाण है। इसका प्रामाण्य अंग पर आधृत है। अंग गणधर कृत होते हैं। अंग बाह्यश्रुत स्थविर कृत होता है।

भगवान् महावीर के समय में साधना की चार भूमिकाएँ थी और उनके साधकों की भिन्न-भिन्न विशेषताएँ थीं। यथा—

श्रमण, निर्ग्रन्थ, स्थविर और अनगार। इनका व्यवस्थित वर्णन भी मिलता है। संभव है भगवान् महावीर के समय में जिनकल्पी के लिए 'निर्ग्रन्थ' और स्थविर कल्पी के

१—विधि मार्ग प्रपा० पृ० ५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए 'स्थविर' का प्रयोग होता हो। उत्तरकाल में निर्ग्रन्थ के स्थान पर जिन कल्पी का प्रयोग प्रचलित हुआ हो।

अस्तु भगवान् महावीर के काल में श्रमणों के अनेक सम्प्रदाय थे—निर्ग्रन्थ, बौद्ध, आजीवक आदि-आदि।

ओवाइय के अनुसार अम्मड़ परिव्राजक आगामी जन्म में दृढ़ प्रतिज्ञ होगा और रायपसेणइय के अनुसार प्रदेशी राजा आगामी जन्म में दृढ़प्रतिज्ञ होगा। यह संक्रमण कैसे हुआ—यह अभी संशोधन का विषय है।

अम्मड परिव्राजक—एक बार श्रमण भगवान् महावीर चम्पानगर में समवसृत हुए। परिव्राजक विद्याधर श्रमणोपासक अम्मड ने भगवान् से धर्म सुनकर राजगृह की ओर प्रस्थान किया। उसे जाते देख भगवान् ने कहा—'श्राविका सुलसा को कुशल समाचार कहना। अम्मड ने सोचा—"पुण्यवती है सुलसा कि जिसको स्वयं भगवान् अपना कुशल समाचार भेज रहे हैं। उसमें ऐसा कौन सा गुण है। मैं उसके सम्यक्त्व की परीक्षा करूँगा।

अम्मड परिव्राजक के वेश में सुलसा के घर गया और बोला—"आयुष्मति! मुझे भोजन दो। तुम्हें धर्म होगा। सुलसा ने कहा—मैं जानता हूँ किसे देने से धर्म होता है।

अम्मड़ आकाश में गया। पद्मासन में स्थित होकर विभिन्न लोगों को विस्मित करने लगा। लोगों ने उसे भोजन के लिए निमन्त्रण दिया। उसने निमन्त्रण स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। पूछने पर उसने कहा—मैं सुलसा के यहाँ भोजन लूँगा। लोग दौड़े-दौड़े गए और सुलसा को बधाइयां देने लगे। उसने कहा—मुझे पाखंडियों से क्या लेना है। लोगों ने अम्मड से यह बात कही। अम्मड ने कहा—यह परम सम्यग्दृष्टि है। इसके मन में व्यामोह नहीं है। वह तब लोगों के साथ ले सुलसा के घर गया। सुलसा ने उसका स्वागत किया। वह उससे प्रतिबुद्ध हुआ।

वृत्तिकार ने बताया है कि औपपातिक सूत्र में (४०) अम्मड परिव्राजक के महाविदेह में सिद्ध होने की बात कही है। यह कोई अन्य है।

वृत्तिकार का अभिमत है कि इनमें से कुछ मध्यम तीर्थंकर के रूप में तथा कई केवली के रूप में होंगे।

अम्मड मूलरूप में सुलसा के घर आया। अम्मड को अपना एक साधर्मिक मानकर सुलसा ने उसका स्वागत किया। अम्मड ने रहस्यों का उद्घाटन करते हुए कहा—'ये उपक्रम मैंने तेरी सम्यक्त्व परीक्षा के लिए ही किये थे। तू विचलित नहीं हुई। धर्म में तेरी दृढ़ आस्था देखकर मैं प्रभावित हुआ हूँ। अम्मड ने भगवान् के वाक्य भी सुनाये और कहा—'भगवान् के वाक्य सचमुच ही यथार्थ है।

निह्नववाद—

कोहानल-पज्जलिया गुरुणो वयणं असद्दहंता य (३)
हिंडंति भवे माहिल-जमालिणो रोहगुत्तो य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माहिल इति गोट्ठा (ष्ठा) माहिलो गृह्यते 'पदावयवेऽपि पदसमुदायोपचारात्' च शब्द इवार्थे. सचोपमा वाची त्रिष्वप्ये तेष्वपि। एतेषां त्रयाणामपि निह्नवानां [५७-५६] चरितमावश्यकोपदेशमाला-विवरणाभ्यामवगन्तव्यमिति। उवणओ सबुद्धी (ए) कायव्वो।

—धर्मो पृ० १३०

क्रोधानल से व्याकुल, गुरु के वचनों के प्रति अश्रद्धा रखने से गोष्ठामाहिल, जमाली तथा रोहगुप्त इन तीनों ने संसार परिभ्रमण किया।

भगवान् महावीर के शासन में सात निह्नवों में ये तीन निह्नव है।

धर्मोंपदेशमाला में जयसिंह सूरि ने तीर्थंकरावली और गणधरावली का तो कथन किया भी है। महावीर स्वामी के शासन में हुए श्रुतस्थविरों की भी परंपरा का कथन किया है। उनमें श्रुतरत्न के महासागर जंबू स्वामी से देव वाचकरत्व २४ श्रुतस्थविरों का उल्लेख किया है। उनके साथ में वर्तमान काल में विद्यमान और भविष्यत्काल में होनेवाले स्थविरों का भी उल्लेख किया है।

भगवान् के बड़े भाई का नाम नंदिवर्धन था। उनका विवाह चेटक की पुत्री जेष्ठा के साथ हुआ था।[१] भगवान् महावीर की माता त्रिशला वैशाली गणराज्य के प्रमुख चेटक की बहन थी।

इन्द्रभूति गौतम गोत्री थे। जैन साहित्य में इनका सुविश्रुत नाम गौतम है। भगवान् के साथ इनके संवाद और प्रश्नोत्तर इसी नाम से उपलब्ध होते हैं। वे भगवान् के पहले गणधर और ज्येष्ठ शिष्य बने। भगवान् ने उन्हें श्रद्धा का संबल और तर्क बल दोनों दिए।

भगवान् महावीर की उत्तरकालीन परम्परा—उत्तरवर्ती परम्परा

भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद गौतम स्वामी बारह वर्ष तक जीवित रहे। वीर संवत् बारह में वे मुक्त हुए। उनका जीवन-काल इस प्रकार रहा।

गृहस्थ	छद्मस्थ	केवली
५० वर्ष	३० वर्ष	१२ वर्ष

दिगम्बर परंपरा का अभिमत है कि भगवान् के प्रथम उत्तराधिकारी गौतम हुए। श्वेताम्बर परम्परा का अभिमत है कि भगवान के प्रथम उत्तराधिकारी सुधर्मा हुए। वे भगवान् के निर्वाण के बाद बीस वर्ष तक जीवित रहे। उनका जीवन-काल इस प्रकार रहा—

गृहस्थ	छद्मस्थ	केवली
५० वर्ष	३० वर्ष	२० वर्ष

१—आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पत्र २४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके उत्तराधिकारी जम्बूस्वामी हुए। उनका जीवनकाल इस प्रकार रहा।

गृहस्थ	छद्मस्थ	केवली
१६ वर्ष	२० वर्ष	४४ वर्ष

जम्बूस्वामी के पश्चाद् कोई केवली नहीं हुआ। यहाँ से श्रुतकेवली चतुर्दशपूर्वी की परम्परा चली। छह आचार्य श्रुतकेवली हुए

१—प्रभव
२—शय्यम्भव
३—यशोभद्र
४—संभूतविजय
५—भद्रबाहु
६—स्थूलभद्र

स्थूलभद्र के पश्चात् चार पूर्व नष्ट हो गए। वहाँ से दस पूर्वी की परम्परा चली। दस आचार्य दस पूर्वी हुए।

१—महागिरि
२—सुहस्ती
३—गुणसुन्दर
४—कालकाचार्य
५—स्कन्दिलाचार्य
६—रेवतिमित्र
७—मंगु
८—धर्म
९—चन्द्रगुप्त
१०—आर्यवज्र

तीन प्रधान परम्पराएँ—

१—गणधर वंश
२—वाचक वंश—विद्याधर वंश
३—युगप्रधान

आचार्य सुहस्ती तक के आचार्य गणनायक और वाचनाचार्य दोनों होते थे। आचार्य सुहस्ती के बाद वे कार्य विभक्त हुए।

हिमवंत की स्थविरावलि के अनुसार वाचक वंश या विद्याधर वंश की परम्परा इस प्रकार है—

१—आचार्य सुहस्ती
२—आर्य बहुल और बलिसह
३—आचार्य उमास्वाति
४—आचार्य श्यामाचार्य
५—आचार्य सांडिल्य या स्कन्दिल [वि॰ सं॰ ३७६ से ४१४ तक युगप्रधान]
६—आचार्य समुद्र
७—आचार्य मंगूसूरि
८—आचार्य नन्दिलसूरि
९—आचार्य नागहस्तिसूरि
१०—आचार्य रेवतिनक्षत्र
११—आचार्य सिंहसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२—आचार्य स्कन्दिल [वि० स० ८२६ वाचनाचार्य
१३—आचार्य हिमवंत क्षमाश्रमण
१४—आचार्य नागार्जुनसूरि
१५—आचार्य भूतदिन्न
१६—आचार्य लोहित्यसूरि
१७—आचार्य दुष्यगणी
१८—आचार्य देववाचक (देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण)
१९—आचार्य कालिकाचार्य (चतुर्थ)
२०—आचार्य सत्यमित्र (अंतिम पूर्वविद)

सम्प्रदाय भेद—

तीर्थंकर वाणी जैन संघ के लिए सर्वोपरि प्रमाण है। वह प्रत्यक्ष दर्शन है।

लम्बे समय में अनेक सम्प्रदाय बन गए। श्वेताम्बर और दिगम्बर जैसे शासन-भेद जैन परम्परा का भेद मूल तत्वों की अपेक्षा ऊपरी बातों या गौण प्रश्नों पर अधिक टिका हुआ है।

गोशालक जैन परम्परा से सर्वथा अलग हो गया, इसलिए उसे निह्नव नहीं माना। थोड़े से मतभेद को लेकर जो जैन शासन से अलग हुए उन्हें निह्नव माना गया।

भगवान् महावीर के शासन में सात निह्नव हुए। जमाली, रोहगुप्त और गोष्ठामाहिल के सिवाय शेष निह्नव आ, प्रायश्चित ले फिर से जैन परम्परा में सम्मिलित हुए। जो सम्मिलित नहीं हुए, उनकी भी अब कोई परम्परा प्रचलित नहीं है—

आचार्य	मतस्थापन	उत्पत्ति स्थान	कालमान
जमाली	बहुरतवाद	श्रावस्ती	कैवल्य के १४ वर्ष पश्चात्
तिष्यगुप्त	जीवप्रादेशिकवाद	ऋषभपुर (राजगृह)	कैवल्य के १६ वर्ष पश्चात्
आषाढ शिष्य	अव्यक्तवाद	श्वेतविका	निर्वाण के ११४ वर्ष पश्चात्
अश्वमित्र	सामुच्छेदिकवाद	मिथिला	निर्वाण के २२० वर्ष पश्चात्
गंग	द्वैक्रियवाद	उल्लुकातीर	निर्वाण के २२८ वर्ष पश्चात्
रोहगुप्त	त्रैराशिकवाद	अंतरंजिका	निर्वाण के ५४४ वर्ष पश्चात्
गोष्ठामाहिल	अवद्धिकवाद	दशपुर	निर्वाण के ६०९ वर्ष पश्चात्

परम्परा से दिगम्बर की स्थापना वीर निर्वाण की छट्ठी-सातवीं शताब्दी मानी जाती है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सापेक्ष शब्द हैं। इनमें से एक का नामकरण होने के बाद ही दूसरे के नामकरण की आवश्यकता हुई।

श्वेताम्बर-पट्टावलि के अनुसार जंबू के पश्चात् शय्यम्भव, यशोभद्र, संभूतविजय और भद्रबाहु हुए और दिगम्बर मान्यता के अनुसार नंदी, नंदीमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंबू के पश्चात् कुछ समय तक दोनों परंपराएँ आचार्यों का भेद स्वीकार करती है और भद्रबाहु के समय फिर दोनों एक बन जाती है।

जंबू स्वामी के पश्चात् 'दस वस्तुओं' का लोप माना जाता है, यथा—

गण-परमोहि-पुलाए, आहारग-खवग उवसमे कप्पे।
संजय-तिय-केवलि सिज्झणाय जंबुम्मि वुच्छिन्ना ॥

—विशेभा० गा २५६३

परमावधि ज्ञान, पुलाकलब्धि, आहारग शरीर, क्षपकाउपसम श्रेणी, जिनकल्पिक, त्रिकसंयम (परिहारविशुद्धि—सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यात चारित्र) केवलज्ञान, सिद्ध—इन दस वस्तुओं का जंबू के परिनिर्वाण के बाद विच्छन्न हो गया।

आचार और श्रुत विषयक मतभेद तीव्र होते-होते वीर निर्वाण की छठी-सातवीं शताब्दी में एक मूल दो भागों में विभक्त हो गया।

किंवदन्ती के अनुसार वीर निर्वाण के ६०६ वर्ष के पश्चात् दिगम्बर संप्रदाय का जन्म हुआ, यह श्वेताम्बर मानते हैं और दिगम्बर मान्यतानुसार वीर निर्वाण ६०६ में श्वेताम्बर संप्रदाय का प्रारंभ हुआ।

चैत्यवास और संविग्न

स्थानांगसूत्र में भगवान् महावीर के नौ गणों का उल्लेख मिलता है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार है—

१—गोदासगण	२—उत्तर-बलिस्सहगण	३—उद्देहगण
४—चारणगण	५—उडुपाटितगण	६—वेशपाटितगण
७—कामर्द्धिगण	८—मानवगण	९—कोटिकगण

१—गोदास-भद्रबाहु स्वामी के प्रथम शिष्य थे। उनके नाम से गोदासगण का प्रवर्तन हुआ। उत्तर-बलिस्सह आर्य महागिरि के शिष्य थे। दूसरे गण का प्रवर्तन इनके द्वारा हुआ।

आर्य सुहस्ती के शिष्य स्थविर रोहण से उद्देहगण, स्थविर श्री गुप्त से चारणगण, भद्रयश से उडुपाटितगण, स्थविर कामर्द्धि से वेशपाटिकगण और उसका अन्तर कुल कामर्द्धिगण, स्थविर ऋषिगुप्त से मानवगण और आर्य सुस्थित-सुप्रतिबुद्ध से कोटिकगण प्रवर्तित हुआ।

वीर निर्वाण की नवीं शताब्दी (८५०) में चैत्यवास की स्थापना हुई।

अभयदेवसूरि देवर्द्धिगणि के पश्चात् जैन शासन की वास्तविक परम्परा का लोप मानते हैं।[१] भगवान् महावीर के उत्तराधिकारी सुधर्मा के नाम से गण को सौधर्मगण कहा गया है।

---

१ आगम अष्टोत्तरी, ७१।
देवड्ढिखमासमणजा, परम्परा भावओ वियाणेमि।
सिढिलायारे ठविया, दव्वेण परम्परं पहुहा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समंतभद्र सूरि ने वनवास स्वीकार किया, इसलिए उसे वनवासी गण कहा गया है।

चैत्यवासी शाखा के उद्भव के साथ एक पक्ष संविग्न, विधि मार्ग या सुविहित मार्ग कहलाया और दूसरा पक्ष चैत्यवासी।

स्थानकवासी—

इस सम्प्रदाय का उद्भव मूर्तिपूजा के अस्वीकार पक्ष में हुआ। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में लोंकाशाह ने मूर्तिपूजा का विरोध किया और आचार की कठोरता का पक्ष प्रबल किया। इन्हीं लोंका शाह के अनुयायियों में से स्थानकवासी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ।

तेरापंथ—

स्थानकवासी संप्रदाय के आचार्य श्री रघुनाथजी के शिष्य 'संतभीखणजी (आचार्य भिक्षु) ने विक्रम संवत् १८१७ में तेरापंथ का प्रवर्तन किया।

दिगम्बर—परम्परा में भी अनेक संघ हो गए। उनके नाम ये हैं।

१—मूल संघ—इनके अन्तर्गत सातगण विकसित हुए।

१—देवगण
२—सेनगण
३—देशीगण
४—सुरस्थगण
५—बालात्कारगण
६—काणूरगण
७—निगमान्वय

२—यापनीय संघ
३—द्राविड़ संघ
४—काष्ठा संघ
५—माथुर संघ

विशेष जानकारी के लिए देखें—दक्षिण भारत में जैन धर्म, पृष्ठ १७३ से १८२

भगवान् के चौदह हजार शिष्य प्रकरणकार (ग्रंथकार) थे। उस समय लिखने की परम्परा नहीं थी। सारा वाङ्मय स्मृति पर आधारित था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. पट्टावलि

दुस्समकाल, समण, संघत्थव और विचार-श्रेणी के अनुसार 'युगप्रधान-पट्टावलि' और समय।

१—आचार्यों के नाम			समय (वीर-निर्वाण से वर्ष)
१—गणधर सुधर्मा स्वामी			१-२०
२—आचार्य जंबूस्वामी			२०-६४
३	,,	प्रभव स्वामी	६४-७५
४	,,	शय्यंभवसूरि	७५-९८
५	,,	यशोभद्रसूरि	९८-१४८
६	,,	संभूतिविजय	१४८-१५६
७	,,	भद्रबाहु स्वामी	१५६-१७०
८	,,	स्थूलभद्र	१७०-२१५
९	,,	महागिरि	२१५-२४५
१०	,,	सुहस्तिसूरि	२४५-२९१
११	,,	गुणसुन्दरसूरि	२९१-३३५
१२	,,	श्यामाचार्य	३३५-३७६
१३	,,	स्कन्दिल	३७६-४१४
१४	,,	रेवतिमित्र	४१४-४५०
१५	,,	धर्मसूरि	४५०-४९५
१६	,,	भद्रगुप्तसूरि	४९५-५३३
१७	,,	श्रीगुप्तसूरि	५३३-५४८
१८	,,	वज्रस्वामी	५४८-५८४
१९	,,	आर्यरक्षित	५८४-५९७
२०	,,	दुर्वलिका पुष्यमित्र	५९७-६१७
२१	,,	वज्रसेनसूरि	६१७-६२०
२२	,,	नागहस्ती	६२०-६८९
२३	,,	रेवतिमित्र	६८९-७४८
२४	,,	सिंहसूरि	७४८-८२६
२५	,,	नागार्जुनसूरि	८२६-९०४
२६	,,	भूतदिन्नसूरि	९०४-९८३
२७	,,	कालिकसूरि (चतुर्थ)	९८३-९९४
२८	,,	सत्यमित्र	९९४-१०००
२९	,,	हरिल्ल	१०००-१०५५
३०	,,	जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण	१०५५-१११५
३१	,,	उमास्वातिसूरि	१११५-११९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२—आचार्य		पुष्यमित्र	११६०-१२५०
३३	,,	संभूति	१२५०-१३००
३४	,,	माठरसंभूति	१३००-१३६०
३५	,,	धर्मऋषि	१३६०-१४००
३६	,,	ज्येष्ठांगगणि	१४००-१४७१
३७	,,	फल्गुमित्र	१४७१-१५२०
३८	,,	धर्मघोष	१५२०-१५९८

२. बालभी युगप्रधान पट्टावलि—

१—आचार्य		सुधर्मा स्वामी	२० वर्ष
२	,,	जम्बूस्वामी	४४ ,,
३	,,	प्रभवस्वामी	११ ,,
४	,,	शय्यंभव	२३ ,,
५	,,	यशोभद्र	५० ,,
६	,,	संभूतिविजय	८ ,,
७	,,	भद्रबाहु	१४ ,,
८	,,	स्थूलभद्र	४६ ,,
९	,,	महागिरि	३० ,,
१०	,,	सुहस्ती	४५ ,,
११	,,	गुणसुन्दर	४४ ,,
१२	,,	कालकाचार्य	४१ ,,
१३	,,	स्कन्दिलाचार्य	३८ ,,
१४	,,	रेवतिमित्र	३६ ,,
१५	,,	मंगु	२० ,,
१६	,,	धर्म	२४ ,,
१७	,,	भद्रगुप्त	४१ ,,
१८	,,	वज्रसेन	३६ ,,
१९	,,	रक्षित	१३ ,,
२०	,,	पुष्यमित्र	२० ,,
२१	,,	वज्रसेन	३ ,,
२२	,,	नागहस्ती	६९ ,,
२३	,,	रेवतिमित्र	५९ ,,
२४	,,	सिंहसूरि	७८ ,,
२५	,,	नागार्जुन	७८ ,,
२६	,,	भूतदिन्न	७९ ,,
२७	,,	कालका	११ ,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. माथुरी-युगप्रधान पट्टावलि—

१—आचार्य		सुधर्मास्वामी	१७—आचार्य		धर्म
२	„	जंबूस्वामी	१८	,,	भद्रगुप्त
३	,,	प्रभवस्वामी	१९	,,	वज्र
४	„	शय्यंभव	२०	,,	रक्षित
५	„	यशोभद्र	२१	,,	आनन्दिल
६	,,	संभूतिविजय	२२	,,	नागहस्ती
७	,,	भद्रबाहु	२३	,,	रेवतिनक्षत्र
८	„	स्थूलभद्र	२४	,,	ब्रह्मदीपक सिंह
९	,,	महागिरि	२५	,,	स्कन्दिलाचार्य
१०	,,	सुहस्ती	२६	,,	हिमवंत
११	,,	बलिस्सह	२७	,,	नागार्जुन
१२	„	स्वाति	२८	,,	गोविन्द
१३	,,	श्यामाचार्य	२९	,,	भूतदिन्न
१४	,,	सांडिल्य	३०	,,	लोहित्य
१५	,,	समुद्र	३१	,,	दूष्यगणि
१६	,,	मंगु	३२	,,	देवर्द्धिगणि

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी में हमने सामान्य केवली व तीर्थंकर को ग्रहण किया है। सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वर्धमान तीर्थंकर का विषयांक हमने ३५४ किया है। इसका आधार यह है कि संपूर्ण जैन वाङ्मय को १०० विभागों में विभाजित किया गया है। (देखें—मूल वर्गीकरण सूची पृष्ठ ९-११) इसके अनुसार जीव का विषयांकन ·०३ है। जीव को ९० विभागों में विभक्त किया गया है। (देखें—जीव वर्गीकरण सूची पृष्ठ १२) इसके अनुसार वर्धमान का विषयांकन हमने ९२२४ किया है। इसका आधार इस प्रकार है।

जैन वाङ्मय के मूलवर्गीकरण में जीव का विषयांकन ·०३ है तथा जीवनी (महापुरुषों की जीवनी) के उपवर्गीकरण में तीर्थंकर वर्धमान का विषयांकन २४ है अतः जीवनी में विषयांकन ९२२४ किया है।

वर्धमान संबंधी तुलनात्मक अध्ययन के लिए हमने कई असुविधाओं के कारण अन्य धर्मों के दार्शनिक ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन नहीं कर सके, केवल मज्झिम निकाय, अंगुत्तर निकाय, यजुर्वेद आदि का अध्ययन किया। उससे प्राप्त वर्धमान (महावीर) जीवनी संबंधी पाठों को हमने दे दिया है।

सामान्यतः अनुवाद हमने शाब्दिक अर्थरूप ही किया है, लेकिन जहाँ विषय की गंभीरता या जटिलता देखी है वहाँ पर अर्थ को स्पष्ट करने के लिए ,विवेचनात्मक अर्थ भी किया है। कहीं-कहीं पर भावार्थ भी किया है। विवेचनात्मक अर्थ करनेके लिए हमने सभी प्रकारकी टीकाओं तथा अन्य सिद्धांत ग्रंथों का उपयोग किया है। छद्मस्था के कारण यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुवादों में या विवेचन करने में कहीं-कहीं मूलभ्रांति व त्रुटि रह गई हो तो पाठक वर्ग सुधार लें। जहाँ मूल पाठ में विषय स्पष्ट रहा है। वहाँ मूलपाठ के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हमने टीकाकारों के स्पष्टीकरण को भी अपनाया है तथा स्थान-स्थान पर टीका का पाठ भी उद्धृत कर दिया है।

अस्तु वर्धमान जीवन कोश-श्वेताम्बर आगम तथा दिगम्बर तथा श्वेताम्बर सिद्धांत ग्रन्थों से तैयार किया गया है। संपादन-वर्गीकरण, तथा अनुवाद के काम में निर्युक्ति, चूर्णी, वृत्ति, भाष्य आदि का भी उपयोग किया गया है।

संभव है हमारी छद्मस्था के कारण तथा मुद्रक के कर्मचारियों के प्रमादवश पुस्तक की छपाई में कुछ अशुद्धिया रह गई हो। आशा है पाठकगण अशुद्धियों के लिए हमें क्षमा करेंगे तथा आवश्यकता के अनुसार संशोधन कर लेंगे।

हमारी कोश परिकल्पना का अभी भी परीक्षण काल चल रहा है अतः इसमें अनेक त्रुटियाँ हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। लेकिन इस हमारी परिकल्पना में पुष्टता आ रही है तथा हमारे अनुभव से यथेष्ट समृद्धि हुई है इसमें कोई संदेह नहीं है। पाठक वर्ग से सभी प्रकार के सुझाव अभिनन्दनीय है। चाहे वे सम्पादन, अनुवाद या अन्य किसी प्रकार के हों। आशा है इस विषय में विद्वद् वर्ग अपने सुझाव भेजकर हमें पूरा सहयोग देंगे।

अस्तु वर्धमान जीवण कोश, चतुर्थ खण्ड की तैयारी अधिकांश संपूर्ण हो चुकी है, इसमें वर्धमान, तीर्थंकर के व्यक्तिगत साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका का विवेचन, उनके समकालीन राजा, विशिष्ट व्यक्तियों का आदि-आदि विवेचन रहेगा।

हम जैन दर्शन समिति के आभारी है जिसने वर्धमान जीवन कोश के प्रकाशन की सारी व्यवस्था की जिम्मेवारी ग्रहण की। युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के प्रति भी हम श्रद्धावनत है जिन्होंने अति व्यतता के कारण भी प्रस्तुत कोश पर आशीर्वचन लिखा। हम बंधुवर जबरमल जी भंडारी के अत्यन्त आभारी है जिन्होंमे सदा कार्य के लिए प्रोत्साहित किया है। लखनऊ के डा॰ ज्योतिप्रसाद जैन को हम कभी भूल नहीं सकते जिन्होंने समय-समय पर अपने बहुमूल्य सुझाव देते रहे तथा प्रस्तुत कोश पर "Fore word" लिखा। L, D. Institute of Indology अहमदाबाद के भूतपूर्व डाइरेक्टर श्री दलसुख भ ई माल-वणिया के प्रति हम आभारी है जिन्होंने समय-समय पर अपने बहुमूल्य सुझाव जनाते रहे। उन देशी-विदेशी की वह उपसूची भी परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा संशोधन की अपेक्षा रख सकती है।

अस्तु प्रस्तुत कोष—वर्धमान जीवन कोश—तृतीयखंड में इस अवसर्पिणी काल के चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान के चतुर्विध संघ का निरूपण, सप्रतिक्रमण सहित पाँच महाव्रत, उनके तीर्थ में तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करने वाले जीव, उनके समय के कूणिक राजा का विवेचन है। सर्वज्ञ अवस्था के वर्धमान के विहार स्थल तथा उनके निकट देवों का आगमन आदि का भी विवेचन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बौद्ध साहित्य में भी भगवान् के बारे में जानकारी मिलती है। यद्यपि उसमें वे आलोच्य के रूप में ही अभिलिखित है पर जैन साहित्य की प्रशस्ति और बौद्ध साहित्य की आलोचना – दोनों के आलोक में भगवान् की यथार्थ प्रतिभा उभरती है।

भगवान् महावीर के दीक्षित होने के पहले भगवान् पार्श्व की परम्परा चल रही थी। उनके हजारों शिष्य वृहत्तर भारत और मध्य एशियाई प्रदेशों में विहार कर रहे थे। उनके दो शिष्य क्षत्रियकुंड नगर में आए। एक का नाम था संजय और दूसरे का नाम विजय। वे दोनों चारण मुनि थे। उन्हें आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त थी। उनके मन में किसी तत्व के विषय में संदेह हो रहा था। वे उसके निवारण का प्रयत्न कर रहे थे, पर वह हो नहीं सका। वे सिद्धार्थ के राज प्रासाद में आये। शिशु वर्द्धमान को देखा। तत्काल उनका संदेह दूर हो गया। उनका मन पुलकित हो उठा। उन्होंने वर्द्धमान को 'सन्मति' के नाम से सम्बोधित किया।

भगवान् जब ५८ वर्ष के थे, उस समय उनके शिष्य गौतम और भगवान् पार्श्व के शिष्य केशी में वाद हुआ था। उसमें धर्म, वेश-भूषा आदि अनेक विषयों पर चर्चा हुई थी। बहुत संभव है कि पिटकों में यही घटना काल भी विस्मृति के साथ उल्लिखित हुई हो।

भगवान् ५६ वर्ष के थे उस समय भगवान् के शिष्य जमालि ने संघभेद की स्थिति उत्पन्न की थी।

वाद के विषय में भगवान् महावीर ने तीन तत्त्व प्रतिपादन किए—

१—तत्त्व जिज्ञासा का हेतु उपस्थित हो, तभी वाद किया जाए।

२—वाद-काल में जय-पराजय की स्थिति उत्पन्न न की जाए।

३—प्रतिवादी के मन में चोट पहुँचाने वाले हेतुओं और तर्कों का प्रयोग न किया जाए।

अस्तित्ववादी की दृष्टि में व्यक्ति-व्यक्ति नहीं होता, वह सत्य होता है, चैतन्य का रश्मिपुंज होता है। उसकी अन्तर्भेदी दृष्टि व्यक्तित्व के पार पहुँचकर अस्तित्व को खोजती है। अस्तित्व में यह प्रश्न नहीं होता कि यह कौन है और किसका अनुयायी है? यह प्रश्न व्यक्तित्व की सीमा में होता है। अस्तित्व के क्षेत्र में सत्य चलता है और व्यक्तित्व के क्षेत्र में व्यवहार।

भगवान् बुद्ध ने 'बहुजनहिताय' का उद्घोष किया। भगवान् महावीर ने 'सर्वजीव-हिताय' की उद्घोषणा की।

भगवान् महावीर का जीवनवृत्त दिगम्बर साहित्य में बहुत कम सुरक्षित है। श्वेताम्बर साहित्य में वह अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित है पर पर्याप्त नहीं है।

भगवती सूत्र में भगवान् के जीवन-प्रसंग विपुल मात्रा में उपलब्ध है। 'उवासगदसाओ' नायाधम्मकहाओ, सूयगडो आदि सूत्रों में भी भगवान् के जीवन और तत्वदर्शन विषयक प्रचुर सामग्री है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन परम्परा में संबुद्ध की तीन कोटियाँ मिलती हैं—

१—स्वयं संबुद्ध अपने आप संबोधि प्राप्त करने वाला ।

२—प्रत्येक बुद्ध—किसी एक निमित्त में संबोधि प्राप्त करने वाला ।

३—उपदेश बुद्ध—दूसरों के उपदेश से सम्बोधि प्राप्त करने वाला ।

तीर्थंकर स्वयं संबुद्ध होते हैं। भगवान् महावीर स्वयं - संबुद्ध थे। उन्हें अपने आप सम्बोधि प्राप्त हुई थी।

'कूणिक राजा—श्रेणिक का पुत्र था। 'कूणिक' नाम 'कूणि' शब्द से बना है। 'कूणि' का अर्थ है अंगुली का घाव वाला। 'कूणिक का अर्थ हुआ—अंगुली के घाव वाला। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

रुढव्रणापि सा तस्य कूणिता भवदंगुलिः ।
ततः सपांशुरमणैः सोऽभ्यधश्चीयत कूणिकाः ।

—त्रिशलाका० १०।६।३०६

आवश्यक चूर्णि में कूणिक को 'अशोकचन्द्र' भी कहा गया है। जैन परम्परा जहाँ उसे सर्वत्र 'कूणिक' कहती है वहाँ बौद्ध परम्परा उसे सर्वत्र अजातशत्रु कहती है। उपनिषिद और पुराणों में भी अजातशत्रु नाम व्यवहृत हुआ है। वस्तुस्थिति यह है कि कूणिक मूल नाम है और अजातशत्रु उसका एक विशेषण। कभी-कभी उपाधि या विशेषण मूल नाम से भी अधिक प्रचलित हो जाते हैं। जैसे—वर्धमान मूल नाम है। महावीर विशेषता परक; पर व्यवहार में 'महावीर' ही सब कुछ बन गया है।

बुद्ध और महावीर दो महान् समसामयिक व्यक्ति थे। उस युग में पूरण काश्यप, मक्खली गोशालक, अजित केशम्बल, प्रक्रुध, कात्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्र ये अन्य भी धर्मप्रवर्तक थे ऐसा त्रिपिटक बताते हैं। जैन शास्त्र भी उनके विषय में कुछ अवगति देते है। गोशालक उस युग के एक उल्लेखनीय धर्मनायक थे। किन्तु दुर्भाग्य से उनकी मान्यताएँ प्रत्यक्षतः हमारे पास नहीं पहुँच रही है। वर्तमान युग में आजीवक सम्प्रदाय का कोई भी धर्म शास्त्र उपलब्ध नहीं है। इस सम्बन्ध में हम जो कुछ जानते हैं, वह जैन और बौद्ध शास्त्रों पर आधारित है[१]।

महावीर ५२७ ई० पू० में तथा बुद्ध ५०२ ई० पू० में निर्वाण प्राप्त हुए थे—ऐसी ऐतिहासिक मान्यता है। बौद्ध ग्रन्थों में जो समुल्लेख निगण्ठ नातपुत्त व उनके शिष्यों से सम्बन्धित मिलते हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि महावीर बुद्ध के युग में एक प्रतिष्ठित तीर्थंकर के रूप में थे व उनका निर्ग्रन्थ संघ भी वृहत् एवं सक्रिय था। नालंदा में दुर्भिक्ष के समय में महावीर अपने वृहत् संघ सहित वहाँ ठहरे हुए थे।

भगवान् महावीर की अन्तिम देशना सोलह प्रहर की थी।[२] भगवान् छह भक्त से

१—संयुत्त निकाय, गामणी संयुत्त (प्र० मं० ७।

२—षोडश प्रहरान् यावद् देशनां दत्तवान् ।
—सौभाग्य पंचम्यादि पर्व कथा संग्रह पत्र १००
सोलस प्रहराइ देसणं करेइ—विविध तीर्थ कल्प पृ० ३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपोसित थे। उस देशना में ५५ अध्ययन पुण्यफल विपाक के और ५५ अध्यअन पाप फल विपाक के कहे। प्रधान नामक मरुदेवी माता का अध्ययन कहते-कहते भगवाद् पर्यंकासन में स्थिर हुए। तब भगवान् ने क्रमशः बादर काय योग में स्थित रह, बादर मनोयोग और वचन योग को रोका। इसके बाद सम्पूर्ण योग का निरोध किया।

भगवान् के परिनिर्वाण के समय अर्यनामकाल व, मुहूर्त नाम का प्राण, सिद्ध नाम का स्तोक था। नाग नाम का करण था। सर्वार्थ सिद्धि नामक उनतीसवाँ मुहूर्त था। स्वाति नक्षत्र के साथ चंद्र का योग था।

गौतम बुद्ध से भगवान् महावीर ज्येष्ठ थे। ऐतिहासिक घटना के अनुसार यह पता चलता है कि गौतम बुद्ध पार्श्वनाथ-परंपरा के किसी श्रमण रूप में दीक्षित हुए और वहाँ से उन्होंने बहुत कुछ सद्ज्ञान प्राप्त किया। दिगम्बर परम्परा के देवसेनाचार्य (८वीं शती) कृत दर्शन सार में गौतम बुद्ध द्वारा प्रारम्भ में जैन दीक्षा ग्रहण करने का आशय मिलता है। उसमें बताया गया है—"जैन श्रमण पिहिताश्रव ने सरयू नदी के तट पर पलाश नामक ग्राम में श्री पार्श्वनाथ के संघ में उन्हें दीक्षा दी और उनका नाम मुनि बुद्धकीर्ति रखा। कुछ समय पश्चात् वे मत्स्य-मांस खाने लगे और रक्त वस्त्र पहनकर अपने नवीन धर्म का उपदेश देने लगे।

जैन आगम भगवती सूत्र में पूरण तापस का विस्तृत वर्णन मिलता है। वह भी भगवान् महावीर का समसामयिक था।

पाक्षिक तप करते हुए भगवान् महावीर ने अपना प्रथम चतुर्मास अस्थि ग्राम में किया। दूसरे वर्ष मासिक तप करते हुए राजगृह के बाहर नालंदा की तंतुवायशाला के एक भाग में यथायोग्य अवग्रह ग्रहण कर उन्होंने चतुर्मास किया।

जब गोशालक अपनी तेजो लेश्या से प्रतिहत हुआ तब निर्ग्रन्थों ने उसको विविध प्रकार के प्रश्नोत्तरों द्वारा निरूत्तर कर दिया। गोशालक अत्यन्त क्रोधित हुआ, परन्तु वह निर्ग्रंथों को तनिक भी कष्ट न पहुँचा सका। अनेक स्थविर असंतुष्ट होकर उसके संघ से पृथक् होकर भगवान महावीर के संघ में आये और वहीं साधना निरत हो गये। श्रावस्ती में अयंपुल नामक एक आजीविकोपासक रहता था।

भगवान् महावीर ने अपने अंगुठे से क्रीड़ा मात्र में मेरु पर्वत को हिला दिया था। इसलिए सुरेन्द्रोंने उनका नाम महावीर रखा। इन्द्रके द्वारा दिये गये आहारसे तथा अंगूठे पर किये गये अमृत के लेप के चूसने से धीरे-धीरे बालभाव को त्याग करके भगवान् तीस वर्ष के हुए। उनका रुधिर दूध के समान सफेद था। उनकी देह मैल और पसीने से रहित थी। उनकी आँखें स्पन्दन से रहित थीं। अर्धमागधी वाणी उनके मुख से निकलती थी। शिष्य समुदाय, गणधर और सकल संघ के साथ विहार करते हुए भगवाम् एक बार विपुलाचल पर्वत पर पधारे।

असग ने भगवान् महावीर के पाँचों कल्याणकों का वर्णन बहुत ही संक्षेप में दिगम्बर परंपरा के अनुसार ही किया है, तथापि दो एक घटनाओं के वर्णन पर श्वेताम्बर परम्परा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है—यथा—सुलाकर और मायामयी शिशु को रखकर भगवान् को बाहर लाता है और इन्द्राणी को सौंपता है :—

दिगम्बर परम्परा में पद्मचरित में भी सुमेरु के कंपित होने का उल्लेख है जो कि श्वे० विमलसूरि कृत प्राकृत 'पउमचरिउ' का अनुकरण प्रतीत होता है। पीछे अपभ्रंश चरितकारों ने भी इनका अनुकरण किया है।

तिलोयपण्णत्ती जैसे प्राचीन ग्रंथ में कहा है कि इस अवसर्पिणी के चतुर्थकाल के अंतिम भाग में तैंतीस वर्ष, आठ मास और पन्द्रह दिन शेष रहने पर वर्ष के प्रथम मास श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन अभिजित् नक्षत्र के समय में धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई।[१]

इसी बात को कुछ पाठभेद के साथ श्री वीरसेनाचार्य ने कसाय पाहुडसुत्त की जयधवला टीका में इस प्रकार कहा है।[२]

इस भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के चौथे दुःषमा-सुषमा काल के नौ दिन और छह मास से अधिक तैंतीस वर्ष अवशेष रहने पर धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई।

भगवान् महावीर की दीक्षा के समय दिगम्बर परम्परानुसार उनके माता-पिता उपस्थित थे। परन्तु श्वेताम्बर मान्यतानुसार उस समय माता-पिता का स्वर्गवास हुए लगभग दो वर्ष हो गये थे। रयधु कवि ने महावीर चरिउ में कहा है—

भगवान् महावीर जब दीक्षार्थ वन को जा रहे थे, तब उनके वियोग से विह्वल हुई त्रिशला माता पीछे-पीछे जाते हुए जो उसके करुण विलाप का चित्र खींचा है। वह एक बार पाठक के आँखों में आंशों लाये बिना नहीं रहेगा। विलाप करती हुई माता वन के भयानक कष्टों का वर्णन कर भगवान् महावीर को लौटाने के लिए जाती है, मगर महत्तरजन उसे ही समझा-बुझाकर वापस राजभवन भेज देते हैं।

कुमुदचन्द्र ने अपने महावीर रास की रचना राजस्थानी हिन्दी में की है और कथानक वर्णन में प्रायः सकलकीर्ति के वर्धमान चरित्र का ही अनुसरण किया है। इसकी रचना मृगसिर मास की पंचमी रविवार को पूर्ण हुई है।

कवि नवल शाह ने अपने वर्धमान पुराण की रचना हिन्दी भाषा में की है और कथानक वर्णन में भी सकलकीर्ति का अनुसरण किया है फिर भी कुछ स्थानों पर कवि ने तात्त्विक विवेचन में तत्त्वार्थ सूत्र आदि का आश्रय लिया है। कवि ने इसकी रचना वि० सं० १८२५ के चैत सुदी १५ को पूर्ण की है। यह पुराण सुरत से मुद्रित हो चुका है।

स्वयं पालि त्रिपिटक में इस बात के प्रचुर प्रमाण पाये जाते हैं कि महावीर आयु में और तपस्या में बुद्ध से ज्येष्ठ थे और उनका निर्वाण भी बुद्ध के जीवनकाल में ही हो गया था।

१—अधिकार १, गा ६८-७०

२—जयधवला भाग १ पृ० ७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीर्घनिकाय के श्रामण्य-फल-सुत्त, संयुक्त निकाय के दहर-सुत्त तथा सुत्तनिपात के सभियसुत्त में बुद्ध से पूर्ववर्ती छः तीर्थंकरों का उल्लेख मिलता है। उनके नाम है—पूरण काश्यप,[1] मक्खलि गोशालक,[2] निगंठ[3] नातपुत्त[4] (महावीर), संजय वेलट्ठिपुत्त[5] कच्चायन और अजित केश कंबलि। इन सभी को बहुत लोगों द्वारा सम्मानित, अनुभवी, चिरप्रव्रजित व वयोवृद्ध कहा गया है, किन्तु बुद्ध के ये विशेषण नहीं लगाये गये। इसके विपरीत उन्हें उक्त छह की अपेक्षा जन्म से अल्पवयस्क व प्रव्रज्या में नया कहा गया है। इससे सिद्ध है कि महावीर बुद्ध से ज्येष्ठ थे और उनसे पहले ही प्रव्रजित हो चुके थे।

मज्झिम निकाय के सामगाम सुत्त में वर्णन आया है कि जब भगवान् बुद्ध साम गाम में विहार कर रहे थे तब उनके पास चुन्द नामक श्रमणोद्देश आया और उन्हें यह संदेश दिया कि अभी-अभी पावा में निगंठ नातपुत्त (महावीर) की मृत्यु हुई है, और उनके अनुयायियों में कलह उत्पन्न हो गया है। बुद्ध के पट्ट शिष्य आनंद को इस समाचार से संदेह उत्पन्न हुआ कि कहीं बुद्ध भगवान् के पश्चात् उनके संघ में भी ऐसा विवाद उत्पन्न न हो जाये। अपने इस संदेह की चर्चा उन्होंने बुद्ध भगवान् से भी की। यही वृत्तांत दीर्घनिकाय के पासादिक सुत्त में भी पाया जाता है। इसी निकाय के संगीतिपरियाय सुत्त में भी बुद्ध के संघ में महावीर निर्वाण का यही समाचार पहुँचता है और उस पर बुद्ध के शिष्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को आमंत्रित कर वह समाचार सुनाया और भगवान् बुद्ध के निर्वाण होनेपर विवाद की स्थिति उत्पन्न न होने देने के लिए उन्हें सतर्क किया। इस पर स्वयं बुद्ध ने कहा—साधु, साधु सारिपुत्र, तुमने भिक्षुओं को अच्छा उपदेश दिया। ये प्रकरण निस्संदेह रूप से प्रमाणित करते हैं कि महावीर का निर्वाण बुद्ध के जीवनकाल में हो गया था। यही नहीं, किन्तु इससे उनके अनुयायियों में कुछ विवाद भी उत्पन्न हुआ था जिसके समाचार से बुद्ध के संघ में कुछ चिंता भी उत्पन्न हुई थी और उसके समाधान का भी प्रयत्न किया गया था। इस प्रकार बुद्ध से महावीर की वरिष्ठता और पूर्वनिर्वाण निस्संदेह रूप से सिद्ध हो जाता है। और उनका दोनों की उक्त परम्परागत निर्वाण-तिथियों से भी मेल बैठ जाता है।

भगवान् महावीर के युग में गोशालक भी तीर्थंकर होने का दावा करता था। वह नियतीवादी था। गोशालक के सिद्धांतों का वर्णन भगवती सूत्र, उपासगदशांगसूत्र आदि जैनागमों, जीवनिकाय, मज्झिमनिकाय, अंगुत्तरनिकायादि बोध ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

गोशालक भगवान् महावीर के सम्पर्क में आया; उनसे प्रभावित हुआ। छः वर्ष तक उनके साथ रहा। विद्याध्ययन किया। विपुल तेजोलेश्या आदि प्राप्त की। फिर वह भगवान् महावीर से पृथक् हो गया। वह कर्म, पुरुषार्थ, उद्यम और प्रयत्न में विश्वास नहीं करता था। जो कुछ होता है, वह सब नियत है, नियतिवश है, यह उसका सिद्धांत था। वह अपने को जिन, तीर्थंकर, अर्हत् और केवली के रूप में घोषित करता। कहा जाता है कि गोशालक के अनुयायियों ने अपने गुरु द्वारा उपदिष्ट उक्त आठ चरमों के आधार पर अष्टचरमवाद नामक सिद्धांत का प्रचलन किया। गोशालक को कुत्सित बतलाने में आगम साहित्य में कोई कसर नहीं रखी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर और बुद्ध के विहार व वर्षावासों के समान क्षेत्र व समान ग्राम थे तथा अनुयायियों के समान गृह भी थे। महावीर ने बुद्ध से पूर्व ही दीक्षा ग्रहण की, कैवल्य लाभ किया एवं धर्मोपदेश दिया। उनका प्रभाव समाज में फैल चुका था। तब बुद्ध ने प्रारम्भ किया। बुद्ध तरुण थे, उन्हें अपना प्रभाव समाज में फैलाना था। महावीर का प्रभाव समाज में इतना जम चुका था कि नवोदित धर्मनायक बुद्ध से उन्हें कोई खतरा नहीं लगता था।

गोशालक ने महावीर के साथ ही साधना की थी। महावीर से दो वर्ष पूर्व ही गोशालक अपने आपको जिन, सर्वज्ञ व केवली घोषित कर चुके थे। गोशालक का धर्मसंघ भी महावीर से बड़ा था—ऐसा माना जाता है। इस स्थिति में महावीर के लिए अपने संघ की सुरक्षा व विकास की दृष्टि से गोशालक की हेयता का वर्णन करना स्वाभाविक ही हो गया था।

आगमों और त्रिपिटिकों में किन्हीं-किन्हीं धर्मनायकों के जीवन-प्रसंग यत्किंचित् रूप में मिलते हैं। ये सब भगवान् महावीर के समकालीन थे।

१—पकुध कात्यायन (प्रक्रुध कात्यायन)—

वे शीतोदक-परिहारी थे। उष्णोदक ही ग्राह्य मानते थे। (धम्मपद अट्ठकथा, १-१४४) ककुद्ध वृक्ष के नीचे पैदा हुए—इसलिये 'पकुद्ध' कहलाये। बौद्ध टीकाकारों ने इन्हें पकुध गोत्री होने से पकुध माना है। पर आचार्य बुद्ध घोष ने प्रक्रुध उनका व्यक्तिगत नाम और कात्यायन उनका गोत्र माना है। (धम्मपद अट्ठकथा १-१४४, संयुत्तनिकाय अट्ठकथा १-१०२) प्रक्रुध कात्यायन अन्योन्यवादी थे।

२—अजित केशकम्बल—ये केशों का बना हुआ कम्बल धारण करते थे; इसलिए केशकम्बली कहे जाते थे। इनकी मान्यता लोकायतिक दर्शन जैसी ही थी। बृहस्पति ने इनके अभिमतों को ही विकसित रूप दिया हो, ऐसा लगता है। अजित केशकम्बल उच्छेदवादी थे। शरीर के भेद के पश्चात् विद्वानों और मूर्खों का उच्छेद होता है।

३—संजय वेलट्ठिपुत्र—इनका नाम संजय वेलट्ठिपुत्र ठीक वैसा ही लगता है; जैसे गोशालक मंक्खलीपुत्र। उस युग में ऐसे नामों की प्रचलित परम्परा थी। आचार्य बुद्धघोष ने उसे बेलट्ठ का पुत्र माना है। वे नष्ट होते हैं। मृत्यु के अनन्तर उनका कुछ भी शेष नहीं रहता। वे विक्षेपवादी थे।

४—पूर्णकाश्यप—अनुभवों से परिपूर्ण मानकर इन्हें पूर्ण कहते थे। ब्राह्मण थे; इसलिए काश्यप। वे नग्न रहते थे और उनके अस्सी हजार अनुयायी थे। एक बौद्ध किंवदन्ती के अनुसार यह एक प्रतिष्ठित गृहस्थ के पुत्र थे। उन्होंने कहा[1]—"वस्त्र का प्रयोजन लज्जानिवारण है और लज्जा का मूल पापमय प्रवृत्ति है। मैं तो पापमय प्रवृत्ति से

१—बौद्धपर्व (मराठी) पृ० १०, पृ० १२७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूर हूँ; अतः मुझे वस्त्रों का क्या प्रयोजन।" पूरण काश्यप की निस्पृहता और असंगता देखकर जनता उनकी अनुयायी होने लगी। पूर्ण काश्यप अक्रियवाद के समर्थक थे।

इन मुख्य धर्म और धर्मनायकों के अतिरिक्त और भी अनेक मतवाद उस युग में प्रचलित थे। जैन-परम्परा में ३६३ भेद-प्रभेदों में बताये गये हैं तथा बौद्ध परम्परा में केवल ६२ भेदों में।[1] अनेक प्रकार के तापसों का वर्णन भी आगम और त्रिपिटक साहित्य में भरपूर मिलता है।

महावीर ने एक साथ चतुर्विध संघ की स्थापना की। विनयपिटक के अनुसार बौद्ध धर्म संघ में पहले-पहल भिक्षुणियों का स्थान नहीं था। वह स्थान कैसे बना, इनका विनयपिटक में रोचक वर्णन है।

एक बार बुद्ध कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में रह रहे थे। उनकी मौसी प्रजापति गौतमी, उनके पास आई और बोली—'भन्ते! अपने भिक्षु-संघ में स्त्रियों को भी स्थान दें।' बुद्ध ने कहा—'यह मुझे अच्छा नहीं लगता।' गौतमी ने दूसरी बार और तीसरी बार भी बात दोहराई, पर उसका परिणाम कुछ नहीं निकला।

कुछ दिनों बाद जब बुद्ध वैशाली में विहार कर रहे थे, गौतमी भिक्षुणी का वेष बनाकर अनेक शाक्य स्त्रियों के साथ आराम में पहुँची। आनन्द ने उसका यह स्वरूप देखा। दीक्षा-ग्रहण करने की आतुरता उसके प्रत्येक अवयव से टपक रही थी। आनन्द को दया आयी। वह बुद्ध के पास पहुँचा और निवेदन किया—'भंते! स्त्रियों को भिक्षु-संघ में स्थान दें।' क्रमशः तीन बार कहा, पर कोई परिणाम नहीं निकला। अंत में कहा—'यह महा प्रजापति गौतमी है, जिसने मातृवियोग में भगवान को दूध पिलाया है। अतः अवश्य प्रव्रज्या मिले।'

अन्त में बुद्ध ने आनन्द के अनुरोध को माना और कुछ अधिनियमों के साथ उसे स्थान देने की आज्ञा दी।[2]

बुद्ध के बोधि-जीवन के प्रारम्भिक २० वर्षों में ही कभी अजातशत्रु का राज्यारोहण हो गया था, अर्थात् अजातशत्रु के राज्यारोहण के पश्चात् कम-से-कम २५ वर्ष तो बुद्ध जीवित रहे थे।

दीर्घनिकाय के सामञ्ञफल सुत्त (१/२) केअनुसार मगध नरेश अजातशत्रु बुद्ध के किसी एक राजगृह-वर्षावास में बुद्ध से मिले थे। अंगुत्तरनिकाय में कहा है (अट्ठकथा—२, ४, ५) कि बुद्ध ने बोधि प्राप्ति के पश्चात् दूसरा, तीसरा, चौथा, सत्रहवां और बीसवां वर्षावास राजगृह में बिताया।

महावीर का निर्वाण उत्तर बिहार की पावा में हुआ, न कि दक्षिण बिहार वाली पावा में। अजातशत्रु महावीर का अनुयायी था और बुद्ध का केवल समर्थक; आदि-आदि।

१—दीर्घनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त १/१

२—विनयपिटक, चुल्लवग, भिक्खुणी स्कंधक—१०-१-४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर के समय में अंग, मगध, त्वस आदि देश राजतन्त्र द्वारा शासित थे। काशी, कौशल, विदेह, आदि देशों में गणतन्त्र की स्थापना हो चुकी थी। उस समय दो प्रसिद्ध गणतन्त्र थे—एक लिच्छवियों का, दूसरा मल्लों का। गणयन्त्र राजतन्त्र का उत्तरचरण और जनतन्त्र की पूर्व-पीठिका है। लिच्छवियों ने राज्यशक्ति को संगठित करने के लिए गणतन्त्र की स्थापना की। इसकी स्थापना का मुख्य श्रेय विदेह के अधिपति महाराज चेटक को थी। इसमें नौ लिच्छवि और नौ मल्ल—इन अठारह राज्यों का प्रतिनिधित्व था। इसमें विदेह का राज्य सबसे बड़ा था। उसकी राजधानी थी वैशाली।

विदेह देश में भगवान पार्श्व का धर्म बहुत प्रभावशाली था। ऋषभदत्त ब्राह्मण और क्षत्रिय सिद्धार्थ—ये दोनों ही भगवान पार्श्व के अनुयायी थे।

महाराज चेटक वज्जी गणतन्त्र के अध्यक्ष थे। उनके पिता का नाम केक और माता का नाम यशोमति था। त्रिशला उनकी बहन थी। महाराजा केक ने अपनी पुत्री त्रिशला का विवाह क्षत्रिय कुंडपुर के स्वामी सिद्धार्थ के साथ किया।

देवी त्रिशला एक पुत्र को पहले जन्म दे चुकी थी। उसका नाम था—नन्दीवर्धन।

महाराज सिद्धार्थ को प्रणाम कर प्रियंवदा दासी ने भगवान् महावीर के जन्म की सूचना दी। उन्होंने प्रियंवदा को अमूल्य उपहार दिए। उसे सदा के लिए दासी कर्म से मुक्त कर दिया।

शिशु (भगवान महावीर) का रक्त और मांस गोक्षीर-धारा की भाँति धवल था।

क्षत्रिय कुंडपुर के 'ज्ञातषण्ड' वन में जनता को देखते-देखते कुमार वर्धमान अब श्रमण वर्धमान हो गए।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने अनेक भवपूर्व मरीचि तापस को लक्ष्य कर कहा—"यह अन्तिम तीर्थंकर महावीर होगा।" श्वेताम्बर मतानुसार महावीर की घटना उनके पच्चीस भवपूर्व की है तथा दिगम्बर मतानुसार उनके इकतीस भवपूर्व की है।

अस्तु अनंत संसार भ्रमण करते-करते मरीचि ने अपने पूर्वभव ग्रामचिंतक (नयसार भिल्ल-पुरुरवा-भिल्ल) के भव में अटवी में पथभ्रष्ट साधुओं को सही पथ दिखाने से तथा उन साधुओं की देशना श्रवण करने से मिथ्यात्वादि से निर्गमन होकर, सम्यक्त्व की पहली बार प्राप्ति हुई।

अपर विदेह क्षेत्र में भगवान् महावीर का जीव—ग्रामचिन्तक सुसाधुओं को अन्नपान देने से तथा अटवी से निकलने का सही पथ दिखाने से सम्यक्त्व को प्राप्त कर उसके प्रभाव से आयष्क्षय होने पर सौधर्म स्वर्ग में देवरूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ एक पल्योपम की आयु थी।[१]

१—त्रिषष्टिश्लाघा पुरुष चरित्र १०।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् सौधर्म देवलोक से चवकर भगवान् महावीर का जीव भगवान् ऋषभ के पुत्र भरत के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम मरीचि कुमार था। इक्ष्वाकु कुल में जन्म हुआ। अतीत में कुलकर वंश था। वीरजिणिंदचरिउ में महाकवि पुष्पदंत ने कहा है[1]—"सौधर्म स्वर्ग से दिव्य भोगों को भोगकर तथा एक सागरोपम काल जीवित रह कर वह शबर स्वर्ग से च्युत हुआ।" भरत की रानी अनन्तमती अत्यन्त सुन्दर थी। उसी तुग पयोधरी देवी के गर्भ में वह शबर का जीव आकर उत्पन्न हुआ। उनका वह पुत्र मरीचि नाम से विख्यात हुआ[1]।"

सुर-असुरों द्वारा की गई भगवान् ऋषभ देव के केवल ज्ञान की महिमा को देखकर मरीचि भी अपने पाँच सौ भाइयों के साथ निर्ग्रन्थ बना था। वह ग्यारह ही, अंगों का ज्ञाता बना और प्रतिदिन भगवान् ऋषभदेव के साथ उनकी छाया की तरह विहरण करता था।

एक बार भीषण परिषहों के उत्पन्न होने के कारण उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ—प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का मैं पौत्र हूँ। अखण्ड छः खण्ड के विजेता प्रथम चक्रवर्ती भरत का मैं पुत्र हूँ। चतुर्विध संघ के समक्ष वैराग्य से मैंने प्रव्रज्या ग्रहण की है। संयम को छोड़कर घर चले जाना मेरे लिए लज्जास्पद है, किन्तु चारित्र के इतने बड़े भार को अपने इन दुर्बल कंधों पर उठाये रखने मैं सक्षम नहीं हूँ। महाव्रतों का पालन अशक्य अनुष्ठान है और इन्हें छोड़कर घर चले जाने से मेरा उत्तम कुल मलिन होगा।

अपने ही विचारों में खोया हुआ मरीचि आगे और सोचने लगा—भगवान् ऋषभदेव के साधु मनोदण्ड, वचनदंड और कायदंड को जीतने वाले है और मैं इनसे जीता गया हूँ अतः त्रिदण्डी बनूंगा।

इन्द्रियविजयी ये श्रमण केशों को लुंचन कर मुंडित होकर विचरते हैं। मैं मुण्डन कराऊँगा और शिखा रखूंगा। मैं केवल स्थूल प्राणियों के वध से ही उपरत रहूँगा—यद्यपि ये निर्ग्रन्थ सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार के प्राणियों के वध से विरत हैं। मैं अकिञ्चन भी नहीं रहूँगा और पादुकाओं का प्रयोग भी करूँगा। चंदन आदि सुगन्धित द्रव्यों का विलेपन करूँगा। मस्तक पर छत्र धारण करूँगा। कषाय रहित होने से ये मुनि श्वेत वस्त्र पहनते हैं और मैं कषाय-कालुष्य से युक्त हूँ। अतः इसकी स्मृति में काषायित वस्त्र पहनूँगा। ये सचित्त जल के परित्यागी है, पर मैं वैसे परिमित जल से स्नान भी करूँगा तथा पीऊँगा भी।

अपनी बुद्धि से वेश की इस तरह परिकल्पना कर तथा उसे धारण कर वह भगवान् ऋषभदेव के साथ ही विहरण करने लगा।

साधुओं की टोली में इस अद्भुत साधु को देखकर कौतूहल वश बहुत सारे व्यक्ति उससे धर्म पूछते।

१—वीरजिणिंदचरिउ १।४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर में वह मूल तथा उत्तरगुण-सम्पन्न साधु-धर्म का ही उपदेश करता। जब उसे जनता यह पूछती कि तुम उसके अनुसार आचरण क्यों नहीं करते, तो वह अपनी असमर्थता स्वीकार करता। उसके उपदेश से प्रेरित होकर यदि कोई भव्य दीक्षित होना चाहता तो वह उसे भगवान् के समवसरण में भेज देता और भगवान् उसे दीक्षा-प्रदान कर देते।

कालान्तर में कपिल नामक एक राजकुमार को भी उसने अपना शिष्य बनाया। निमग्न विचारों में निमग्न मरीचि ने उत्सूत्र प्ररूपणा करते हुए कहा—वहाँ भी धर्म है और यहाँ भी। इस मिथ्यात्व पूर्ण संभाषण से उसने उत्कृष्ट संसार बढ़ाया। कपिल को पच्चीस तत्वों का उपदेश देकर अलग मत की स्थापना की। जैन पुराणों में यह भी माना गया है कि आगे चलकर कपिल का शिष्य आसूरी व आसूरी का शिष्य सांख्य बना। कपिल व सांख्य ने मरीचि द्वारा बताये गये उन पच्चीस तत्वों की विशेष व्याख्या की जो एक स्वतंत्र दर्शन के रूप में प्रसिद्ध हुई। कपिल और सांख्य उस दर्शन के विशेष व्याख्याकार हुए है। अतः वह दर्शन भी कपिल दर्शन या सांख्य दर्शन के नाम से विश्रुत हुआ। वस्तुः मरीचि इसका मूल संस्थापक था।

भावी तीर्थंकर कौन—

भरत ने एक बार भगवान् ऋषभदेव से पूछा – प्रभो ! इस परिषद् में ऐसी भी कोई आत्मा है, जो आपकी तरह तीर्थ की स्थापना कर इस भरत को पवित्र करेगी।

भगवान् ने उत्तर दिया—"तेरा पुत्र मरीचि प्रथम त्रिदण्डी तापस है। इसकी आत्मा अब तक कर्ममल से मलिन है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान के अवलम्बन से क्रमशः वह शुद्ध होगी। भरत क्षेत्र के पोतनपुर नगर में इसी अवसर्पिणी काल में वह त्रिपृष्ठ नामक पहला वासुदेव होगा। क्रमशः परिभ्रमण करता हुआ, वह पश्चिम महाविदेह में धनंजय और धारिणी दम्पती का पुत्र होकर प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती होगा। अपने संसार परिभ्रमण को समाप्त करता हुआ वह इसी चौबीसी में महावीर नामक चौबीसवां तीर्थंकर होकर तीर्थ की स्थापना करेगा तथा स्वयं सिद्ध, बुद्ध व मुक्त बनेगा।"

कुल का अहं—अपने प्रश्न का उत्तर सुनकर भरत बहुत आह्लादित हुए। उन्हें इस बात से भी अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि उनका पुत्र पहला वासुदेव, चक्रवर्ती व अन्तिम तीर्थंकर होगा। परिव्राजक मरीचि को सूचना व बधाई देने के निमित्त भगवान् के पास से वे उसके पास आये। भगवान् से हुए अपने वार्तालाप से उन्हें परिचित किया।

फलस्वरूप मरीचि को इससे अपार प्रसन्नता हुई। वह तीन ताल देकर आकाश में उछला और अपने भाग्य को बार-बार सराहने लगा। उच्च स्वर से बोलने लगा—मेरा कुल कितना श्रेष्ठ है। मेरे दादा प्रथम तीर्थंकर है। मेरे पिता प्रथम चक्रवर्ती है। मैं पहला वासुदेव होऊँगा व चक्रवर्ती होकर अन्तिम तीर्थंकर होऊँगा। सब कुलों में मेरा ही कुल श्रेष्ठ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुल के इस अहं से मरीचि ने नीच गोत्रकर्म उपार्जित किया। यही कारण था कि महावीर तीर्थंकर होते हुए भी पहले देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ में आये। जबकि तीर्थंकर का क्षत्रिय कुल में जन्म लेना अनिवार्य होता है।

महावीर के कुल सत्ताईस भवों का वर्णन मिलता है, जिसमें दो भव मरीचि-भव के पूर्व के हैं और शेष बाद के। सत्ताईस भवों में प्रथम भव नयसार कर्मकार का था। इस भव में महावीर ने किसी तपस्वी मुनि को आहार दान दिया था और प्रथम बार सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था।

सत्ताईस भवों में महावीर ने जहाँ चक्रवर्तित्व और वासुदेवत्व पाया; वहाँ उन्होंने सप्तम नरक तक का भयंकर दुःख भी सहा। पच्चीसवें भव में तीर्थंकरत्व प्राप्ति के बीस निमित्तों की आराधना करते हुए तीर्थंकर गोत्र नामकर्म बांधा। छब्बीसवें भव में प्राणत नामक दशवें स्वर्ग में रहे और सत्ताईसवें भव में महावीर के रूप में जन्म लिया।

भगवान् ऋषभदेव की सेवा में विहरण करते हुए मरीचिका काफी समय बीत चुका। एक बार वह रोगाक्रांत हुआ। उसकी परिचर्या करने वाला कोई न था; अतः वेदना से पराभूत होकर उसने स्वयं के लिए शिष्य बनाने का सोचा। संयोग की बात थी एक बार भगवान् ऋषभदेव देशना (प्रवचन) दे रहे थे। कपिल नामक राजकुमार भी परिषद् में उपस्थित था। उसे वह उपदेश रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। उसने इधर-उधर अन्य साधुओं की ओर दृष्टि दौड़ाई। सभी साधुओं के बीच विचित्र वेशवाले उस त्रिदंडी मरीचि को भी देखा। वह वहाँ से उठकर उसके पास आया। धर्म का मार्ग पूछा तो मरीचि ने स्पष्ट उत्तर दिया—"मेरे पास धर्म नहीं है। यदि तू धर्म चाहता है तो प्रभु का ही शरण ग्रहण कर। वह पुनः भगवान् ऋषभदेव के पास आया। और धर्मश्रवण करने लगा। किन्तु अपने दूषित विचारों से प्रेरित होकर वह वहाँ से पुनः उठा। और मरीचि के पास जाकर बोला—"क्या तुम्हारे पास जैसा-तैसा भी धर्म नहीं है? यदि नहीं है तो फिर यह संन्यास का चोगा कैसे?"

जिस प्रकार चक्रवर्तियों में प्रथम चक्रवर्ती भरत हुआ उसी प्रकार श्रेयांसनाथ के तीर्थ में तीन खण्ड को पालन करने वाले नारायणों में उद्यमी प्रथम नारायण हुआ।

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में एक मगध नाम का देश है, उसमें राजगृह नाम का नगर है जो कि इन्द्रपुरी से भी उत्तम है। किसी समय विश्वभूति राजा उस राजगृह नगर का स्वामी था। उसकी रानी का नाम जैनी था। इन दोनों के एक पुत्र था जो कि सबके लिए आनन्ददायी स्वभाव होने के कारण विश्वनंदी नाम से प्रसिद्ध था। विश्वभूति के विशाखभूति नाम का छोटा भाई था। उसकी स्त्री का नाम लक्ष्मणा था और उन दोनों के विशाखनन्दी नाम का पुत्र था।

विश्वभूति अपने छोटे भाई को राज्य सौंपकर तप के लिए चला गया और समस्त राजाओं को नम्र बनाता हुआ विशाखभूति प्रजा का पालन करने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी राजगृह नगर में नाना गुल्मों, लताओं और वृक्षों में सुशोभित एक नंदन नाम का बाग था जो कि विश्वनंदी को प्राणों से अधिक प्यारा था। विशाखभूति के पुत्र ने वनवालों को डांटकर जबर्दस्ती वह वन ले लिया जिससे उन दोनों—विश्वनंदी और विशाखनंदी में युद्ध हुआ। विशाखनंदी उस युद्ध को नहीं सह सका अतः भाग खड़ा हुआ। यह देखकर विश्वनंदी को वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह विचार करने लगा कि इस मोह को धिक्कार है। वह सबको छोड़कर संभूत गुरु के समीप आया और काका विसाखभूति को अग्रगामी बनाकर अर्थात् उसे साथ लेकर दीक्षित हो गया। वह शील तथा गुणों से सम्पन्न होकर अनशन तप करने लगा तथा विहार करता हुआ एक दिन मथुरा नगरी में प्रविष्ट हुआ। वहाँ एक छोटे बछड़े वाली गाय ने क्रोध से धक्का दिया। जिससे वह गिर पड़ा।

दिगम्बर मतानुसार दुष्टताके कारण राज्य से बाहर निकला हुआ मूर्ख विशखानन्दी अनेक देशों में घूमता हुआ उसी मथुरा नगरी में आकर रहने लगा था। वह उस समय एक वेश्या के मकान की छत्त पर बैठा था। वहाँ से उसने विश्वनन्दी को गिरा हुआ देखकर कोध से उसकी हँसी की कि तुम्हारा वह पराक्रम आज कहाँ गया। विश्वनन्दी को कुछ शल्य था अतः उसने विशाखनन्दी की हँसी सुनकर निदान किया।

तथा प्राणक्षय होने पर महाशुक्र स्वर्ग में जहाँ कि पिता का छोटा भाई उत्पन्न हुआ था, देव हुआ। वहाँ सोलह सागर प्रमाण उसकी आयु थी। समस्त आयु भर देवियों और अप्सराओं के समूह के साथ मनचाहे भोग भोगकर वहाँ से च्युत हुआ और इस पृथ्वी तल पर जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र के सुरम्य देश में पोदनपुर नगर के राजा प्रजापति की प्राणप्रिया मृगावती नाम की महादेवी के शुभ स्वप्न देखने के बाद त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र हुआ।

काका का जीव भी वहाँ से महाशुक्र स्वर्ग से च्युत होकर इसी नगरी के राजा की दूसरी पत्नी जयावती के विजय नाम का पुत्र हुआ।

और विशाखनन्दी चिरकाल तक संसार चक्र में भ्रमण करता हुआ विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी की अलका नगरी के स्वामी मयूरग्रीव राजा के अपने पुण्योदय से शत्रु राजाओं को जीतने वाला अश्वग्रीव नाम का पुत्र हुआ।

इधर विजय और त्रिपृष्ठ—दोनों ही प्रथम बलभद्र तथा नारायण थे, उनका शरीर अस्सी धनुष ऊँचा था और चोरासी लाख पूर्व की उनकी आयु थी। विजय का शरीर शंख के समान सफेद था और त्रिपृष्ठ का शरीर इन्द्रनीलमणि के समान नील था। वे दोनों उदण्ड अश्वग्रीव को मारकर, तीन खंडों से शोभित पृथ्वी के अधिपति हुए थे। वे दोनों ही सोलह हजार मुकुट बद्ध राजाओं, विद्याधरों एवं व्यंतर देवों के आधिपत्य को प्राप्त हुए थे।

त्रिपृष्ठ के धनुष, शंख, चक्र, दंड, असि, शक्ति और गदा—ये सात रत्न थे जो कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवों से सुरक्षित थे। बलभद्र के भी गदा, रत्नमाला, मुसल और हल—ये चार रत्न थे जो कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और तप के समान लक्ष्मी को बढाने वाले थे।

त्रिपृष्ठ की स्वयंप्रभा आदि को लेकर सोलह हजार स्त्रियाँ थी और बलभद्र के चित्त को प्रिय लगने वाली ८००० स्त्रियाँ थी। बहुत आरम्भ, बहुत परिग्रह को धारण करने वाले त्रिपृष्ठ नारायण उन स्त्रियों के साथ चिरकाल तक रमण कर सातवीं पृथ्वी को प्राप्त हुआ—सप्तम नरक गया। इसी प्रकार अश्वग्रीव प्रतिनारायण भी सप्तम नरक गया।

बलभद्र ने भाई के दुःख से दुःखी होकर उसी समय सुवर्ण कुंभ नामक योगिराज के पास संयम धारण कर लिया और क्रम-क्रम से अनगार—केवली हुआ।

देखो—त्रिपृष्ठ और विजय ने साथ ही साथ राज्य किया और चिरकाल तक अनुपम सुख भोगे परन्तु नारायण त्रिपृष्ठ समस्त दुःखों के महान् गृह स्वरूप सातवें नरक में पहुँचा और बलभद्र सुख के स्थानभूत त्रिलोक के अग्रभाग पर जाकर अधिष्ठत हुआ। इसलिए प्रतिकूल रहने वाले इस दुष्टकर्म को धिक्कार हो। जब तक इस कर्म को नष्ट न कर दिया जावे तब तक इस संसार में सुख का भागी कौन हो सकता है। त्रिपृष्ठ, पहले तो विश्वनंदी नाम का राजा हुआ, फिर महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ, फिर त्रिपृष्ठ नाम का अर्धचक्री नारायण हुआ, फिर पापों का संचय कर सातवें नरक में गया।

बलभद्र, पहले विशाख भूति नाम का राजा था फिर मुनि होकर महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से चयकर विजय नाम का बलभद्र हुआ और फिर संसार को नष्ट कर परमात्म अवस्था को प्राप्त हुआ।

प्रतिनारायण पहले विशाखनंदी हुआ, फिर प्रताप रहित होकर चिरकाल तक संसार में भ्रमण करता रहा, फिर अश्वग्रीव नाम का विद्याधर हुआ जो कि त्रिपृष्ठ नारायण का शत्रु होकर अधोगति-नरकगति को प्राप्त हुआ।

जिनेश्वर जघन्य रूप से ७२ वर्ष की आयु, अपने ज्ञान का उत्कर्ष करते हुए जीवित रहते हैं।

दिगम्बर परम्परानुसार भगवान् के शरीर का वर्ण-स्निग्ध नील वर्ण था तथा देह का मान चौरानवें अंगुल का उल्लेख है।

आगम में कहा है कि—

अस्सील समायारो, अरहा तित्थंकरो महावीरो।
तस्सील-समायारो, होति उअरहा महापउमो।

—ठाण० स्था ६।सू ६२ संगहणी गाथा

अर्थात् जैसा आचार भगवान् महावीर का था वैसा ही आचार भावी अर्हत् महापद्म का होगा।

भगवान् महावीर जिन-जिन नगरी में चतुर्मास किये हैं उनमें 'आमलप्पा' नगरी का नाम नहीं है। सूत्रों में आर्य देश की राजधानियों में इस नगरी की गणना नहीं है। भगवान् महावीर के साधना काल के विहार में 'आमलकप्पा' का उल्लेख नहीं है। केवलज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलदर्शन की प्राप्ति के बाद भगवान् महावीर आमलकप्पा पधारे थे—ऐसा उल्लेख मिलता है।

छद्मस्थ भगवान् महावीर विहार करते-करते जब उत्तर चावाल या उत्तरवाचाल प्रदेश में पधारे। वहाँ से 'सेयविया' पधारे। वहाँ उस नगरी का श्रमणोपासक राजा प्रदेशी ने भगवान् की महिमा की।[1] और फिर वहाँ से विहार कर भगवान सुरभिपुर पधारे।

भगवान् महावीर के सिद्धान्तों में निहित सार्वजनीन और कल्याणकारी भावनाओं के कारण ही ईसा की दूसरी शताब्दी में आचार्य समंतभद्र ने उनके तीर्थ को सर्वोदय नाम दिया।

बौद्ध ग्रंथ 'महावस्तु' के अनुसार महात्मा बुद्ध के प्रथम शिक्षक वैशाली के अलार और उद्दक थे। बुद्ध ने अपना प्रारंभिक जीवन इनके सान्निध्य में एक जैन के रूप में व्यतीत किया था। उनकी परम अनुयायी आम्रपाली वैशाली की ही निवासी थी।

जर्मन विद्वान् डॉ० याकोबी ने महावीर-निर्वाण का समय ई० पू० ४७७ माना है। इसका आधार यह है कि मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक ई० पू० ३२२ में हुआ और हेमचन्द्र कृत परिशिष्ट पर्व (८-३३६) मे अनुसार यह अभिषेक महावीर के निर्वाण से १५५ वर्ष पश्चात् हुआ था। इस प्रकार महावीर निर्वाण ३२२+१५५=४७७ वर्ष पूर्व सिद्ध हुआ।

डा० काशीप्रसाद जायसवाल का मत है कि बौद्धों की सिंहलदेशीय परम्परा में बुद्ध का निर्वाण ई० पू० ५४४ माना गया है। तथा मज्झिमनिकाय के सामगाम सुत्त में व त्रिपिटक में अन्यत्र भी इस बात का उल्लेख है कि भगवान् बुद्ध को अपने एक अनुयायी द्वारा यह समाचार मिला था कि पावा में महावीर का निर्वाण हो गया। ऐसी भी धारणा रही है कि इसके दो वर्ष पश्चात् बुद्ध का निर्वाण हुआ। अतएव यह सिद्ध हुआ कि महावीर-निर्वाण का काल ई० पू० ५४६ है किन्तु विचार करने से उक्त दोनों अभिमत प्रमाणित नहीं होते। जैन साहित्यिक तथा ऐतिहासिक एक शुद्ध और प्राचीन परम्परा है। जो वीर-निर्वाण को विक्रम संवत् से ४७० वर्ष पूर्व तथा शक संवत् से ६०५ वर्ष पूर्व मानती है।

इस परम्परा का ऐतिहासिक क्रम इस प्रकार है :—जिस रात्रि में वीर भगवान् का निर्वाण हुआ उसी रात्रि को उज्जैन के पालक राजा का अभिषेक हुआ। पालक ने

१—पारयित्वा प्रभुरपि श्वेतवीं नगरीं ययौ।
प्रदेशिना नरेन्द्रेण जिनभक्तेन भूषिताम् ॥२८६॥
पौराऽमात्यचमूपाद्यैः प्रदेशी परिवारितः।
मघवेवापरोऽभ्येत्य जगन्नाथमवन्दत ॥२८७॥

—त्रिशलाका० पर्व १०.३

६० वर्ष राज्य किया। तत्पश्चात् नंदवंशीय राजाओं ने १५५ वर्ष, मौर्य वंश ने १०८ वर्ष, पुष्यमित्र ने ३० वर्ष, बलमित्र और भानुमित्र ने ६० वर्ष, नहपान (नहवान ; नरवाहन या हइसेन) ने ४० वर्ष, गर्दभिल्ल ने १३ वर्ष और एक राजा ने ४ वर्ष राज्य किया। और तत्पश्चात् विक्रमकाल प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार वीरनिर्वाण से ६०+१५५+१०८+३०+६०+४०+१३+४=४७० वर्ष विक्रम संवत् के प्रारम्भ तक सिद्ध हुए।

डा० याकोबी ने आचार्य हेमचन्द्र के जिस मत के आधार पर वीर निर्वाण और चन्द्रगुप्त मौर्य के बीच १५५ वर्ष का अन्तर माना है वह वस्तुतः ठीक नहीं है। डा० याकोबी ने हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्व का संपादन किया है और उन्होंने अपना यह मत भी प्रकट किया है कि उक्त कृति २१ रचना में शीघ्रता के कारण अनेक भूलें रह गयी है। इन भूलों में एक यह भी है कि वीर-निर्वाण और चंद्रगुप्त का काल अंकित करते समय वे पालक राजा की ६० वर्ष का काल भूल गये जिसे जोड़ने से वह अंतर १५५ वर्ष का हो जाता है। इस भूल का प्रमाण स्वयं आचार्य हेमचन्द्र द्वारा उल्लिखित राजा कुमारपाल के काल में पाया जाता है। उनके द्वारा रचित त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित (पर्व १०, सर्ग १२, श्लोक ४५-४६) में कहा गया है कि वीर-निर्वाण से १६६९ वर्ष पश्चात् कुमारपाल राजा हुए। अन्य प्रमाणों से सिद्ध है कि कुमारपाल का राज्याभिषेक ११४२ ई० में हुआ था। अतः इसके अनुसार वीर-निर्वाण काल १६६९ — ११४२ = ५२७ ई० पूर्व सिद्ध हुआ।

डा० जायसवाल ने जो बुद्ध निर्वाण का काल सिंहलीय परम्परा के आधार से ई० पू० ५४४ मान लिया है। यह भी अन्य प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता। उससे अधिक प्राचीन सिंहलीय परम्परानुसार मौर्य सम्राट अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध-निर्वाण से २१८ वर्ष पश्चात् हुआ था। अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि अशोक का अभिषेक ई० पू० २६९ वर्ष में अथवा उसके लगभग हुआ था। अतः बुद्ध-निर्वाण काल २१८+२६९=४८७ ई० पू० सिद्ध हुआ। इसकी पुष्टि एक चीनी परम्परा से भी होती है। चीन के कैन्टन नामक नगर में बुद्ध निर्वाण के वर्ष का स्मरण बिन्दुओं द्वारा सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है। प्रतिवर्ष एक बिन्दु जोड़ दिया जाता था। इन बिन्दुओं की संख्या निरन्तर ई० सन् ४८९ तक चलती रही और तब तक के बिन्दुओं की संख्या ९७५ पायी जाती है। इसके अनुसार बुद्ध-निर्वाण का काल ९७५ — ४८९ = ४८६ ई० पू० सिद्ध हुआ। इस प्रकार सिंहल और चीनी परम्परा में पूरा सामंजस्य रूप पाया जाता है। अतः बुद्ध-निर्वाण का यही काल स्वीकार करने योग्य है।

तीर्थंकर भगवान् के जन्म आदि प्रसंगों पर आकाश में जो घनवृष्टि होती है उसे 'वसुधारा' कहते हैं।

भगवान् महावीर ने विद्युत को यों सचित्त भी बताया है, मगर मूलतः विद्युत शक्ति जो है वह अचित्त है। वह हमारे शरीर में, सूर्य की किरणों में सर्वत्र विद्यमान है। ज्वलन-क्रिया जहाँ होती है वहाँ वह तेजस्काय बन जाती है। सूर्य के किरणें काँच के माध्यम से कपड़े पर डाली तब विद्युत और कपड़ा जलने लगा कि वह तेजस्काय बन गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगीन्दु ने कहा है—"पुण्य से वैभव, वैभव से अहंकार, अहंकार से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से पाप होता है। इसलिए पुण्यदेय है, त्याज्य है।

कषायों को उत्तेजित करने वाले तत्वों को 'नो कषाय' कहा जाता है। यहाँ 'नो' का अर्थ है—ईषद्, थोड़ा। कषाय के समाप्त हो जाने पर केवल योग से पुण्य कर्म की बंध होता रहता है।

जैन दर्शन सूक्ष्म और गहन है तथा मूल सिद्धान्त ग्रंथों में इसका क्रम बद्ध तथा विषयानुक्रम नहीं होने के कारण इसके अध्ययन में तथा इसके समझने में कठिनाई होती है। अनेक विषयों के विवेचन अपूर्ण अधूरे हैं अतः अनेक स्थल इस कारण से भी समझ में नहीं आते हैं। अर्थ बोध की इस दुर्गमता के कारण जैन-अजैन दोनों प्रकार के विद्वान् जैन दर्शन के अध्ययन से सकुचाते हैं। क्रमबद्ध और विषयानुक्रम विवेचन का अभाव जैन दर्शन के अध्ययन में सबसे बड़ी बाधा उपस्थित करता है—ऐसा हमारा अनुभव है।

अध्ययन की बाधा मिटाने के लिए हमने जैन विषय कोश की एक परिकल्पना बनायी और उस परिकल्पना के अनुसार समग्र आगम ग्रंथों का अध्ययन किया और उस अध्ययन के अनुसार सर्वप्रथम हमने विशिष्ट पारिभाषिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक विषयों की एक सूची बनायी। विषयों की संख्या १००० से भी अधिक हो गई तथा इन विषयों का सम्यक् वर्गीकरण करने के लिए हमने आधुनिक सार्व-भौमिक दशमलव वर्गीकरण करने का अध्ययन किया। तत्पश्चात् बहुत कुछ इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए हमने सम्पूर्ण वाङ्मय को १०० वर्गों में विभक्त करके मूल विषयों वर्गीकरण की एक रूप रेखा (देखें पृ० ६ से ११) की। यह रूप रेखा कोई अंतिम नहीं है। परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा संशोधन की अपेक्षा भी रह सकती है। मूल विषयों की सूची भी हमने तैयार की है। उनमें से जीव परिणाम (मूल विषयांक ·०४) की उप विषय सूची लेश्या कोश में दे दी गई है। तथा कर्मवाद (मूल विषयांक १२) तथा क्रियावाद (मूल विषयांक १३) की उपसूची क्रिया कोश में दी गई है।

तीर्थंकर वर्धमान—जीव द्वारा (जैन वाङ्मय का दशमलव वर्गीकरण संख्या ·०३) के अंतर्गत तथा जीवनी (जैन वाङ्मय का दशमलव वर्गीकरण संख्या ·६२) के अंतर्गत समाविष्ट है। हमने जीव द्वार व जीवन के उपविषयों की सूची अलग-अलग दी है। देखें पृष्ठ १२-१३) इन सूचियों में भी परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा संशोधन की अपेक्षा रह सकती है। जीव द्वार में वर्धमान नाम विषयांक ३५४ में तथा जीवनी में नाम शब्द विषयांक ६२२४ है।

पाठों के संकलन-संपादन में प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची में यद्यपि हमने कतिपय ग्रंथों का ही नाम दिया है तथापि अध्ययन हमने अधिक ग्रंथों का किया है। चूर्णी, निर्युक्ति टीका आकि आदि का भी अध्ययन किया है। दिगम्बर ग्रन्थ—कषाय पाहुडं वड्ढमाण-चरिउ, वीरजिणिंदचरिउ, वर्धमान चरित्तम्, उत्तरपुराण आदि ग्रन्थों का भी उपयोग किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेश्याकोश, क्रियाकोश, मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास आदि की तरह पाठों का मिलान हमने कई मुद्रित प्रतियों से किया है। यद्यपि हमने संदर्भ एक ही प्रति का दिया है।

सम्पादन में हमने निम्नलिखित बातों को आधार माना है—

१—पाठों का संकलन और मिलान

२—विषय के उपविषयों का वर्गीकरण तथा

३—हिन्दी अनुवाद

अस्तु पाठों के मिलान के लिए हमने कई मुद्रित प्रतियों की सहायता ली है और कोई महत्वपूर्ण पाठान्तर मिला हो तो उसे शब्द के बाहरी कोष्ठक में दिया है।

जहाँ 'वर्धमान' सम्बन्धी पाठ स्वतन्त्र रूप में मिल गया है वहाँ हमने उसे उसी रूप में लिया है लेकिन जहाँ वर्धमान सम्बन्धित पाठ अन्य विषयों के साथ सम्मिश्रित दिये गये हैं वहाँ हमने निम्नलिखित दो पद्धतियों को अपनाया है—

१—पहली पद्धति में हमने सम्मिश्रित पाठों से 'वर्धमान' सम्बन्धी पाठ अलग निकाल दिया है तथा जिन संदर्भ में यह पाठ आया है उस सन्दर्भ का प्रारम्भ में कोष्ठ में देते हुए उसके बाद 'वर्धमान' सम्बन्धी पाठ दे दिया है।

२—दूसरी पद्धति में हमने सम्मिश्रित पाठों में से जो पाठ वर्धमान से सम्बन्धित नहीं है उसको बाद देते हुए वर्धमान सम्बन्धी पाठ ग्रहण किया है।

वर्गीकृत उपविषयों में हमने मूल पाठों को अलग-अलग विभाजित करके भी दिया है तथा कहीं-कहीं समूचे मूल पाठ को एक वर्गीकृत उपविषय में देकर उस पाठ में निर्दिष्ट अन्य वर्गीकृत उपविषयों में उक्त मूल पाठ को बार-बार उद्धृत न करके जहाँ समूचा मूल पाठ दिया गया है उस स्थान को इंगित कर दिया गया है।

लेश्या कोश, क्रिया कोश, पुद्गल कोश, ध्यान कोश, योग कोश की तरह वर्धमान जीवन कोश को हमने दशमलव वर्गीकरण से विभाजित किया है।

अस्तु हमने वर्धमान जीवन-कोश चार खण्डों में विभाजित किया है। जिसका प्रथम खण्ड दस वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है, जिसमें भगवान् महावीर के च्यवन, गर्भ, जन्म, दीक्षा, साधना काल, कैवल्य ज्ञान तथा परिनिर्वाण आदि का विवेचन है। तथा दूसरा खण्ड छह वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है। इसके मूल विभाग इस प्रकार है—

१—वर्धमान (महावीर) के पूर्वभव—२७ भव या ३३ भव

२—भगवान् महावीर के पर्यायवाची नाम

३—वर्धमान महावीर की स्तुति

४—भगवान् महावीर और चतुर्विध संघ की उत्पत्ति

५—भगवान् महावीर की देशना

६—वर्धमान और शास्त्र संपदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१—भगवान् के ग्यारह गणधरों का विवेचन
२—आर्या चन्दना

जिसका तीसरा खण्ड आपके हाथों में है।

वर्धमान जीवन कोश के चतुर्थ खण्ड में भगवान् महावीर के शासन के साधु-साध्वी आदि का कथा के रूप में संकलन है। वि० सं० ९८९ में हरिसेणाचार्य ने बृहत्कथा कोष के नाम से साढ़े बारह हजार श्लोकों का एक कथा ग्रन्थ रचा जो उस युग का प्रथम ग्रन्थ था।

आचार्य बुद्धघोष ने गौतम बुद्ध के पूर्व भव संबंधी जीवन प्रसंगों को 'जातक अर्थ कथा' के नाम से संग्रहीत किया है।

चीन की दंत-कथाएं प्रसिद्ध है [Folk Tales of China] अध्ययन से मालूम पड़ता है कि अनेक कथाएं जो भारतवर्ष में प्रचलित है। इसी प्रकार वे और देशों में भी होंगी।

यह सब कैसे हुआ? यही तो कारण था, नाना पर्यटक समय-समय पर यहाँ आये और वर्षों यहाँ रहे जो कि वन्दियाँ तथा दंतकथाएँ उनके कानों में थी, वे विदेशों में पहुँच गई।

उन विद्वानों को धन्यवाद देते है जिन्होंने लेश्याकोश, क्रियाकोश, मिथ्यात्वीका आध्यात्मिक विकास, वर्धमान जीवनकोश, प्रथमखंड, वर्धमान जीवन कोश, द्वितीय खण्ड पर अपनी-अपनी सम्मतियाँ भेजकर हमारा उत्साहवर्धन किया है।

युगप्रधान् आचार्य श्री तुलसी तथा युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ की महान् दृष्टि हमारे पर सदैव रही है जिसे हम भूल नहीं सकते।

हम जैन दर्शन समिति के सभापति—श्री अभयसिंह सुराना, स्व. ताजमलजी बोथरा, उनके कनिष्ट भ्राता श्री हनुमानमल बोथरा, नेमीचन्दजी गधइया, मोहनलालजी बैद, श्री हीरालाल सुराना (मंत्री), श्री नवरतनमल सुराना, मांगीलालजी लूणिया, जयसिंहजी सिंघी, सुमेरमलजी सुराना, धर्मचन्दजी राखेचा, श्री इन्द्रमल भंडारी आदि-आदि सभी बंधुओं को धन्यवाद देते है जिन्होंने हमारे विषय कोश निर्माण कल्पना में हमें किसी न किसी रूप में सहयोग दिया है।

२१-२-१९९०

—श्रीचंद चोरड़िया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो शब्द

स्वर्गीय श्री मोहनलालजी बांठिया तथा उनके साथियों ने जैनागम एवं वाङ्मय के तलस्पर्शी गम्भीर अध्ययन कर आधुनिक दशमलव प्रणाली के आधार पर अलग-अलग अनेक विषयों पर कोश प्रकाशित करने की परिकल्पना की और इसको मूर्तरूप देने के लिए जैन दर्शन समिति की स्थापना महावीर जयंती के दिन सन् १९६६ के दिन की गई।

यह संस्था स्व० मोहनलालजी बांठिया एवं श्रीचन्द चोरड़िया द्वारा निर्मित विषयों पर कोश प्रकाशन का कार्य कर रही है। इसके द्वारा निम्नलिखित कोश प्रकाशित है जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१—लेश्याकोश—प्रथम पुष्प—लेश्या या अध्यवसाय का बेरोमिटर है। इस कोश में छओं लेश्याओं का विस्तृत विवेचन है। इन लेश्याओं का आगम ग्रंथों में अनेक स्थल पर उल्लेख है उसका संकलन हुआ है। Cyclopaedia of Leshya के रूप में इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है। जिससे कि 'लेश्या' विषय पर अनुसंधान करने वालों को व दर्शन शास्त्र में रूचि रखने वालों को एक ही स्थान में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो सकेगी।

अमेरिका के एक छात्र ने इस विषय को लेकर Ph. D. डिप्लोमा प्राप्त किया। उसके कथनानुसार इस विषय पर अध्ययन करने में 'लेश्या कोश' से भरपूर सामग्री प्राप्त हुई।

२—क्रिया कोश—द्वितीय पुष्प—इसी प्रकार क्रिया कोश में आरंभिकी आदि पचीस क्रियाओं का विस्तृत विवेचन है। क्रिया का एक रूप पुण्य-पाप का बंधन है और उसका दूसरा रूप कर्म-बंधन से छुटकारा पाना है। क्रिया कोश में आगम और ग्रन्थों के आधार पर विस्तृत विवेचन है।

३—मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास—तृतीय पुष्प—मिथ्यात्वी प्राणी का सद् आचरण श्रेष्ठ नहीं माना जाय तो उसका आध्यात्मिक विकास कैसे हो सकता है। श्रीचंद चोरड़िया ने लगभग दो सौ ग्रंथों का गम्भीर अध्ययन एवं आलोडन करके शास्त्रीय रूप में अपने विषय को प्रस्तुत किया है। अतः दलसुख भाई मालवणिया के शब्दों में यह ग्रन्थ लेश्याकोश तथा क्रियाकोश की कोटि का ही है।

४—वर्धमान जीवन कोश—प्रथमखण्ड—चतुर्थ पुष्प—प्रस्तुत ग्रन्थ जैन दर्शन समिति की कोश परम्परा की कड़ी में एक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रन्थ है। वर्धमान जीवन कोश का यह प्रथम भाग स्व० श्री मोहनलाल जी बांठिया द्वारा संकलित एवं तैयार सामग्री का व्यवस्थित संपादित रूप है। बांठिया जी इस काम को अधूरा छोड़कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्गवासी हो गये, किन्तु श्रीचन्द चोरड़िया ने अत्यन्त परिश्रम करके तैयार किया है। इसमें भगवान् महावीर के च्यवन से परिनिर्वाण आदि का विवेचन है।

५—वर्धमान जीवन कोश—द्वितीय खण्ड—पंचम पुष्प—इसमें भगवान् महावीर के श्वेताम्बर मतानुसार २७ भव तथा दिगम्बर मतानुसार ३३ भवों का आगम तथा सिद्धांत ग्रंथों के आधार पर विवेचन है। इसमें भगवान् महावीर के इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधर तथा आर्यांचंदना के जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है।

६—वर्धमान जीवन कोश—तृतीय खण्ड—षष्ठम पुष्प—जो आपके हाथों में है। इसमें भगवान् महावीर के चतुर्विध संघ, पार्श्वपत्यीय अणगार, सर्वज्ञ अवस्था के विहार स्थल आदि-२ का विवेचन है।

इस प्रकार जैन दर्शन समिति के द्वारा सैकड़ों विषय पर कोश संकलन कार्य हुआ है। कोशों के संबंध में भारत के उच्चकोटि के विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से सराहना की है। इनमें मुख्य रूप से—

१—स्व० प्रज्ञाचक्षु पंडित सुखलाल जी संघवी।

२—स्व० आदिनाथ नेमीनाथ उपाध्याय।

३—डा० सागरमल जैन।

४—युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी।

५—डा० राजाराम जैन।

६—मुनिश्री जयंतिलाल जी महाराज।

७—प्रो० दलसुख भाई मालवणिया।

८—प्रो० डा० Alsdraf, Hamburg. आदि के नाम उल्लेखनीय है।

इस प्रकार दशमलव प्रणाली के आधार पर करीब १००० विषयों पर आगम तथा प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन करके स्व० मोहनलालजी बांठिया व श्रीचंद चोरड़िया ने पांडुलिपि तैयार की। जिसको हमने सुरक्षित रखा है।

इस समिति में भारतीय दर्शन में रुचि लेने वाले सभी सज्जन सदस्य हो सकते हैं। संस्था में दो सदस्य श्रेणी है—

१—आजीवन संरक्षक सदस्य—जिसकी सदस्यता फीस १०००) है। उन्हें संस्था द्वारा प्रकाशित साहित्य बिना मूल्य सप्रेम भेंट किया जाता है।

२—आजीवन साधारण सदस्य—जिसकी सदस्यता फीस १०१) है। सदस्य व्यक्तिगत रूप में ही लिए जाते हैं।

माननीय जोधपुर निवासी श्री जबरमलजी भंडारी इस संस्था के सहयोगी और शुभचिंतक है। उनके समय-समय पर अभूतपूर्व सुझाव मिलते रहे हैं। कोशों के प्रकाशन में उनका आर्थिक सहयोग भरपूर रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारी संस्था अब तक विद्वद् योग्य सामग्री तैयार करती रही है। अतः संस्था को जनप्रिय बनाने के लिए सरल भाषा में छोटी-छोटी पुस्तकें तैयार कराकर प्रकाशित कराने की योजना है। और संभव हो तो निःशुल्क वितरण किया जाये।

अस्तु स्व० मोहनलाल जी बांठिया इस संस्था के संस्थापक ही नहीं थे, प्राण थे। वे इतने कोशों की रूपरेखा तैयार करके छोड़ गये हैं कि कई विद्वान वर्षों तक कार्य करे तो समाप्त न हो। ऐसे मनीषी की स्मृति में ठोस कार्य होना ही चाहिए।

मेरे अनन्य साथी जैन दर्शन समिति के अध्यक्ष—श्री अभयसिंहजी सुराना का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं जो हमें हर प्रकार से सहयोग दिया है।

इस संस्था का पावन उद्देश्य जैन दर्शन व भारतीय दर्शन को उजागर करना है जिससे मानव ज्ञान रश्मियों से अपने अज्ञान अंधकार को मिटा सकें।

इस संस्था द्वारा प्रकाशित साहित्य सस्ते दामों में वितरण कर अधिक से अधिक प्रचार हो—यही इसका पावन उद्देश्य है। इस पुनीत कार्य में सबका सहयोग अपेक्षित है।

भवदीय :

—**नवरतनमल सुराणा**

भूतपूर्व अध्यक्ष

जैन दर्शन समिति

कलकत्ता

१-१२-९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय सूची

विषय		पृष्ठ
—संकलन-सम्पादन में प्रयुक्त ग्रन्थों की संकेत सूची		4
—आशीर्वचन	—आचार्य तुलसी	8
—जैन वाङ्मय का दशमलव वर्गीकरण		9
—जीव का वर्गीकरण		12
—जीवनी का वर्गीकरण		13
भूमिका (Foreword)	डा० ज्योतिप्रसाद जैन	14
—प्रकाशकीय		17
—प्रस्तावना		21
दो शब्द	—श्री नवरतनमल सुराना	63
०० /४ वर्धमान (महावीर) के चतुर्विध संघ का निरूपण		१
०० भगवान् के चतुर्विध संघ के प्रमाण का निरूपण		१
(ग) भगवान् महावीर को अरिहंत पद में ग्रहण		१
(घ) तीर्थंकर पद-अन्तर		२
(च) वर्धमान और सप्रतिक्रमण सहित पाँच महाव्रत		२
(छ) वर्धमान तीर्थंकर तथा पूर्वगत श्रुत		२
जिनांतर में कालिक श्रुत		३
(ज) भगवान् महावीर के तीर्थ में तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करनेवाले जीव		३
(झ) पंचम आरा और भगवान का परिनिर्वाण		४
(ञ) भगवान के परिनिर्वाण के बाद— भगवान के जन्म नक्षत्र पर भस्मराशि महाग्रह का आगमन		४
(ट) भगवान के परिनिर्वाण के समय नव मल्लकीवंश और नव लिच्छवीवंश के गणराजाओं के पौषधोपवास		५
(ठ) भगवान महावीर के परिनिर्वाण के बाद कुंथु आदि जीवों की समुत्पत्ति होने से साधु-साध्वियों का भक्त-प्रत्याख्यान		५
(ड) तीर्थ कब तक चलेगा		५
(ढ) केवलज्ञान के उत्पन्न होने के बाद के अतिशय		६
(ण) वर्धमान महावीर की अवगाहना		६
(त) महाराज की पदवी		६
(थ) त्रिपृष्ठ वासुदेव का नरक-गमन		७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
(द) वर्धमान का समय-काल	७
(ध) वर्धमान का कुमारकाल	७
(न) भगवान् महावीर की अंगुल का माप	७
(प) भगवान के माता-पिता की उपासना तथा परभव काल	८
(फ) वीर स्तुति — शकेन्द्र द्वारा	६
भगवान् महावीर के समकालीन राजा	१०
(ब) वर्धमान—एक विवेचन	१०
.०१ वर्धमान के साधुओं का विवेचन	१३
.०१.१ औघिक श्रमणों का विवेचन	१३
.०१.२ औधिक निर्ग्रन्थों का विवेचन	१५
(क) निर्ग्रन्थों की ऋद्धि	१५
(ख) निर्ग्रन्थों का तप	१६
.०१.३ औधिक स्थविरों का विवेचन	१७
.०१.४ औघिक अनगारों का विवेचन	१६
(ख) अनगारों का अप्रतिबंध विहार	२०
(च) अनगारों के गुण	२२
अनगारों की तपश्चर्या	२२
(ठ) अनगारों के विशेष गुण	२३
(ड) संसार-सागर से तैरना	२४
.०१.५ भगवान महावीर के तेपन्न अनगार की एक वर्ष की श्रमण-पर्याय	२६
.०१.६ भगवान् महावीर के समकालीन प्रत्येक बुद्ध	२६
.०१.७ अष्ट राजा दीक्षित	२६
.०१.८ साधुओं की एक कड़ी	२७
.०१.६ गण और गणधर	२७
.०१.१० भगवान की शासन-सम्पदा	२८
सौधर्म से ग्रैवेयक तक—देवों में उत्पन्न साधुओं की संख्या	२८
.१.११ विशिष्ट साधु-संख्या	२८
.१.१२ शिक्षक साधु की संख्या	२६
.२ भगवान् की शिष्य परम्परा	२६
.१ तीन केवलज्ञानी	२६
.२ चतुर्दश पूर्वधारी	२६
.३ ग्यारह अंग—दस पूर्वों के ज्ञाता	२६
.४ ग्यारह अंगधारी	३०
.५ गणधर के समान ज्ञानी	३०
.६ आचारांग के धारी थे	३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·७ भगवान् महावीर की शिष्य-परम्परा	३१
अन्तिम देशना के पश्चात्	३१
·८ भगवान की शिष्य परम्परा	३१
·९ साधु-संख्या	३१
ऋषियों की—साधुओं की	३२
·१० साध्वी संख्या	३३
आर्यिकाएँ	३४
·११ परिनिर्वाण प्राप्त—साधु-साध्वियाँ—	३४
कितने शिष्य सिद्ध होंगे	३४
अन्तक्रिया	३५
·१२ जिन केवली	३५
·१३ चतुर्दश पूर्वधर	३६
·१४ वादी संख्या	३७
·१५ वैक्रियलब्धिधारी	३८
·१६ अनुत्तरोपातिक सम्पदा	३९
·१७ अवधिज्ञानी	३९
·१८ मनःपर्यवज्ञानी	४०
विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी	
·१९ श्रावक कितने थे	४१
·२० श्राविका कितनी थी	४१
·२१ तिर्यंच भी श्रावक थे	४२
२२ भगवान महावीर के नौ गण	४३
२३ भगवान महावीर की सेवा में यक्षिणी	४५
२४ असंख्यात देव-देवियाँ, संख्यात तिर्यंच	४५
२५ दीक्षा वृक्ष	४५
२६ दीक्षा के समय-तप	४६
२७ दीक्षा-परिवार	४६
२८ स्वप्न	४६
२९ गोत्र-वंश	४७
·३० तीर्थंकरों का विवाह	४७
३१ गृहवास के समयज्ञान	४७
३२ ज्ञान-दीक्षा के समय	४७
३३ तीर्थंकरों के पूर्वभव का श्रुतज्ञान	४७
३४ तीर्थंकरों के जन्म और मोक्ष के आरे	४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
३५ भव	४८
३६ वर्धमान तीर्थंकर के २७ बोलों का यन्त्र	४८
३७ भगवान् महावीर के समय में भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा	५०
.१ औधिक अनगार	५०
.२ सर्वज्ञ अवस्था में—पार्श्वपत्य अणगारों से सम्पर्क	५१
.३ कालस्यवेषिपुत्र अणगार का चतुर्याम से पंचयाम धर्म-स्वीकार	५३
.४ गांगेय अणगार	५५
.५ पार्श्वपत्य केशीकुमार श्रमण	५६
.६ केशीकुमार श्रमण	५७
.७ वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ	५७
.८ मुनिचन्द्राचार्य और वर्द्धनसूरि	५८
.९ नन्दीषेण	६०
.१० प्रगल्भा और विजय नाम शिष्या	६१
.११ उदक पेढाल पुत्र—भावितीर्थंकर	६२
.१२ चित्त सारथि	६३
.१३ गोशालक के शिष्यों के तप	६४
.१४ साधुओं की संख्या का विवरण	६४
.१४क गण और गणधर	६७
.१५ तीर्थोत्पत्ति	६७
.१६ श्रमण भगवान् महावीर की जीवन-झांकी-धर्म देशना	६८
३ भगवान् महावीर और आगम	७०
.५ भगवान् महावीर और पंच महाव्रत की भावना	७२
.५क परिषह	७५
.६ स्वयंबुद्ध	७५
.७ उपधि तथा लिंग	७५
.८ भगवान का रोग और लोकोपवाद	७६
रेवती गाथापत्नी	७७
.९ भगवान का आहार	७९
.१ बाल्यभाव में आहार	७९
.२ केवली अवस्था में आहार	७९
.१० भगवान महावीर का श्रमणों से प्रश्न	८०
.११ भगवान महावीर और भावी तीर्थंकर महापद्म	८१
.१ जीवन	
.२ महापद्म की प्ररूपणा	८२
.१२ भगवान महावीर के विशिष्ट सिद्धांत	८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
·१ चित्त समाधि	८६
·२ शरीर निर्गत तेजोलेश्या की शक्ति	८८
(ख) स्वयं की तेजोलेश्या से गोशालक भस्मसात्	८६
·१३ स्कंदक परिव्राजक	८६
·१४ ग्यारहवें चातुर्मास के बाद की घटना	६०
वाइलो वणिक्—एक घटना	
·१५ भगवान् को वंदनार्थ जाने का उदाहरण	६०
·२ जनमानस का आगमन	६१
नंदिवर्द्धन का आगमन	६४
श्रेणिक राजा और चेलणादेवी	६४
जमाली आदि	६६
जमाली का विहार	१०६
(ट) भगवान महावीर और कोणिक राजा की भगवद् भक्ति	१०७
भगवान् महावीर और धर्म-संदेश वाहक	१०८
कुणिक का भगवान् को वंदन	१०६
चम्पानगरी में भगवान् महावीर का पदार्पण	
तथा लोगों में उनकी चर्चा	१११
मनुष्य परिषद्	११२
कुणिक का भगवान् को अभिवंदन करने के लिए जाना	११४
चम्पा में (बारह प्रकार की परिषद् में) भगवान का उपदेश	१२०
भगवान् से धर्म सुनकर—आगार-अनागार धर्म ग्रहण किया	१२१
भगवान् की धर्मदेशना से प्रभावित होकर	
सुभद्रा प्रमुख देवियों को श्रद्धा होना	१२३
·१ ऋषभदत्त और देवानंदा	१२४
देवानंदा के स्तन से दुग्धधारा बह निकली	१२७
·३ राजगृह में पदार्पण की सूचना	१३३
·४ हस्तिनापुर की परिषद्	१३४
·५ युगान्तरकृतभूमि—पर्यायान्तरकृतभूमि	१३४
·६ विविध संकलन	१३५
·७ भगवान् महावीर और अच्छेरे—आश्चर्य	१३५
·१ गणधर गौतम—एक प्रसंग	१४१
गौतम का अष्टापद पर आरोहण	१४२
पाँच सौ तापसों ने गौतम स्वामी से दीक्षा ग्रहण की	१४६
गौतम स्वामी के द्वारा दीक्षित तापसों को कैवल्यज्ञान	१४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
गौतम का स्नेह केवलज्ञान में बाधक	१४७
.२ जंबूस्वामी—एक प्रसंग	१४६
.३ इस अवसर्पिणी काल के जंबूस्वामी अन्तिम केवली	१५०
.५ सर्वज्ञ अवस्था के वर्धमान स्वामी के विहार स्थल	१५१
.१ सुरभिपुर पधारे	१५१
.२ सुरभिपुर से विहार कर पोतनपुर पधारे	१५१
.३ साकेतनगर में	१५२
.४ हस्तिनापुर में	१५२
.५ उल्लुकतीरनगर में	१५२
.६ मृगाग्राम में	१५३
.७ पुरिमताल नगर में	१५३
.८ साहंजनी नगरी में	१५४
.६ पाटलिषंड नगर में	१५४
.१० रोहीतक नगर में	१५४
.११ वर्धमानपुर नगर में	१५५
.१२ आमलकल्पानगरी में	१५५
.१३ राजगृह से कृतंगला नगरी पदार्पण (तेइसवां वर्ष—आर्य स्कंधक के समय में)	१५६
.१४ वाणिज्य ग्राम में	१५७
(सुदर्शन श्रमणोपासक के समय में)	१५६
भगवान् महावीर के विहार स्थल का तीसवां वर्ष	१५६
.१५ मिथिला नगरी में	१६०
.१६ अन्यान्य देशों में विहार	१६१
(ख) तीर्थंकर काल का—प्रथम वर्ष का विहार	१६१
(ग) पोलासपुर नगर से विहार	१६१
(घ) देश, पर्वत, नगरादि में विहार	१६१
(च) अन्यान्य ग्राम-नगर आदि में विहार	१६२
(छ) उदायन राजा की दीक्षा के बाद विहार	१६२
(ट) राजगृह से अन्यत्र विहार	१६३
(ठ) दर्शाणनगर से अन्यत्र विहार	१६४
(ड) राजगृह से अन्यत्र विहार	१६४
(ढ राजगृह से—अभयकुमार की दीक्षा के बाद विहार	१६४
(ण) भगवान का चम्पा से विहार	१६४
(त) वाणिज्यग्राम से भगवान का विहार	१६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
(थ) आनन्द श्रावक के अवधिज्ञान के पश्चात् भगवान का वाणिज्यग्राम से विहार	१६५
.१७ पोलासपुर पदार्पण	१६५
.१८ कौशाम्बी पदार्पण	१६६
(ख) सर्वज्ञ अवस्था में (पन्द्रहवाँ वर्ष)	१६७
(घ) मृगावती की दीक्षा के समय भगवान् का कौशाम्बी में पदार्पण	१६७
(च) कौशाम्बी में पुनः आगमन—५५वें वर्ष में	१६८
.१९ श्रावस्ती में पदार्पण	१६९
(ख) शंख श्रावक के समय में	१६९
(ग) कौशाम्बी नगरी से श्रावस्ती नगरी पदार्पण—उनतीसवां वर्ष	१६९
.२० आलंभिया नगरी में	१६९
ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक के समय में	१७०
.२१ काशी नगरी—वाराणसी में	१७२
.२२ राजगृह नगरी से पृष्ठ चम्पा की ओर विहार	१७३
.२३ चम्पानगरी में भगवान का पदार्पण	१७४
चम्पानगरी की ओर विहार	१७६
चम्पानगरी में—रथमूसल-संग्राम के बाद	१७६
(थ) संघ से अलग हुआ जमाली—चम्पानगरी में आया तब भगवान् का चम्पानगरी में पदार्पण	१७९
(द) जमाली—भगवान् के शासन से अलग होकर फिर भगवान् के चम्पानगरी में दर्शन किये	१७९
(ध) पृष्ठचम्पा से चम्पा की ओर विहार	१७९
.२४ सुघोष नगरमें	१८०
.२५ महापुर नगर में	१८०
.२६ कनकपुर नगर में	१८०
.२७ सौगंधिका नगरी में	१८१
.२८ विजयपुर नगर में	१८१
.२९ वीरपुरनगर में	१८१
.३० वीतभय नगर में पदार्पण	१८१
उदायन की दीक्षा के लिए चम्पानगरी से वीतभय नगर की ओर विहार	१८१
.३१ भगवान महावीर का दशार्णनगर से विहार	१८२
.३२ मेंढिकग्राम—श्रावस्ती से विहार	१८३
.३३ ऋषभपुर नगर में	१८४
.३४ मथुरानगरी में	१८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
.३५ राजगृही में	१८५
.३६ काम्पिल्यपुर नगर में	१८५
.३७ शौरिकपुर नगर में	१८६
.३८ हस्तिशीर्ष नगर में	१८६
हस्तिशीर्ष नगर से अन्यत्र विहार	१८७
.३९ काकंदीनगरी में	१८७
.४० कुंडग्राम—ब्राह्मण कुंडग्राम—क्षत्रिय कुंडग्राम में	१८८
(घ) अपापा के बाद	१९०
देवानन्दा की दीक्षा के बाद	१९०
.४० मौका नगरी में	१९०
.४१ तुंगिया नगरी के श्रावकों के समय-काल मे	१९१
.४२ राजगृह नगर में	१९१
(क) मेघकुमार दीक्षित हुआ उस वर्ष	१९१
राजगृह नगरी में पदार्पण	१९१
राजगृह के वैभारगिरि पर पदार्पण	१९५
.१२ पोतनपुर से राजगृह	१९५
.१३ कालोदाई आदि के समय में	१९५
.२१ राजगृही में पदार्पण	१९८
.२२ शालिभद्र-धन्यमुनि के साथ प्रभु राजगृह पधारे	१९९
.२३ रोहणीय चोर था—उस समय राजगृह में पदार्पण	१९९
.२४ विपुलाचल पर्वत पर	२००
.२८ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान राजगृह के बाहर स्थित विपुलाचल पर्वत पधारे	२०१
.३१ जृंभक ग्राम से विहार (कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति के बाद प्रथम विहार)	२०२
अपापा नगरी की ओर विहार	
अपापा नगरी में (चतुर्विध संघ की स्थापना के बाद)	
अपापा नगरी से	२०३
अन्तिम—अपापा नगरी	२०३
(ग) भगवान का विपुलाचल से विहार करते हुए पावापुरी आगमन	२०३
(घ) भगवान का अन्तिम विहार—पावापुरी	२०४
(च) अन्तिम विहार—पावापुरी	२०५
.६ भगवान् महावीर के समीप देवों का आगमन	२०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
.१ सुर्याभदेव के आभियोगिक देवों का	२०५
.२ सुर्याभदेव का	२०६
.३ गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों को सुर्याभदेव द्वारा नाटक दिखाने की इच्छा—निवेदन	२०६
.४ भगवान् महावीर को स्वस्थान स्थित देवों का वंदन	२१७
.२ ईशानेन्द्र का	२१८
.३ सानतकुमारेन्द्र तथा माहेन्द्र का	२१६
ग्यारहवें चतुर्मास के बाद की घटना	
(ग) भोगपुर नगर में—सानतकुमारेन्द्र का	२२०
.४ भगवान् की छद्मस्थावस्था की घटना विशेष—	२२०
पूर्णभद्र और मणिभद्र	२२०
(ख) चम्पा में बारहवें चातुर्मास के समय में	२२०
.५ वैशाली में शक्रेन्द्र का आगमन— छट्ठे चतुर्मास के पूर्व	२२१
(ख) जृंभिक् ग्राम में—शक्रेन्द्र का	२२१
(ग) हस्तिशीर्ष नगर में इन्द्र का आगमन	२२२
(घ) छद्मस्थावस्था में थूणा सन्निवेश में भगवान् के पास इन्द्र का आगमन	२२२
(झ) अपापा में शक्रेन्द्र का आगमन	२२४
(ञ) शक्रेन्द्र का परिवार सहित विपुलाचल पर्वत पर	२२४
जृम्भिक ग्राम में शक्रेन्द्र तथा मिण्ढिक ग्राम में चमरेन्द्र आया था	२२५
.६ दर्दुर देव का आगमन	२२५
.७ चम्पानगरी में देवों का आगमन	२२६
.१ असुरकुमारों का	२२६
देवों का शरीर और शृंगार	२२६
.८ नागकुमार यावत् स्तनित कुमारों का	२२८
.६ वाणव्यंतर देवों का—	२२८
.१० ज्योतिष्क देवों का—	२२६
.११ वैमानिक देवों का—	२३०
.१२ सुसुमार नगर में चमरेन्द्र का आगमन—	२३१
.१३ विभिन्न देवों का आगमन—ग्यारहवें चातुर्मास के पूर्व	२३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
(ख) ग्यारहवें चातुर्मास – वैशाली में—	२३२
(ग) हरि नामक विद्युतकुमार के इन्द्र का आगमन—	२३२
(च) श्रावस्ती में शक्रेन्द्र का आगमन	२३४
(छ) केवलज्ञान-केवलदर्शन की उत्पत्ति के अवसर पर	२३४
ज्योतिषी देव का इन्द्र—चन्द्रदेव का आगमन	२३४
(ज) ज्योतिषी देव का इन्द्र-सूर्यदेव का—	२३५
(झ) ज्योतिषी देव—शुक्र महाग्रह का	२३६
(ञ) सौधर्म देवलोक से—बहुपुत्रिका देवी का	२३६
(ट) सौधर्म देवलोक से—पूर्णभद्र देव का	२३६
(ठ) सौधर्म देवलोक से—मणिभद्र देव का	२३८
(ड) सौधर्म देवलोक से श्रीदेवी का	२३८
(ढ) चमरेन्द्र का आवागमन	२३९
.१ भगवान् महावीर के निकट चमरेन्द्र का आवागमन	२३९
शक्रेन्द्र वज्र से भयभीत बना हुआ चमरेन्द्र का आवागमन	२४०
२ चमरेन्द्र का आगमन ६४ हजार सामानिक देवों के साथ	२४१
(ण) शक्रेन्द्र का आवागमन	
वज्र को ग्रहण करने के लिए—आवागमन	२४२
.१४ लोकांतिक देवों का सम्बोधन हेतु—आगमन	२४४
.१५ महाशुक्र विमानवासी अमायी सामानिक देवों का—	२४४
महाशुक्र देवलोक के महासर्ग विमान से दो देवों का	२४५
भगवान् महावीर के समय के देव विशेष	२४६
.१६ काली देवी	२४६
.१७ राजी देवी	२४८
.१८ शुंभा	२४९
.१९ इला देवी	२४९
.२० कमला देवी—पिशाच कुमारेन्द्र की अग्रमहिषी	२४९
.२१ सूरप्रभा देवी (सूर्य की देवी)	२५०
.२२ चन्द्रप्रभा देवी (चन्द्र की देवी)	२५०
.२३ पद्मावती देवी (शक्रेन्द्र की अग्रमहिषी)	२५१
.२३ कृष्णादेवी (ईशानेन्द्र की अग्रमहिषी)	२५१
.७ भगवान् महावीर के सम-सामयिकी घटना	२५१
.१ परिषद् में श्रेणिक—चेल्लणादेवी को देखकर	
साधु-साध्वियों द्वारा निदान	२५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
.२ भगवान् ने मनोस्थिति को जाना	२५३
.३ नववां निदान कर्म—	२५५
.४ निदान रहित संयम का फल	२५६
भगवान् के निदान व अनिदान रूप उपदेश को सुनकर बहुत से साधु और साध्वियों की आत्म-शुद्धि का विवेचन	२५७
.४ पुरुषों के कष्टों को देखकर स्त्री-जन्म को अच्छा समझकर स्त्री बनने का निदान किया—	२५८
(क) निदान कर्म करने वाले भिक्षु के स्त्री बनने का अधिकार	२५८
.४-५ निदान—कुमारों की ऋद्धि को देखकर साधु के निदान करने के विषय का विवेचन—	२५९
(क) कुमार के धर्म सुनने को अयोग्यता का वर्णन और निदान कर्म के अशुभ फल—विपाक का विवेचन	२६०
(ख) निर्ग्रन्थी के किसी सुन्दर युवती को देखकर निदान कर्म करने का वर्णन	२६१
द्वितीय निदान—	२६१
(ग) निर्ग्रन्थी का निदान कर्म करके फिर देवलोक में जाने के अनन्तर मानुष लोक में कुमारी बनना	२६१
(घ) निर्ग्रन्थी के द्वारा कृत निदान कर्म का फल	२६२
(च) निदान कृत कुमारी की यौवनावस्था और उसके विवाह का वर्णन	२६२
(छ) धर्म के श्रवण करने की अयोग्यता और उसका फल	२६३
तीसरा निदान—	२६३
साधु ने किसी सुखी स्त्री को देखकर निदान कर्म करने का संकल्प किया।	२६३
निदान का फल—	
धर्म सुनने की अयोग्यता और उसके फल का विवेचन	२६४
छठा निदान कर्म—	२६४
निदान का फल—	२६५
धर्म सुनने की अयोग्यता और उसके फल का विवेचन	२६५
अन्यतीर्थियों और निदान कर्म का फल	२६५
सातवाँ निदान	२६६
श्रावक के धर्म का विवेचन	२६८
आठवाँ निदान	२६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
स्त्री को धर्म सुनने की अयोग्यता और उसका फल	२७०
चतुर्थ निदान	२७१
निर्ग्रन्थी का कुमारों को देखकर निदान कर्म का संकल्प करना	२७१
स्त्री को देखकर अन्य लोगों की कामना और	
स्त्री के कष्टों का विवेचन	२७१
पुरुष के सुखों के अनुभव करने की इच्छा—	२७२
पुरुष बनकर सुख भोगने और धर्म के सुनने की	
अयोग्यता का वर्णन—	२७२
पंचम निदान—	
मनुष्य के भोगों की अनित्यता का वर्णन	२७३
देवलोकों के काम भोगों का वर्णन	२७३
देवलोकों के सुखों का वर्णन, फिर च्यवन कर	
मनुष्य बनने का अधिकार	२७४
.७.२ निह्नववाद	२७४
.१ बहुरतवाद	२७४
.२ जीव प्रादेशिक—	२७५
.३ अव्यक्तिक—	२७६
.४ समुच्छेदिक—	२७७
.५ द्वैकिय—	२७७
.६ त्रैराशिक भगवान् महावीर के निर्वाण के ५४४ वर्ष पश्चात्	
अंतरंजिका नगरी में त्रैराशिक मत का प्रवर्तन हुआ। इसके	
प्रवर्तक आचार्य रोहगुप्त थे (षडूलुक)	२७८
.७ अबद्धिक—	२७९
चार्ट सात निह्नवों का	२८१
.२ भगवान् महावीर और निह्नववाद	२८१
(क) प्रवचन निह्नव	२८१
.३ कूणिक और चेटक का युद्ध	२८३
(क) हल्ल-विहल्ल कुमार का युद्ध	२८४
हल्ल-विहल्ल का चारित्र ग्रहण	२८६
(ख) कूणिक की कठोर प्रतिज्ञा	२८७
रथमूसल संग्राम का एक प्रसंग	२८८
कालकुमार	२८९
चमरेन्द्र ने रथमुसल संग्राम को विकुर्वित किया	२९१
.१ महासिला-कंटक-संग्राम	२९२
चमरेन्द्र ने महाशिला-कंटक-संग्राम को विकुर्वित किया	२९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
.४ सूर्याभदेव द्वारा नाटक	२९९
.५ सूर्याभदेव—अभिषेकोत्सव	३०८
.६ भगवान् के सम्बन्ध में प्रवाद	३२०
.६.१ बौद्ध भिक्षु का प्रवाद तथा आर्द्रकुमार का उत्तर	३२०
क—बौद्ध भिक्षु का प्रवाद	३२०
ख—आर्द्रकुमार का उत्तर	३२१
.६.३ ब्राह्मणों का प्रवाद	३२३
आर्द्रकुमार का उत्तर	३२३
.६.४ सांख्य का प्रवाद	३२४
आर्द्रकुमार का उत्तर	३२४
.६.५ हस्तितापस का प्रवाद	३२५
आर्द्रकुमार का उत्तर	३२५
गोशालक का प्रवाद तथा आर्द्रकुमार का उत्तर	३२७
.८ पार्श्वपत्यीय अणगार	३३१
केशीकुमार श्रमण—	
.६ भगवान महावीर के समय के व्यक्ति विशेष	३३५
छपनवें वर्ष की घटना—राजगृह में	
.७ एक कुष्ट व्यक्ति का—देव का आगमन	३३५
.७१ भगवान् महावीर के समकालीन प्रत्येक बुद्ध की कथाएँ	३४६
.१ करकंडु—प्रत्येक बुद्ध	३४६
.२ दुर्मुख राजा	३४८
.३ नमी राजा	३४६
.४ नग्गई राजा	३५१
.७२ कालोचित्त क्रियायां केशिगणधर कथा	३५२
.७३ भगवान् महावीर की सर्वज्ञावस्था और गोशालक	३५६
.१ जिनप्रलापी गोशालक का रोष	३५६
.२ गोशालक का आनंद निर्ग्रन्थ से वार्त्तालाप	३५६
.३ आनन्द अणगार का भगवान् के पास आना	३६१
.४ श्रमण और श्रमण भगवंत का तप तेज	३६२
.५ भगवान् का आदेश—तीर्थंकर काल	३६३
.६ गोशालक का आगमन	३६४
.७ गोशालक को सही स्थिति बताना	३६५
.८ गोशालक की तेजोलेश्या से—दो साधुओं का पंडित मरण—	३६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
.१ सर्वानुभूति	३६६
.२ सुनक्षत्र मुनि का हनन—पंडित मरण	३६८
.६ गोशालक द्वारा भगवान के वचनों का अनादर	३६६
.१० भगवान् पर गोशालक द्वारा छोड़ी गई तेजोलेश्या वापस गोशालक पर पड़ी	३७०
.११ अपनी तेजोलेश्या से पीड़ित गोशालक से भगवान् की वार्त्ता	३७१
.१२ भगवान् महावीर और गोशालक के सम्बन्ध में जनचर्चा	३७२
.१३ श्रमण निर्ग्रन्थों को गोशालक के साथ वार्त्तालाप करने का आदेश	३७३
.१४ गोशालक—श्रमण-निर्ग्रन्थों द्वारा धर्मचर्चा में निरुत्साह	३७४
.१५ अपनी तेजोलेश्या से प्रतिहत गोशालक को छोड़कर उसके कुछ साधु भगवान् के पास आये	३७५
.१६ गोशालक की दुर्दशा	३७६
.१७ गोशालक की तेज शक्ति और दाम्भिक चेष्टा	३७७
.१८ गोशालक द्वारा फेंकी गई तेजोलेश्या सेभगवान् के शरीर में दाह-ज्वर	३७८
.१६ सिंह अणगार का शोक और रेवती गाथापत्नी	३७८
.२० भगवान् का रोग और लोकोपवाद	३८०
.२२ सिंह अणगार को सान्त्वना	३८१
.२३ सिंह अणगार—रेवती के घर	३८३
.२४ रेवती को आश्चर्य और औषधि दान	३८४
.२५ तीर्थंकर काल—भगवान के रोग का उपशमन	३८५
.२६ भगवान महावीर और सिंह अणगार	३८५
.२७ गोशालक—एक प्रसंग	३८६
भगवान् से गोशालक का पृथक्करण—अनेक यातनाएँ	३८७
छः दिशाचर	३८६
.२८ गोशालक—एक प्रसंग (वैश्यायन बाल तपस्वी)	३८६
.२६ गोशालक की गति	३६४
.३०.१ गोशालक और सद्दालपुत्र श्रमणोपासक	३६४
.२ गोशालक—वाद-विवाद करने में समर्थ नहीं सद्दालपुत्र को आह्वान	३६५
.३ गोशालक द्वारा भगवान् महावीर का गुणकीर्तन	३६६
.३१ गोशालक के प्रश्न और आर्द्रक का उत्तर	४००
.७४ जंबू स्वामी	४०५
.१ पूर्व भव	४०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
.२ जंबू स्वामी के प्रसंग में	४०६
.३ जंबू स्वामी का विवाह	४०६
.४ गृह में चोर-प्रवेश	४०७
चोर की जंबूस्वामी की माता से बातचीत और फिर जंबूस्वामी से वार्तालाप	
.५ जंबू स्वामी और विद्युच्चोर के बीच युक्तियों और दृष्टांतो द्वारा वाद-विवाद	४१०
.६ दृष्टांत द्वारा वाद-विवाद चालू	४१२
.८ जंबू स्वामी को केवलज्ञान-प्राप्ति	४१४
.७ जन्मकूपका दृष्टांत व जंबू स्वामी तथा विद्युच्चोर की प्रव्रज्या	४१५
.७५ वर्धमान महावीर— पूर्वभव प्रसंग—उत्तर पुराण से	४१६
.३ चातुर्मास	४२३
.४ विहार और आवास स्थान	४२४
संकलन-सम्पादन-अनुसंधान में प्रयुक्त ग्रंथों की सूची	४२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

००/४ वर्धमान (महावीर) के चतुर्विध संघ का निरूपण

०० भगवान के चतुर्विध संघ के प्रमाण का निरूपण

(क) तित्थंभंते ! तित्थं ? तित्थगरे तित्थं ?

गोयमा ! अरहा ताव नियमं तित्थकरे, तित्थं पुण चाउवण्णे समणसंघे, तंजहा—समणा, समणीओ, सावया, सावियाओ ।

—भग० श २०/उ ८/सू ७४

अरिहंत नियमसे तीर्थंकर होते हैं परन्तु तीर्थ चार प्रकार का कहा है—
१—श्रमण, २—श्रमणी, ३—श्रावक और ४—श्राविका ।

(ख) तित्थं चाउव्वण्णो, संघो सो पढमए समोसरणे ।
उप्पण्णो उ जिणाणं, वीरजिणिंदस्स बीयंमि ॥

—आव० निगा ५८७

श्री वीरभगवान् के दूसरे समवसरण में तीर्थ और संघ की स्थापना हुई। परन्तु ऋषभदेव आदि तेइस तीर्थंकरों के समय प्रथम समवसरण से ही तीर्थ (प्रवचन) एवं चतुर्विध संघ उत्पन्न हुए ।

(ग) भगवान् महावीर को अरिहंत पद में ग्रहण—

तित्थं भंते ! तित्थं, तित्थगरे तित्थं ? गोयमा ! अरहा ताव नियमं तित्थगरे, तित्थं पुण चाउवण्णे समणसंघे, तंजहा—समणा, समणीओ, साविया, सावियाओ ।

—भग० श २०/उ/८ सू ७४

अरिहंत तो अवश्य तीर्थंकर हैं (तीर्थ नहीं) परन्तु ज्ञानादि गुणों से युक्त चार प्रकार का श्रमण संघ तीर्थ कहलाता है—यथा-साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—

पवयणं भंते ! पवयणं, पावयणी, पवयणं ? गोयमा ! अरहा ताव णियमं पावयणी, पवयणं पुणदुवालसंगे गणिपिडगे, तंजहा—आयारो जाव दिट्ठिवाओ ।

— भग० श २०/उ ८ सू ७५

अरिहंत अवश्य प्रवचनी है (प्रवचन नहीं) और द्वादशांग गणिपिटक प्रवचन है—यथा—आचारांग यावत् दृष्टिवाद ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(घ) तीर्थंकर पद—अन्तर

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणिए कति तित्थगरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चउवीसं तित्थगरा पण्णत्ता, तंजहा—उसभअजिय-संभव-अभिनंदण—सुमति-सुप्पभ-सुपास-ससि-पुप्फदंत-सीयल सेज्जंस - वासुपुज्ज - विमल-अणंत-धम्म-संति-कुंथु-अर-मल्लि-मुणिसुव्वय-नमि-नेमि-पास-वद्धमाणा।

एएसिणं भंते चउवीसाए तित्थगराणं कति जिणंतरा पण्णत्ता ? गोयमा ! तेवीसं जिणंतरा पण्णत्ता।

—भग० श २०/उ ८/सू० ६७, ६८

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। यथा—१—ऋषभ, २—अजित, ३—संभव, ४—अभिनन्दन, ५—सुमति, ६—सुप्रभ, (पद्मप्रभु), ७—सुपार्श्व, ८—शशि, (चंद्रप्रभु), ९—पुष्पदंत, १०—शीतल, ११—श्रेयांस, १२—वासुपूज्य, १३—विमल, १४—अनन्त, १५—धर्म, १६—शान्ति, १७—कुन्थु, १८—अर, १९—मल्लि, २०—मुनिसुव्रत, २१—नमि, २२—नेमि, २३—पार्श्व नाथ तथा २४—वर्धमान।

चौबीस तीर्थंकरों के तेईस अन्तर है। तेईसवां अन्तर पार्श्वनाथ और वर्धमान का है। इनका अंतर २५० वर्ष कहा है।

(च) वर्धमान और सप्रतिक्रमण सहित पाँच महाव्रत

एएसुणंभंते ! पंचसु भरहेसु पंचसु एरवएसु, पुरिम-पच्छिमगा दुवे अरिहंता भगवंतो पंचमहव्वइयं (पंचाणुव्वइयं) सपडिक्कमणं धम्मं पण्णवयंति।

अवसेसा णं अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पण्णवयंति।

—भग० श २०/उ ८ सू /६९

पाँच भरत और पाँच ऐरवत क्षेत्रों में प्रथम और अन्तिम—ये दो अरिहंत भगवन्, पाँच महाव्रत (और पाँच अणुव्रत) और सप्रतिक्रमण धर्म का उपदेश करते हैं। शेष अरिहंत भगवान् चार याम (महाव्रत) रूप धर्म का उपदेश करते हैं।

(छ) वर्धमान तीर्थंकर तथा पूर्वगत श्रुत—

जंबुद्दीवेणंभंते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुप्पियाणं केवइयं कालं पुव्वगए अणुसज्जिस्सइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए ममं एगं वास-सहस्सं पुव्वगए अणुसज्जिस्सइ ।

—भग० श २०/उ ८ सू /७०

इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में मेरा (वर्धमान) पूर्वगत श्रुत एक हजार वर्ष तक रहेगा ।

जिनांतर में कालिक श्रुत—

एएसिणंभंते ! तेवीसाए जिणंतरेसुकस्स कहिं कालियसुयस्स वोच्छेदे पण्णत्तं ?

गोयमा ! एएसुणं तेवीसाए जिणंतरेसु पुरिमपच्छिमएसु अट्ठसु-अट्ठसु जिणंतरेसु एत्थ णं कालियसुयस्स अव्वोच्छेदे पण्णत्ते, मज्झिमएसु सत्तसु जिणं-तरेसु एत्थणं कालियसुयस्स वोच्छेदे पण्णत्ते, सव्वत्थ वि णं वोच्छिण्णे दिट्ठिवाए ।

—भग श० २०/उ ८/सू ६६

तेईस जिनांतरों में पहले आठ और पिछले आठ जिनान्तरों में कालिक श्रुत का अव्यवच्छेद कहा है और मध्य के सात जिनान्तरों में कालिक श्रुत का व्यवच्छेद हुआ है । दृष्टिवाद का व्यवच्छेद तो सभी जिनान्तरों में हुआ है ।

नोट—तेइसवाँ जिनांतर-पार्श्वनाथ और वर्धमान तीर्थंकर का है । उनके अंतर में कालिक श्रुत का अव्यवच्छेद कहा है ।

नोट—विशिष्ट रूप से जो कहा जाय, उसे प्रवचन कहते हैं अर्थात् आगम को प्रवचन कहते हैं । तीर्थंकर भगवान् प्रवचन के प्रणेता होते हैं । इसलिये वे प्रवचनी कहलाते हैं । कहा है—

प्रकर्षेणोच्यतेऽभिधेयमनेनेति प्रवचनम्-आगमा

(ज) भगवान् महावीर के तीर्थ में तीर्थंकर गोत्र-उपार्जन करने वाले जीव

समणस्स णं भगवतो महावीरस्स तित्थंसि णवहिंजीवेहिं तित्थगरणामगोत्ते कम्मे णिव्वत्तिते तंजहा-सेणितेणं, सुपासेणं, उदातिणा, पोट्टिलेणं अणगारेणं, दढाउणा, संखेणं, सततेणं, सुलसाए साविताते, रेवतीते ।

—ठाण० स्था ६/सू ६०

श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में नव जीवों ने तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म का उपार्जन किया, यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. श्रेणिक राजा २. महावीर स्वामी का काका-सुपार्श्व ३. कोणिक राजा का पुत्र उदायी राजा ४. पोट्टिल नामक अणगार ५. दढायु (अप्रसिद्ध है) ६. शंखनामक-भगवान् का प्रमुख श्रावक ७. शतक अपर नाम पुष्कली ८. सुलसा श्राविका ९. भगवान् के लिए बीजोरापाक बहराने वाली रेवती श्राविका

(ञ) पंचम आरा और भगवान् का परिनिर्वाण—

स्वाम्याख्यान्मम निर्वाणादतीतैर्वत्सरैस्त्रिभिः ।
सार्धाष्टमाससहितैः पंचमारः प्रवेक्ष्यति ७७ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० सर्ग १३

भगवान् के परिनिर्वाण के तीनवर्ष सार्धआठ मास व्यतीत होने के बाद पंचम आरा लगेगा—

(ञ) भगवान के परिनिर्वाण के बाद—भगवान के जन्म नक्षत्र पर भष्मराशि महाग्रह का आवागमन

जं रयणिं च णं समणे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं खुद्दाए भास-रासी महग्गहे दोवाससहस्सट्ठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते ।

जप्पभिइं च णं से खुड्डाए भासरासी महग्गहे दोवाससहस्सट्ठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते तप्पभिइं च णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीणं य नो उदिए उदिए पूयासक्कारे पवत्तति

जया णं से खुड्डाए जाव जम्मनक्खत्ताओ वीतिक्कंते भविस्सइ तयाणं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य उदिए उदिए पूयासक्कारं पवत्तिस्सति

—कप्प० सू १२८ से १३०/पु० ४२ ; ४३

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए यावत् सर्व दुःखों का अंत किया—उसी रात्रि में भगवान् महावीर के जन्म नक्षत्र पर क्षुद्र क्रूर स्वभाववाला २००० वर्ष की स्थिति का भस्म राशि नामक महाग्रह का आगमन हुआ । जिस समय से क्षुद्र स्वभाव वाला २००० वर्ष की स्थिति का भष्मराशि नामक महाग्रह महावीर के जन्म नक्षत्र पर आगमन हुआ—उस समय से श्रमण निर्ग्रन्थ तथा निर्ग्रन्थियों का पूजा-सत्कार उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त नहीं हुआ ।

जब क्षुद्र स्वभाववाला भस्मराशि ग्रह भगवान् के जन्म नक्षत्र पर दूर हो जायेगा—तब श्रमण निर्ग्रन्थ व निर्ग्रन्थियों का पूजा-सत्कार वृद्धि को प्राप्त होगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ट) भगवान के परिनिर्वाण के समय नव मल्लकीवंश और नव लिच्छवीवंश के गणराजाओं के पौषधोपवास

जं रयणिं च णं समणे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च ण णव मल्लई नव लिच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो अमावसाए पाराभोयं पोसहोववासं पट्ठवइंसु, गते से भावुज्जोए दव्वुज्जोवंकरिस्सामो।

—कप्प० सू १२७/पृ० ४२

जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर ने सर्व दुःखों का अंत किया, उसी रात्रि में काशी देश के मल्लकी वंश के नव गण राजा और कोशल देश के लिच्छवी वंश के अन्य नव गण राजा—कुल अठारह गण राजाओं ने अमावस्या के दिन वहां अष्ट प्रहरी पौषधोपवास किया। उन्होंने विचार किया भावोद्योत—ज्ञान रूप प्रकाश चला गया—फिर भी द्रव्योद्योत—दीपक का प्रकाश करना चाहिए।

(ठ) भगवान महावीर के परिनिर्वाण के बाद कुंथु आदि जीवों की समुत्पत्ति होने से साधु-साध्वियों का भत्त-प्रत्याख्यान

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं कुंथू अणुद्धरी नामं समुप्पन्ना, जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, जा अठिया चलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीणं य चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, जं पासित्ता बहूहिं निग्गंथेहिं निग्गंथीहि य भत्ताइं पच्चक्खायाइं ॥१३१॥

से किमाहु भंते!? अज्जप्पभिइं दुराराहए संजमे भविस्सइ ॥१३२॥

—कप्प० सू १३१-१३२/पृ० ४३

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर ने सर्व दुःखों का अंत किया—उस रात्रि में कुंथु नाम के जीवों की उत्पत्ति हुई। वे जीव स्थिर अचलमान थे, उन्हें छद्मस्थ निर्ग्रन्थ—निर्ग्रन्थियों को आंख से चलती हुई नहीं दिखाई देती थी। कदाचित् चलती हो तो उन्हें छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियाँ नहीं देख सकते थे। इस प्रकार के जीवों को देखकर बहुत से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों ने अनशन व्रत स्वीकार किया।

आज से संयम का पालन करना दुराध्य होगा—अर्थात् संयम का पालन करना कठिन होगा—अतः यह सूचना अनशन सूचित करती है।

(ड) तीर्थ कब तक चलेगा—

जंबुद्दीवे णंभंते। दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुप्पियाणं केवतियं कालं तित्थे अणुसज्जिस्सति?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयया ! जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे इमीसे ओसप्पिणीए ममं एगवीसं वाससहस्साइं तित्थे अणुसज्जिस्सति ।

—भग० श २०/उ ८/सू ७२

इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का तीर्थ) मेरा तीर्थ इक्कीस हजार वर्ष तक चलेगा ।

(ढ) केवल ज्ञान के उत्पन्न होने के बाद के अतिशय—

जोयणसयं समन्ता, मारीइ विवज्जिओ देसो ॥३२॥
जत्तो ठवेइ चलणे, तत्तो जायन्ति सहसपत्ताइं
फलभरनमिया य दुमा, सालसमिद्धा मही होइ ॥३३॥
आयरिससमा धरणी, जायइ इह अद्धमागही वाणी
सरए य निम्मलाओ, दिसाओ रय-रेणुरहियाओ ॥३४॥

—पउच० अधि २

भगवान् महावीर के चारों ओर सौ योजन तक का प्रदेश संक्रामक रोगों से शून्य रहता था । जहाँ पर उनके चरण पड़ते थे वहाँ सहस्रदल कमल निर्मित हो जाता था, वृक्ष फलों के भार से झुक जाते थे, पृथ्वी धान्य से परिपूर्ण और जमीन दर्पण के समान स्वच्छ हो जाती थी । अर्धमागधी वाणी उनके मुख से निकलती थी ।

धूल व गर्द से रहित दिशाएँ शरत्काल की भाँति निर्मल हो जाती थीं ।

(ण) वर्धमान महावीर की अवगाहना—

त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में अवगाहना ।

तिविट्ठू णं वासुदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० सम ८०/सू २

त्रिपृष्ठ वासुदेव की अवगाहना अस्सी धनुष की थी ।

नोट—उनके बड़े भाई अचल बलदेव की अवगाहना उनके समकक्ष थी ।

अयले णं बलदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० सम ८०/सू ३

(त) महाराज की पदवी—

तिविट्ठू णं वासुदेवे असीइं वाससयसहस्साइं महाराया होत्था ।

—सम० सम ८०/सू ४

त्रिपृष्ठ वासुदेव ८०००००० वर्ष महाराज पद पर रहे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(थ) त्रिपृष्ठ वासुदेव का नरक गमन—

तिविट्ठूणं वासुदेवे चउरासीइं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता अप्पइट्ठाणे नरए नेरइयत्ताए उववण्णे।

—समा० सम ८४/सू ५

त्रिपृष्ठ वासुदेव ८४००००० वर्ष का सर्वायु पालन कर सप्तम नरक के अप्रतिष्ठान नरकावास में उत्पन्न हुए।

(द) वर्धमान का समय-काल

विक्कमरज्जारंभा परओ सिरिवीरनिव्वुईभणिया।
सुन्नमुणिवेयजुत्तो विक्कमकालओ जिणकालो।

टीका—विक्रमकालाज्जिनस्य वीरस्य कालो जिनकालः शून्य (०) मुनि (७) वेद (४) युक्तः।

चत्वारिंशतानि सप्तत्यधिकवर्षाणि श्री महावीर विक्रमा-दित्ययोरन्तर-मित्यर्थः।

—विचार श्रेणी पृ० ३-४

विक्रम काल से ४७० वर्ष पूर्व वीर जिन का काल था।

(ध) वर्धमान का कुमार काल

पंच तित्थयरा कुमारवासमज्झे वसित्ता मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तंजहा-वासुपुज्जे, मल्ली, अरिट्ठणेमी, पासे, वीरे।

—ठाण० स्था ५/उ ३/सू २३४

पाँच तीर्थंकर कुमारकाल में आगारसे अनगार हुए यथा—वासुपूज्य, मल्लीनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और वर्धमान।

नोट :—वर्धमान तीर्थंकर की बहत्तर वर्ष की आयु थी। तीस वर्ष की अवस्था में अनगार बने।

(न) से किं तं अंगुले? २ तिविहेपन्नत्ते। तंजहा—आयंगुले १ उस्सेहंगुले २ पमाणंगुले ३। से किं तं पमाणंगुले? २ एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठ सोवण्णिए काकणिरयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठकण्णिए अहिगरणिसंठाणसंठिए पण्णत्ते। तस्सणं एगमेगा कोडी उस्सेहंगुलं विक्खंभा? तं समणस्स भगवओ महावीरस्स अद्धंगुलं, तं सहस्सगुणं पमाणंगुलं भवति।

—अणुओ० सू ३३३, ३५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगुल के तीन भेद होते हैं—यथा, आत्मांगुल, उत्सेधांगुल तथा प्रमाणांगुल। श्रमण भगवान् महावीर के अर्द्धांगुल से हजार गुणा अधिक प्रमाणांगुल होता है।

प्रश्न—हे भगवन्! प्रमाणांगुल किसे कहते हैं।

उत्तर—उत्सेध अंगुल से हजार गुना अधिक हो उसे प्रमाणांगुल कहते हैं। तथा प्रकर्ष रूप जिसका प्रमाण सबसे बड़ा हो—उसे प्रमाणांगुल कहते हैं।

भरत क्षेत्र आदि क्षेत्र में जब एक-एक चक्रवर्ती होते हैं उनके समय में उनके यहाँ कांगणी रत्न होता है। उसका वजन आठ सौनेये भर होता है। उस कागणी रत्न के चारों तरफ के चार-ऊपर-नीचे दोनों—ये छह तल होते हैं। ऊपर-नीचे के चारों तरफ के आठ और बीच में चारों तरफ के चार—ऐसे बारह हांस (पेल) होते हैं। चार ऊपर के चार नीचे के—ऐसे आठ कर्णिका (कौने) होते हैं। अधिकरक नाम (सोनार की ऐरण) के संस्थान (आकार) से संस्थित कहा है।

उस कांगनी रत्न के एक-एक कोड़ी (तले) एक उत्सेधांगुल के प्रमाण चौड़ी कही है। और वह श्रमण भगवान् महावीर की अर्द्धांगुल को एक हजार गुणन करने से प्रमाणांगुल होता है।

नोट—महावीर स्वामी का शरीर स्वयं के आत्मांगुल से ८४ अंगुल (साढ़े तीन हाथ) ऊँचा है तथा उत्सेधांगुलसे १६८ अंगुल का ऊँचा शरीर होता है। और जो उत्तम पुरुष होते हैं उनका १०८ अंगुल तथा १२० अंगुल शरीर ऊँचा कहा है। वह ८४ अंगुल तो सहज ही ऊँचा और दोनों हाथ ऊँचा करे तब २४ अंगुल ऊपर होने से—१०८ अंगुल होते हैं।

(घ) भगवान के माता-पिता का उपासना तथा परभव काल

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था। तेणं बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पालइत्ता, छण्हं जीवनिकायाणं संरक्खणनिमित्तं आलोइत्ता निंदित्ता गरहित्ता पडिक्कमित्ता, अहारिहं उत्तरगुणं पायच्छित्तं पडिवज्जित्ता, कुससंथारं दुरुहित्ता भत्तं पच्चक्खाइंति, भत्तं पच्चक्खाइत्ता अपच्छिमाए मारणंतियाए सरीर-संलेहणाए सोसियसरीरा कालमासे कालं किच्चा तं सरीरं विप्पजहित्ता।

अच्चुयकप्पे देवत्ताए उववण्णा तओ णं आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं चुए।

चइत्ता महाविदेहवासे चरिमेणं उस्सासेणं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिणिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

—आया० श्र २/अ १५/सू २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर के माता-पिता श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के संतानीय श्रमणों के श्रावक थे। बहुत कालपर्यंत श्रावकत्व का पालनकर, षट्काय जीवों के रक्षार्थ पाप कर्मों की आलोचना कर, स्वात्मा की निंदाकर, गुरु की साक्षी से घृणाकर, पाप से निवृत्ति कर, यथायोग्य प्रायश्चित्त लेकर पराल के बिछौने पर बैठकर, भक्त-प्रत्याख्यान कर, अंतिम श्वासोच्छ्वास संलेषनासे शरीर का शोष करके, आयु के पूर्ण होने से शरीर का त्याग कर बारहवें अच्युत देवलोक में देव हुए।

वहाँ से आयुष्य का क्षय होने पर च्यवनकर महाविदेह क्षेत्र में संयम अंगीकार कर अंतिम श्वासोच्छ्वास में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्व कर्म रहित होवेंगे।

नोट :—दिगम्बर, परम्परानुसार भगवान् के दीक्षा लेने के समय उनके माता-पिता जीवित थे किन्तु श्वेताम्बर शास्त्रों के अनुसार दोनों के स्वर्गवास होने के दो वर्ष पश्चात् भगवान् ने दीक्षा ली है। गर्भ-हरण का प्रसंग दिगम्बर परंपरा में अभिमत नहीं है। तीर्थंकरों का यही नियम है कि वे किसी पुरुष विशेष को प्रणाम नहीं करते हैं—कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी पृ० १२७

(फ) वीरस्तुति

(क) नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते।

—रत्नश्रा० परि १/ श्लो १

मैं वर्धमान—अंतिम तीर्थंकर को नमस्कार करता हूँ। वे ज्ञानावरणादि कर्म से रहित थे अर्थात् केवलज्ञान के धारक थे। दर्पण की तरह उन्हें लोक का ज्ञान था।

(ख) शक्रेन्द्र द्वारा—

मोहन्धयारतिमिरे, सुत्तं च्चिय सयलजीवलोयमिणं।
केवलकिरणदिवायर !, तुमेव उज्जोइयं विमलं ॥४३॥

हे केवलज्ञानरूपी किरणों से सूर्य के समान। यह सारा जीवलोक मोहरूपी गहरे अंधकार में सोया हुआ है। अकेले आपने ही इसे निर्मल प्रकाश से प्रकाशित किया है।

—पउच० अधि २

संसारभवसमुद्दे, सोगमहासलिलवीइसंघट्टे।
पोओ तुमं महायस ! उत्तारो भवियवणियाणं ॥४४॥

संसार रूपी समुद्र में शोक रूपी बड़ी-बड़ी लहरें टकरा रही हैं; हे महायश ! भव्यजनरूपी व्यापारियों को नौका के समान आप ही पार उतारने वाले हैं।

२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसारभवकडिल्ले, संजोगविओगसोगतरुगहणे।
कुपहपणट्ठाण तुमं, सत्थाहो नाह! उप्पन्नो ॥४५॥

हे नाथ! संयोग, वियोग एवं शोकरूपी तरुओं से व्याप्त जन्ममरणरूपी संसार के गहन-वन के कुमार्ग में नष्ट होने वाले जंतुओं के लिए आप ही सार्थवाह तुल्य उत्पन्न हुए हैं।

तुह नाह! को समत्थो, सब्भूयगुणाण कुणइ परिसंखा।
सुइरम्मि भण्णमाणो, अवि वाससहस्सकोडीहिं ॥४६॥

बहुत देर तक—सहस्त्रकोटि वर्षों तक भी आपके वास्तविक गुणों को यदि कोई संकीर्तन करे तो भी उनकी गिनती करने में, हे नाथ! कौन समर्थ हो सकता है।

—पउच० अधि २

भगवान महावीर के समकालीन राजा—

विपुलाचल पर्वत पर राजा श्रेणिकका भगवान के दर्शनार्थ-आवागमन।

मगहाहिवो चि राया, दट्ठूण सुरागमं जिणसगासे।
भडचडयरेण महया, तो रायपुराओ नीहरिओ॥
पत्तो य तमुद्देसं मत्तमहागयवराओ उत्तिण्णो।
थोऊण जिणवरिन्दं उवविट्ठो मगहसामंतो॥

—पउच० अधि २/ श्लो ४८, ४९

मगधाधिप राजा श्रेणिकभी जिनेश्वर भगवान् के पास देवताओं का आगमन देखकर बड़े भारी सुभटसमूह के साथ राजपुर से निकला। जिस स्थान पर भगवान् ठहरे हुए थे उस स्थान पर आकर वह मगध नरेश मदोन्मत्त गजराज पर से नीचे उतरा और जिनवर की स्तुति करके नीचे बैठा।

(ब) वर्धमान—एक विवेचन

टीका—भगवान् त्रिकचतुष्कचत्वरचतुर्मुखमहापथादिषु पटुपटहप्रतिरवोद्घोषणापूर्वं यथाकाममुपहतसकलजनदारिद्र्यमनवच्छिन्नमब्दं यावन्महादानं दत्वा सदेवमनुजासुरपरिषदा परिवृतः कुण्डपुरान्निर्गत्य ज्ञातखंडवने मार्गशीर्ष-कृष्णदशम्यामेककः प्रव्रज्य मनःपर्यायज्ञानमुत्पाद्याष्टौ मासान् विहृत्य मयूरकाभिधानसन्निवेशबहिःस्थानां दूयमानाभिधानानां पाखण्डिकानां सम्बधिन्येकस्मिन्नुटजे तदनुज्ञाया वर्षावासमारभ्य अविधीयमानरक्षतया पशुभिरुपद्रूयमाणे उटजेऽप्रीतिकं कुर्वाणमाकलय्य कुटीरकनायकमुनिकुमारकं ततो वर्षाणामर्द्धमासे गतेऽकाल एक निर्गत्यास्थिकग्रामाभिधानसन्निवेशाद् बहिः शूलपा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिनामकयक्षायतने शेषं वर्षावासमारेभे, तत्र च यदा रात्रौ शूलपाणिर्भगवतः क्षोभणाय झटिति टालिताट्टालकमट्टहासं मुञ्चन् लोकमुत्त्रासयामास तदा विनाश्यते स भगवान् देवेनेति भगवदालम्बनां जनस्याधृतिं जनितवान् पुनः हस्तिपिशाचनागरूपैर्भगवतः क्षोभं कर्त्तुमशक्नुवन् शिरःकर्णनासादन्तनखाक्षिपृष्ठिवेदनाः प्राकृतपुरुषस्य प्रत्येकं प्राणापहारप्रवणाः सपदि सम्पादितवान्-क्षमस्व क्षमाश्रमण इति तथा सिद्धार्थाभिधानो व्यन्तरदेवस्तन्निग्रहार्थमुद्धाव, बभाण च --अरे रे शूलपाणे अप्रार्थित प्रार्थक हीनपुण्यचतुर्दशीक श्रीह्रीधृतिकीर्त्ति वर्जित दुरन्तप्रान्तलक्षण ! न जानासि सिद्धार्थ-राजपुत्रं पुत्रीयितनिखिलजगज्जीवं जीवितसममशेषसुरासुरनरनिकायनायकानामेनं न भवदपराधं यदि जानाति त्रिदशपतिस्ततस्त्वां निर्विषयं करोतीति श्रुत्वा चासौ भीतो द्विगुणतरं क्षमयति स्म, यथा सिद्धार्थश्च तस्य धर्म्ममचकथत् ।

स चोपशान्तो भगवतं भक्तिभरनिर्भरमानसो गीतनृत्तोपदर्शनपूर्वकमपूपूजत्, लोकश्च चिन्तयाञ्चकार-देवार्यकं विनाश्येदानीं देवः क्रीडतीति, स्वामी च देशोनांश्चतुरो यामानतीव तेन परितापितः प्रभातसमये मुहूर्त्तमात्रं निद्राप्रमादमुपगतवान् तत्रावसरे इत्यर्थोऽथवा छद्मस्थकाले भवा अवस्था छद्मस्थकालिकी तस्यां ।

—ठाण० स्था १०/सू १०३/ टीका

भगवान महावीर अपने जन्मस्थान कुन्डपुर से अभिनिष्क्रमण कर ज्ञातखंड उपवन में एकाकी प्रव्रजित हुए। वह मृगशीर्ष कृष्णा दशमी का दिन था। आठ मास तक विहार कर वे अपने पिता के मित्र के आश्रम में पर्यूषणा कल्प के लिए ठहरे। वहाँ दो महिने रहकर वे अकाल में ही वहाँ से निकलकर अस्थिग्राम सन्निदेश के बाहिर शूलपाणि यक्षायतन ने उन्हें अनेक कष्ट दिये। तब व्यन्तर देव सिद्धार्थ ने उसे भगवान् महावीर का परिचय दिया। शूलपाणि का क्रोध उपशांत हुआ। वह भगवान् की भक्ति करने लगा।

शूलपाणि यक्ष ने भगवान् को रात्रि के (कुछ समय कम) चारों प्रहर तक परितापित किया। अंतिम रात्रि में भगवान् को कुछ नींद आई और तब उन्होंने दस स्वप्न देखें।

यहाँ अंतिम रात्रि का अर्थ है—रात्रि का अवसान, रात्रि का अंतिम भाग।[1]

१—स्थानांग वृत्ति, पत्र ४७६ : 'अंतिमराइयंसि' त्ति अन्तिमा-अन्तिमभागरूपा अवयवे समुदायोपचारात् सा चासौ रात्रिका चान्तिमरात्रिका तस्यां रात्रेरवसान इत्यर्थः।

"छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि" इस पाठ को देखने पर यही धारणा बनती है कि छद्मस्थकाल की अंतिम रात्रि में भगवान् महावीर ने दस स्वप्न देखे। किन्तु आवश्यक निर्युक्ति आदि उत्तरवर्ती ग्रन्थों तथा व्याख्या ग्रन्थों के साथ इस धारणा की संगति नहीं बैठती। वृत्तिकार ने जो अर्थ किया है वह प्रस्तुत पाठ और उत्तरवर्ती ग्रन्थों की संगति बिठाने का प्रयत्न है।

एकबार भगवान् महावीर अस्थिग्राम गए। वहाँ एक वाणव्यंतर का मंदिर था। उसमें शूलपाणि यक्ष की प्रभावशाली प्रतिमा थी। जो व्यक्ति उस मन्दिर में रात्रिवास करता, वह यक्ष द्वारा मारा जाता था। लोग वहाँ दिन भर रहते और रात्रि को अन्यत्र चले जाते। वहाँ इन्द्रशर्मा नामक ब्राह्मण पुजारी रहता था। वह भी दिन-दिन में मंदिर में रहता और रात्रि में पास वाले गाँव में अपने घर चले जाता।

भगवान् महावीर वहाँ आये। बहुत सारे लोग एकत्रित हो गये। भगवान् ने मन्दिर में रात्रि-वास करने की आज्ञा मांगी। देव कुलिक (पुजारी) ने कहा—मैं आज्ञा नहीं दे सकता। गाँववाले जाने। भगवान् ने गाँववालों से पूछा। उन्होंने कहा—'यहाँ नहीं रहा जा सकता। आप गाँव में चलें। भगवान् ने कहा—नहीं, मुझे तुम आज्ञा मात्र दे दो। मैं यहीं रहना चाहता हूँ। तब गाँव वालों ने कहा—अच्छा, आप जहाँ चाहे वहाँ रहे। भगवान् मंदिर के अन्दर गये और एक कोने में कायोत्सर्ग मुद्राकर स्थित हो गये।

पुजारी इन्द्र शर्मा मन्दिर के अन्दर गया। प्रतिमा की पूजा की और भगवान् को संबोधित कर कहा—चलो। यहाँ क्यों खड़े हो ? अन्यथा मारे जाओगे। भगवान् मौन रहे। व्यन्तर देव ने सोचा—देवकुलिक और गाँव के लोगों के द्वारा कहनेपर यह भिक्षु यहाँ से नहीं हट रहा है। मैं भी इसे आग्रह का मजा चखाऊँ।

सांझ की बेला हुई। शूलपाणि ने भीषण अट्टहास कर भगवान् को डराना चाहा। लोग इस भयानक शब्द से काँप उठे। उन्होंने सोचा—आज देवार्य मौत के कवल बन जायेंगे।

उसी गाँव में एक पार्श्वापत्यिक परिव्राजक रहता था। उसका नाम उत्पल था। वह अष्टांग निमित्त का जानकार था। उसने सारा वृत्तांत सुना। किन्तु रात में वहाँ जाने का साहस उसने भी नहीं किया।

शूलपाणि यक्ष ने जब देखा कि उसका पहला वार खाली गया है, तब उसने हाथी, पिशाच और भयंकर सर्प के रूप धारण कर भगवान् को डराना चाहा। भगवान् अब भी अडोल खड़े थे। यह देख यक्ष का क्रोध उभर आया। उसने एक साथ सात वेदनाएँ उदीर्ण कीं। अब भगवान् के सिर, नासा, दांत, कान, आँख, नख और पीठ में भयंकर वेदना होने लगी। एक-एक वेदना इतनी तीव्र थी कि उससे मनुष्य मृत्यु पा सकता था। सातों का एक साथ आक्रमण अत्यन्त अनिष्टकारी था किन्तु भगवान् अडोल थे। वे ध्यान की श्रेणी में ऊपर चढ़ रहे थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यक्ष अत्यन्त श्रान्त हो गया। वह भगवान् के चरणों में गिर पड़ा और बोला—"भट्टारक मुझ पापी को आप क्षमा करे। भगवान् अब भी वैसे ही मौन खड़े थे।

इस प्रकार उस रात के चारों प्रहरों में भगवान् को अत्यन्त भयानक कष्टों का सामना करना पड़ा। रात के पिछले प्रहर के अंतिम भाग में भगवान् को नींद आ गई। उसमें उन्होंने दस महास्वप्न देखें। स्वप्न देख वे प्रतिबुद्ध हो गए।

प्रातःकाल हुआ। लोग आए। अष्टांग निमित्तज्ञ उत्पन्न तथा देवकुलिक इन्द्रशर्मा भी आये। वहाँ का सारा वातावरण सुगंधमय था। वे मन्दिर में गये। भगवान् को देखा। सब उनके चरणों में गिर पड़े।

उत्पल आगे बढ़ा और बोला—स्वामिन्! आपने रातके अन्तिम भाग में दस स्वप्न देखे हैं। उनकी फलश्रुति मैं अपने ज्ञानबल से जानता हूँ। आप स्वयं उसके ज्ञाता है। भगवान्! आपने जो माला देखी थी उस स्वप्न की फलश्रुति मैं नहीं जान पाया। आप कृपाकर बताएँ।

भगवान ने कहा—'उत्पल! जो तुम नहीं जानते, वह मैं जानता हूँ। इस स्वप्न का अर्थ यह है कि मैं दो प्रकार के धर्मों की प्ररूपणा करूँगा—सागार धर्म और अनगार धर्म।

उत्पल भगवान् को वंदन कर चला गया। भगवान् ने वहाँ पहला वर्षावास बिताया।

·०१ वर्धमान के साधुओं का विवेचन

·०१·१ औधिक श्रमणों का विवेचन

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे समणा भगवंतो—अप्पेगइया उग्गपव्वइया भोगपव्वइया राइण्णणायकोरव्वखत्तियपव्वइया भडा जोहा सेणावईपसत्थारो सेट्ठी इब्भा अण्णे य बहवे एवमाइणो उत्तमजाइकुलरूवविणयविण्णाणवण्णलावण्णविक्कमपहाणसोभग्गकंतिजुत्ता बहुधणधण्णणिचयपरियालाफिडियाणरवइगुणाइरेगा इच्छियभोगा सुहसंपललिया किंपागफलोवमं च मुणियविसयसोक्खं जलबुब्बुयसमाणं कुसग्ग-जलबिन्दुचंचलं जीवियं य णाऊण अद्धुवमिणं रयमिव पडग्गलग्गं संविधुणित्ताणं चइत्ता हिरण्णं जाव [यावच्छब्दोपादानादिदं दृश्यम्—चिच्चा सुवण्णं चिच्चा धणं—एवं धण्णं बलं वाहणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोसं कोट्ठागारं रज्जं रट्ठं पुरं अंतेउरं चिच्चा विउलधणकणगरयणमणि-मोत्तियसंखसिल-प्पवालरत्तरयणमाइयं संतसारसावतेज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं च दाइयाणं परिभायइत्ता मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइया,

—ओव० सू० २३

उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर के अंतेवासी (शिष्य) बहुत से श्रमण भगवंत संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। उनमें से कई उग्रवंशवाले, प्रव्रजित (दीक्षित) हुए थे, तो कई भोग वंशवाले, राजन्यवंशवाले, ज्ञात या नागवंशवाले, कुरुवंशवाले और क्षत्रियवंशवाले दीक्षित हुए थे। भट, योधा, सेनापति, धर्मनीति (शिक्षक, श्रेष्ठि-स्वर्णपट्टाङ्कित धनिक) इभ्य (=हस्ति ढंक जाय इतनी धन राशि-वाले धनिक) और ऐसे ही और भी बहुत से जन—जिनकी जाति (मातृपक्ष) और कुल (पितृपक्ष) उत्तम थे।

जिनका रूप (शरीर का आकार), विनय, विज्ञान, वर्ण (काया की छाया) लावण्य विक्रम, सौभाग्य और कांति अत्युत्तम थी, जो विपुल धन-धान्य के संग्रह और परिवार से विकसित (खुशहाल) थे, जिनके यहाँ राजा से प्राप्त पाँचों इन्द्रियों के सुख का अतिरेक था, अतः इच्छित भोग भोगते थे और जो सुखसे क्रीड़ा करने में मस्त थे। वे विषयसुख को विषवृक्ष (किंपाक) के फल के समान समझकर और जीवन को पानी के बुदबुदे के समान और कुश के अग्रभाग पर स्थित जलबिंदु के समान चंचल (क्षणिक) जानकर, इन ऐश्वर्य आनन्द अध्रुव पदार्थों के कपड़े पर लगी हुई रज के समान झाड़कर=विपुल रूप सुवर्ण (=घड़ा हुआ सोना), धन (=गो आदि) धान्य बल (चतुरंग सैन्य), वाहन, कोश, कोष्ठागार, राज्य, राष्ट्र, पुर, अन्तःपुर, धन (गणिमादि चार तरह के पदार्थ, कनक (बिना घड़ा हुआ सोना), रत्न कर्केतन आदि), मणि (चंद्रकांत आदि) मौक्तिक, शंख शिलाप्रवाल (विद्रुम-मूँगे) पद्म राग आदि पदार्थों को छोड़कर—दीक्षित बन गये।

अप्पेगइया अद्धमासपरियाया अप्पेगइया मासपरियाया—एवं दुमास० तिमास० जाव एक्कारस० अप्पेगइया वासपरियाया दुवास० तिवास० अप्पेगइया अणेगवासपरियाया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ॥

—ओव० २३

कई साधुओं को दीक्षित हुए आधा महिना ही हुआ था। कई को महिने, दो महिने, तीन महिने यावत् ग्यारह महिने, एक वर्ष, दो वर्ष और तीन वर्ष हुए थे। तो कई को अनेक वर्ष हो गये थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.१.२ औधिक निर्ग्रन्थों का विवेचन

(क) निर्ग्रन्थों की ऋद्धि

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे निग्गंथा भगवंतो ; अप्पेगइया आभिणिबोहियणाणी जाव केवलणाणी अप्पेगइया मणबलिआ वयबलिआ कायबलिआ अप्पेगइया मणेणं सावाणुग्गह-समत्था वएणं सावाणुग्गह समत्था, काएणं सावाणुग्गहसमत्था अप्पेगइया खेलोसहिपत्ता। एवं जल्लोसहिपत्ता विप्पोसहिपत्ता आमोसहिपत्ता सव्वोसहिपत्ता। अप्पेगइया कोट्ठबुद्धि एवं बीअबुद्धि पडबुद्धि। अप्पेगइया पयाणुसारि। अप्पेगइया संभिन्नसोआ। अप्पेगइया खीरासवा। अप्पेगइया महुआसवा। अप्पेगइया सप्पिआसवा। अप्पेगइया अक्खीणमहाणसिआ। एवं उज्जुमई। अप्पेगइया विउलमई। विउव्वणिड्ढिपत्ता चारणा विज्जाहरा आगासाइवाईण।

—ओव० सू २४

भगवान् के साथ जो श्रमण थे, वे कैसे थे—उनका वर्णन किया जाता है।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के अंतेवासी बहुत से निर्ग्रन्थ (भगवान् के साथ में) थे। जिनमें कई आभिनिबोधिक ज्ञानी यावत् केवल ज्ञानी थे।

कई मनोबली, वचनबली और कायबली थे। कई मन से शाप (अपकार) और अनुग्रह (उपकार) करने में समर्थ थे। कई वचन से शाप और कृपा करने में समर्थ थे। और कई काया से शाप और कृपा करने में समर्थ थे।

कई खेलौषधि (खंकार से ही सभी रोगादि मिटाने की शक्ति) को पाये हुए थे।

इसी प्रकार जल्लोषधि (= शरीर के मैल से रोग आदि अनर्थ उपशांत करने की शक्ति विप्रुडौषधि (= मूत्रादि की बूँदों रूप औषधि, अथवा वि का अर्थ विष्ठा और प्र का अर्थ प्रश्रवण (मूत्र) है, ये दोनों औषधिरूप), आमर्ष (हस्तादि स्पर्श), औषधि, सर्वौषधि (केश, नख, रोम, मल आदि सभी का औषधि रूप बन जाना) लब्धि को प्राप्त थे।

कई कोष्ठबुद्धि वाले (= कोठार में भरे हुए सुरक्षित धान्य की तरह प्राप्त हुए सूत्रार्थ को धारण करने में समर्थ मतिवाले) थे। इसी प्रकार बीज बुद्धिवाले (= बीज के समान विस्तृत और त्रिविध अर्थ के महावृक्ष को उपजाने वाली बुद्धि के धारक) और पटबुद्धिवाले (वस्त्र में संग्रहीत पुष्पफल के समान, विशिष्ट वक्ताओं द्वारा कथित प्रभूत सूत्रार्थ का संग्रह करने में समर्थ बुद्धिवाले) थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) निर्ग्रन्थों का तप

अप्पेगइया कणगावलिं तवोकम्मं पडिवण्णा। एवं एकावलिं। खुड्डाग-सीह निक्कीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा। अप्पेगइया महालयं सीह-निक्कीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा। भद्दपडिमं महाभद्दपडिमं सव्वओभद्दपडिमं आयंबिलवद्धमाणं तवोकम्मं पडिवण्णा। मासिअं भिक्खुपडिमं, एवं दोमासिअं पडिमं, तिमासिअं भिक्खुपडिमं, जाव सत्तमासिअं भिक्खपडिमं पडिवण्णा। अप्पेगइया पढमं सत्त-राइंदिअं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, जाव तच्चं सत्त-राइंदिअं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा। राइंदिअं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, एगराइयं भिक्खुपडिमं पडिपडिवण्णा। सत्त-सत्तमिअं भिक्खुपडिमं, अट्ठ-अट्ठमिअं भिक्खुपडिमं, दस-दसमिअं भिक्खुपडिमं। खुड्डियं मोअ-पडिमं पडिवण्णा। महल्लियं मोअपडिमं पडिवण्णा। जवमज्झं चंदपडिमं पडिवण्णा। वइर (वज्र) मज्झं चंदपडिमं पडिवण्णा। संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

ओव० सू २४

कई कनकावली तपः कर्म और इसी प्रकार एकावली तप करने वाले थे।

कई लघुसिंहनिष्क्रीडित तपः कर्म के करनेवाले और कई महासिंहनिष्क्रीडित तपःकर्म के करनेवाले थे।

कई भद्रप्रतिमा, सर्वतोभद्रप्रतिमा, और आयम्बिल-वर्द्धमान तपः कर्म करने वाले थे।

कई निर्ग्रन्थ मासिकी भिक्षु प्रतिमा (=एक महिने की साधु की प्रतिज्ञा विशेष), इसी प्रकार द्विमासिकी, त्रिमासिकी यावत् सप्तमासिकी भिक्षु-प्रतिमा के धारक थे।

कई निर्ग्रन्थ प्रथम सप्तरात्रिन्दिवा भिक्षुप्रतिमा के धारक थे यावत् तीसरी सप्त रात्रिन्दिवा भिक्षुप्रतिमा के धारक थे।

कई निर्ग्रन्थ एक रात और एक दिन की भिक्षु प्रतिमा के धारक थे। और कई एक रात की भिक्षु-प्रतिमा के धारक थे।

कई निर्ग्रन्थ सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा (=सात-सात दिन के सात दिन-समूहों की प्रतिज्ञा), अष्ट-अष्टमिका (=आठ-आठ दिन के आठ दिन समूहों की) भिक्षुप्रतिमा, नवन-वमिका भिक्षुप्रतिमा, दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा, क्षुल्लक मोक प्रतिमा के धारक, महामोक प्रतिमा के धारक, यवमध्यचंद्रप्रतिमा के धारक और वज्र-मध्य चंद्रप्रतिमा के धारक थे।

इस प्रकार वे निर्ग्रन्थ संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कई पदानुसारी (=सूत्र के एक ही पद ज्ञात होने पर उस सूत्र के अनुकूल सैंकड़ों पदों का स्मरण कर लेने की—जान लेने की शक्ति के स्वामी) थे। कई संभिन्न श्रोता (=बहुत से भिन्न-भिन्न जाति के शब्दों को, अलग-अलग रूप से, एक साथ श्रवण करने की शक्तिवाले या सभी इन्द्रियों के द्वारा शब्दादि पाँचों विषयों को ग्रहण करने की शक्तिवाले अर्थात् किसी भी एक इन्द्रिय से पाँचों विषयों को ग्रहण करने की शक्तिवाले) थे।

—कई क्षीराश्रव (=श्रोताओं के लिए दूध के समान मधुर, कान और मन को सुखकर वचन शक्तिवाले) थे। कई मधु आश्रव (=मधु के समान सभी दोषों को मिटाने में निमित्तरूप और प्रसन्नकारक वाचिक शक्तिवाले थे। कई सर्पिराश्रव (=घी के समान अपने विषय में श्रोताओं का स्नेह सम्पादित करने की शक्तिवाले) थे। कई अक्षीण-महानसिक (=प्राप्त अन्न को जहाँ तक स्वयं न खाले, वहाँ तक सैकड़ों-हजारों को देनेपर भी वह अन्न समाप्त न हो, ऐसी लब्धि के धारक) थे।

इसी प्रकार ऋजुमति (=मात्र सामान्य रूप से मन की ग्राहिका मतिवाले) थे। कई विपुलमति (विशेषता सहित चिन्तित द्रव्य से जानने की शक्ति वाले) थे।

कई विकुर्वण-ऋद्धि (=नाना भांति के रूप बनाने की शक्ति) से संपन्न थे। कई चारण (=गति संबंधी ऋद्धिवाले) विद्याधर (=प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं के धारक) आकाशातिपाती (गगन गामिनी शक्तिवाले) थे।

.०१.३ औघिक स्थविरों का विवेचन

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे थेरा भगवंतो—जाइसंपण्णा कुलसंपण्णा बलसंपण्णा रूवसंपण्णा विणयसंपण्णा णाणसंपण्णा दंसणसंपण्णा चरित्तसंपण्णा लज्जासंपण्णा लाघवसंपण्णा। ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी। जियकोहा जियमाणा जियमाया जियलोभा जिइंदिया जियणिद्दा जियपरीसहा जीवियासमरणभयविप्पमुक्का। वयप्पहाणा गुणप्पहाणा करणप्पहाणा चरणप्पहाणा णिग्गहप्पहाणा निच्छयप्पहाणा अज्जवप्पहाणा मद्दवप्पहाणा लाघवप्पहाणा खंतिप्पहाणा मुत्तिप्पहाणा विज्जापहाणा मंतप्पहाणा वेयप्पहाणा बंभप्पहाणा नयप्पहाणा नियमप्पहाणा सच्चप्पहाणा सोयप्पहाणा। चारुवण्णा लज्जातवस्सीजिइंदिया सोही अणियाणा अप्पोसुया अबहिल्लेसा अप्पडिलेस्सा सुसामण्णरया दंता—इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरओकाउं विहरंति। [क्वचित्—बहूणं आयरिया बहूणं उवज्झाया बहूणं गिहत्थाणं पव्वइयाणं च दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा]

—ओव० सू० २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अंतेवासी बहुत से स्थविर (ज्ञान और चारित्र में वृद्धि प्राप्त) भगवंत उनके साथ थे।

वे स्थविर भगवंत जाति (= मातृपक्ष) कुल (= पितृपक्ष) बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन (=श्रद्धा या सामान्यज्ञान) चारित्र, लज्जा (अपवाद से डरने का भाव) और लाघव (= वस्त्र आदि अल्प उपधि की और ऋद्धि, रस और साता के गौरव से रहित अवस्था) से संपन्न युक्त थे।

वे ओजस्वी, तेजस्वी, वचस्वी और यशस्वी थे।

वे क्रोध, मान, माया, (= छल कपट) और लोभ के हृदय में उत्पन्न होने पर, उन्हें विफल कर देते थे—उनके प्रवाह में नहीं बहते थे। इन्द्रियों पर अपना अधिकार रखते थे। निद्रा के वशीभूत नहीं होते थे और परीषहों को जीत लेते थे।

वे जीने की आशा और मरने के भय से बिल्कुल मुक्त थे।

वे उत्तम व्रत के धारक थे। करुणादि श्रेष्ठ गुणों के स्वामी थे। आहार शुद्धि आदि श्रेष्ठ क्रिया के पालक थे। महाव्रत आदि श्रेष्ठ आचार के धनी थे।

वे अनाचार को रोकने में कुशल, श्रेष्ठ निश्चयवाले, माया और मान के उदय का निग्रह करने में कुशल, उत्तम लाघव के धारक एवं क्रोध और लोभ के उदय का निग्रह करने में चतुर थे।

वे प्रज्ञप्ति आदि विद्या के श्रेष्ठ धारक, उत्तम मंत्रज्ञ, श्रेष्ठ ज्ञानी, ब्रह्मचर्य में या कुशलानुष्ठान में स्थित, नय में प्रधान, उत्तम अभिग्रहों के स्वामी, सत्यप्रधान और शौच (= निर्लेपता और दोष से रहित सदाचारी) के श्रेष्ठ धारक थे।

उनकी सब जगह भूरि-भूरि प्रशंसा होती थी। उनके लज्जा प्रधान और जितेन्द्रिय शिष्य थे। वे जीवों के सुहृद् (सोहीमित्र) थे—किसी के प्रति उनके हृदय में कलुषित भावना नहीं थी। तपः संयम के बदले में पुण्य-फल की इच्छा—याचना नहीं करते थे। उत्सुकतासे रहित थे। संयम से बाहर की मनोवृत्तियों से रहित थे।

अनुपम अथवा विरोध से रहित वृत्तियों के धारक थे। श्रमण की क्रियाओं में पूर्णतः लीन रहते थे।

गुरुओं के द्वारा दमन को ग्रहण करते थे—विनय के करने वाले थे और इस निर्ग्रंथ प्रवचन (=जड़-चेतन की ग्रन्थियों या उलझनों के सुलझाने के लिए वीतरागों के द्वारा कहे कहे गये अनुशासन) को भी आगे रखकर विचरण करते थे।

(ख) तेसि णं भगवंताणं 'आयावाया' वि, विदिता भवंति, परवाया वि' विदिता भवंति आयावायं जमइत्ता नलवणमिव मत्तमातंगा अच्छिद्दपसिणवागरणा रयणकरंडगसमाणा कुत्तियावणभूया परवाइपमद्दणा [परवाईहिं अणोक्कंता अण्णउत्थिएहिं अणोद्धंसिज्जमाणा विहरंति अप्पेगइया आयारधरा······]

चोद्दसपुव्वी दुवालसंगिणो समत्तगणिपिडगधरा सव्वक्खरसण्णिवाइणो सव्वभासाणुगामिणो अजिणा जिणसंकासा जिणा इव अवितहं वागरमाणा संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ॥

ओव० सू० २६

उन भगवंतों को अपने सिद्धांतों के प्रवाद भी ज्ञात थे और परवाद (= दूसरे मत-मतान्तर) भी ज्ञात थे। स्वसिद्धांत को पुनः-पुनः परावर्तन से अच्छी तरह जानकर, कमल-वन में (रमण करनेवाले) मस्त हाथी के समान, वे लगातार प्रश्न-उत्तर के करने वाले होकर विचरते थे। वे रत्न के करण्डक के समान और कुत्रिकापण। (तीनों लोक की प्राप्त होने योग्य वस्तुओं की देवाधिष्ठित दुकान) के तुल्य थे।

परवादियों का मर्दन करने वाले थे। बारह अंगों के ज्ञाता थे।

समस्त गणिपिटक के धारक थे।

वे अक्षरों के सभी संयोगों को जानते थे। सर्वभाषा को जानने वाले थे। जिन नहीं होते हुए भी जिन के समान थे।

वे सर्वज्ञ के समान वास्तविक प्रतिपादन करते हुए, संयम और तपसे आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

.०१.४ औधिक अनगारों का विवेचन

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे अणगारा भगवंतो—ईरिआसमिया भासासमिया एसणासमिआ आदाण-भंड-मत्त-निक्खेवणासमिआ उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिआ मणगुत्ता वयगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता गुत्तिंदिया गुत्तबंभयारी अममा अकिंचणा (छिण्णग्गंथा छिण्णसोआ) निरुवलेवा—कंसपाती व मुक्कतोया १ संख इव निरंगणा २ जीवो विव अप्पडिहयगई ३ जच्च कणगमिव जायरूवा ४ (आदरिस-फलगा इव पायड भावा) कुम्मो इव गुत्तिंदिया ५ पुक्खरपत्तं व निरुवलेवा ६ गगणमिव निरालंबणा ७ अणिलो इव निरालया ८ चंदो इव सोमलेस्सा ९ सूरो इव दित्ततेआ १० सागरो इव गंभीरा ११ विहग इव सव्वओ विप्पमुक्का १२ मंदरो इव अप्पकंपा १३ सारयसलिलं व सुद्ध-हिअया १४ खग्ग विसाणं व एगजाया १५ भारुंडपक्खी व अप्पमत्ता १६ कुंजरो इव सोंडीरा १७ वसभो इव जायत्थामा १८ सीहो इव दुद्धरिसा १९ वसुंधरा इव सव्व-फास-विसहा २० सुहुअ-हुआसणो इव तेअसा जलंता २१।

ओव० सू० २७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के बहुत से अंतेवासी अनगार भगवंत उनके साथ में थे, वे कैसे थे—

वे हलन-चलनादि क्रिया, भाषा का प्रयोग, आहारादि की याचना, पात्र आदि के उठाने-रखने और मल-मूत्र, खंकार, नाक आदि के मैल को त्यागने में यतनावान् थे। मन, वचन और काया की क्रिया का निरोध करने वाले थे।

वे अनगार भगवंत गुप्त (=अन्तर्मुख-सर्वथा निवृत्त) गुप्तेन्द्रिय (=इन्द्रियों को उनके विषयों के व्यापार में लगाने की उत्सुकता से रहित) और गुप्त ब्रह्मचारी (=नियमोपनियम सहित ब्रह्मचर्य के धारक अर्थात् सुरक्षित ब्रह्मचर्य वाले) थे।

अकिञ्चन (=द्रव्य से रहित) थे। वे ममत्व रहित थे। वे छिन्नग्रन्थ थे अर्थात् संसार से जोड़ने वाले पदार्थों से मुक्त थे। अतः छिन्नस्रोत थे अर्थात् शोक आर्त्तता से रहित थे। संसार-प्रवाह में नहीं बहते थे। तथा निरुपलेप अर्थात् कर्मबंध के हेतुओं से रहित थे।

काँस्य पात्री के समान स्नेह से मुक्त थे। शंख के समान नीरंगण (=रागादि रञ्जनात्मक भाव से रहित) थे। जीव के समान अप्रतिहत (=रुकावट से रहित) गति वाले थे। अन्य कुधाताओं के मिश्रण से रहित सोने के समान जातरूप (=प्राप्त हुए निर्मल चारित्र में वैसे ही भाव से स्थित अर्थात् दोष से रहित चारित्र वाले) थे। दर्पणपट्ट के समान प्रकट भाव वाले थे। कच्छप के समान गुप्तेन्द्रिय थे। कमलपत्र के समान निर्लेप थे। आकाश के समान निरवलम्ब थे। वायु के समान निरालय=घर से रहित) थे। चन्द्र के समान सौम्यलेश्यावाले (=किसी को कष्ट पहुँचाने के कारण रूप मन के परिणाम से रहित) थे। सूर्य के समान दीप्त तेजवाले (=शारीरिक और आत्मिक तेज से तेजस्वी) थे। समुद्र के समान गंभीर थे। पक्षी के समान पूर्णतः विप्रमुक्त थे। मेरु पर्वत के सकान अप्रकंप (अनुकूल या प्रतिकूल उपसर्गों—कष्टों में अडोल) थे।

शरद् ऋतु के जल के समान शुद्ध हृदय वाले थे। गैंड़े के सिंग के समान एक जात (रागादि के सहायक भावों के अभाव के कारण एकभूत) थे। भारण्डपक्षी के समान अप्रमत्त थे। हाथी के समान शूर (कषायादि भाव शत्रुओं को जीतने में बलशाली) थे। वृषभ के समान जातस्थाम=(धैर्यवान् थे।) सिंह के समान दुर्धर्ष (=परिषहादि मृगों से नहीं हराने वाले) थे। पृथ्वी के समान सभी (शीत, उष्णादि) स्पर्शों के सहने वाले थे।

घृत आदि से अच्छी तरह हनन की हुई हुताशन =(अग्नि) के समान (ज्ञान और तप रूप) तेज से जाज्वल्यमान थे।

(ख) अनगारों का अप्रतिबंध विहार

नत्थि णं तेसिणं भगवंताणं कत्थइ पडिबंधे भवइ। से अ पडिबंधे चउव्विहे पण्णत्ते।

तंजहा—दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ।

ओव० सू० २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन भगवंतों के कहीं पर किसी प्रकार का प्रतिबंध (अटकाव, रोक या आसक्ति का कारण) नहीं था। वह प्रतिबंध (आसक्ति) चार प्रकार का कहा गया है—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भावसे।

(ग) दव्वओ णं सचित्ताचित्त-मीसिएसु दव्वेसु, खेत्तओ गामे वा णयरे वा रण्णे वा खेत्ते वा खले वा घरे वा अंगणे वा, कालओ समए वा आवलियाए वा जाव अयणे वा अण्णतरे वा दीह-काल-संजोगे, भावओ कोहे वा माणे वा मायाए वा लोहे वा भए वा हासे वा एवं तेसिं ण भवइ।

ओव० सू० २८

द्रव्य से सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यों में, क्षेत्र से ग्राम, नगर, जंगल, खेत, खला, घर और आंगन में, काल से समय, आवलिका यावत् अयन और अन्य भी दीर्घकालीन संयोग में और भाव से क्रोध, मान, माया, लोभ, भय या हास्य में—उनका ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं था।

(घ) ते णं भगवंतो वासावासवज्जं अट्ठ गिम्हहेमंतियाणि मासाणि गामे एगराइया णयरे पंचराइया

—ओव० सू० २९

वे अनगार भगवंत, वर्षावास को छोड़कर, ग्रीष्म और शीतकाल के आठ महिनों तक, गाँव में एक रात और नगर में पाँच रात रहते थे।

(ङ) वासीचंदणसमाणकप्पा समलेट्ठुकंचणा समसुहदुक्खा इहलोगपरलोग-अप्पडिबद्धा संसारपारगामी कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिया विहरंति। [(अण्डए (अंडजे) इ वा पोयए (बोंडजे) इ वा उग्गहिए इ वा पग्गहिए वा) जं णं जं णं दिसं।

इच्छंति तं णं तं णं विहरंति सुइभूया लहुभूया अणप्पग्गंथा॥]

—ओव० सू० २४

वे वासी चंदन के समान कल्पवाले थे।

मिट्टी के ढेले और सोने को एक समान (उपेक्षणीय) समझनेवाले तथा सुख और दुःख को समभाव से सहने वाले थे।

—वे इहलोक और परलोक संबंधी आसक्ति से रहित और संसार, पारगामी (चतुर्गति रूप संसार के पार पहुँचने वाले) कर्मनाश के लिए तत्पर होकर विचरण करते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(च) अनगारों के गुण—

अनगारों की तपश्चर्या—

तेसि णं भगवंताणं एएणं विहारेणं विहरमाणाणं इमे एआरूवे अब्भितर-बाहिरए तवोवहाणे होत्था।—

—ओव० सू० ३०

इस प्रकार से विहार से विचरण करनेवाले उन अनगार भगवंतों का यों इस रूप से बाह्य और आभ्यंतर तपश्चरण था।

(छ) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवेअणगारा भगवंतो—अप्पेगइया आयारधरा जाव विवागसुयधरा।

—ओव० सू० ४५

उस काल उस समय में (जब चंपा में पधारे थे तब) श्रमण भगवान् महावीर के (साथ) बहुत से अनगार भगवंत थे। उनमें से कई आचारश्रुत के धारक यावत् विपाक श्रुत के धारक थे।

(ज) अप्पेगइया वायंति अप्पेगइया पडिपुच्छंति अप्पेगइया परियट्टंति अप्पेगइया अणुप्पेहंति अप्पेगइया अक्खेवणीओ विक्खेवणीओ संवेयणीओ णिव्वेयणीओ बहुविहाओ कहाओ कहंति अप्पेगइया उड्ढंजाणू अहोसिरा झाणकोट्ठोवगया—संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

—ओव० सू० ४५

ऐसे उन अनगारों में से, वहाँ कई वाचना करते थे। कई प्रतिपृच्छा [=प्रश्नोत्तर=शंका समाधान] करते थे। कई पुनरावृत्ति करते थे और कई अनुप्रेक्षा करते थे।

कई आक्षेपणी (मोह से हटाकर, तत्व की ओर आकर्षित करने वाली), विक्षेपणी (=कुमार्ग से विमुख बनानेवाली) संवेगनी (=मोक्षसुख की अभिलाषा उत्पन्न करने वाली) और निर्वेदनी (संसार से उदासीन बनाने वाली) ये चार प्रकार की धर्म कथाएँ कहते थे।

कई ऊँचे घुटने और नीचा शिर रखकर, ध्यान रूप कोष्ठ (=कोठे) में प्रविष्ट होकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

(झ) जिणवर-वयणोवदिट्ठ-मग्गेणं-अकुडिलेण सिद्धि - महापट्टणाभिमुहा समणवरसत्थवाहा।

—ओव० सू० ४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनवर (राग-द्वेष रहित व्यक्तियों में श्रेष्ठ) के वचनों से उपदिष्ट मार्ग के द्वारा, वे श्रेष्ठ श्रमण सार्थवाह सिद्धिरूप महापट्टण (=बड़े बंदरगाह) की ओर मुख रखकर सीधी गति से संयमपोत के द्वारा जा रहे थे।

(ञ) सुसुइ सुसंभास-सुपण्ह-सासा।

—ओव० सू० ४६

वे सम्यक् श्रुत, सुसंभाषण, सुप्रश्न और शोभन आशावाले थे अथवा सम्यग्श्रुत, सुसंभाषण और सुप्रश्न के द्वारा शिक्षा के दाता थे।

(ट) गामे गामे एगरायं, नगरे नगरे पंचरायं दूइज्जंता जिइंदिया णिब्भया गयभया, सचित्ताचित्त—मीसिएसु दव्वेसु विरागयं गया संजया विरया—मुत्ता लहुया णिरवकंखा साहू णिहुया चरंति धम्मं।

—ओव० सू० ४६

वे अनगार, गाँवों में एक रात्रि और नगरों में पाँच रात्रि तक निवास करते हुए, जितेन्द्रिय, निर्भय, गत भय होकर, सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यों में वैराग्यवान्, संयत, विरत, मुक्त, लघुक, निरवकांक्ष, साधु और निभृत (=प्रशांत वृत्ति वाले होकर, धर्मका आचरण करते थे।

अनगारों के विशेष गुण—

(ठ) संसार-भउव्विग्गाभीया।

—ओव० सू० ४६

वे अनगार संसार के भय से उद्विग्न और डरे हुए थे।

चउरंत-महंत-मणवदग्गं—रुद्दं संसारसागरं। भीमदरिसणिज्जं तरंति धीइ-धणियं-निप्पकंपेण तुरियं चवलं-संवर-वेरग्ग-तुंग-कुवयसुसंपउत्तेणं णाण-सित-विमल-मूसिएणं समत्त-विसुद्ध-लद्ध-णिज्जामएणं धीरा संजमपोएणं सीलकलिया।

—ओव० ४६

वे धीर और शीलवान् अनगार, भयंकर दिखाई देने वाले संसारसागर को संयम रूपी जहाज से शीघ्रगति से पार कर रहे थे।

वह संयमयान धैर्यरूपी रस्सी के बंधन से बिलकुल निष्कंप बना हुआ था।

संवर (हिंसादि से विरति) और वैराग्य रूप (कषायनिग्रह) ऊँचा कूपक (मस्तूल, स्तंभ विशेष) उस संयमपोत में सुन्दर ढंग से जुड़ा हुआ था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस यान में ज्ञानरूप सफेद विमल वस्त्र ऊँचा किया हुआ पाल था।

विशुद्ध सम्यक्त्व रूप निर्यामक प्राप्त हुआ था।

(ड) संसार-सागर से तैरना—

जम्मणं-जर - मरण-करण - गंभीर - दुक्खपक्खुभियपउर - सलिलं - संजोग विओग-वीचिचिंता-पसंग-पसरिय-वह-बंध-महल्ल-विउल-कल्लोलकलुण-विलविय-लोभ-कलकलेंत-बोल-बहुलं अवमाणण-फेण-तिव्व-खिंसण-पुलंपुलप्प-भूय-रोग-वेयण-परिभव-विणिवाय-फरुसधरिसणा-समावडिय - कढिण-कम्म-पत्थर-तरंग-रंगंत-निच्चमच्चुभय-तोयपट्ठं कसाय-पायाल-संकुलं भवसयसहस्स-कलुसजल-संचयं पइभयं-अपरिमियमहिच्छं-कलुसमइवाउवेग-उद्धम्म-माणदगरयरयंधकार-वरफेण-पउर-आसापिवास-धवलं मोहमहावत्त-भोगभममाण-गुप्पमाणुच्छलंत-पच्चोणियवंत-पाणिय - पमायचंडबहुदुट्ठसावयसमाहयुद्धायमाण - पब्भार-घोरकंदियमहारव-रवं भेरवर अण्णाणभमंतमच्छ - परिहत्थ - अणिहुतिंदिय-महामगर-तुरिय - चरिय - खोखुब्भमाण-नच्चंत - चवल - चंचल-चलंत-घुम्मंत-जलसमूहं अरइ-भय - विसायसोग - मिच्छत्त सेलसंकडं आणाइसंताणकम्म-बंधणकिलेसचिक्खल्ल सुदुत्तारं अमर णर-तिरय णिरय गइ गमण - कुडिल परियत्त-विउल-वेलं।

ओव० सू० ४६

संसार-सागर जन्म, जरा और मरण के द्वारा उत्पन्न हुए गंभीर दुःख रूप क्षुभित अपार जल से भरा हुआ है।

उस दुःख रूप जल में संयोग-वियोग रूप लहरें पैदा होती हैं। वे तरंगे चिन्ता-प्रसंगों से फैलती हैं। वध और बंधन रूप बड़ी मोटी कल्लोलें हैं, जो कि करुण विलाप और लोभ रूप कलकलायमान ध्वनि की अधिकता से युक्त है।

भवसागर में भरे हुए दुःखरूप जल का ऊपरी भाग नित्य मृत्युभय है। वह तिरस्कार रूप फेन से फेनित रहता है। क्योंकि तीव्र निन्दा, निरन्तर होनेवाली रोग वेदना, पराभिभावके संपर्क, कठोर वचन और भर्त्सना से बद्ध मजबूत बने हुए कर्मोदय रूप कठिन पत्थरों पर (संयोग-वियोग आदि रूप) तरंगे टकराती रहती हैं। भवसागर चार कषाय रूप पाताल कलशों से (अथवा तले की भूमि से) व्याप्त है।

संसार सागर में सैंकड़ों—हजारों लाखों भवों के कलुष (=पाप) जलसंचय (=जल-राशि की वृद्धि के कारणों से युक्त) है। वह प्रत्यक्ष भयंकर है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसार सागर अपार महेच्छा से मलिन बनी हुई मति रूप वायु के वेग से ऊपर उठते हुए जल कण्टों के समूह के वेग (—रय = आवेश) से अंधकार युक्त और (वायु-वेग से उत्पन्न होते हुए) सुन्दर (अवमाननादि रूप) फेन छाई हुई (या फेन के सदृश्य) आशा (= अप्राप्त पदार्थों के प्राप्ति की संभावना) और पिपासा = (अप्राप्त पदार्थों के प्राप्ति की आकांक्षा) से धवल है । इसलिए—

(संसार-सागर) में मोहरूप बड़े-बड़े आवर्त हैं । आवर्त में भोग रूप भँवर (=पानी के गोल-घुमाव) उठते हैं । अतः दुःखरूप पानी चक्कर लेता हुआ, व्याकुल होता हुआ, ऊपर उछलता हुआ और नीचे गिरता हुआ दिखाई देता है । वहाँ प्रमाद रूप भयंकर एवं अति दुष्ट जलजन्तु हैं । जल के उठाव, गिराव और जल-जन्तुओं से घायल होकर, इधर-उधर उछलते हुए (क्षुद्र जीवों के) समूह हैं, जो क्रन्दन करते रहते हैं । इस प्रकार संसार-सागर गिरते हुए दुःख रूप जल, प्रमाद रूप जलजंतु और आहत संसारी जीवों के प्रतिध्वनि सहित होते हुए महान कोलाहल रूप भयानक घोष से युक्त हैं ।

संसार-सागर में भ्रमते हुए अज्ञान रूपी चतुर मत्स्य हैं और अनुपशान्त इन्द्रियां रूप महामगर हैं । ये (मत्स्य-मगर) जल्दी-जल्दी हलन-चलन करते हैं । जिससे (दुःखरूप) जल समूह क्षुभित होता है—नृत्य सा करता हुआ चपल है—एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलता हुआ एवं घूमता हुआ चञ्चल है ।

अरति (=अरुचि-संयम स्थानों में निरानन्द का भाव), भय-विषाद-शोक और मिथ्यात्व (= मिथ्याभाव = कुश्रद्धा) रूप पर्वतों से भवसागर व्याप्त हैं ।

वह भवसागर अनादिकालीन प्रवाह वाले कर्म-बंधन और क्लेश रूप कीचड़ से अति ही दुस्तर बना हुआ है ।

वह देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरकगति में गमन रूप कुटिल परिवर्तन (भँवर) युक्त विपुल ज्वारवाला है ।

संसार-सागर से तैरना—

(ढ) पसत्थज्झाण - तववाय - पणोल्लिय-पहाविएणं उज्जम-ववसाय-गहिय-णिज्जरण जयण उवओग णाणदंसणविसुद्धवयभंड भरियसारा ।

—ओव० सू० ४६

वह संयमपोत प्रशस्त ध्यान और तपरूप वायु की प्रेरणा से शीघ्रगति से चलता था ।

उसमें उद्यम (अनालस्य) और व्यवसाय (वस्तु निर्णय या सद्व्यापार) से गृहीत (=क्रीत=खरीदे हुए) निर्जरा, यतना, उपयोग, ज्ञान, दर्शन और विशुद्ध व्रत रूप सार पदार्थ भाण्ड (कयाणक), अनगारों द्वारा भरे गये थे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.०१.५ भगवान महावीर के तेपन्न अणगार की एक वर्ष की श्रमण-पर्याय

समणस्स भगवओ महावीरस्स तेवन्नं अणगारा संवच्छरपरियाया पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेसु देवत्ताए उववन्ना ।

—सम० सम ५३/सू ३

श्रमण भगवान् महावीर के त्रेपन अनगार एक वर्ष की श्रमण-पर्याय का पालन कर पाँच अनुत्तर विमानों में देव रूप में उत्पन्न हुए ।

.०१.६ भगवान महावीर के समकालीन प्रत्येक बुद्ध

(क) **करकंडू कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्मुहो ।**
णमी राया विदेहेसु, गंधारेसु य णग्गई ।।२

उत्त० अ ९/टीका में उद्धृत (ल० वल्लभ)

भगवान् महावीर के शासन में चार समकालीन प्रत्येक बुद्ध हुए ।

१. कलिंग देश में करकंडू राजा
२. पंचाल देश में दुर्मुखराजा
३. विदेह देश में नमीराजा
४. गांधार देश में नग्गति राजा

निमित्त बोध से चार प्रत्येक बुद्ध

(ख) **करकंडू कलिंगेसु पंचालेसु य दुम्मुहो ।**
नमी राया विदेहेसु गंधारेसु य नग्गई ।।
वसभे य इंदकेऊ वलए अंबे य पुप्फिए बोही ।
करकंडु दुमुहस्सामी नमिस्स गंधाररन्नो य ।।

—धर्मो० पृ० ११६
—उत्त० अ १८/गा ४६

ये चारों प्रत्येक बुद्ध क्रमशः वृषभ, इन्द्रध्वज, कंकण, पुष्प को देखकर प्रतिबोधित हुए ।

.०१.७ अष्ट राजा दीक्षित

समणेणं भगवता महावीरेण अट्ठ रायाणो मुंडे भवेत्ता अगाराओ अणगारितं पव्वाइया, तंजहा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरंगय वीरजसे, संजय एणिज्जए य रायरिसी।
सेये सिवे उद्दायणे, तह संखे कासिवद्धणे॥

—ठाण०स्था ८/सू ४१

भगवान महावीर के पास निम्नलिखित आठ राजाओं ने दीक्षा ग्रहण की।

१—वीराङ्गक, २—वीरयश, ३—संजय, ४—एणेयक, ५—श्वेत, ६—शिव, ७—उदायन और ८—शंख।

.१.८ साधुओं की एक कड़ी

(क) पुव्वधरसिक्खकोहीकेवलिवेकुव्विविउलमदिवादी।
पत्तेक्कं सत्तगणा सव्वाणं तित्थकत्ताणं॥

—तिलोप० अधि ४/गा १०६८

सब तीर्थंकरों में से प्रत्येक तीर्थंकर के पूर्वधर, शिक्षक, अवधिज्ञानी, केवली, विक्रिया-ऋद्धि के धारक, विपुलमति और वादी—इस प्रकार ये सात संघ होते हैं। अतः भगवान् महावीर के सात संघ थे।

(ख) तिसयाइं पुव्वधरा णवणउदिसयाइं होंति सिक्खगणा।
तेरससयाणि ओही सत्तसयाइं पि केवलिणो॥
इगिसयरहिदसहस्सं वेकुव्वी पणसयाणि विउलमदी।
चत्तारिसया वादी गणसंखा वड्ढमाणजिणे॥
वे ६००, वि ५००, वा ४००।

—तिलोप० अधि ४/गा ११६०-६१

वर्धमान जिन के सात गणों में से पूर्वधर ३००, (२) शिक्षक गण ६६०० (३) अवधि-ज्ञानी १३००, (४) केवली ७००, (५) विक्रियाऋद्धिधारी ६००, (६) विपुलमति ५००, (७) वादी ४०० थे।

.१.९ गण और गणधर

(क) वर्द्धमान स्वामिनो नव × ×× गणानां मानं-परिमाणं।

—आव० निगा २६०/टीका

एक्कारस उ गणहरा वीरजिणिंदस्स सेसयाणं तु।

—आव० निगा २६१

टीका—गणधरा नाम मूलसूत्रकर्त्तारः, ते च वीरजिनस्य एकादश, गणास्तु नव ××× प्रतिगणधरं भिन्न-भिन्न वाचनाचारक्रियास्थत्वात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर और नव गण थे। प्रत्येक गणधर की भिन्न-भिन्न वाचना, आचार और क्रिया थी।

भगवान् के परिनिर्वाण् के समय—नौ गणधर नहीं थे।

(ख) यातेषु गौतमसुधर्ममुनीन्द्रवर्जं।
मोक्षश्रियं गणधरेषु नवस्वथोच्चैः॥
स्वामी सुरासुरनभश्वरसेव्यमान।
पादो जगाम भगवान्नगरीमपापाम्॥

—त्रिशलाका अ० पर्व १० (सर्ग १२) श्लो ४४०

जब भगवान् अंतिम समय में अपापा नगरी पधारे, उस समय गौतम और सुधर्म गणधर थे—लेकिन अन्य नव गणधरों ने मोक्ष प्राप्त कर लिया था।

.१.१० भगवान की शासन संपदा

सौधर्म से ग्रैवेयक तक—देवों में उत्पन्न साधुओं की संख्या।

सोहम्मादियउवरिमगेवज्जा जाव उवगदा सग्गं।
उसहादीणं सिस्सा ताण पमाणं परूवेमो॥ १२३३

इगिसय तिण्णिसहस्सा णवसयअब्भहियदोससहस्साणि।
णवसयणवयसहस्सा णवसयसंजुत्तसगसहस्साणि॥ १२३४॥
बारसया सहस्सं अट्ठसयाणि जहा कमसो॥ १२३७॥

—तिलोप० अधि ४/गा १२३३, ३४, ३७

ऋषभादिक तीर्थंकरों के जो शिष्य सौधर्म से लेकर ऊर्ध्वं ग्रैवयक तक स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं, उनके प्रमाण का प्ररूपण किया जाता है।

भगवान महावीर के ८०० शिष्य सौधर्मादिक देवलोकों में उत्पन्न हुए।

.१.११ विशिष्ट-साधु संख्या

घत्ता—मोहें लोहें चत्तउ तिहिं सएहिं संजुत्तउ।
एक्कु सहसु संभुउ खम-दम-भूसिय-रूवउ॥

—वीरजि० संधि २।कड ७

भगवान् के संघ में एक हजार तीन सौ ऐसे मुनि भी थे जो मोह और लोभ के त्यागी तथा क्षमा और दम आदि गुणों से भूषित थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.१.१२ शिक्षक साधु की संख्या

(क) सहस्राणि नवैवाथ तथा नवशतान्यपि।
इति संख्यान्विताः संति शिक्षकाश्चरणोद्यता।
—वीरवर्धच० अधि १६/श्लो २०८, ६

शिक्षक—

(ख) शून्यद्वितयरन्ध्रादिरन्ध्रोक्ताः सत्यसंयमाः (शिक्षकाः परे) ॥ ३७५ ॥
—उत्तपु० पर्व ७४/श्लो ३७५

नौ हजार नौ सौ यथार्थ संयम को धारण करने वाले शिक्षक थे।

शासन संपदा

.२ भगवान की शिष्यपरंपरा

.१ तीन केवल ज्ञानी

णिव्वुइ वीरि गलिय-मय-रायउ।
इंदभूइ गणि केवलि जायउ॥
सो विउलइरिहि गउ णिव्वाणहु।
कम्म - विमुक्कउ सासय - ठाणहु॥
तहिं वासरि उप्पण्णउ केवलु।
मुणिहि सुधम्महु पक्खालिय-मलु॥
तण्णिव्वाणइ जंबू-णामहु।
पंचमु दिव्व - णाणु हय-कामहु॥

.२ चतुर्दश पूर्वधारी :—

.३ ग्यारह अंग-दस पूर्वों के ज्ञाता :—

णं दि सु-णंदिमित्तु अवरु वि मुणि।
गोवद्धणु चउत्थु जलहर - झुणि॥
ए पच्छइ समत्थ सुय - पारय।
णिरसिय - मिच्छायम णिरु णीरय॥
पुणु वि सह - जइ पोट्ठिलु खत्तिउ।
जउ णाउ वि सिद्धत्थु हयत्तिउ॥
दिहिसेणंकु विजउ बुद्धिल्लउ।
गंगु धम्म सेणु वि णीसल्लउ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.४ ग्यारह अंग धारी :—

पुणु णक्खत्तउ पुणु जसपालउ।
पंडु णाम धुवसेणु गुणालउ॥

.५ गणधर के समान ज्ञानी :—

घत्ता— अणुकंसउ अप्पउ जिणिवि थिउ पुणु सुहद्दु जणसुहयरु।
जसभद्दु अखुद्दु अमंद-मइणाणें णावइ गणहरु॥

.६ आचारांग के धारी थे :—

भद्दबाहु लोहंकु भडारउ।
आयारंग - धारि जग-सारउ॥
एयहिं सव्वु सत्थु मणि माणिउ।
सेसहिं एक्कु देसु परियाणिउ॥

—वीरजि० संधि १/कड २, ३

वीर भगवान् के निर्वाण प्राप्त करने पर मद और राग को विनष्ट कर इन्द्रभूति गणधर ने केवल ज्ञान प्राप्त किया। वे अपने कर्मों से मुक्त होकर, विपुल गिरि पर्वत पर निर्वाण रूपी शाश्वत स्थान को प्राप्त हो गये।

उसी दिन सुधर्म मुनि को पापमल का प्रक्षालन करने वाला केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ।

सुधर्म मुनि का निर्वाण होने पर काम को जीतने वाले जम्बू नामक अणगार को वहीं पंचम दिव्यज्ञान अर्थात् केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ।

उक्त तीन प्रधान केवल ज्ञानी अणगारों के पश्चात् क्रमशः नन्दि, नन्दिमित्र, अपर (अपराजित), और चौथे गोवर्धन तथा पाँचवें भद्रबाहु—ये मेघ के समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले समस्त श्रुतज्ञान के पारगामी अर्थात् श्रुत केवली हुए जिन्होंने मिथ्यात्व रूपी मल को दूर कर शुद्ध वीतराग-भाव प्राप्त किया।

उनके पश्चात् (ग्यारह अंगों तथा दश पूर्वों के ज्ञाता) क्रमशः निम्नलिखित एकादश मुनि हुए)—

विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिसेन, विजय, बुद्धिल्ल, गंग और निःशल्य धर्मसेन।

इसके पश्चात् नक्षत्र, यशपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस—ये पाँच ग्यारह अंगधारि हुए।

कंस के पश्चात् सुभद्र और यशोभद्र मुनि हुए जो आत्मजयी, जनसुखकामी, महान् तीव्रबुद्धि तथा गणधर के समान ज्ञानी थे।

यशोभद्र के पश्चात् भद्रबाहु तथा लोहाचार्य भट्टारक हुए। ये (चारों आचार्य)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगत् के सारभूत आचारांग के धारी थे। इन्होंने आचारांग शास्त्र का पूर्णज्ञान अपने मन में धारण किया था। तथा शेष आगमों का उन्हें केवल एकदेश अर्थात् संक्षिप्त ज्ञान था।

.७ भगवान महावीर की शिष्य परम्परा—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकरभूमी।

—ठाण० स्था ३/उ ४/सू ५३१

श्रमण भगवान् महावीर के यावत तीसरे पुरुष (जंबुस्वामीपर्यंत) युगांतकृतभूमि-मोक्षमार्ग चला।

अंतिमदेशना के पश्चात्—

८. भगवान् की शिष्य परंपरा

इत्युक्तवन्तं श्रीवीरं सुधर्मा गणभृद्वरः।
पप्रच्छ केवलादित्यः किं कुत्रोच्छेदमेष्यति॥ २०८
स्वाम्यथाऽऽख्यन्मम मोक्षाद्गते काले कियत्यपि।
जंबूनाम्नस्तव शिष्यात् परं भावि न केवलम्॥ २०९
उच्छिन्ने केवले भावी न मनःपर्ययोऽपि हि।
पुलाकलब्धिश्च नचावधिश्च परमो न हि॥ २१०
क्षपकोपशम श्रेण्यौ न च नाऽऽहारकं वपुः।
जिनकल्पो न हि न हि संयमत्रितयं यथा॥ २११॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १३

भगवान् ने कहा—मेरे परिनिर्वाण होने के पश्चात् कितनेक काल में जंबू नामक सुधर्मा स्वामी का शिष्य अंतिम केवली होगा। इसके पश्चात् केवल ज्ञान उच्छेद को प्राप्त होगा। केवल ज्ञान का उच्छेद होने से निम्नलिखित का भी उच्छेद हो जायेगा—

(१) मनःपर्यव ज्ञान, (२) पुलाक लब्धि, (३) परमावधि ज्ञान, (४) क्षपक श्रेणी, (५) उपशम श्रेणी, (६) आहारक शरीर (७) जिनकल्प।

८, ९, १० परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसंपराय-यथाख्यातसंयम

.९ साधु-संख्या

(क) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चउद्दस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था।

—सम० सम १४/सू ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स इंदभू इपामोक्खाओ चोद्दस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था।

—कप्प० सू० १३३ (पृष्ठ ४)

(ग) श्रीवीरस्वामिनो धर्मदेशनाममृतोपमाम्।
आचभ्याचभ्य स सुधीरात्मानं पर्यपावयत्॥ ४३४॥
एवमाकेवलज्ञानोत्पत्तेर्विहरतो महीम्।
बभूवेति परीवारः स्वामिनश्चरमार्हतः॥ ४३५॥
समजायन्त साधूनां सहस्राणि चतुर्दश।

श्रमण भगवान् महावीर के १४००० हजार साधु थे।

—त्रिशलाका० पर्व १० (सर्ग १२)

(घ) चुलसीइं च सहस्सा एगं च दुवे य तिण्णि लक्खाइं।
चोद्दस्स य सहस्साइं जिणाणं जइसीससंगहपमाणं॥
अज्जासंगहमाणं उसभाईणं अतो वोच्छं॥ २८१॥

—आव० निगा २७८/पूर्वार्ध २८१

मलयटीका—भगवत ऋषभस्वामिनश्चतुरशीतिसहस्राणि श्रमणानाम्×××। भगवतो महावीरस्य चतुर्दशसहस्राणि, एतद्यतिशिष्य संग्रहप्रमाणं जिनानाम्—ऋषभादीनां यथाक्रममवसातव्यं।

श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य इन्द्रभूतिप्रमुखाणि चतुर्दश श्रमणसहस्राणि १४०००

—आव० निगा २८६/मलय टीका

भगवान की शासन संपदा—

ऋषियों की—साधुओं की

(च) एत्तो उवरिरिसिसंखं भणिस्सामि।
चउसीदिसहस्साणि रिसिप्पमाणं हुवेदि उसहजिणे॥ १०९२॥
सुव्वदणमिणेमीसुं कमसो पासम्मि वड्ढमाणम्मि।
तीसं वीसट्ठारस सोलसचोद्दस सहस्साणि॥

—तिलोप० अधि ४/गा १०९२, ९७

भगवान ऋषभदेव तीर्थंकर के समय में ऋषियों का प्रमाण ८४००० हजार था। वर्धमान स्वामी के समय १४००० हजार ऋषि-साधु थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(छ) सर्वे पिण्डीकृताः सहस्राणि चतुर्दश।
संयताः श्रीवर्धमानस्य रत्नत्रितयभूषिताः ॥ २१२

—वीरवर्धमानच० अधि १६

(ज) चतुर्दसशहस्राणि पिंडिताः स्युर्मुनीश्वराः।

—उत्तपु० पर्व ७४ (श्लो ३७८)

सब मिलकर चौदह हजार साधु श्री वर्धमान स्वामी के शिष्य परिवार में थे। और ये सब रत्नत्रय से विभूषित थे।

१०. साध्वी-संख्या

(क) समणस्स भगवओ महावीरस्स छत्तीसं अज्जाणं साहस्सीओ होत्था।

—सम० सम ३६ सू ३

श्रमण भगवान् महावीर के ३६००० हजार साध्वियाँ थी। वे सब उत्तम तप और मूल गुणों से युक्त थीं और भगवान् के चरणकमलों को नमस्कार करती थीं।

(ख) छत्तीस सहासइँ संजईहिं

—वीरजि० संधि२/कड८

(ग) आर्यिकाश्चन्दनाद्याः षट्त्रिंशत्सहस्रसंमिताः।
नमन्ति तत्पदाब्जौ सत्तपोमूलगुणान्विताः ॥ २१३

—वीरवर्धमानच० अधि १६

(घ) चंदनाद्यार्यिकाः शून्यत्रयषड्वह्निसंमिता

—उत्तपु० पर्व ७४ (श्लो ३७६) पूर्वार्ध

(ङ) समणस्स भगवओ महावीरस्स अज्जचंदणापामोक्खाओ छत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिसंपया होत्था।

—कप्प० सू १३४/पृ० ४३

(छ) षट्त्रिंशतु सहस्राणि साध्वीनां शान्तचेतसाम् ॥ ४३६ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२

(ज) छत्तीसं च सहस्सा अज्जाणं संगहो एसो।

—आव० निगा २८५

५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(झ) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य × × × आर्यचंदनाप्रमुखाणि षट्त्रिंशदार्यिका सहस्राणि ३६०००

—आव० निगा २८६/मलय टीका

भगवान् वर्द्धमान स्वामी के आर्यचंदना प्रमुख आदि ३६००० साध्वियाँ थी।

(ञ) भगवान की शासन संपदा—

आर्यिकायें—

> **विगुणियवीससहस्सा णेमिस्स कमेण पासवीराणं।**
> **अड़तीसं छत्तीसं होंति सहस्साणि विरदीओ॥**

४००००/३८०००/३६०००

—तिलोप० अधि ४/गा ११७६

नेमीनाथ के तीर्थ में द्विगुणित बीस हजार अर्थात् चालीस हजार और क्रम से पार्श्वनाथ एवं वीर भगवान के तीर्थ में ३८००० हजार और ३६००० आर्यिकायें थीं।

.११ परिनिर्वाण प्राप्त साधु-साध्वियां

(क) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त अंतेवासिसयाइं सिद्धाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं, चउद्दस अज्जियासयाइं सिद्धाइं।

—कप्प० सू १४३/पृ० ४४

श्रमण भगवान् महावीर के ७०० साधु और १४०० साध्वियों ने सिद्ध यावत् सर्व दुःख का अंत किया।

कितने शिष्य सिद्ध होंगे—

(ख) कति णं भंते! देवाणुप्पियाणं अंतेवासीसयाइं सिज्झिहिंति जाव अंत करेहिंति?

तएणं समणे भगवं महावीरे तेहिं देवहिं मणसा पुट्ठे तेसिं देवाणं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरेइ—एवं खलु देवाणुप्पियाणं! मम सत्त अंतेवासीसयाइं सिज्झिहिंति जाव अंत करेहिंति।

—भग० श ५/उ ४/पृ० ८४/पृ० २०२

देवों के प्रश्न करने पर भगवान् ने कहा कि—मेरे ७०० शिष्यों सिद्ध होंगे यावत् अंतक्रिया करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतक्रिया—

(ग) भगवान् के सिद्धत्व के साथ अंतक्रिया—

रिसि - सहसेण समउ रय - छिंदणु।
सिद्धउ जिणु सिद्धत्थहु णंदणु॥

—वीरजि० संधि ३/कड २

भगवान् के साथ अन्य एक सहस्र मुनि भी सिद्धत्व को प्राप्त हुए।

१२. जिन-केवली—

(क) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त साया केवलनाणीणं संभिन्न-वरनाणदंसणधराणं उक्कोसिया केवलनाणिसंपया होत्था।

—कप्प० सू १३६ (पृ० ४४)

(ख) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त जिणसया होत्था।

—सम० सम ७००

श्रमण भगवान् महावीर के सात सौ जिन (केवली) थे।

(ग) कइणं भंते! देवाणुप्पियाणं अंतेवासीसयाइं सिज्झिहिंति जाव-अंतं करेहिंति?

एवं खलु देवाणुप्पिया! मम सत्त अंतेवासिसयाइं सिज्झिहिंति जावअंतं करेहिंति।

—भग० श ५/उ४

श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम से कहा कि—मेरे सात सौ शिष्य सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अंत करेंगे।

(घ) (श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य) सप्तशतानि ७०० केवलज्ञानिनां।

—आव० निगा २८६। मलय टीका—

(च) पंचमावगमाः सप्तशतानि परमेष्ठिनः।

—उत्तपु० पर्व ७४/श्लो ३७६/उत्तरार्ध

(छ) सत्तेव सुकेवलि-जइ-वरहं॥

—वीरजि० संधि २/कड८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ञ) केवलज्ञानिनः सप्तशतसंख्याश्च तत्समाः

—वीरवर्धमानच० अधि १६/श्लो २१०/पूर्वार्ध

(झ) (सप्त शत्यथ) वैक्रियलब्ध्यनुत्तरगतिकेवलिनां पुनः

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२/श्लो ४३८

·१३ चतुर्दश पूर्वधर—

(क) समणस्स णं भगवतो महावीरस्स तिन्नि सया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसण्णिवातीणं जिणा इव अवितहवागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था।

—कप्प० सू १३७

—ठाण० स्था३/उ४ सू ५३४

श्रमण भगवान् महावीर के तीन सौ चतुर्दश पूर्वधारी की उत्कृष्ट संपदा थी। वे कैसे थे? जिन नहीं थे परन्तु जिन के समान, सर्व अक्षरों के सन्निपात (संयोग) को जानने वाले और जिनकी तरह अवितथ—यथार्थ कहनेवाले— ऐसे चतुर्दश पूर्वधारी थे।

(ख) समणस्स भगवओ महावीरस्स तिन्नि सयाणि चोद्दसपुव्वी णं होत्था।

सम० सम ३००

(ग) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य × × ×त्रीणि शतानि चतुर्दश पूर्विणां ३००

—आव० निगा २८६/मलय टीका—

(घ) शतानि त्रीणि पूर्वाणां धारिणः शिक्षकाः परे।

—उत्तपु० पर्व ७४ श्लो ३७५/पूर्वार्ध

स पुव्वंग—धारिण मुक्कावईणं।

(च) पसिद्धाइं गुत्ती—सयाइं जईणं॥

—वीरजि० संधि २/कड७

(छ) शतत्रयप्रमा ज्ञेया विभोः पूर्वार्थधारकाः।

—वीरवर्धमानच० अधि १६/श्लो २०८/पूर्वार्ध

(ज) चतुर्दशपूर्वभृतां श्रमणानां शतत्रयम्।

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२/श्लो ४३७ पूर्वार्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान् महावीर और शासन संपदा—

.१४ वादी-संख्या

(क) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेवमणुयासुरम्मि लोगम्मि वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था।

—सम० सम ४००

श्रमन भगवान महावीर के देव, मनुष्य और असुर, (परिषद्) लोक में वाद में पराजित न हो सके ऐसे चार सौ वादियों की उत्कृष्ट संपदा थी।

(ख) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वादीणं सदेवमणुयासुराए परिसाए अपराजियाणं उक्कोसिता वातिसंपदा हुत्था।

—ठाण० स्था ४/उ४/सू ६४८

(ग) ××× चत्वारि शतानि ४०० वादिनाम्।

—आव० निगा २८६/मलय टीका

(घ) ××× वादिनां तु चतुः शती

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२/श्लो ४३८

(च) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेवमणुयासुराए परिसाए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था।

—कप्प० सू १४२/पृ० ४४

(छ) चतुःशतानि संप्रोक्तास्तत्रानुत्तरवादिनः

—उत्तपु०/पर्व ७४/श्लो ३७८ पूर्वार्ध

(ज) चत्तारि सयइं वाई-वरइं
दिय-सुगय-कविल-हर-णय-हरइं ॥

—वीरजि० संधि २/कड ८

(झ) चतुःशतप्रमाणा भवन्त्यनुत्तरवादिनः ॥२११

—वीरवर्धमानच० अधि १६

भगवान् के चारसौ ऐसे श्रेष्ठवादी थे जो द्विज, सुगत (बुद्ध) कपिल और हर (शिव) इनके सिद्धांतों का खंडन करने में समर्थ थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.१५ वैक्रियलब्धि धारी—

(क) समणस्स भगवओ महावीरस्स सत्त वेउव्वियसया होत्था।

—सम० पइ सम सू ३६

श्रमण भगवान् महावीर के सात सौ शिष्य वैक्रियलब्धिवाले थे।

(ख) सप्त शतानि ७०० वैक्रियलब्धिमतां

—आव० निगा २८६/मलय टीका

(ग) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त सया वेउव्वीणं अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं उक्कोसिया वेउव्विसंपया होत्था।

—कप्प० सू १४०/पृ०४४

(घ) (सप्तशत्यथ) वैक्रियलब्ध्यनुत्तरगतिकेवलिनां पुनः।

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२/श्लो ४३८/पूर्वार्ध

(च) शतानि नवविज्ञेया विक्रियर्द्धिविवर्द्धिताः।

—उत्तपु० पर्व ७४/श्लो ३७७/पूर्वार्ध

(छ) मुनयो विक्रियद्धर्याढ्याः स्युः शतानि नवास्य च॥

—वीरवर्धमानच० अधि १९/श्लो २१०/उत्तरार्ध

नौ सौ विक्रिया ऋद्धि के धारक थे।

.१६ अनुत्तरोपातिक संपदा—

(क) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइय-संपया होत्था।

—सम० सम ८००

—ठाण० स्था ८, सू ११५, कप्प० सू १४४

(ख) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य × × × अष्टौ शतानि ८०० अनुत्तरोप-पातिनाम्।

—आव० निगा २८६/मलय टीका

श्रमण भगवान् महावीर के अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले, कल्याणकारक गतिवाले कल्याणकारक स्थितिवाले और आगामी काल में निर्वाण रूपी भद्रवाले साधुओं की उत्कृष्ट अनुत्तरौपातिकी ८०० संपदा थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ग) सप्तशत्यथ, वैक्रियलब्ध्यनुत्तरगति केवलिनां पुनः।

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२/श्लो ४३८ पूर्वार्ध

अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले ७०० शिष्य थे।

(घ) अनुत्तरोपातिक संपदा—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेवन्नं अणगारा संवच्छरपरियाया पंचसु अनुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेसु देवत्ताए उववन्ना।

—सम० सम ५३/सू३/पृ०८८८

श्रमण भगवान् महावीर के त्रेपन साधु एक वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले होकर अनुत्तर नाम के महाउत्सव के स्थान रूप महाविमान में देवरूप में उत्पन्न हुए।

(च) भगवान की शासन-संपदा—

अनुत्तर विमानवासी देवों में उत्पन्न साधुओं की संख्या।

उसहतियाणं सिस्सा वीससहस्सा यणुत्तरेसु गदा।
कमसो पंचजिणेसुं तत्तो बारससहस्साणिं॥
तत्तो जिणेसुं एक्कारसहस्सयाणि पत्तेक्कं।
पंचसु सामिसु तत्तो एक्केक्के दससहस्साणिं॥
अट्ठासीदिसयाणिं कमेण सेसेसु जिणवरिंदेसुं।
गयणणभअट्ठसगसग दोअंककमेण सव्वपरिमाणं॥

—तिलोप० अधि ४/गा १२१५ से १२१७

शेष जिनेंद्रों के—मल्लिनाथ से वर्द्धमान स्वामी तक के जिनेंद्रों के क्रम से ८८०० अनुत्तर विमान में गये हैं।

१७. अवधिज्ञानी—

(क) (श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य) त्रयोदश शतानि १३०० अवधिज्ञानिनां।

—आव० निगा २८६/मलय टीका—

श्रमण भगवान् महावीर के १३०० अवधिज्ञानी थे।

(ख) सहस्रमेकं त्रिज्ञानलोचनास्त्रिशताधिकम्।

—उत्तपु० पर्व ७४/श्लो ३७६/पूर्वार्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ग) त्रयोदशशतान्येव मुनयोऽवधिभूषिताः।

—वीरवर्धमानच० अधि १६/श्लो २०६

(घ) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेरस सया ओहिनाणीणं अतिसेसपत्ताणं उक्कोसिया ओहिनाणीणं संपया होत्था।

कप्प० सू १३८/पृ० ४४

(ङ) त्रयोदशशत्यवधिज्ञानिनां×××।

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२/श्लो ४३७ उत्तरार्ध

(छ) दहेक्कूणयाइं तहिं सिक्खुयाणं।
समुम्मिल्ल-सव्वावही चक्खुयाणं॥

—वीरजि० संधि २/कड ८

भगवान् के नौ सौ शिष्य ऐसे थे जिनकी सर्वावधि ज्ञानरूपी चक्षु खुल गये थे अर्थात् जो सर्वावधि ज्ञान-धारी थे।

.१८ मनःपर्यवज्ञानी—

(क) शतानि पंच संपूज्याश्चतुर्थज्ञानलोचनाः॥३७७॥

—उत्तपु० पर्व ७४

(ख) पंचेव चउत्थ-णाण-धरहं

—वीरजि० संधि २/कड ८

(ग) चतुर्थज्ञानिनः पूज्याः शतपंचप्रमाः प्रभोः॥

—वीरवर्धमानच० अधि १६/श्लो २११/पूर्वार्ध

पाँच सौ पूजनीय मनः पर्यव ज्ञानी थे।

विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी—

(घ) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पंचसया विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं जीवाणं मनोगए भावे जाणमाणाणं उक्कोसिया विउलमई संपया होत्था।

— कप्प० सू १४१/पृ ४४

(च) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्स ××× पंच शतानि ५०० विपुलमतीनां

—आव० निगा २८६/मलय टीका

श्रमण भगवान महावीर के ५०० विपुलमति मनः पर्यव ज्ञानी थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. श्रावक कितने थे—

(क) समणस्स भगवओ महावीरस्स संखसयगपामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी अउणट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासयाणं संपया होत्था।

—कप्प० सू० १३५/पृ० ४३

(ख) श्रावकाणां तु लक्षैकैकोनषष्टिसहस्रयुक्

—त्रिशलाका पर्व १०/सर्ग १२/श्लोक ४३६ पूर्वार्ध

(ग) शंखप्रमुखाणां श्रमणोपासकानामेकं लक्षं एकोनषष्टिः सहस्राणि १५९०००।

—आव निगा २८६/मलय टीका

भगवान् के शंख प्रमुख आदि १५६००० श्रावक थे।

(घ) लक्खाणि तिण्णि सावयसंखा उसहादिअट्ठतित्थेसु।
पत्तेक्कं दो लक्खा सुविहिप्पहुदीसु अट्ठतित्थेसुं॥
एक्केक्कं चियलक्खं कुंथुजिणिंदादिअट्ठतित्थेसुं।
सव्वाण सावयाणं मेलिदे अडदालक्खाणिं॥

— तिलोप० अधि ४/गा ११८१-८२

कुंथुनाथ आदि आठ तीर्थंकरों में से प्रत्येक के तीर्थ में श्रावकों की संख्या एक-एक लाख कही गयी है।

(च) भणु एक लक्खु मंदिरजईहिं

—वीरजि० संधि २/कड ८

(छ) दृग्ज्ञानसद्व्रतोपेताः श्रावकाः लक्षसंख्यकाः।

—वीवर्धमानच० अधि १६ श्लो २१४

(ज) श्रावका लक्षमेकं तु ×××

—उत्तपु० पर्व ७४/श्लो ३७६

भगवान् के एक लाख गृहस्थ श्रावक थे। जो सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और गृहस्थ व्रतों से संयुक्त थे।

२०. श्राविका कितनी थी—

(क) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य×××सुलसारेवतीप्रमुखाणां श्रमणोपासिकानां त्रीणि शतसहस्राणि अष्टादश सहस्राणि ३१८०००

—आव० निगा २८६/मलय टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) समणस्स भगवओ महावीरस्स सुलसारेवईपामोक्खाणं समणोवासियाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ अट्ठारस य सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था।

—कप्प० सू० १३६/पृ० ४४

(ग) श्राविकाणां तु त्रिलक्षी साष्टादशसहस्त्रिका।

—त्रिशलाका० पर्व० १०/सर्ग १२/श्लो० ४३६

भगवान् के सुलसा, रेवती प्रमुख ३१८००० श्राविका थी।

(घ) लक्खाइं तिण्णि जहिं सावइहिं।

—वीरजि० संधि २/ कड ८

भगवान् के तीन लाख श्राविकाएँ थीं।

(च) त्रिलक्षश्राविकाश्चास्यार्चयन्त्यङ्घ्रिसरोरुहौ॥ २१४॥

—वीरवर्धच० अधि १६

(छ) श्रावका लक्षमेकं तु त्रिगुणाः श्राविकास्ततः।

—उत्तपु० पर्व ७४/श्लो० ३७६

(ज) पणचउतियलक्खाइं पण्णविदाट्ठतित्थेसुं।
पुह पुह सावगिसंखा सव्वा छण्णउदिलक्खाइं॥

—तिलोप० अधि ४/गा ११८३

आठ आठ तीर्थंकरों के तीर्थों में श्राविकाओं की संख्या पृथक्-पृथक् रूप से पाँच लाख, चार लाख और तीन लाख थी। अतः भगवान महावीर के तीर्थ में तीन लाख श्राविकायें थीं।

२१. तिर्यंच भी श्रावक थे।

(क) तिर्यञ्चः सिंहसर्पाद्याः शान्तचित्ता व्रताङ्किताः।
संख्याता भक्तिका वीरं श्रयन्ते भवभीरवः॥

—वीरवर्धच० अधि १६/श्लो २१६

सिंह-सर्पादि शांतचित्त, व्रतयुक्त, भक्तिमान् और भवभीरु संख्यात तिर्यन्चों ने वीर भगवान् का आश्रय लिया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) ××× तिर्यंचः कृतसंख्यकाः

—उत्तपु० पर्व ७४/श्लो ३८०/पूर्वार्ध

भगवान् के संख्यात तिर्यंच सेवा करनेवाले थे (श्रावक)

(ग) संखेज्जएहिं तिरिएहिं सहुँ।
परमेट्ठि देव सोक्खाइँ महुँ॥

—वीरजि० संधि २/कड ८

(घ) (णरतिरिया) संखेज्जा एक्केक्के तित्थे विहरंति भत्तिजुत्ताय।

—तिलोप० अधि ४/गा ११८४

प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में संख्यात तिर्यंच जीव भक्ति से संयुक्त होते हुए विहार किया करते हैं। अतः श्रमण भगवान् महावीर के संख्यात संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय श्रावक थे।

२२. भगवान् महावीर के नौ गण

(क) समणस्स णं भगवतो महावीरस्स णव गणा हुत्था, तंजहा—
गोदासगणे, उत्तरबलिस्सहगणे, उद्देहगणे, चारणगणे, उद्दवाइयगणे, विस्सवाइयगणे, कामड्ढियगणे, माणवगणे, कोडियगणे।

टीका—गणाः—एकक्रियावाचनानां साधूनां समुदायाः, गोदासादीनि च तन्नामानीति।

—ठाण० स्था ६/सू २६

(ख) थेरस्स णं अज्जभद्दबाहुस्स पाईणगोत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तंजहा—थेरे गोदासे थेरे अग्गिदत्ते थेरे जण्णदत्ते थेरे सोमदत्ते कासवगोत्तेणं।

थेरेहिंतो णं गोदासेहिंतो कासवगोत्तेहिंतो एत्थणं गोदासगणे नामं गणे निग्गए, तस्सणं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा—तामलित्तिया, कोडीवरिसिया पोंडवद्धणिया दासीखब्बडिया।

—कप्प० सू २०७

श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण थे—

१—गोदास गण, २—उत्तर बलिस्सहगण, ३—उद्देहगण, ४—चारणगण
५—उद्दवाइयगण, [उडुपाटितगण]
६—विस्सवाइय गण [वेशपाटितगण]।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७—कामर्द्धिगण ।

८—मानवगण ।

९—कोटिकगण ।

एक सामाचारी का पालन करनेवाले साधु-समुदाय को गण कहा जाता है। यह विषय मूलतः कल्प सूत्र में प्रतिपादित है—

१—गोदास गण—प्राचीन गोत्री आर्य भद्रबाहु स्थविर के चार शिष्य थे—गोदास, अग्निदत्त, यज्ञदत्त और सोमदत्त। गोदास काश्यपगोत्री थे। उन्होंने गोदास गण की स्थापना की। इस गण से चार शाखाएँ निकलीं—तामलिप्तिका, कोटिवर्षिका, पांडवर्द्धनिका, दासीखर्वटिका।

२—उत्तर बलिस्सगण—माठर गोत्री आर्य संभूतिविजय के बारह शिष्य थे। उनमें आर्य स्थूलभद्र एक थे। उनके दो शिष्य हुए—आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती। आर्य महागिरि के आठ शिष्य हुए, उनमें स्थविर उत्तर और स्थविर बलिस्सह दो थे। दोनों के संयुक्त नाम से 'उत्तरबल्लिस्सह' नाम के गण की उत्पत्ति हुई।

३—उद्देहगण—आर्य सुहस्ती के बारह अंतेवासी थे। उनके स्थविर रोहण भी एक थे। वे काश्यप गोत्री थे। इनसे उद्देहगण भी उत्पत्ति हुई।

४—चारण गण—स्थविर श्रीगुप्त भी आर्य सुहस्ती के शिष्य थे। वे हारित गोत्र के थे। इनसे चारण गण की उत्पत्ति हुई।

५—उडुपाटित गण—स्थविर जयभद्र आर्य सुहस्ती के शिष्य थे। वे भारद्वाज गोत्री थे। इनसे उडुपाटितगण की उत्पत्ति हुई।

६—वेशपाटितगण—स्थविर कामिड्ढी आर्य सुहस्ती के शिष्य थे। वे कुंडिल गोत्री थे। इनसे वेशपाटितगण की उत्पत्ति हुई।

७—कामर्द्धि गण—यह वेशपाटितगण का एक कुल था।

८—मानव गण—आर्य सुहस्ती के शिष्य ऋषिगुप्त ने इस गण की स्थापना की वे वाशिष्ट गोत्री थे।

९—कोटिक गण—स्थविर सुस्थित और सुप्रतिबद्ध गण से इस गण की उत्पत्ति हुई। प्रत्येक गण की चार-चार शाखाएँ और उद्देह आदि गणों के अनेक कुल थे। इनकी विस्तृत जानकारी के लिए देखें।

—कल्पसूत्र २०६-२१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. भगवान् महावीर की सेवा में यक्षिणी

जक्खीओ चक्केसरिरोहिणि पण्णत्तिवज्ज सिंखलया।
वज्जंकुसा य अप्पदिचक्केसरिपुरिसदत्ता य॥ ९३७॥
मणवेगाकालीओ तह जालामालिणी महाकाली।
गउरीगंधारीओ वेरोटी सोलसा अणंतमदी॥ ९३८॥
माणसिमहमाणसिया जया य विजयापराजिदाओ य।
बहुरूपिणिकुंभंडी पउमासिद्धायिणीओ त्ति॥ ९३९॥

—तिलोप० अधि ४/गा ६३७ से ६३६

चक्रेश्वरी यावत् सिद्धायिनी—ये यक्षिणियाँ भी क्रमशः ऋषभादिक चौबीस तीर्थंकरों के समीप रहा करती है।

२४. असंख्यात देव-देवियाँ

संख्यात तिर्यंच—

(क) देवा देव्योऽप्यसंख्यातास्तिर्यंचः कृतसंख्यकाः।

—उत्तपु०/पर्व ७४/श्ले ३८०

(ख) देवा देव्यस्त्वसंख्याताः सेवन्ते तत्पदाम्बुजौ।
दिव्यैः स्तुतिनमस्कारपूजाद्युत्सवकोटिभिः॥२१५॥

—वीरवर्धच० अधि १६/श्लो २१५

असंख्यात् देव देवियां थी। असंख्यात देव-देवियां भगवान् के पादारविंदों की दिव्यस्तुति, नमस्कार पूजा और करोड़ों प्रकार के उत्सवों से सेवा करते थे।

(ग) सुरदेवहिं मुक्क-संख-गइहिं।

—वीरजि० संधि २/कड ८

(घ) देवीदेवसमूहा संखातीदा हुवंति णरतिरिया।
संखेज्जा एक्केक्के तित्थे विहरंति भत्तिजुत्ता य॥

—तिलोप० अधि ४/गा ११८४

प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में—भगवान महावीर के तीर्थ में असंख्यात देव-देवियों के समूह और संख्यात मनुष्य एवं तिर्यंच जीव भक्ति से संयुक्त होते हुए विहार किया करते हैं।

२५. दीक्षा-वृक्ष—

णिक्खंता असोगतरुतले सव्वे।

—सप्ततिशत० ६८ द्वार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी तीर्थंकर अशोक वृक्ष के नीचे प्रव्रजित हुए।

२६. दीक्षा के समय तप —

सुमइत्थ णिच्च भत्तेण णिगाओ वासुपुज्ज चउत्थेण।
पासो मल्ली वि य अट्ठमेण सेसाउ छट्ठेणं॥

—प्रव० सा० ४२ द्वार

सुमतिनाथ स्वामी नित्य भक्त से और वासुपूज्य स्वामी उपवास तप से दीक्षित हुए। श्री पार्श्वनाथ स्वामी और मल्लिनाथ स्वामी तेला तप कर दीक्षाली। शेष बाइस तीर्थंकरों ने बेला तप पूर्वक प्रव्रज्या ग्रहण की।

२७. दीक्षा-परिवार

एगो भगवं वीरो पासो मल्ली य तिहिं तिहिं सएहिं।
भगवंपि वासुपुज्जो छहिं पुरिससएहिं णिक्खंतो।
उग्गाणं भोगाणं रायण्णाणं च खत्तियाणं च।
चउहिं सहस्सेहिं उसहो सेसा उ सहस्स परिवारा॥

—प्रव० सा० द्वार ३१

भगवान् महावीर ने अकेले दीक्षा ली। श्री पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ ने तीन-तीन सौ पुरुषों के साथ दीक्षा ली। भगवान् वासुपूज्य ने ६०० पुरुषों के साथ गृहत्याग किया। भगवान् ऋषभ देव ने उग्र, योग, राजन्य और क्षत्रिय कुल के चार हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ली। शेष उन्नीस तीर्थंकर एक-एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षित हुए।

२८. स्वप्न :—

गय वसह सीह अभिसेयं दाम ससि दिणयरं झयं कुंभं॥
पउमसर सागर विमाण भवण रयणऽग्गि सुविणाइं॥
णरय उवट्टाणं इहं भवणं सग्गच्चुयाण उ विमाणं।
वीससह सेस जणणी, नियंसु ते हरि विसह गयाइं।

—सप्ततिशत स्थान प्रकरण १८/द्वार गा ७०-७१

नरक से आये हुए तीर्थंकरों की माताएँ चौदह स्थानों में भवन देखती है एवं स्वर्ग से आये हुए तीर्थंकरों की माताएँ भवन के बदले विमान देखती है।

भगवान् महावीर स्वामी की माता ने प्रथम सिंह का, भगवान् ऋषभदेव की माता ने प्रथम वृषभ का एवं शेष बाइस तीर्थंकरों की माताओं ने प्रथम हाथी का स्वप्न देखा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. गोत्र और वंश—

गोयम गुत्ता हरिवंस संभवा नेमिसुव्वया दो वि।
कासव गोत्ता इक्खागु वंसजा सेस बावीसा॥

—सप्ततिशत स्थान प्रकरण ३७-३८ द्वार गा १०५

भगवान् नेमिनाथ स्वामी और मुनिसुव्रत स्वामी—ये दोनों गौतम गोत्र वाले थे और इन्होंने हरिवंश में जन्म लिया था। शेष बाइस तीर्थंकरों का गोत्र काश्यप था और इक्ष्वाकुवंश में उनका जन्म हुआ था।

३०. तीर्थंकरों का विवाह—

मल्लिं नेमिं मुत्तुं तेसिं विवाहो य भोगफला

—सप्ततिशत स्थान प्रकरण ५३ द्वारा, गा ३४

श्री मल्लिनाथ और अरिष्टनेमि के सिवाय शेष तीर्थंकरों का विवाह हुआ क्योंकि उनके भोगफल वाले कर्म शेष थे।

३१. गृहवास के समय ज्ञान—

मइ सुय ओहि तिण्णाणा जाव गिहे पच्छिमभवाओ।

—सप्ततिशत० द्वार ४४

पिछले भव से लेकर यावत् गृहवास में रहने तक सभी तीर्थंकरों के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान—ये तीनों ज्ञान होते हैं।

३२. ज्ञान-दीक्षा के समय

जायं च चउत्थं मणणाणं। —सप्ततिशत० द्वार ७१

दीक्षा ग्रहण करने के समय सभी तीर्थंकरों को चौथा मनः पर्यव ज्ञान होता है।

३३. तीर्थंकरों के पूर्व भव का श्रुतज्ञान—

पढमो दुवालसंगी सेसा इक्कार संग सुत्तधरा।

—सप्ततिशत द्वार १०

प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव पूर्व भव में द्वादशांग सूत्रधारी और तेईस तीर्थंकर ग्यारह अंग सूत्रधारी थे।

३४. तीर्थंकरों के जन्म एवं मोक्ष के आरे—

संखिज्ज कालरूवे तइयउरयंते उसह जम्मो।
अजियस्स चउत्थारयमज्झे पच्छदे संभवाईण।
तस्संते अराईणं जिणाणं जम्मो तहा मुक्खो॥

—सप्ततिशत० द्वार २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संख्यातकाल रूप तीसरे आरे के अंत में भगवान् ऋषभदेव स्वामी का जन्म और मोक्ष हुआ। चौथे आरे के मध्य में श्री अजितनाथ स्वामी का जन्म और मोक्ष हुआ। चौथे आरे के पिछले आधे भाग में श्री संभवनाथ स्वामी से श्री कुंथुनाथ स्वामी का जन्म और मोक्ष हुए। चौथे आरे के अंतिम भाग में श्री अरनाथ स्वामी से श्री वीर-स्वामी तक सात तीर्थंकरों का जन्म और मोक्ष हुआ।

३५. भव

वर्तमान अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थंकर भगवान् को सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद जितने भव के पश्चात् वे मोक्ष पधारे उनकी भवसंख्या इस प्रकार है।

१ ऋषभदेव की भव संख्या १३, शांतिनाथ स्वामी की १२, अरिष्टनेमि स्वामी की ९, पार्श्वनाथ स्वामी की १०, महावीर स्वामी की २७ और शेष तीर्थंकरों की भव संख्या ३ है।

,३६. वर्धमान तीर्थंकर के २७ बोलो का यंत्र –

१. च्यवन तिथि	आषाढ शुक्ला षष्ठी
२. विमान	प्राणत देवलोक
३. जन्म नगरी	कुण्डपुर
४. जन्म तिथि	चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
५. माता का नाम	त्रिशला
६. पिता का नाम	सिद्धार्थ
७. लांछन	सिंह
८. शरीरमानं (उत्सेधांगुल से)	सात हाथ प्रमाण
९. कंवर पद	३० वर्ष
१०. राज्य-काल	×
११. दीक्षा-तिथि	मिगसर कृष्णा १०
१२. पारणे का स्थान (यहाँ दीक्षा के बाद का प्रथम पारणा लिया गया है।)	कोल्लाग सन्निवेश
१३. दाता का नाम	बहुल ब्राह्मण
१४. छद्मस्थ काल	१२ वर्ष ६ मास १५ दिन
१५. ज्ञानोत्पत्ति तिथि	वैशाख शुक्ल १०
१६. गणधर संख्या	ग्यारह
१७. प्रथम गणधर	इन्द्रभूति
१८. साधु संख्या	१४ हजार
१९. साध्वी संख्या	३६०००
२०. प्रथम आर्या	चन्दना
२१. श्रावक संख्या	१५९०००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. श्राविका संख्या	३१८०००
२३. दीक्षापर्याय	४२ वर्ष
२४. निर्वाण तिथि	कार्तिक कृष्णा अमावस्या
२५. मोक्ष परिवार	एकाकी सिद्ध
२६. आयुमान	७२ वर्ष
२७. अंतरमान (जिन तीर्थंकर के नीचे अंतर दिया है वह उसके पूर्ववर्ती तीर्थंकर के निर्वाण के उतने समय बाद सिद्ध हुआ)	२५० वर्ष
स्वप्न	चतुर्दश महास्वप्न
गोत्र—वंश	काश्यप गोत्र, इक्ष्वाकुवंश
वर्ण	तप्त सोने के समान
विवाह	हुआ—
गृहवास के ज्ञान	मति-श्रुत-अवधि ज्ञान
दीक्षा के समय ज्ञान	मनः पर्यव ज्ञान की उपलब्धि
दीक्षा नगर	अपनी जन्म भूमि
दीक्षा वृक्ष	अशोक वृक्ष
दीक्षा तप	बेले का तप
दीक्षा परिवार	अकेले
प्रथम पारणे का समय	दीक्षा के दूसरे दिन
प्रथम पारणे का आहार	अमृत रस के सदृश स्वादिष्ट क्षीरान्न
केवलोत्पत्ति स्थान	जृम्भिक के बाहर—ऋजुबालिका नदी के तीर पर
केवल ज्ञान तप	बेले का तप
केवल ज्ञान वेला	अंतिम प्रहर में
तीर्थोत्पत्ति	दूसरे समवसरण में तीर्थ और संघ की स्थापना हुई
निर्वाण तप	बेले का तप
निर्वाण स्थान	पावापुरी
मोक्षासन	पर्यंकासन
भवसंख्या-सम्यक्त्व के बाद	२७ भव
बीस बोलों में किसकी आराधना कर तीर्थंकर गोत्र का बंधन	बीसों बोलों की आराधना की
तीर्थंकरों के पूर्वभव का श्रुतज्ञान	ग्यारह अंग सूत्र धारी

७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्म और मोक्ष के आरे	चौथे आरे के अंत में
तीर्थोच्छेद काल	तीर्थ का विच्छेद नहीं हुआ
तीर्थंकरों के तीर्थ में चक्रवर्ती और वासुदेव	नहीं
भगवान् के वर्तमान शासन में	दृष्टिवाद का विच्छेद

.३७. भगवान् महावीर के समय में भगवान् पार्श्वनाथ की परंपरा--

१—औधिक अणगार

(क) तएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ, गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।×××।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जाइसम्पन्ना ××× बहुस्सुया बहुपरिवारा, पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा अहाणुपुव्वि ××× जेणेव तुंगिया नगरी जेणेव पुप्फवइए चेइए 'तेणेव उवागच्छंति' × × × संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति। × × × ।

तत्थणं कालियपुत्ते नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासी—पुव्वतवेणं अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति।

तत्थणं मेहिले नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासि—पुव्वसंजमेणं अज्जो। देवा देवलोएसु उववज्जंति।

तत्थणं आणंदरक्खिए नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासी—कम्मियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति।

तत्थणं कासवे नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासि:—संगियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति।

—भग० श २/उ५/सू ९१,९५,१०१

किसी एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशीलका बगीचे से निकल कर बाहर जनपद में विचरने लगे।

उस काल उस समय में भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवान् अनुक्रमसे विचरते हुए ग्रामानुग्राम जाते हुए पाँच सौ साधुओं के साथ तुंगिया नगरी के बाहर ईशान कोण में स्थित पुष्पवती उद्यान में पधारे और यथाप्रतिरूप अवग्रह को लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणोपासकों के प्रश्न को सुनकर उन स्थविर भगवंतों में से कालिक पुत्र नामक स्थविर ने इस प्रकार उत्तर दिया—हे आर्यों ! पूर्व तप के कारण देवता देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

उनमें से मेहिल (मेथिल) नामक स्थविर ने इस प्रकार कहा—हे आर्यो ! पूर्व संयम के कारण देवता देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

उनमें से आनंद रक्षित नामक स्थविर ने इस प्रकार कहा—हे आर्यो ! कर्मिता के कारण अर्थात् पूर्व कर्मों के कारण देवता, देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

उनमें से काश्यप नामक स्थविर ने इस प्रकार कहा कि—हे आर्यों। संगीपन के कारण अर्थात् द्रव्यादि में रागभाव के कारण देवता देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

.२. सर्वज्ञ अवस्था में

(ख) पार्श्वपत्य अणगारों से संपर्क :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा एवं वयासी —से नूणं भंते ! असंखेज्जे लोए, अणंता राइंदिया उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा ? विगच्छिंसु वा, विगच्छंति वा, विगच्छिस्संति वा ? परित्ता राइंदिया उप्पज्जिसु वा, उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा ? हंता अज्जो ? असंखेज्जे लोए अणंता राइंदिया तंचेव।

से केणट्ठेणं जाव विगच्छिस्संति वा ?

से नूणं भे अज्जो ! पासेणं अरहया पुरिसादाणिएणं सासए लोए बुइए— अणादीए अणवदग्गे परित्ते परिवुडे हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले, अहे पलियंकसंठिए, मज्झे वरवइरविग्गहिए, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिए।

तेसिं च णं सासयंसि लोगंसि अणादियंसि अणवदग्गंसि परित्तंसि परिवुडंसि हेट्ठा विच्छण्णंसि, मज्झे संखित्तंसि, उप्पिं विसालंसि, अहे पलियंक-संठियंसि, मज्झे वरवइरविग्गहियंसि, उप्पिंउद्धमुइंगाकारसंठियंसि अणंताजीव-घणा उप्पज्जित्ता—उप्पज्जित्ता निलीयंति, परित्ता जीवघणा उप्पज्जित्ता-उप्पज्जित्ता निलीयंति।

से भूए उप्पण्णे विगएपरिणए, अजीवेहिं लोकइ पलोकइ, जे लोकइ से लोए ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हंता भगवं ! से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ-असंखेज्जे लोए अणंता राइंदिया तं चेवं।

तप्पाभिइं च णं ते पासावच्चेज्जा थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणंति सव्वण्णू सव्वदरिसी।

तएणं ते थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते। तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं ॥

तएणं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो चाउज्जामाओ धम्माओ पंच-महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति जाव चरिमेहिं उस्सास निस्सासेहिं सिद्धा बुद्धा मुक्का परिनिव्वुडा सव्वदुक्खप्पहीणा। अत्थेगइया देवलोएसु उववण्णा।

—भग श ५/उ६/सू० २५४ से २५७

जब श्रमण भगवान् महावीर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे उस समय श्री पार्श्वनाथ भगवंत के अपत्य-शिष्य-स्थविर भगवंत—जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे वहाँ आये थे। आकर श्रमण भगवान् महावीर के अदूरसामंत में बैठकर ऐसा बोले—

हे भगवन् ! असंख्य लोक में अनंत रात्रि-दिवस उत्पन्न हुए, उत्पन्न होंगे या उत्पन्न होते हैं और नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं या नष्ट होंगे।

प्रत्युत्तर में भगवान् ने कहा—हे आर्यो ! असंख्य लोक में अनंत रात्रि-दिवस उत्पन्न होते हैं, होंगे, हुए हैं। यावत् है नष्ट हुए हैं, नष्ट होते हैं, नष्ट होंगे।

क्योंकि—हे आर्यो ! निश्चयपूर्वक है कि अपने (गुरु स्वरूप) पुरुषादानीय—पुरुषों में ग्राह्य—पार्श्व अरिहंत लोक को शाश्वत कहा है। वह लोक अनादि, अनवदग्र—अनंत-परिमित, अलोक से परिवृत्त, नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संकुचित, ऊपर में विशाल, नीचे पल्यंक के आकार का, मध्य में उत्तम वज्र के आकार का और ऊपर ऊँचे—उभा मृदंग के आकार के जैसा लोक को कहा है। उस प्रकार के शाश्वत, अनादि-अनंत, परित्त, परिवृत्त, नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, नीचे पल्यंक के आकार में स्थित, बीच में वर वज्र समान शरीर वाले और ऊपर खड़े, मृदंग के आकार में स्थित लोक में अनंत जीव बहुत बार उत्पन्न होकर नाश को प्राप्त होते हैं। और परित्तनियत असंख्य जीव बहुत बार भी उत्पन्न होकर नाश को प्राप्त होते हैं। वह लोक भूत है, उत्पन्न है, विगत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, परिणत है क्योंकि अजीवों के द्वारा देखा जाता है। निश्चित होता है अधिक निश्चित होता है अतः प्रमाण से लोक जाना जाता है—कहा जाता है।

हा भगवन् !

इस कारण से हे आर्यो ! ऐसा कहा जाता है—असंख्येय लोक में वैसा ही जानना।

इस कारण से वे पार्श्वनाथ के शिष्य स्थविर भगवंत-श्रमण भगवान् महावीर को 'सर्वज्ञ-सर्वदर्शी' इस प्रकार जानते हैं।

उस चर्चा के बाद—वे स्थविर भगवंत श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार करते हैं—वंदन-नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले कि—

हे भगवन् ! आपके पास से चतुर्याम धर्म को छोड़कर प्रतिक्रमण सहित पंच महाव्रतों को स्वीकार कर विहरण करने की इच्छा है।

प्रत्युत्तर में भगवान् ने कहा—हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो वैसा करो—प्रतिबंध न करो।

तत्पश्चात् भगवान् महावीर से प्रतिक्रमण सहित पंच महाव्रतों को उन पार्श्वनाथ स्थविरों ने स्वीकार किया।

अनुक्रमसे कितनेक स्थविरों ने सर्वदुःखों का अंत किया। कितनेक देवलोक में उत्पन्न हुए।

.२ कालस्यवेषिपुत्र अणगार का चतुर्याम से पंचयाम धर्म स्वीकार

तेणं कालेणं, तेणं समएणं पासावच्चिज्जे कालासवेसियपुत्ते णामं अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते एवं वयासी × × ×।

—भग० श १/उ९/सू ४२३

उस काल उस समय में पार्श्वापत्य अर्थात् भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानिये—शिष्यानुशिष्य कालास्यवेषिपुत्र नामक अनगार जहाँ स्थविर भगवान् थे वहाँ गये। वहाँ जाकर उन स्थविर भगवंतों से इस प्रकार पूछा—

विवेचन—उस काल उस समय में अर्थात् जब भगवान् पार्श्वनाथ मोक्ष प्राप्त कर चुके थे और २५० वर्ष बाद जब भगवान् का शासन चल रहा था, उस समय भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य कालास्यवेषिपुत्र अनगार विचर रहे थे। उन्होंने भगवान् के शासन में दीक्षा ली थी। उसी समय भगवान् महावीर के शासन के स्थविर भी विचर रहे थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालास्यावेषि पुत्र अनगार ने स्थविर भगवंतों से प्रश्न किये।

एत्थणं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे संबुद्धे थेरे भगवंते वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता-णमंसित्ता एवं वयासी—

—भग० श १/उ९/सू ४२९

स्थविर भगवंतों का उत्तर सुनकर वे कालास्यवेषिपुत्र अनगार बोध को प्राप्त हुए और तब उन्होंने स्थविर भगवंतों को वंदन-नमस्कार किया—

तएणं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी—सद्दहाहि अज्जो ! पत्तियाहि अज्जो ! रोएहि अज्जो ! से जहेयं अम्हे वदामो।

तएणं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं।

—भग० श १/उ९/सू ४३०, ४३१

तब उन स्थविर भगवंतों ने कालास्यवेषिपुत्र अनगार से इस प्रकार कहा कि—हे आर्य ! हम जैसा कहते हैं वैसी ही श्रद्धा रखो, प्रतीति रखो, रुचि रखो।

तब कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने उन स्थविर भगवंतों को वंदना की—नमस्कार किया। तत्पश्चात् वे इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! मैंने पहले चार महाव्रत वाला धर्म स्वीकार कर रखा है, अब मैं आपके पास प्रतिक्रमण सहित पाँच महाव्रत वाला धर्म स्वीकार करके विचरने की—इच्छा करता हूँ।

तब स्थविर भगवंत बोले—हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो—वैसे करो—विलंब मत करो।

तएणं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते, वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तएणं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता × × × तं अट्ठं आराहेइ, आराहेत्ता, चरिमेहिं उस्सासनीसासेहिं सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते, परिनिव्वुडे, सव्वदुक्खप्पहीणे।

—भग० श १/उ९/सू ४३२, ४३३

तब कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने स्थविर भगवंतों को वंदना की, नमस्कार किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और चार महाव्रत धर्म से प्रतिक्रमण सहित पाँच महाव्रत रूप धर्म स्वीकार करके विचरने लगे।

इसके बाद कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्यायका पालन किया। आचार का उन्होंने सम्यग् रूप से पालन किया। अभीष्ट प्रयोजन का सम्यग् रूप से आराधन किया।

अन्तिम श्वासोच्छ्वास द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए, परिनिवृत्त हुए यावत् सब दुःखों से रहित हुए।

.४ गांगेय अणगार—

तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियग्गामे णामं णयरे होत्था—वण्णओ। दूतिपलासए चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया ॥७७॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे गंगेए नामं अणगारे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—॥७८॥

तप्पभिइं च णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणइ सव्वण्णुं, सव्वदरिसिं। तएणं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण—पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामिणं भंते! तुब्भं अंतियं चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं एवं जहा कालासवेसियपुत्तो तहेव भाणियव्वं, जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१३३॥

—भग० श ६/उ३२/प्र० ७७, प्र० ७८, १३३/पृ० ४१३, ४३१

उस काल उस समय में वाणिज्य-ग्राम नामक नगर था। वहाँ द्युतिपलाश नामक चैत्य उद्यान था। वहाँ श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषद् वंदन के लिए निकली। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। परिषद् वापिस चली गई।

उस काल उस समय में पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य गांगेय नामक अनगार थे। वे जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे—वहाँ आये और श्रमण भगवान् महावीर के न अति समीप, न अति दूर खड़े रहकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछा—

प्रश्नोत्तर होने के बाद गांगेय अणगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जाना। पश्चात् गांगेय अणगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वार आदक्षिण—प्रदक्षिणा की। वंदना-नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—हे भगवन्! मैं आपके पास चार याम रूप धर्म से पाँच महाव्रत रूप धर्म को अंगीकार करना चाहता हूँ। भगवान् ने सप्रतिक्रमण पांच महाव्रत ग्रहण कराये। क्रमशः कालान्तर में मोक्ष पधारे।

५. पार्श्वापत्य केशीकुमार श्रमण

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे जाति-संपण्णे कुलसंपण्णे बलसंपण्णे रूवसंपण्णे विणयसंपण्णे नाणसंपण्णे दंसणसंपण्णे चरित्तसंपण्णे लज्जासंपण्णे लाघवसंपण्णे लज्जा-लाघवसंपण्णे ओयंसी तेयंसी वच्चंसी।

जसंसी जियकोहे जियमाणे जियमाए जियलोहे जियणिद्दे जितिंदिए जियपरीसहे जीवियासमरणभयविप्पमुक्के तवप्पहाणे गुणप्पहाणे करणप्पहाणे चरणप्पहाणे निग्गहप्पहाणे निच्छयप्पहाणे अज्जवप्पहाणे मद्दवप्पहाणे लाघवप्प-हाणे खंतिप्पहाणे गुत्तिप्पहाणे मुत्तिप्पहाणे विज्जप्पहाणे मंतप्पहाणे।

बंभप्पहाणे वेयप्पहाणे नयप्पहाणे नियमप्पहाणे सच्चप्पहाणे सोयप्पहाणे नाणप्पहाणे दंसणप्पहाणे चरित्तप्पहाण्णे ओराले…[पृ० १४७ प० १] चउदस-पुव्वी चउणाणोवगए पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चर-माणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव सावत्थी नयरी जेणेव कोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ, सावत्थी नयरीए बहिया कोट्ठए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

—राय० सू० १४७

उस समय वहाँ श्रावस्ती नगरी में—पार्श्वापत्य केशी नामक कुमार श्रमण भी आये हुए थे। केशी कुमार श्रमण जातवान्, कुलीन, बलिष्ठ, विनयी, ज्ञानी, सम्यग्दर्शनी, चारित्रशील, लज्जावान, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी थे। उन्होंने क्रोध-मान माया और लोभ पर जीत को प्राप्त हो गये थे। निद्रा, इन्द्रिय और परीषह पर काबू किये हुए थे। उन्हें जीवन की तृष्णा या मरण का भय नहीं होता था। इनके जीवन में तप, चरण, करण, निग्रह, सरलता, कोमलता, क्षमा, निर्लोभता ये सर्व गुण मुख्य रूप में थे। तथा वे श्रमण, विद्यावान् मांत्रिक ब्रह्मचारी और वेद तथा नय के ज्ञाता थे। उनको सत्य, शौचादि सदाचार के नियम प्रिय थे। तथा वे चतुर्दशपूर्वधारी और चार ज्ञान के धारक थे। ऐसे वे केशी कुमार श्रमण स्वयं के पाँच सौ भिक्षु शिष्यों के साथ क्रमशः क्रमशः ग्रामानुग्राम विहार करते हुए सुख पूर्वक विचरण करते हुए श्रावस्ती नगरी के बाहर ईशान कोण में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आये हुए कोष्टक चैत्य में आकर उतरे। वहाँ योग्य अभिग्रह धारण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए रहने लगे।

नोट—दीर्घ निकाय में कुमार श्रमण के स्थान पर कुमार काश्यप (पाली—कुमार कस्सप) का नाम है। काश्यप का भिक्षु समुदाय पाँच सौ की संख्या में कहा है। कुमार काश्यप को श्रमण गौतम के (गौतम बुद्ध के) श्रावक की तरह वर्णन किया है। (बौद्ध शासन में जो त्यागी होता है वह श्रावक और जो गृहस्थ होता है वह उपासक) ये कुमार काश्यप सीधे ही सेयविया नगरी में आते हैं वहाँ केशी कुमार—श्रमण श्रावस्ती आने के बाद सेयविया की ओर जाते हैं। आजन्म ब्रह्मचारी होने से वे कुमार श्रमण कहे जाते हैं।

.६ केशीकुमार श्रमण—

तस्स लोगपईवस्स, आसी सीसे महायसे।
केसीकुमार समणे, विज्जाचरण-पारगे॥

—उत्त० अ २३/गा २

लोक में दीपक के समान अर्थात् संसार के संम्पूर्ण पदार्थों को अपने ज्ञान द्वारा प्रकाशित करनेवाले उन पार्श्वनाथ भगवान् के ज्ञान और चारित्र के पारगामी महायशस्वी केशीकुमार श्रमण शिष्य थे।

ओहिणाणसुए बुद्धे, सीससंघसमाउले।
गामाणुगामं रीयंते, सावत्थिं पुरमागए॥

—उत्त० अ २३/गा ३

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान से युक्त तत्त्वों को जानने वाले, शिष्यों के परिवार सहित ग्रामानुग्राम विचरते हुए वे केशीकुमार श्रमण श्रावस्ती नगरी पधारे।

अह तेणेव कालेणं धम्मतित्थयरे जिणे।
भगवं वद्धमाणित्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए।

—उत्त० अ २३/गा ५

अथ, उसी समय, धर्म तीर्थ की स्थापना करनेवाले, राग-द्वेष को जीतनेवाले भगवान् वर्द्धमान स्वामी समस्त संसार में, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थंकर के रूप में प्रसिद्ध थे।

.७ वैशालिक श्रावक पिंगलक निर्ग्रन्थ—

तएणं भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणसगोत्तं अदूरागयं जाणित्ता खिप्पामेव अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता खिप्पामेव पच्चुवगच्छइ। ××× से णूणं तुमं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खंद्या सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं णामं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए-मागहा।

—भग० श २/उ१/सू३६

गौतम स्वामी ने कहा कि—हे स्कन्दक! श्रावस्ती नगरी में वैशालिक श्रावक पिंगलक निर्ग्रन्थ ने तुम से पांच प्रश्न पूछे।

.८ मुनिचंद्राचार्य और वर्द्धनसूरि—

(क) ततो भगवं कुमाराए संनिवेसे गतो, तत्थ चंपरमणिज्जे उज्जाणे पडिमं ठितो, इतो य पासावच्चिज्जो मुणिचंदो नाम थेरो बहुसिस्सपरिवारो तम्मि संनिवेसे कूवणयस्स कुंभगारस्स सालाए ठितो, सो य जिणकप्पपडिमं (कम्मं) करेइ, सीसं गच्छे ठावित्ता सत्तभावणाए अप्पाणं भावेइ, जिणकप्पंहि पडिवज्जंतस्स पंच भावणातो भवंति, तद्यथा—तपोभावना सत्त्वभावना सूत्रभावना एकत्वभावना बलभावना च, उक्तं च—

तवेण सत्तेण सुत्तेण, एगत्तेण बलेण य।
तुलणा पंचहा वुत्ता, जिणकप्पं पडिवज्जतो ॥१॥

सत्त्वभावनाऽप्युपाश्रयादिभेदात् पंचधा, तथा चोक्तम्—

पढमा उवस्सयंमी बिइया बाहिं तइया चउक्कंमि।
सुन्नहरंमि चउत्थी पंचमिया तहमसाणंमि ॥१॥

सो बिइयाए तह सत्तभावणाए अप्पाणं भावेइ, गोसालो सामिंभणइ—एस देसकालो हिंडामो, सिद्धत्थो भणइ—अज्ज अम्ह अंतरं, पच्छा सो हिंडेतो पासावच्चिज्जे पासइ, भणइय—के तुज्झे? ते भणंति—अम्हे समणा निग्गंथा, सो भणइ, अहो निग्गंथा, इमो भे एत्तिओ गंथो, कहिं तुब्भे निग्गंथा? सो अप्पणो आयरिए वण्णेति, एरिसो महप्पा, तुब्भेऽत्थ के? ताहे तेहिं भण्णइ—जारिसो तुमं तारिसो धम्मायरिओ ते सयंगहियलिंगो, ताहे सो रुट्ठो मम धम्मायरियं सवहत्ति, जइ मम धम्मायरियस्स अत्थि तवो तो तुज्झं पडिस्सतो डज्झउ, ते भणंति—न तुब्भाणं भणिएणं अम्हे डज्झामो, ताहे सो गतो साहइ सामिस्स—अज्जमए सारंभा सपरिग्गहा समणादिट्ठा, तं सव्वं साहेइ, ताहे सिद्धत्थेण भणितो—ते पासावच्चिज्जा साहू, न ते डज्झंति, ताहे रत्ती जाया, ते मुणिचंदाआयरिया उवस्सयस्स बाहिं पडिमंठिया, सो कुवणतो तद्दिवसं सेणिपुरिसेहिं समं पाऊण वियाले एइ मत्तेल्लतो जाव पासइ तो मुणिचंदायरिए,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो चिंतेइ—चोरत्ति, तेण ते गलए गहिया, ते निरुस्सासा कया, न य झाणातो कंपिया, तेसिं केवलनाणं उप्पण्णं, आउं च निट्ठियं सिद्धो, तत्थ अहासंनिहिएहिं वाणमंतरेहिं महिमा कया, ताहे गोसालो बाहिं ठितो पेच्छइ देवे उप्पयनिवयंते, सो जाणइ—एस सो पडिस्सतो डज्झइ, सो सामिस्स साहेइ—भयवं! तेसिं पडिणीयाणं घरं डज्झइ, सिद्धत्थो भणइ—न तेसिं पडिस्संतो डज्झइ, तेसिं आयरियस्स केवलनाणमुप्पन्नं, सो य सिद्धिं गतो। × × ×।

—आव० निगा ४७६/मलय टीका

(ख) मुणिचंद कुमाराए कूवणय चंपरमणिज्जउज्जाणे।
चोरा चारिअ अगडे सोम जयंती उवसमंति॥

—आव० निगा ४७७

मलय टीका—कुमारा नाम सन्निवेशः, तत्र चंपरमणीये उद्याने भगवान् प्रतिमां प्रतिपन्न, इतश्च मुनिचंद्रो नाम पार्श्वनाथसंतानवर्त्ती आचार्यः, तं कूपनको नाम कुंभकारो मारितवान्, तदनन्तरं भगवान् चोराके सन्निवेशे, चारिकावेताविति गृहीत्वा अवटे-जलरहिते कूपे दवरिकया बद्धौ लम्बमानौ प्रक्षिप्येते, उत्तार्येते च, तत्र सोमाजयन्त्यौ राजपुरुषान् उपशमयतः।

जब भगवान् महावीर छद्मस्थ अवस्था में कुमारसंनिवेश पधारे तब वहाँ चंपकरमणीय उद्यान में प्रतिमा में स्थित हो गये। उस ग्राम में धन-धान्य की समृद्धि वाला कूपन नामक एक कुंभकार रहता था। मदिरा की क्रीडा की तरह उसे मदिरा से अत्यधिक प्रीति थी। उस समय उसकी शाला में मुनिचंद्राचार्य नामक एक पार्श्वनाथ प्रभु के बहुश्रुत शिष्यवर्ग के साथ रहता था। वह स्वयं के शिष्य वर्द्धन नामक सूरि को गच्छ में मुख्य रूप से स्थापित कर जिनकल्प का अति दुष्कर प्रतिक्रम करता था। तप, सत्व, श्रुत, एकत्व और बल—पांच प्रकार की तुलना करने के लिए समाधिपूर्वक उपस्थित हुआ था।

यहाँ गोशालक ने भगवान् को कहा—हे नाथ! इस समय मध्याह्न का समय है—इसलिये ग्राम में भिक्षा के लिए चलना चाहिए। प्रत्युत्तर में भगवान् के शरीर में स्थित सिद्धार्थ देव ने कहा—आज हमारे उपवास है। तत्पश्चात् क्षुधा से व्याकुल गोशालक भिक्षा के लिए ग्राम में गया।

वहाँ चित्र-विचित्र वस्त्र को धारण करने वाले और वस्त्रादि को रखने वाले श्री पार्श्वनाथ के पूर्वोक्त शिष्यों को देखा। उन्हें पूछा—तुम कौन हो? प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा—हम पार्श्वनाथ तीर्थंकर के निर्ग्रन्थ शिष्य हैं। गोशालक ने हंसते-हंसते कहा—मिथ्या भाषण करने वालों को धिक्कार है, तुम वस्त्रादि ग्रन्थि को धारण करने वाले हो। उसके होते हुए तुम निर्ग्रन्थ कैसे हो सकते हो! केवल आजीविका के लिए इस पाखंड मत की कल्पना कर रखी हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः गोशालक ने कहा—मेरे धर्माचार्य भगवान् महावीर जो वस्त्रादिक संग से रहित और शरीर में भी अपेक्षा रहित है। ऐसे निर्ग्रन्थ होने चाहिए।

वे मुनि जिनेन्द्र भगवान् महावीर को नहीं जानते थे—इस कारण गोशालक के ऐसे वचनों को सुनकर बोले—जैसा तुम हो। ऐसे ही तुम्हारे धर्माचार्य होंगे। क्योंकि वे स्वयं की तरह लिंग को ग्रहण करने वाले हैं।

क्षुधातर गोशालक उन मुनियों के वचनों को सुनकर शाप दिया—"यदि मेरे गुरु का तप तेज हो तो यह उपाश्रय जलकर भस्म हो जाना चाहिए।"

प्रत्युत्तर में उन मुनियों ने कहा—तुम्हारे कथन से हम नहीं जलेंगे।

गोशालक अलग होकर भगवान् के पास आकर कहने लगा कि—

९. नंदीषेण—

(क) ××× । ततो भयवंतंबायं नाम गामो, तत्थ आगच्छति, तत्थ नंदिसेणा नाम थेरा बहुस्सुया बहुपरिवारा पासावच्चिज्जा, तेऽवि जिणकप्पस्स परिकम्मं करेंति, सामी बाहिं पडिमं ठितो, गोसालो अतिगतो, तहेव पव्वइए पेच्छइ खिसइ य, ते आयरिया तद्दिवसं चउक्के पडिमंठिया, पच्छा तहिं आरक्खिय-पुत्तेण हिंडंतेण चोरत्तिकाऊण भल्लएणाहया, केवलनाणं, सेसं जहा मुणिचंदस्स जाव गोसालो बोहित्ता आगतो।×××।

मलय टीका—भगवान् तम्बाके नाम ग्रामे गतः तत्र नन्दिषेणाः सूरयस्तेषां चतुष्के प्रतिमा, कायोत्सर्गः, ततः आरक्षिकैर्प्रहणमिति—मारणं।

> **तं बाए नंदीसेणो पडिमा आरक्खि वहण भयउडह णं।**
> **कूविय चारिय मुक्खो विजय पगब्भा य पत्तेअं ॥ ४८४ ॥**
> —आव० निगा ४८३०, ४८४१

(ख) क्रमेण प्रययौ स्वामी तुंबाके सन्निवेशने।
बहिश्चास्थात्प्रतिमया गोशालो ग्राममभ्यगात् ॥ ५७५ ॥
तत्र पार्श्वशिष्यान्नन्दिषणान् वृद्धान् बहुश्रुतान्
परिवारभृतो मुक्त्वा गच्छचिन्तामशेषतः ॥ ५७६ ॥
जिनकल्पप्रतिकर्म प्रपन्नान्मुनिचन्द्रवत्।
दृष्ट्वा जहास गोशालः स्वाम्यभ्यर्णमगात्पुनः ॥ ५७७ ॥
नक्तं चतुष्के ते तस्थुर्नन्दिषेणमहर्षयः।
कायोत्सर्गभृतो धर्मध्यानस्थाः स्थाणुवत्स्थिराः ॥ ५७८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आरक्षेण च दृष्टास्ते चौरभ्रान्त्या च जघ्निरे।
सद्यो जातावधिज्ञाना मृत्वा दिवमुपासदन् ॥ ५७९ ॥

प्रेक्ष्य गोशालकस्तेषां महिमानं कृतं सुरैः।
तच्छिष्याणामुपेत्याऽख्यदुच्चैर्भर्त्सनपूर्वकम् ॥ ५८० ॥

त्रिशलका० पर्व १०/सर्ग ३

भगवान् महावीर साधनाकाल में जब जंबूखंड उद्यान से विहार कर तुंबाक ग्राम पधारे। तब भगवान् ग्राम के बहार प्रतिमा में स्थित हो गये। गोशालक तुंबाक ग्राम में गया। उस ग्राम में बहुश्रुत और अनेक शिष्यों के परिवार से पार्श्वनाथ के शिष्य वृद्ध नंदीषेणाचार्य का पदार्पण हुआ। गच्छ की सर्व चिन्ताओं से मुक्त होकर वे जिनकल्प के प्रतिकर्म को करते थे। गोशालक उनके पास आया तथा हास्य-विनोद कर वापस भगवान् के पास आया।

वे महर्षि नंदीषेण रात्रि में उस ग्राम के किसी चौक में धर्मध्यान करने के लिए कार्यात्सर्ग धारण कर स्तंभ की तरह स्थिर रहे। चोकस करने के लिए निकले हुए आरक्षकों ने उन्हें चोर समझकर भ्रांति से मार डाला। अवधि ज्ञान प्राप्तकर वे देवलोक में उत्पन्न हुए। देवों ने उनका महोत्सव किया। गोशालक वहाँ आकर उनके शिष्यों का पूर्व की तरह तिरस्कार करने लगा।

.१० प्रगल्भा और विजय नाम शिष्या

(क) अथाऽगाद्विहरन् वीरः कूपिकां सन्निवेशनम्।
तत्रारक्षैः सगोशालः स्पशभ्रान्त्या कदर्थितः ॥५८१॥

देवार्यो रूपवान् शान्तो युवारक्षैः स्पशभ्रमात्।
निरागास्ताड्यमानोऽस्तीत्युल्लापापोऽभूज्जनेऽखिले ॥५८२॥

पार्श्वशिष्ये च प्रगल्भाविजये प्रोज्झितव्रते।
निर्वाहाय परिव्राट्त्वं प्रपन्ने तत्र तिष्ठतः ॥ ५८३ ॥

वार्तामाकर्ण्य तां मा भूद्वीरोऽर्हन्निति शंकया।
तत्रेयतुस्तथास्थं च भगवन्तमपश्यताम् ॥ ५८४ ॥

ते स्वामिनं ववन्दाते आरक्षांश्चैवमूचतुः।
रे मूर्खा! किं न जानीथ वीरं सिद्धार्थनन्दनम् ॥ ५८५ ॥

शीघ्रं मुञ्चत चेज्ज्ञाता शक्रो व्यतिकरं ह्यमुम्।
पातयिष्यति वो मूर्ध्नि वज्रं प्राणहरं तदा ॥ ५८६ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुंबाक ग्राम से विहार कर भगवान् कूपिका नामक ग्राम के पास आये। वहाँ आरक्षकों ने प्रच्छन्न चरपन की भ्रांति से गोशाला सहित भगवान् को तंग किया। निरपराधी कोई रूपवान्, शांत और युवान देवार्य को गुप्तचर की भ्रांति से आरक्षक मारते हैं। ऐसा वार्त्तालाप लोकों में प्रसारित किया। उस वार्त्तालाप को श्री पार्श्वनाथ की प्रगल्भा और विजया नाम की दो शिष्या—जो चारित्र को छोड़कर निर्वाहार्थ परिव्राजिका हुई। उस ग्राम में रहती थी उन्होंने सुना।

इस कारण उनके संदेह हुआ कि वीर प्रभु तो नहीं है ऐसा संदेह करती हुई वहाँ आयी।

वहाँ भगवान् को उस स्थिति में देखा। तुरन्त उन्होंने प्रभु को वंदना की और आरक्षकों को कहा कि—"अरे मुर्खों! ये सिद्धार्थ राजा के पुत्र श्री महावीर है। क्या आप नहीं जानते हैं। अब जल्दी उन्हें छोड़ दीजिये—क्योंकि यह खबर जब इन्द्र सुनेगा तब आपके ऊपर प्राण हरण करने वाला वज्र छोड़ेगा।

ऐसा सुनकर उन्होंने भगवान् को छोड़ दिया और बारम्बार क्षमा—याचना की।

(ख) ततो सामी कूवियं नाम संनिवेसं गतो, तत्थ चारियत्तिकाउण घेप्पंति पिट्टिज्जंति य, तत्थ लोगसमुल्लावो—अहो देवज्जगो रूवेण जुव्वणेण य अप्रतिमो चारियत्ति काउं गहितो, तत्थ विजया पगब्भा य दोन्नि पासनाहं तेवासिणीतो परिव्वाइयातो, लोगस्स पासे सोऊण तित्थगरो पव्वइयो वच्चामो ता पलाएमो, को जाणइ होज्जा ?, ताहे तेहिं मोहतो, दुरप्पा न याणह चरमतित्थयरं सिद्धत्थरायपुत्तं, अज्ज ये सक्को उवालभिस्सइत्ति, ताहे मुक्को खामितो य, ततो मुक्का समाणा निग्गया, × × ×

कूविय चारिय मुक्खो विजय पगब्भा य पत्तेअं।

—आव० निगा ४८४

मलय टीका—ततो भगवान् कूपिका नाम संनिवेशस्तं गतः, तत्र चारिकावेतावित्ति ग्रहणं, ततो मोक्षो विजयाप्रगल्भावचनतः

.११ उदक पेढाल पुत्र—भावितिर्थंकर—

एसणं अज्जो! कण्हे वासुदेवे, रामे बलदेवे, उदए पेढालपुत्ते, पुट्टिले, सतए गाहावती, दारुए णियंठे, सच्चई णियंठीपुत्ते, सावियबुद्धे अंब (म्म ?) डे परिव्वायए, अज्जावि णं सुपासा पासावच्चिज्जा। आगमेस्साए उस्सप्पिणीए चाउज्जामं धम्मं पण्णवइत्ता सिज्झिहिंति, बुज्झिहिंति मुच्चिहिंति परिणिव्वाइहिंति सव्वदुक्खाणं अंतंकाहिंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीका—'उदये पेढालपुत्ते' त्ति सूत्रकृतद्वितीयश्रुतस्कंधे नालन्दीयाध्यय-नाभिहितः, तद्यथा--उदकनामाऽनगारः पेढालपुत्रः पार्श्वजिनशिष्यः योऽसौ राजगृहनगरबाहिरिकाया नालन्दाभिधानायाः उत्तरपूर्वस्यां दिशि हस्तिद्वीप-वनखण्डे व्यवस्थितः तदेकदेशस्थं गौतमं संशयविशेषमापृच्छय विच्छिन्न-संशयः सन् चतुर्यामधर्मं विहाय पञ्चयामं धर्मं प्रतिपदे इति।

—ठाण० स्था ६/सू ६१

आर्यो ! १ वासुदेव कृष्ण, २ बलदेव राम, ३ उदकपेढालपुत्र, ४ पोट्टिल, ५ गृहपति शतक, ६ निर्ग्रन्थ दारुक, ७ निर्ग्रन्थीपुत्र सत्यकी, ८ श्राविका के द्वारा प्रतिबुद्ध अम्मड परिव्राजक ९ पार्श्वनाथ की परम्परा में दीक्षित आर्या सुपार्श्वा

ये नौ आगामी उत्सर्पिणी में चतुर्याम धर्म की प्ररूपणा कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त तथा समस्त दुःखों से रहित होंगे।

३—उदक पेढाल पुत्र—इनका मूल नाम उदक और पिता का नाम पेढाल था। ये उदक पेढाल पुत्त के नाम से प्रसिद्ध थे। ये वाणिज्य ग्राम के निवासी थे। ये भगवान् पार्श्व की परम्परा में दीक्षित हुए। एक बार ये नालन्दा के उत्तर-पूर्व दिशा में स्थिति हस्तिद्वीप वनखण्ड में ठहरे हुए थे। इन्हें श्रावक विषय पर विशेष संशय उत्पन्न हुआ। गणधर गौतम से संशय निवारण कर ये चतुर्याम धर्म को छोड़कर पंचयाम धर्म में दीक्षित हो गये।

.१२ चित्ते सारही—(चित्त सारथि)

—राय० सू १५०-१५१

पार्श्वापत्य केशीकुमार से चित्तसारथि ने बारह व्रत धारण किये।

तएणं से चित्ते सारही केसीकुमारसमणस्स अंतिए पंचाणुव्वतियं जाव गिहिधम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरति।

तएणं से चित्ते सारही समणोवासए जाए अहिगयजीवाजीवे उवलद्ध-पुण्णपावे आसवसंवरनिज्जरकिरियाहिगरणबंधमोक्खकुसले असहिज्जे × × ×। निग्गंथे पावयणे णिस्संकिए णिक्कंखिए।

—राय० सू० १५०-१५१

केशीकुमाण श्रमण से चित्त सारथि ने पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत—इस प्रकार बारह प्रकार गृहिधर्म स्वीकृत किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तु चित्त सारथि श्रमणोपासक हुआ। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध और मोक्ष स्वरूप को सम्यग् प्रकार समझने लगा। निर्ग्रन्थ प्रवचन में निशंकित और निकांक्षित होकर रहने लगा।

.१३ गोशालक के शिष्यों के तप—

आजीवियाणं चउव्विहे तवे पण्णत्ते, तंजहा —उग्गतवे, घोरतवे, रसणिज्जूहणता, जिब्भिंदियपडिसंलीणता।

ठाणा० स्था ४/उ२/सू ३५०

आजीविकों के तप के चार प्रकार हैं—

(१) उग्रतप—तीन दिन का उपवास (२) घोरतप, (३) जिह्वेन्द्रिय प्रतिसंलीनता—मनोज्ञ और अमनोज्ञ आहार में रागद्वेष रहित प्रवृत्ति। (४) रसनिर्यूहण—घृत आदि रस का परित्याग।

आजीविक श्रमण परंपरा का एक प्रभावशाली सम्प्रदाय था। उसके आचार्य थे गोशालक। आजीविक भिक्षु अचेलक रहते थे। वे पंचाग्नि तपते थे। वे अन्य प्रकार के कठोर तप करते थे। अनेक कठोर आसनों की साधना भी करते थे।

प्रस्तुत सूत्र में उग्रतप और घोरतप से आजीविकों के तपस्वी होने की सूचना मिलती है। आचार्य नरेन्द्र देव ने लिखा है—बुद्ध आजीविकों को सबसे बुरा समझते थे। तापस होने के कारण इनका समाज में आदर था। लोग निमित्त, शकुन, स्वप्न आदि का फल पूछते थे। रसनिर्यूहण और जिह्वेन्द्रिय-प्रतीसंलीनता—ये दोनों तप आजीविकों के अस्वाद व्रत के सूचक है।

टीका—'आजीविए' त्यादि, 'आजीविकानां' गोशालकशिष्याणां उग्रतपः—अष्टमादि क्वचन 'उदार' मिति पाठः तत्र उदारं-शोभनं इहलोकाद्याशंसारहितत्वेनेति घोरं-आत्मनिरपेक्षं 'रसनिज्जूहणया' घृतादिरसपरित्यागः "जिह्वेन्द्रियप्रतिसंलीनता—मनोज्ञामोज्ञेष्वाहारेषु रागद्वेषपरिहार इति।

.१४ साधुओं की संख्या का विवरण

.१ भगवान् महावीर के १४००० साधुओं की संख्या का लेखा-जोखा—

(क) शतत्रयप्रमा ज्ञेया विभोः पूर्वार्धधारकाः।
सहस्राणि नवैवाथ तथा नवशतान्यपि ॥ २०८ ॥
इति संख्यान्विताः सन्ति शिक्षकाश्चरणोद्यताः।
त्रयोदशशतान्येवः मुनयोऽवधिभूषिताः ॥ २०९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलज्ञानिनः सप्तशतसंख्याश्च तत्समाः ।
मुनयो विक्रियर्द्ध्याढ्याः स्युः शतानि नवास्य च ॥ २१० ॥
चतुर्थज्ञानिनः पूज्याः शतपञ्चप्रमाः प्रभोः ।
चतुःशतप्रमाणा भवन्त्यनुत्तरवादिनः ॥ २११ ॥
सर्वे पिण्डीकृताः सन्ति सहस्राणि चतुर्दश ।
संयताः श्रीवर्धमानस्य रत्नत्रितयभूषिताः ॥ २१२ ॥

—वर्धमानच० अधि १६/श्लो २०८ से २१२

(ख) शतानि त्रीणि पूर्वाणां धारिणः शिक्षकाः परे ।
शून्यद्वितयरन्ध्राद्विरन्ध्रोक्ताः सत्यसंयमाः ॥ ३७५ ॥
सहस्रमेकं त्रिज्ञानलोचनास्त्रिशताधिकम् ।
पञ्चमावगमाः सप्तशतानि परमेष्ठिनः ॥ ३७६ ॥
शतानि नवविज्ञेया विक्रियर्द्धिविवर्द्धिताः ।
शतानि पञ्च संपूज्याश्चतुर्थज्ञानलोचनाः ॥ ३७७ ॥
चतुःशतानि संप्रोक्तास्तत्रानुत्तरवादिनः ।
चतुर्दशसहस्राणि पिण्डिताः स्युर्मुनीश्वराः ॥ ३७८ ॥

—उत्तपु० पर्व ७४/श्लो ३७५ से ३७८

(ग) एयारह गणहर तहो जायइं, इंदभूइ धुरि धरि तणुकायइं
पुव्वहरहँ तिसयइं हय हरिसइं, सिक्खइं णवसयाइं णवसहसइं
अवहिणाणि तेरहसयमुणिवर, तुरियणाणि पंचसय दियंबर
केवलणाणि तच्चसंखासय विक्किरियारिद्धिहरहँ णवसय ।
चारिसयाइं वाइवह कालइं, सयलइं चउदह सहसइं मिलियइं

—वड्ढच० संधि १०/कड ४०

भगवान् महावीर के संघ में ग्यारह सुप्रसिद्ध गणधर हुए। उन सब में इन्द्रभूति गौतम सर्वप्रथम धुरंधर थे। हर्ष राग रहित—गंभीर तीन सौ पूर्वधर थे। नौ हजार नौ सौ शिक्षक (—चरित्र की शिक्षा देनेवाले) थे। तेरह सौ अवधि ज्ञानी मुनिवर तथा पाँच सौ मनः-पर्यव ज्ञानी दिगम्बर मुनि थे। केवल ज्ञानी मुनि तत्त्वशत संख्या अर्थात् सात सौ थे। विक्रिया ऋद्धिधारी मुनि नौ सौ तथा वादि गजेन्द्र (वाद ऋद्धि के धारक) मुनियों की संख्या चार सौ थी। इस प्रकार कुल चौदह सहस्र (एवं ग्यारह) मुनि वीर भगवान के संघ में थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(घ) स-पुव्वंग - धारीण मुक्कावईणं।
पसिद्धाइँ गुत्ती-सयाइं जईणं॥
दहेक्कूणयाइं तहिं सिक्खुयाणं।
समुम्मिल्ल - सव्वावही - चक्खुयाणं॥

घत्ता—मोहें लोहें चत्तउ तिहिं सएहिं संजुत्तउ।
एक्कु सहसु संभूयउ खम-दम-भूसिय-रूवउ॥७॥

पंचेच चउत्थ - णाण - धरहं।
सत्तेव सुकेवलि - जइर - वरहं॥
चत्तारि सयइं वाई - वरहं।
दिय-सुगय-कविल-हरणय हरहं॥

—वीरजि० संधि २/कड ७/८

भगवान् के तीन सौ शिष्य ऐसे थे, जो समस्त पूर्वों एवं अंगों के ज्ञाता थे, सुप्रसिद्ध थे एवं अव्रतों के त्यागी अर्थात् महाव्रती थे। भगवान के नौ सौ शिष्य ऐसे थे जिनके सर्वावधि ज्ञानरूपी चक्षु खुल गये थे अर्थात् जो सर्वावधि ज्ञानधारी थे। भगवान् के संघ में एक हजार तीन सौ ऐसे मुनि भी थे जो मोह और लोभ के त्यागी तथा क्षमा और दम आदि गुणों से भूषित थे।

भगवान् के संघ में पाँच सौ चतुर्थ-ज्ञानधारी अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानी तथा सात सौ केवलज्ञानी थे।

उनके चार सौ ऐसे श्रेष्ठवादी मुनि थे जो द्विज, सुगत (बुद्ध) कपिल और हर (शिव) इनके सिद्धान्तों का खंडन करने में समर्थ थे।

(च) चतुर्दशपूर्वभृतां श्रमणानां शतत्रयम्।
त्रयोदशशत्यवधिज्ञानिनां सप्तशत्यथ॥४३७॥
वैक्रियलब्ध्यनुत्तरगतिकेवलिनां पुनः।
मनोविदां पंचशती वादिनां तु चतुःशती॥४३८॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२

(छ) समणस्सणं भगवओ महावीरस्स तिन्नि सया चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिणो विव अवितहं वागरमाणाणं उक्कोसिया चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था। × × ×। तेरससया ओहिनाणीणं अतिसेसपत्ताणं उक्कोसिया ओहिनाणीणं संपया होत्था। × × ×।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्त सया केवलनाणीणं संभिन्नवरनाणदंसणधराणं उक्कोसिया केवलनाणि संपया होत्था। × × ×। सत्त सया वेउव्वीणं अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं उक्कोसिया विउव्विसंपया होत्था। × × ×। पंचसया विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं जीवाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं उक्कोसिया विउलमई संपया होत्था। × × ×। चत्तारिसयावाईणं सदेवमणुयासुराए परिसाए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था।

—कप्प० सू १३७ से १४२

श्रमण भगवान् महावीर के जिन नहीं होते हुए भी जिनके समान सन्निपात और जिनकी तरह सच्चा स्पष्टीकरण करने वाले तीन सौ चतुर्दश पूर्वों के ज्ञाता थे। विशेष प्रकार की लब्धि वाले तेरह सौ अवधि ज्ञानी थे। संपूर्ण ज्ञान और दर्शन को प्राप्त सातसौ केवल ज्ञानी थे। सातसौ वैक्रियलब्धिधारी थे। पाँच सौ विपुलमति मनः पर्यव ज्ञानी थे। तथा चार सौ वादी थे।

.१४ (क) गण और गणधर

से जहाणामए अज्जो! मम णव गणा एकारस गणधरा। एवामेव महापउमस्सवि अरहतो— णव गणा एगारस गणधरा। भविस्संति।

—ठाण० स्था ६/६२/८७१

आर्यो! भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे।

.१५ तीर्थोत्पत्ति—

(क) एत्थावसप्पिणीए चउत्थकालस्स चरिमभागम्मि।
तेत्तीस वास अडमासपण्णदसदिवससेसम्मि।
वासस्स पढममासे सावणणामम्मि बहुलपडिवाए।
अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्म तित्थस्स।
सावण बहुले पाडिवरुद्दमुहुत्ते सुहोदये रविणो।
अभिजिस्स पढमजोए जुगस्स आदी इमस्स पुढं।

—तिलोप० अधि १/गा ६८-७०

इस अवसर्पिणी काल के चतुर्थ काल के अन्तिम भाग में तेंतीस वर्ष, आठ मास और पंद्रह दिन शेष रहने पर वर्ष के प्रथम मास श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन अभिजित् नक्षत्र के समय धर्म-तीर्थ की उत्पत्ति हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) एदस्स भरहखेत्तस्स ओसप्पिणीए चउत्थे दुस्समसुसमकाले णवहि दिवसेहि छहमासेहि य अहिय तेंतीसवासावसेसे तित्थोप्पत्ति जादा।

—कसापा० भाग १/पृ० ७४—जयधवला टीका

इस भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के चौथे दुःषमा-सुषमा काल में नौ दिन और छह मास से अधिक तेतीस वर्ष अवशेष रहने पर धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई।

हरिवंश पुराणकार आचार्य जिनसेन ने श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन—प्रातःकाल अभिजित् नक्षत्र के समय भगवान् महावीर की दिव्यध्वनि प्रगट होने का उल्लेख किया है। यथा—

(ग) स दिव्यध्वनिना विश्वसंशयच्छेदिना जिनः।
दुन्दुभिध्वनिधीरेण योजनानन्तरयायिना॥
श्रावणस्यासिते पक्षे नक्षत्रेऽभिजिति प्रभुः।
प्रतिपद्यह्नि पूर्वाण्हे शासनार्थमुदाहरत्॥

—हरिवंश पुराण, सर्ग २-श्लो ६०/६१

इस प्रकार दिगम्बर मतानुसार भगवान् महावीर को केवल ज्ञान उत्पन्न होने के छयासठ दिन बाद—श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को तीर्थोत्पत्ति हुई।

.१६ श्रमण भगवान् महावीर की जीवन-झांकी

.१ से जहाणामए अज्जो! अहं तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, दुवालस संवच्छराइं तेरस पक्खा छउमत्थपरियागं पाउणित्ता तेरसहिं पक्खेहिं ऊणगाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिज्झिस्सं बुज्झिस्सं मुच्चिस्सं परिणिव्वाइस्सं सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सं।

—ठाण० स्था ६/सू ६२/पृ० ८७१

आर्यो! मैं तीस वर्ष तक गृहस्थावास में रहकर, मुंड होकर, अगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुआ। मैंने बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक छद्मस्थ पर्याय का पालन किया। तीस वर्षों में तेरह पक्ष कम काल तक केवली-पर्याय का पालन किया। इस प्रकार बयालीस वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, बहत्तर वर्ष की पूर्णायु पालक कर, सिद्ध में बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त होऊँगा और समस्त दुःखों का अन्त करूँगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.२ धर्म-देशना

(क) भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ। सावि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पय-चउप्पय-मिय-पसु - पक्खि - सिरीसिवाणं अप्पणो हिय - सिवसुहदाभासत्ताए परिणमइ।

—सम० सम ३४

तीर्थंकर अर्द्धमागधी भाषा में धर्म का आख्यान करते हैं। उनके द्वारा भाष्यमान अर्द्धमागधी भाषा, आर्य, अनार्य, द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु-पक्षी तथा सरिसृप प्रभृति जीवों के लिए कल्याण और सुख के लिए उनकी अपनी-अपनी भाषाओं में परिणत हो जाती है।

(ख) समणे भगवं महावीरे कूणियस्स रण्णो भिंभसार पुत्तस्स × × × सारयनवत्थणियमहुरगंभीर-कोंचणिग्घोसदुंदुभिस्सरे उरेवित्थडाए कंठेवट्टियाए सिरे समाइण्णाए अगरणाए अमम्मणाए सुव्वत्तक्खरसण्णिवाईयाए पुणरत्ताए सव्वभासाणुगामणिए सरस्सईए जोयणणीहारिणासरेणं अद्धमागहाए भासाए भासति-अरिहा धम्मं परिकहेति। तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अगिलाए धम्म-माइक्खति। सावि य णं अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरिय-मणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमइ।

ओव० सू० ७१

तब भगवान् महावीर अनेकविध परिषद्-परिवृत्त (श्रेणिक) बिम्बिसार के पुत्र कूणिक (अजातशत्रु) के समक्ष शरद् ऋतु के नव स्तनित—नूतन मेघ के गर्जन के समान मधुर तथा गम्भीर, क्रौंच पक्षी के घोष के समान सुखर, दुन्दुभि की ध्वनि की तरह हृद्य वाणी से, जो हृदय में विस्तार पाती हुई, कण्ठ में वर्तुलित होती हुई तथा मस्तक में आकीर्ण होती हुई व्यक्त, पृथक्-पृथक् स्पष्ट अक्षरों में उच्चारित, मम्मणा—अव्यक्त वचनता रहित, सर्वाक्षर समन्वय युक्त, पुण्यानुरक्त, सर्वभाषानुगामिनी, योजन पर्यन्त श्रूयमाण अर्द्धमागधी भाषा में बोलते हैं, धर्मका परिकथन करते हैं।

भगवान् वहाँ उपस्थित सभी आर्यों, अनार्यों को अग्लान रूप में धर्म का उपदेश करते हैं। वह अर्द्धमागधी भाषा उन सभी आर्यों, अनार्यों की अपनी-अपनी भाषाओं में परिणत हो जाती है।

(ग) सर्वार्धमागधीं सर्व-भाषासु परिणामिनीम्।
सार्वीयां सर्वतोवाचं सार्वज्ञीं प्रणिदध्महे॥

—अलंकार तिलक, १.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम उस अर्द्धमागधी भाषा का आदरपूर्वक-ध्यान-स्तवन करते हैं, जो सबकी है, सर्वज्ञों द्वारा व्यवहृत है, समग्र भाषाओं में परिणत होने वाली है, सार्वजनीन है, सब भाषाओं का स्रोत है।

(ख) विहरन भगवान् वीरो ययौ राजगृहेऽन्यदा ॥२५॥

× × ×

एवमाख्याय भगवान् सर्वभाषाजुषा गिरा।
विदधे दुरितप्रत्यादेशनीं धर्मदेशनाम् ॥५८॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

राजगृह में प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का प्रश्नोत्तर के उपरांत भगवान् ने सर्वभाषानुसारी वाणीसे पाप को नाश करने वाली धर्म देशना दी।

.३ भगवान् महावीर और आगम

.१ समणे भगवं महावीरे अंतिमराइयंसि पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाण-फलविवागाइं, पणपन्नं अज्झयणाणि पावफलविवागाणि वागरित्ता सिद्धे बुद्धे-जाव प्पहीणे।

सम० सम ५५

श्रमण भगवान महावीर अंतिम रात्रि में पंचावन अध्ययन पुण्यफल के विपाक वाले और पंचावन अध्ययन पाप-फल के विपाकवाले प्ररूपित कर सिद्ध हुए, बुद्ध हुए यावत् सर्व दुःखों से रहित हुए।

.२ आयारस्स णं भगवतो सचूलिआगस्स अट्ठारस पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं।

—सम सम० १८/सू ४/पृ० ८५३

टीका—यच्च सचूलिकाकस्येति विशेषणं तत्तस्य चूलिकासत्ताप्रतिपादनार्थं, न तु पदप्रमाणाभिधानार्थं, यतोऽवाचि नन्दीटीका कृता—'अट्ठारसपयसहस्साणि पुणपढमसुयखंधस्स नवबंभचेरमइयस्स पमाणं, विचित्तत्थाणि य सुत्ताणि गुरुवएसओ तेसिं अत्थो जाणियव्वोत्ति, पदसहस्राणीह यत्रार्थोपलब्धिस्तत्पदं, 'पदाग्रेणे'—ति पदपरिमाणेनेति।

चूलिका सहित आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के पद के परिमाण अठारह हजार हैं।

चूलिका सहित आचारांग नामक प्रथम अंग अर्थात् आचारांग नामक श्रुतस्कंध है उसमें दूसरे श्रुतस्कंध में पिंडेषणा (अध्ययन) आदि पाँच चूला है और प्रथम श्रुतस्कंध मे नव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य नामक अध्ययन है---अस्तु प्रथम श्रुतस्कंध की ही पदों की संख्या १८००० कही है परन्तु चूलिका के पद की संख्या नहीं कही है। जैसे कहा है—'नव ब्रह्मचर्य अध्ययन रूप वेद (आचारांग) के अठारह हजार पद ही जाते हैं। और उसकी पाँच चूलिका को साथ लेकर बहुत पद हो जाते हैं।

यहाँ मूल सूत्र के "चूलिका सहित आचारांग सूत्र के, ऐसा विशेषण देकर चूलिका भी साथ में गिनती है। मात्र आचारांग सूत्र चूलिका सहित है, चूलिका रहित नहीं है। अस्तु चूलिका की सत्ता जानने के लिए है।

परन्तु पद का परिमाण कहने के लिए नहीं है जैसा कि नन्दी सूत्र में कहा है—"नव ब्रह्मचर्य रूप श्रुतस्कंध का प्रमाण १८००० पद है। सूत्रों का अर्थ विचित्र प्रकार का होता है अतः उसका अर्थ गुरू के उपदेश से जानने योग्य है।

.३ समणे भगवं महावीरे एगदिवसेणं एगनिसेज्जाए चउप्पन्नाइं वागरणाइं वागरित्था।

—सम० सम० ५४/सू ३/पृ ८८६

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी एक ही दिन एक ही आसन पर बैठकर चोपन व्याकरण प्रश्नोत्तर कहे थे।

नोट—किसी का प्रश्न हो फिर उसका उत्तर रूप है उसे व्याकृतवान् कहा है।

४. समणेणं भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं सखुड्डयविअत्ताणं अट्ठारस ठाणा पन्नत्ता, तंजहा-संगहणी-गाहा।

वयछक्कं कायछक्कं, अकप्पो गिहिभायणं।
पलियंक निसिज्जाय, सिणाणं सोभवज्जणं॥

—सम० सम १८/सू ३/पृ० ८५३

टीका—'सखुड्डगवियत्ताणं' त्ति सह क्षुद्रकैर्व्यक्तैश्च ये ते सक्षुद्रकव्यक्ताः तेषां, तत्र क्षुद्रका—वयसा श्रुतेन वाऽव्यक्ताः, व्यक्तास्तु ये वयः श्रुताभ्यां परिणताः, स्थानानि—परिहारसेवाश्रय वस्तूनि 'व्रतषट्कं' महाव्रतानि रात्रिभोजन-विरतिश्च 'कायषट्कं' पृथिवीकायादि, अकल्पः-अकल्पनीयपिण्डशय्या-वस्त्रपात्ररूपः पदार्थः, 'गृहिभाजनं' स्थाल्यादिः पर्यंको—मंचकादि निषद्या-स्त्रिया सहासनं 'स्नानं' शरीरक्षालनं 'शोभावर्जनं' प्रतीतं।

श्रमण भगवान् महावीर ने बाल-स्थविर आदि सर्व साधुओं के आचार के अठारह स्थान कहे हैं, यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१ से ६—छह व्रत अर्थात् अहिंसादि पाँच महाव्रत और रात्रि भोजन की विरति ।
७ से १२—कायषट्क—पृथ्वीकाय, अप्काय आदि छह काय की रक्षा ।
१३—अकल्प्य वस्त्र-पात्रादि
१४—गृहस्थ का पात्र
१५—पर्यंक-पलंग
१६—निषद्या—स्त्री के साथ बैठना
१७—स्नान न करना
१८—शोभा-विभूषाका परिहार
इन अठारह स्थानों का परिहार करना ।

५. भगवान महावीर और पंच महाव्रत कीभावना

·१ पुरिमपच्छिमताणं तित्थगराणं पंचजामस्स पणवीसं भावणाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

(१) इरियासमिई, (२) मणगुत्ती, (३) वयगुत्ती, (४) आलोयभायण-भोयणं, (५) आदाण-भंड-मत्त-निक्खेवाणासमिई ।

(१) अणुवीति-भासणया, (२) कोहविवेगे, (३) लोभविवेगे, (४) भयविवेगे, (५) हासविवेगे ।

(१) उग्गह-अणुण्णवणता, (२) उग्गह-सीमजाणणता, (३) सयमेव उग्गह-अणुगेण्हणता, (४) साहम्मियउग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणता, (५) साधारण-भत्तपाणं अणुण्णवियपरिभुंजणता ।

(१) इत्थी-पसु-पंडग-संसत्तसयणासणवज्जणया, (२) इत्थी-कहविवज्जणया, (३) इत्थिइंदियाण-आलोयण-वज्जणया, (४) पुव्वरय-पुव्वकीलिआणं अणणु-सरणया, (५) पणीताहारविवज्जणया ।

(१) सोइंदियरागोवरई, (२) चक्खिंदियरागोवरई, (३) घाणिंदियरागो-वरई, (४) जिब्भिंदियरागोवरई, (५) फासिंदियरागोवरई ।

समः सम २५ सू०/१

टीका—तत्र 'पंचजामस्स' त्ति पंचानां यामानां-महाव्रतानां समाहारः पंचयामं तस्य 'भावनाओ' त्ति प्राणातिपातादिनिवृत्तिलक्षणमहाव्रतसंरक्ष-णाय भाव्यन्ते इति भावना—स्ताश्च प्रति महाव्रत पंचपंचेति, तत्रेर्यासमि-त्याद्याः पंच प्रथमस्य महाव्रतस्य तत्रालोकभाजनभोजनं—आलोकनपूर्वं भाजने-पात्रे भोजनं-भक्तादेरभ्यवहरणम्, अनालोक्यभाजन-भोजनेहि प्राणिहिंसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभवतीति, तथा अनुविचिन्त्य—भाषणतादिका द्वितीयस्य, तत्र विवेकः-परित्यागः तथा अवग्रहानुज्ञापनादिकास्तृतीयस्य, तत्रावग्रहानुज्ञापना १ तत्र चानुज्ञाते सीमापरिज्ञानं २, ज्ञातायां च सीमायां स्वयमेव 'उग्गहण' मिति अवग्रहस्याऽनुग्रहणता पश्चात् स्वीकरणमवस्थानमित्यर्थः ३, साधर्मिकाणां-गीतार्थसमुदायविहारिणां संविग्नानामवग्रहो मासादिकालमानतः पंचक्रोशादि-क्षेत्ररूपः साधर्मिकावग्रस्तं तानेवाऽनुज्ञाप्य तस्यैव परिभोजनता-अवस्थानं साधर्मिकाणां क्षेत्रे वसतौ वा तैरनुज्ञाते एव वस्तव्यमिति भावः ४, साधारणं-सामान्यं यद्--भक्तादि तदनुज्ञाप्याचार्यादिकं तस्य परिभोजनं चेति ५।

तथा स्त्र्यादिसंसक्तशयनादिवर्जनादिकाश्चतुर्थस्य, प्रणीताहारः अतिस्नेहवानिति।

तथा श्रोत्रेन्द्रियपरत्यादिकाः पंचमस्य, अयमभिप्रायो—यो यत्र सजति तस्य तत्परिग्रहः इति, ततश्च शब्दादौ रागंकुर्वता ते परिगृहीता भवन्तीति परिग्रह-विरतिर्विराधिता भवति, अन्यथा त्वाराधितेति वाचनान्तरे आवश्यकानुसारेण दृश्यन्ते।

पहले तीर्थंकर तथा अंतिम तीर्थंकर=(भगवान् ऋषभदेव तथा भगवान् महावीर) के समय-काल में पंच महाव्रतों की पच्चीस भावनायें कही है।

यथा— १—ईर्यासमिति
२—मनगुप्ति
प्रथम महाव्रत ३—वचन गुप्ति
४—पात्र में देखकर भोजन करना (एषणा समिति)
५—आदानभांडपात्र निक्षेपणा समिति
६—विचार पूर्वक बोलना
७—क्रोध का त्याग
द्वितीय महाव्रत ८—लोभ का त्याग
९—भय का त्याग
१०—हास्य का त्याग
११—अवग्रह की अनुज्ञा लेनी—याचना करनी।
१२—अवग्रह की सीमा को जानना
१३—स्वयं अवग्रहण का अनुग्रहण करना
तीसरा महाव्रत १४—साधार्मिक के अवग्रह को उसकी आज्ञा लेकर परिभोग करना
१५—साधारण भात-पानी का परिभोग गुर्वादिक की अनुज्ञा लेकर करना।
१६—स्त्री, पशु या नपुंसक अधिष्ठित शयन-आसन का वर्जन करना
१७—स्त्री, कथा का वर्जन करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ महाव्रत १८—स्त्री की इन्द्रियों (अवयव) को देखने का वर्जन करना
१९—पूर्वरत (मैथुन) का और पूर्व की क्रीड़ा का स्मरण न करना
२०—प्रणीत (रस सहित) आहार का वर्जन करना
२१—श्रोत्रेन्द्रिय के राग का त्याग
पंचम महाव्रत २२—चक्षुरिन्द्रिय के राग का त्याग
२३—घ्राणेन्द्रिय के राग का त्याग
२४—जिह्वेन्द्रिय के राग का त्याग
२५—स्पर्शेन्द्रिय के राग का त्याग

टीकार्थ—पंचयाम अर्थात् महाव्रतों का समुदाय—पंचयाम कहा जाता है। उन पांच महाव्रतों की भावनायें—प्राणातिपातादि की निवृत्ति रूप पाँच महाव्रतों के रक्षण के लिए जो भावना की जाती है उसे भावना कहते हैं। और वे भावनायें प्रत्येक महाव्रत की पाँच-पाँच है।

१—उनमें ईर्या समिति आदि पाँच भावनायें प्रथम महाव्रत की है। उनमें चतुर्थ भावना—'आलोकभाजनभोजन, अर्थात् देखकर भाजन में अर्थात् पात्र में भोजन—भात-पानी का आहार करना। क्योंकि देखे बिना भाजन में जो भोजन करने में आता है तो उससे प्राणी की हिंसा संभव है।

तथा विचार कर बोलना आदि दूसरे महाव्रत की पाँच भावनायें हैं। उनमें विवेक अर्थात् त्याग करना—ऐसा अर्थ है। तथा अवग्रह की अनुज्ञापना (जानना) आदि तीसरे व्रत की पाँच भावनायें हैं। उनमें १—प्रथम—अवग्रहानुज्ञापना अर्थात् अवग्रह की अनुज्ञा लेनी। उनके स्वामी के पाससे अवग्रह मांग लेना।

२—अवग्रह की अनुज्ञा करने के बाद उसकी सीमाहद का जानना—दूसरी भावना।

३—सीमा जानने के बाद स्वयं ही उग्गहणं इति अर्थात् अवग्रह को ग्रहण करना अर्थात् बाद में स्वीकार कर उसमें रहना—तीसरी भावना।

४—साधार्मिक अर्थात् गीतार्थ समुदाय में विचरते हुए संविग्न साधुओं का अवग्रह कि जो एक मास आदि काल के प्रमाण थे पाँच गाउ आदि प्रमाण के क्षेत्रवाला साधार्मिक का अवग्रह होता है वही साधार्मिक की अनुज्ञा लेकर उनकाही भोग करना अर्थात् वहाँ ही रहना अर्थात् साधार्मिक के क्षेत्र में वसति में उनकी अनुज्ञा लेकर ही रहना-चतुर्थ भावना।

५—तथा जो सामान्य भक्तादिक आया हुआ हो—वह आचार्यादिकी भी आज्ञा लेकर आहार करना—पाँचवीं भावना।

तथा स्त्री आदि संबंध वाले आसन, शयनादिक का त्याग करना—चतुर्थ व्रत की भावना है।

उनमें प्रणीत आहार—अति स्नेह वाला जानना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा श्रोत्रेन्द्रिय के राग का त्याग करना आदि पाँच भावनायें पाँचवें महाव्रत की कही है। उसका भाव अर्थ यह है—

जो जीव जिस पदार्थ में आसक्त होता है उस जीव को उसका परिग्रह लगता है। इस कारण शब्दादिक से राग करने वाला जीव उस शब्दादिक का परिग्रह किया हुआ कहा जाता है। इस कारण परिग्रह विरति की विराधना हुई कही जाती है। अन्यथा शब्दादिक में राग न किया हो उस व्रत की आराधना हुई कही जाती हैं।

नोट—ये सर्व भावनायें वाचनांतर में आवश्यक सूत्र के अनुसार देखी जाती है अर्थात् आवश्यक सूत्र में ये भावनायें वाचनांतर की तरह कही है।

.५ कपरिषह—

उदिता परीसहा सिं पराइया ते य जिणवरिंदेहिं ॥

—आव० निगा २५७/पूर्वार्ध

टीका—उदिताः परीषहाः—शीतोष्णादयः एषां—भगवतां तीर्थंकृतां, परते परीषहाः सर्वेऽपि जिनवरेन्द्रैः पराजिताः।

सर्व तीर्थंकरों ने शीतोष्णादि सब परीषह को पराजित किया।

.६ स्वयंबुद्ध—

सव्वेऽवि सयंबुद्धा लोगंतियबोहिया य जीयंति ॥

—आव० निगा २३४

टीका—सर्वं एव तीर्थंकृतः स्वयंबुद्धा वर्त्तन्ते, तथापि लोकान्तिक-देवानामियं स्थितिर्यदुत स्वयंबुद्धानपि भगवतो बोधयन्ति, ततो जीतमिति-कल्प इति कृत्वा लोकान्तिकदेवैर्बोधिताः सन्तो निष्क्रामन्ति।

सर्व तीर्थंकर स्वयंबुद्ध होते हैं तथापि लोकान्तिक देव स्वयंबुद्ध भगवान् को प्रतिबोधित करते हैं। यह जीत व्यवहार है।

.७ उपधि तथा लिंग—

सव्वेऽवि एगदूसेण निग्गया जिणवरा चउव्वीसं।
न य नाम अन्नलिंगे न य गिहिलिंगे कुलिंगे वा ॥

—आव० निगा २४६

टीका—'एगदूष्येण' एकेन वस्त्रेण निर्गता—अभिनिष्क्रांताः तद्यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवन्तोऽप्येकदूष्येण निर्गता इति सोपधयोऽभवन् × × ×, तत्र सर्वं एव तीर्थंकृतस्तीर्थंकरलिङ्ग एव निष्क्रांता, न तु नाम अन्यलिङ्गे—गृहिसाधुलिङ्गे कुलिङ्गे वा, अन्यलिङ्गाद्यर्थः प्रागेवाभिहितः ।

सर्व तीर्थंकर (ऋषभनाथ यावत् वर्धमान) एक देवप्रदत्त—वस्त्र को धारण कर दीक्षा ग्रहण करते हैं तथा सर्व तीर्थंकर लिङ्ग से ही दीक्षित होते हैं, अन्यलिंगी, गृहलिंगी—कुलिंगी नहीं होते हैं ।

.८ भगवान् का रोग और लोकोपवाद—

(क) तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कदायि सावत्थीओ णयरीओ कोट्टयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ १४३ ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं मेंढियगामे णामं णगरे होत्था, वण्णओ । तस्स णं मेंढियगामस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए एत्थणं साणकोट्ठए णामं चेइए होत्था, वण्णओ जाव पुढविसिलापट्टओ ॥ १४४ ॥

तस्सणं साणकोट्ठगस्स चेइयस्स अदूरसामंते, एत्थणं महेगे मालुया-कच्छए यावि होत्था, किण्हे किण्होभासेजाव महामेहणिकुरंबभूए, पत्तिए पुप्फिए, फलिए, हरियगरेरिज्जमाणे, सिरीए अईव-अईव उवसोभेमाणे चिट्ठइ ॥ १४४ ॥

तत्थणं मेंढियगामे णयरे रेवई णामं गाहावइणी परिवसइ, अड्ढा जाव बहुजणस्स अपरिभूया ॥ १४४ ॥

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयायि पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव जेणेव मेंढियगामे णयरे जेणेव साणकोट्ठए चेइए जाव परिसा पडिगया ॥ १४५ ॥

—भग० श १५/सू १४३ से १४५

किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान से निकलकर अन्य देशों में विचरने लगे । उस काल उस समय में मेंढिक नामक नगर था । (वर्णन) उस मेंढिक ग्राम नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में शालकोष्ठक नामक उद्यान था (वर्णन) यावत् पृथ्वीशिलापट्ट था । उस शाल-कोष्ठक उद्यान के निकट एक मालुका (एक बीज वाले वृक्षों का वन) महाकच्छ था । वह श्याम, श्याम कांतिवाला यावत् महामेघ के समूह के समान था । वह पत्र, पुष्प, फल और हरितवर्ण से देदीप्यमान और अत्यन्त सुशोभित था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस मेंढिक ग्राम नगर में रेवती नाम की गाथापत्नी रहती थी। वह आढ्य यावत् अपरिभूत थी।

अन्यदा श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से विहार करते हुए मेंढिक ग्राम नगर के बाहर शालकोष्ठक उद्यान में पधारे।

यावत् परिषद् वंदना करके लौट गई।

(ख) तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगंसि विपुले रोगायंके पाउब्भूए, उज्जले जाव दुरहियासे, पित्तज्जरपरिगयसरीरे, दाहवक्कंतीए यावि विहरइ, अवियाइं लोहियवच्चाइं पि पकरेइ, चाउवण्णं च णं वागरेइ—"एवं खलु समणे भगवं महावीरे गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करिस्सइ ॥ १४६ ॥

—भग० श १५/सू १४६

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के शरीर में महा पीड़ाकारी अत्यन्त दाह करने वाला यावत् कष्ट पूर्वक सहन करने योग्य तथा जिसने पित्त ज्वर के द्वारा शरीर को व्याप्त किया है एवं जिससे अत्यन्त दाह होता है—ऐसा रोग उत्पन्न हुआ। उस रोग के कारण रक्त-राद (पीब) युक्त दस्त लगने लगे। भगवान् के शरीर की ऐसी दशा जानकर चारों वर्ण के मनुष्य इसप्रकार कहने लगे—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, गोशालक के तपतेज में पराभूत पित्त-ज्वर और ज्वर से पीड़ित होकर छह मास के अंत मे छदमस्थ अवस्था में मृत्यु प्राप्त करेंगे।

(ग) रेवती गाथापत्नी—

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कदायि सावत्थीओ नयरीओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। ×××॥१४३॥

तत्थणं मेंढियगामे णयरे रेवती नामं गाहावइणी परिवसइ, अड्ढाजाव अपरिभूया। तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कदायि पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे-जाव जेणेव मेंढियगामे णयरे जेणेव साणकोट्ठए चेइए जाव परिसा पडिगया। ××× १४४, १४५।

तं गच्छह णं तुमं सीहा! मेंढियगामं णयरं, रेवईए गाहावइणीए गिहं, तत्थणं रेवईए गाहावइणीए ममं अट्ठाए दुवे 'कवोयसरीरा' उवक्खडिया, तेहिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नो अट्ठो, अत्थि से अण्णे पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए, तमाहराहि, एएणं अट्ठो। ××× १५२।

तएणं से सीहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समणे हट्ठ-तुट्ठ जाव हियए समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता अतुरियमचवलमसंभंत×××तेणेव × × × उवागच्छित्ता मेंढियगामं णयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव रेवईए गाहावइणीए गिहे तेणेव उवागच्छइ। ×××१५३।

तएणं सा रेवई गाहावइणी सीहं अणगारं एवं वयासी—केस णं सीहा! से णाणी वा तवस्सी वा, जेण तव एस अट्ठे मम ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए, जओणं तुमं जाणासि? एवं जहा खंदए जाव जओणं अहं जाणामि। १५६-१५७।

तएणं सा रेवई गाहावइणी सीहस्स अणगारस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ-तुट्ठा जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पत्तगं मोएइ, मोएत्ता जेणेव सीहे अणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सीहस्स अणगारस्स पडिग्गहगंसि तं सव्वं सम्मं णिस्सिरइ?। १५८।

तएणं तीए रेवईए गाहावईणीए तेणं दव्वसुद्धेणं जाव दाणेणं सीहे अणगारे पडिलाभिए समाणे देवाउए णिबद्धे, जहा विजयस्स जाव जम्मजीवियफले रेवईए गाहावइणीए रेवई।१५९।

—भग० श १५/सू १४३ से १४५, १५२-१५८

(लगभग छप्पन वर्ष की अवस्था में) किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान से निकलकर अन्य देशों में विचरने लगे।

उस समय मेंढिक ग्राम नगर में रेवती नाम की गाथापत्नी रहती थी। वह आढ्य यावत् अपरिभूत थी। अन्यदा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम से विहार करते हुए मेंढिक ग्राम नगर के बाहर शाल-कोष्ठक उद्यान में पधारे, यावत् परिषद् वंदन करके लौट गई।

सिंह! तू मेंढिक ग्राम नगर में रेवती गाथापत्नी के घर जा। उस रेवती गाथापत्नी ने मेरे लिए दो कोहला के फलों को संस्कारित कर तैयार किया है। उनसे मुझे प्रयोजन नहीं है, परन्तु उसके वहाँ मार्जार नामक वायु को शांत करनेवाला बिजोरापाक जो कल तैयार किया हुआ है, उसे ला। वह मेरे लिए उपयुक्त है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आदेश को पाकर सिंह अनगार प्रसन्न एवं संतुष्ट यावत् प्रफुल्लित हुए और भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करके त्वरा, चपलता और उतावल से रहित रेवतीगाथापत्नी के घर पहुँचे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रेवती गाथापत्नी ने सिंह अनगार की बात सुनकर कहा—"हे सिंह! ऐसे कौन ज्ञानी और कौन तपस्वी है, जिन्होंने मेरी यह गुप्त बात जानी और तुझे कही, जिससे कि तुम जानते हो। भगवान के कहने से मैं जानता हूँ—ऐसा सिंह अनगार ने कहा—सिंह अनगार की बात सुनकर रेवती गाथापत्नी अत्यन्त हृष्ट और संतुष्ट हुई। उसने रसोई घर में आकर पात्र खोला और सिंह अनगार के निकट आकर वह सारा पाक उनके पात्र में डाल दिया। रेवती गृहपत्नी के द्रव्य की शुद्धि युक्त प्रशस्त भावों से दिये गये दान से सिंह अनगार को प्रतिलाभित करने से रेवती गाथापत्नी ने देव का आयुष्य बांधा। रेवती ने जन्म और जीवन का फल प्राप्त किया है—ऐसा उद्‌घोषणा हुई।

.६ भगवान् का आहार

१. बाल्यभाव में आहार

आहारमंगुलिए विहिंति देवा मणुण्णंतु।

—आव० निगा १८५/उत्तरार्ध

टीका—सर्वतीर्थंकरा एव बालभावे वर्त्तमाना न स्तन्योपभोगं कुर्वन्ति, किन्त्वाहाराभिलाषे सति स्वामंगुलिं वदने प्रक्षिपन्ति, तस्यांमंगुल्यामाहारं नानारससमायुक्तं मनोज्ञं देवाः स्थापयन्ति, तत आह— × × ×। अतिक्रांतबालभावास्तु सर्वेऽपि तीर्थंकृतोऽग्निपक्वमाहारं गृह्णन्ति,

सर्व तीर्थंकर बालभाव में वर्त्तमान में स्तन का उपभोग नहीं करते हैं किन्तु आहार की अभिलाषा होने पर स्वयं की अंगुलिको चूसते हैं। उस अंगुलि में देव नानारस से समायुक्त कर देते हैं। बालभाव के व्यतीत होनेपर सर्व तीर्थंकर अग्नि से पकाये हुए आहार का सेवन करते हैं।

.२ केवली अवस्था में आहार—

जिस समय स्कंदक परिव्राजक ने भगवान को देखा उस समय का विवेचन—भगवान् व्यावृत्तभोजी थे।

तए णं से भगवं गोयमे खंदएणं कच्चायणसगोत्तेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वियट्टभोई यावि होत्था। तएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्टभोइस्स सरीरयं ओरालं सिंगारं कल्लाणं सिवं धन्नं मंगल्लं अणलंकिय-विभूसियं लक्खण-वंजण-गुणोववेयं सिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणं चिट्ठइ।

—भग० श २/उ१/सू ४० से ४२

टीका—वियट्टभोइ-व्यावृत्ते व्यावृत्ते सूर्ये भुङ्क्ते इत्येवंशीलो व्यावृत्तभोजी—प्रतिदिन भोजी इत्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम स्वामी स्कंदक परिव्राजक के साथ—जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे—वहाँ जाने लगे। उस समय श्रमण भगवान् व्यावृत्तभोजी (प्रतिदिन भोजन करने वाले) थे। इसलिए उनका शरीर उदार, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, बिना अलंकार के ही शोभित, उत्तम लक्षण व्यंजन और गुणों से युक्त था। और अत्यन्त शोभित हो रहा था।

सूर्य के वापस लौटने पर आहार लेने अर्थात् प्रतिदिन आहार करने वाले जिस समय स्कंदक परिव्राजक ने भगवान् को देखा—उन दिनों भगवान् उपवास आदि तपस्या नहीं करते थे। किन्तु प्रतिदिन आहार करते थे।

.१० भगवान् महावीर का श्रमणों से प्रश्न—

अज्जोति! समणे भगवं महावीरे गोतमादी समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी-किं भया पाणा? समणाउसो!

गोतमादी समणा णिग्गंथा समणं भगवं महावीरं उवसंकमंति, उवसंकमित्ता वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—णो खलु वयं देवाणुप्पिया! एयमट्ठं जाणामो वा पासामो वा। तंजदि णं देवाणुप्पिया! एयमट्ठं णो गिलायंति परिकहित्ताए, तमिच्छामो णं देवाणुप्पियाणं अंतिए एयमट्ठं जाणित्तए।

अज्जोति! समणे भगवं महावीरे गोतमादी समणे णिग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी—दुक्खभया पाणा समणाउसो!

सेणं भंते! दुक्खे केण कडे!
जीवेणं कडे पमादेणं
से णं भंते! दुक्खे कहं वेइज्जति?
अप्पमाएणं।

—ठाण० स्था ३/उ२/सू ३३६

आर्यों! श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को आमंत्रित कर कहा—आयुष्मान्! श्रमणो! जीव किससे भय खाते हैं? गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् महावीर के निकट आये, निकट आकर वन्दन-नमस्कार किया और नमस्कार कर बोले—

देवानुप्रिय! हम इस अर्थ को नहीं जान रहे हैं, नहीं देख रहे हैं। यदि देवानुप्रिय को इस अर्थ का परिकथन करने में खेद न हो तो हम देवानुप्रिय के पास इसे जानना चाहेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्यो ! श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को आमंत्रित कर कहा—

आयुष्मान् श्रमणो ! जीव दुःख से भय खाते हैं।

तो भगवान् दुःख किसके द्वारा किया गया है।

जीवों के द्वारा, अपने प्रमाद से

तो भगवान् ! दुःखों का वेदन (क्षय) कैसे होता है ?

जीवों के द्वारा, अपने ही अप्रमाद से—

.११ भगवान् महावीर और भावी तीर्थंकर महापद्म—

.१ जीवन

(क) से जहाणामए अज्जो ! अहं तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, दुवालस संवच्छराइं तेरसपक्खा-छउमत्थपरियागं पाउणित्ता तेरसहिं, पक्खेहिं ऊणगाइं तीसं वासाइं केवलि-परियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता बावत्तरि-वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिज्झिस्सं बुज्झिस्सं मुच्चिस्सं परिणिव्वाइस्सं सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सं।

एवामेव महापउमेवि अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वाहिती, दुवालस संवच्छराइं तेरसपक्खा छउमत्थपरियागं पाउणित्ता, तेरसहिं पक्खेहिं ऊणगाइं तीसं वासाइं केवलि-परियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, बावत्तरि-वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिज्झिहिती बुज्झिहिती जाव सव्वदुक्खाणमंतं काहिती।

—ठाण० स्था ६/सू ६२/पृ० ८७१

आर्यो ! मैं तीस वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहकर, मुण्ड होकर, अगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुआ। मैंने बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक छद्मस्थपर्याय का पालन किया, तीस वर्षों में तेरह पक्ष कम काल तक केवलीपर्याय का पालन किया। इस प्रकार बयालीस वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर, बहत्तर वर्ष की पूर्णायु पालन कर मैं सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त होऊँगा।

इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी तीस वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहकर, मुंड होकर, अगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित होंगे। वे बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक छद्मस्थपर्याय का पालन करेंगे। तीस वर्षों में तेरह पक्षकम कालतक केवलीपर्याय का पालन करेंगे—इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार बयालीस वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर, बहत्तर वर्ष की पूर्णायु पालकर वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त होंगे तथा समस्त दुःखों का अंत करेंगे। संगहणी-गाहा—

जस्सील-समायारो, अरहा तित्थंकरो महावीरो।
तस्सील-समायारो, होतिउ अरहा महापउमो॥

अर्थात् जैसा भगवान् महावीर का आचार था—वैसा ही अर्हत् महापद्म का होगा।

२. महापद्म की प्ररूपणा—

(क) से जहाणामए अज्जो! मए समणाणं निग्गथाणं एगे आरंभठाणे, पण्णत्ते।

एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं निग्गंथाणं एगं आरंभठाणं पण्णवेहिति।

—ठाण० ठा ६/सू ६२/पृ ८६७

आर्यों! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए एक आरंभ स्थान का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए एक आरंभस्थान का निरूपण करेंगे।

(ख) से जहाणामए अज्जो! मए समणाणं णिग्गंथाणं दुविहे बंधणे पण्णत्ते, तंजहा—

पेज्जबंधणे य, दोसबंधणे य।

एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं निग्गंथाणं दुविहं बंधणं पण्णवेहिति। तंजहा—

पेज्जबंधणं च, दोस बंधणं च।

—सू ६२/८६७

आर्यों! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के बंधनों—प्रेयस्-बंधन और द्वेष-बंधन का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के बंधनों-प्रेयस्-बंधन और द्वेष-बंधन का निरूपण करेंगे।

(ग) से जहाणामए अज्जो? मए समणाणं निग्गंथाणं तओ दंडा पण्णत्ता, तंजहा—मणदंडे, वयदंडे, कायदंडे।

एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं तओदंडे पण्णवेहिति, तंजहा—मणोदंडं, वयदंडं, कायदंडं।

—सू ६२/८६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्यों ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए तीन दंडों-मनोदंड, वचनदंड, कायदंड का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए तीन प्रकार के दंडों—मनोदंड, वचनदंड और कायदंड का निरूपण करेंगे।

(घ) से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं निग्गंथाणं चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तंजहा—

कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोभकसाए।

एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं चत्तारि कसाए पण्णवेहिति तंजहा--

कोहकसायं, माणकसायं, मायकसायं, लोभकसायं।

(च) से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं पंच कामगुणा पण्णत्ता, तंजहा—

सद्दे, रूवे, गंधे, रसे, फासे।

एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं पंचकामगुणे पण्णवेहिति, तंजहा—

सद्दं, रूवं, गंधं, रसं, फासं।

—ठाण० स्था ९/सू ६२/पृ० ८६८

आर्यों ! मैंने श्रमण-निर्ग्रंथों के लिए चार कषायों—क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषाय का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए चार कषायों—क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषायों का निरूपण करेंगे।

आर्यों ! मैंने श्रमण निर्ग्रंथों के लिए पाँच कामगुणों—शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रंथों के लिए पाँच कामगुणों—शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श का निरूपण करेंगे।

(छ) से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं निग्गंथाणं छज्जीवणिकाया पण्णत्ता, तंजहा—पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया।

एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं निग्गंथाणं छज्जीवणिकाए पण्णवेहिति, तंजहा—पुढविकाइए, आउकाइए, तेउकाइए, वाउकाइए, वणस्सइकाइए, तसकाइए।

—ठाण० स्था ९/सू ६२/८६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्यो ! मैंने श्रमण निर्ग्रंथों के लिए छह जीवनिकायों—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय—का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए छह जीवनिकायों—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय का निरूपण करेंगे है।

(ज) से जहाणामए, अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तंजहा—

इहलोगभए, परलोगभए, आदाणभए, अकम्हाभए, वेयणभए, मरणभए, असिलोगभए। एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं सत्त भयट्ठाणे पण्णवेहिति, तंजहा—इहलोगभयं, परलोगभयं, आदाणभयं, अकम्हाभयं, वेयणभयं, मरणभयं, असिलोगभयं।

एवं अट्ठ मयट्ठाणे, णव बंभचेरगुत्तीओ, दसविधे समणधम्मे। एवं जाव तेत्तीसमासातणाउत्ति।

—ठाण० स्था ६/सू ६२/८६६

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए सात भयस्थानों—इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, वेदनाभय, मरणभय और अश्लोकभय का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी सात भयस्थानों—इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, वेदनाभय, मरणभय और अश्लोकभय का निरूपण करेंगे।

आर्यो ! मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए आठ मदस्थानों, नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियों, दश श्रमण-धर्मों यावत् तेतीस आशातनाओं का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए आठ मदस्थानों, नौ ब्रह्मचर्य गुप्तियों, दश श्रमणधर्मों यावत् तेतीस आशातनाओं का निरूपण करेंगे।

(झ) से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं णग्गभावे मुंडभावे अण्हाणए, अदंतवणए, अच्छत्तए, अणुवाहणए, भूमिसेज्जा, फलगसेज्जा, कट्ठसेज्जा, केसलोए, बंभचेरवासे, परघरपवेसे, लद्धावलद्धवित्तीओ पण्णत्ताओ।

एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं णग्गभावं, मुंडभावं, अण्हाणयं, अदंतवणयं, अच्छत्तयं, अणुवाहणयं, भूमिसेज्जं फलगसेज्जं कट्ठसेज्जं केसलोयं बंभचेरवासं परघरपवेसं लद्धावलद्धवित्ती पण्णवेहिती।

—ठाण० स्था ६/सू ६२

आर्यो, मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए नग्नभाव, मुण्डभाव, स्नान का निषेध, दतौन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का निषेध, छत्र का निषेध, जूतों का निषेध, भूमिशय्या, फलकशय्या, काठशय्या, केशलोंच, ब्रह्मचर्यवास, परघर-प्रवेश और लब्धापलब्ध वृत्तिका निरूपण किया है।

इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए नग्नभाव, मुण्डभाव स्नान का निषेध, दतौन का निषेध, छत्रका निषेध, भूमि-शय्या, फलक-शय्या, काष्ठशय्या, केश-लोंच, ब्रह्मचर्यवास, परघर-प्रवेश और लब्धापलब्ध वृत्ति का निरूपण करेंगे।

(ञ) से जहाणामए अज्जो! मए समणाणं णिग्गंथाणं आधाकम्मिएति वा उद्देसिएति वा मीसज्जाएति वा अज्झोयरएति वा पूतिए कीते पामिच्चे अच्छेज्जे अणिसट्ठे अभिहडेति वा कंतारभत्तेति वा दुब्भिक्खभत्तेति वा गिलाण-भत्तेति वा वद्दलियाभत्तेति वा पाहुणभत्तेति वा मूलभोयणेति वा कंदभोयणेति वा फलभोयणेति वा बीयभोयणेति वा हरिभोयणेति वा पडिसिद्धे।

एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं आधाकम्मियं वा उद्देसियं वा मीसज्जायं वा अज्झोयरयं वा पूतियं कीतं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं वा कंतारभत्तं वा दुब्भिक्खभत्तं वा गिलाणभत्तं वा वद्दलिया भत्तं वा पाहुणभत्तं वा मूलभोयणं वा कंदभोयणं वा फलभोयणं वा बीयभोयणं वा हरितभोयणं वा पडिसेहिस्सति।

ठाण० स्था ६/सू ६२

आर्यो! मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए आधाकर्मिक, औदेशिक, मिश्रजात, अध्यवतर पूतिकर्म, क्रीत, प्रामित्य, आच्छेद्य, अनिसृष्ट, अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, ग्लान-भक्त, वार्दलिकाभक्त, प्राघूर्ण भक्त, मूलभोजन, कंदभोजन, फलभोजन, बीजभोजन और हरितभोजन का निषेध किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए आधाकर्भिक, औदेशिक, मिश्रजात, अध्यवतर, पूतिकर्म, क्रीत, प्रामित्य, आच्छेद्य, अनिसृष्ट, अभ्याहृत, कान्तार भक्त, दुर्भिक्ष भक्त, ग्लान भक्त, वार्दलिका भक्त, प्राघूर्ण भक्त, मूल भोजन, कंद भोजन, फल भोजन, बीज भोजन और हरित भोजन का निषेध करेंगे।

से जहाणामए अज्जो! मए समणाणं णिग्गंथाणं पंचमहव्वतिए सपडि-क्कमणे अचेलए धम्मे पण्णत्ते। एवामेव महापउमेति अरहा समणाणं णिग्गंथाणं पंचमहव्वतियं सपडिक्कमणं अचेलगं धम्मं पण्णवेहिति।

—ठाण० स्था ६/६२/८७१

आर्यो! मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए प्रतिक्रमण और अचेलता युक्त पाँच महाव्रतात्मक धर्म का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए प्रति-क्रमण और अचेलता युक्त पाँच महाव्रतात्मक धर्म का निरूपण करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से जहाणामए अज्जो ! मए समणोवासगाणं पंचाणुव्वतिए सत्तसिक्खा-वत्तिए—दुवालसविधे सावगधम्मे पण्णत्ते ।

एवामेव महापउमेवि अरहा समणोवासगाणं पंचाणुव्वतियं—सत्त-सिक्खावत्तियं—दुवालसविधं सावगधम्मं पण्णवेस्सति ।

—ठाण० स्था ९/६२/८७१

आर्यो ! मैंने पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत—इस बारह प्रकार के श्रावक-धर्म का निरूपण किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत—इस बारह प्रकार के श्रावक धर्म का निरूपण करेंगे।

(ट) से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं सेज्जातरपिंडेति वा रायपिंडेति वा पडिसिद्धे । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं सेज्जातरपिंड वा रायपिंडं वा पडिसेहिस्सति ।

से जहाणामए अज्जो ! मम नव गणा एगारस गणधरा ! एवामेव महा-पउमस्सवि अरहतो णव गणा एकारस गणधरा भविस्संति ।

—ठाण० स्था ९/६२/८७१

आर्यो ! मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए शय्यातरपिंड और राजपिंड का निषेध किया है। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए शय्यातर पिंड और राजपिंड का निषेध करेंगे।

आर्यो मेरे ! नौ गण और ग्यारह गणधर है। इसी प्रकार अर्हत महापद्म के भी नौ गण और ग्यारह गणधर होंगे।

.१२ भगवान् महावीर के विशिष्ट सिद्धांत

.१ चित्त-समाधि—

अज्जोति समणे भगवं महावीरे समणा निग्गंथा य निग्गंथीओ य आमंतित्ता—एवं खलु अज्जो ! निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा × × × इमाइं दस चित्तसमाहिठाणाइं असमुप्पण्णपुव्वाइं समुप्पज्जेज्जा, तंजहा—

१. धम्मचिंता वा से असमुप्पण्णपुव्वा समुप्पज्जेज्जा सव्वं धम्मं जाणित्तए ।

२. सुमिणदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा अहातच्चं सुमिणं पासित्तए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. सण्णिजाइसरणेणं सण्णिणाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा—अप्पणो पोराणियं जाइं सुमरित्तए।

४. देवदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं पासित्तए।

५. ओहिणाणे वा से असमुप्पन्नपुव्वे समुप्पज्जेज्जा ओहिणा लोगं जाणित्ताए।

६. ओहिदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा ओहिणा लोयं पासित्तए।

७. मणपज्जवणाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा अंतो मणुस्सखित्तेसु अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणित्तए।

८. केवलणाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा केवलकप्पं लोयालोयं जाणित्तए।

९. केवलदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा केवलकप्पं लोयालोयं पासित्तए।

१०. केवलमरणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा सव्वदुक्खप्पहाणाए

—दसासु० द५/सू ३, ४

जिसके द्वारा चित्त मोक्ष मार्ग या धर्मध्यान आदि में स्थिर रहे—उसको चित्त-समाधि कहते हैं।

हे आर्यो! श्रमण भगवान् महावीर श्रमण निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को आमन्त्रित कर कहने लगे—हे आर्यो! निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को ये पूर्व अनुत्पन्न दश चित्त समाधि के स्थान उत्पन्न हो जाते हैं—यथा—

१. धर्म की चिंता (अनुप्रेक्षा या भावना) जो पहले अनुत्पन्न है यदि उसको उत्पन्न हो जाय तो वह कल्याण भागी साधु सब तरह के धर्म को जान लेता है।

२. स्वप्न दर्शन—जो उसको पहले उत्पन्न नहीं हुआ है यदि उत्पन्न हो जाय तो वह यथा—तथ्य स्वप्न को देखता है। देखकर समाधि प्राप्त करता है।

३. जाति-स्मरण-ज्ञान—(संज्ञीज्ञान) संज्ञीवाला अथवा जाति-स्मरण से उसका संज्ञी ज्ञान पूर्व उत्पन्न नहीं हुआ है—यदि उत्पन्न हो जाय तो अपनी पुरानी जाति स्मरण करता हुआ समाधि प्राप्त करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. देव दर्शन—साम्यभाव से देव दर्शन पूर्व असमुत्पन्न है यदि हो जाय तो देवों की प्रधान देवर्द्धि, देव-द्युति, और प्रधान देवानुभाव को देखता हुआ समाधि प्राप्त कर सकता है।

५. अवधिज्ञान—अवधिज्ञान पूर्व असमुत्पन्न है यदि उत्पन्न हो जाय तो उससे लोक के स्वरूप को देखता हुआ चित्त-समाधि प्राप्त कर सकता है।

६. अवधि दर्शन—पूर्व अनुत्पन्न अवधि दर्शन के उत्पन्न हो जाने पर अवधि दर्शन द्वारा लोक को देखता है।

७. मनःपर्यव ज्ञान—पूर्व अनुत्पन्न मनःपर्यव ज्ञान के उत्पन्न हो जाने पर मनुष्य लोक के भीतर अढाई द्वीप-समुद्रों में संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मन के भावों को जान लेता है।

८ केवल ज्ञान—पूर्व अनुत्पन्न केवल ज्ञान के उत्पन्न हो जाने पर संपूर्ण लोकालोक को जान लेता है।

९. केवल दर्शन—पूर्व अनुत्पन्न केवल दर्शन के उत्पन्न हो जाने पर उसके द्वारा संपूर्ण लोकालोक को देखता है।

१०. केवल मरण—पूर्व अनुत्पन्न केवल ज्ञान युक्त मृत्यु हो जाने पर सब दुःखों से छूट जाता है।

.२ शरीरनिर्गत तेजो लेश्या की शक्ति

(क) अज्जोत्ति ! समणे भगवं महावीरे समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी—जावतिए णं अज्जो ! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं ममं वहाए सरीरगंसि तेये निसट्ठे सेणं अलाहि पज्जत्ते सोलसण्हं जणवयाणं, तंजहा—१ अंगाणं २ वंगाणं ३ मगहाणं ४ मलयाणं ५ मालवगाणं ६ अच्छाणं ७ वच्छाणं ८ कोच्छाणं ९ पाढाणं १० लाढाणं ११ वज्जीणं १२ मोलीणं १३ कासीणं १४ कोसलाणं १५ आवाहाणं १६ संभुत्तराणं घाताए वहाए उच्छादणयाए भासीकरणयाए। —भग० श १५/प्र १२१/पृ० ६७५/७६

हे आर्यो ! इस प्रकार संबोधन कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाकर कहा—हे आर्यो ! मंखलिपुत्र गोशालक ने मेरा वध करने के लिए अपने शरीर में से जो तेजो लेश्या निकाली थी, वह निम्नलिखित सोलह देशों का घात करने में, वध करने में, उच्छेदन करने में और भस्म करने में समर्थ थी। यथा—

१ अंग, २ बंग, ३ मगध, ४ मलय, ५ मालव, ६ अच्छ, ७ वत्स, ८ कौत्स, ९ पाट, १० लाट, ११ वज्र, १२ मौली, १३ काशी, १४ कौशल, १५ अवाह, १६ संभुत्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) स्वयं की तेजोलब्धि से गोशालक भस्मसात्

दसहिं ठाणेहिं सह तेयसा भासं कुज्जा × × ×। केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा × × ×। अच्चासातेमाणे तेयं णिसिरेज्जा, से य तत्थ णो कम्मति, णोपकम्मति, अंचिअंचियं करेति, करेत्ता आयाहिणं-पयाहिणं करेति, करेत्ता उड्ढं वेहासं उत्पतति, उप्पतेत्ता से णं ततो पडिहते पडिणियत्तति, पडिणियत्तित्ता तमेव सरीरगं अणुदहमाणे - अणुदहमाणे सह तेयसा भासं कुज्जा जहा वा गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवे तेए।

—ठाण० स्था १०/सू १५६

टीका--×××एतानि नव स्थानानि साधुदेवकोपाश्रयाणि, दसमं तु वीतरागाश्रयं, तत्र 'अच्चासाएमाणे' त्ति उपसर्गं कुर्वन् गोशालकवत्तेजो निसृजेत्×।

कोई व्यक्ति तथारूप—तेजोलब्धि सम्पन्न श्रमण-माहन की अत्याशातना करता हुआ उस पर तेज फेंकता है वह तेज उसमें घुस नहीं सकता। उसके ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर आता जाता है, दाएँ-बाएँ प्रदक्षिणा करता है। वैसा कर आकाश में चला जाता है। वहाँ से लौटकर उस श्रमण-माहन के प्रबल तेज से प्रतिहत होकर वापस उसीके पास चला जाता है। जो उसे फेंकता है। उसके शरीर में प्रवेश कर उसे उसकी तेजोलब्धि के साथ भस्म कर देता है। जिस प्रकार मंखलीपुत्र गोशालक भगवान् महावीर पर तेज का प्रयोग किया था।

वीतरागता के प्रभाव से भगवान् भस्मसात् नहीं हुए। वह तेज लौटा और उसने गोशालक को ही जला डाला।

.१३ स्कंदक परिव्राजक

तए णं भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणसगोत्तं एवं वयासी—एवं खलु खंदया। ममं धम्मायरिए धम्मोवएसए, समणे भगवं महावीरे उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली तीय-पच्चुप्पन्न-मणागय-वियाणए, सव्वण्णू, सव्वदरिसी-जेणं मम एस अट्ठे तव ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए।

—भग० श २/उ १/सू ३८

गौतम स्वामी ने स्कन्दक से कहा—हे स्कन्दक धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक हैं, अरिहंत है, जिन है, केवली, है, भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के ज्ञाता है, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। उन्होंने तुम्हारे मन में रही हुई गुप्त बात मुझसे कही है। इसलिए हे स्कन्दक! मैं तुम्हारे मन की गुप्त बात जानता हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.१४ ग्यारहवें चतुर्मास के बाद की घटना

बाइलो वणिक्—एक घटना

(क) नाथोऽथ पालकग्रामे ययौ तत्र त्वदृश्यत।
वणिजा वायलाख्येन यात्रायै चलता सता ॥६०३॥
असावशकुनं भिक्षुः क्षिपाम्यस्यैव मूर्धनि।
इति हन्तुं प्रभुं पापः स कृष्ट्वाऽसिमधावत ॥६०४॥
सिद्धार्थव्यन्तरस्तस्य स्वयमेवाऽऽच्छिदच्छिरः।

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ४

(ख) ततो सामी पालगं नाम गामं गतो, तत्थ वाइलो नाम वणिओ जत्ताए पधावितो सामिं पेच्छइ, ततो सो अमंगलं ति काऊणअसिं गहाय पधावितो एयस्स फलउत्ति, तत्थ सहत्थेण सिद्धत्थेण सीसं छिन्नं। अनुमेवार्थमाह—

वालुय वाइल वणिए अमंगलं अप्पणो असिणा।

—आव० निगा ५२१

सुक्षेत्र ग्राम से विहारकर भगवान् महावीर पालक ग्राम पधारे। वहाँ वाइल नामक कोई वणिक् यात्रा कर रहा था। उसने भगवान् को आते देखा। इस भिक्षुक का अपशकुन होने के कारण उसके मस्तिष्क पर खड्ग का प्रहार करना चाहिए। ऐसा विचार कर खड्ग को उठाकर भगवान् को मारने के लिए दौड़ा कि उस समय व्यन्तरदेव आकर उसका ही मस्तिष्क छेद डाला।

१५. भगवान को वंदनार्थ जानने का उदाहरण—

.१ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे जाव गामाणुगामं दूइज्जमाणे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ

तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडगं तियचउक्क-चच्चर एवं जाव परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ।

—दसासु० अ १०/सू ५

उस काल उस समय में धर्म के आदिकर तीर्थंकर भगवान् महावीर एक गाँव से दूसरे गाँव में विचरते हुए राजगृह नगर के गुण-शिलक उद्यान में पधारे और संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए वहाँ निवास किया।

तब राजगृह नगर के शृंगारक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर आदि मार्गों में अर्थात् नगर के दो मार्ग वाले स्थानों में, तीन मार्ग वाले स्थानों में, चार मार्ग वाले स्थानों में और अनेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाग के स्थानों में लोगों के मुख से भगवान् का आगमन सुनकर परिषद् धर्मकथा सुनने के लिए श्रद्धा, भक्ति तथा विनय पूर्वक भगवान् की पर्युपासना करने लगी।

.२ जनमानस का आगमन

(क) समणे भगवं महावीरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी माहणकुंडग्गामस्स णयरस्स बहिया बहुसालए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं जाव विहरइ। ×××

तएणं समणे भगवं महावीरे जमालिस्स खत्तियकुमारस्स, तीसे य महति-महालियाए इसि० जाव धम्मकहा—जाव परिसा पडिगया।

—भग० श ९/उ ३३ सू/१५७, १६३

श्रमण भगवान् महावीर—इस ब्राह्मण कुंडग्राम नगर के बाहर बहुशाल नाम के उद्यान में यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते है।

श्रमण भगवान् महावीर ने जमाली क्षत्रिय कुमार को तथा उस बड़ी ऋषिगण आदि की महापरिषद् को धर्मोपदेश दिया।

धर्मोपदेश श्रवणकर वह परिषद् वापस चली गई।

(ख) ततेणं ते महत्तरगा जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता नाम-गोयं पुच्छंति नाम-गोयं पुच्छित्ता नाम-गोयं पधारंति××× ।

—दसासु० दशा १० सू ४

श्रमण भगवान् महावीर का राजगृह नगर के बाहर गुणशील नामक चैत्य में पदार्पण होता है—

तब वे आराम आदि के अध्यक्ष जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे वहाँ आये और उन्होंने भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा कर उनकी वंदना की और उनको नमस्कार किया। वंदना और नमस्कार करके अनन्तर उनका नाम और गोत्र पूछा और उनको हृदय में धारण किया।

(ग) तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियग्गामे णामं णयरे होत्था। वण्णओ। दूरपिलासए चेइए। सामी समोसढे। परिसा णिग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया।

—भग० श ९/उ३२/सू१

उस काल और उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था। वहाँ द्युतिपलाश नामक चैत्य (उद्यान) था। वहाँ श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषद् वंदनार्थ निकली। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। परिषद् वापिस चली गई।

(घ) तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणागपुरे णामं णयरे होत्था।×××।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा जाव पडिगया।×××

तएणं सा महतिमहालया महच्चपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठ-तुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेवदिसं पडिगया।

—भग श ११/उ६/सू ५७, ७४, ८२

उस काल उस समय में हस्तिनापुर नामक नगर था।

उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे। जनता धर्मोपदेश सुन कर यावत् चली गई।

इसके बाद वह महती परिषद् श्रमण भगवान् महावीर से उपर्युक्त अर्थ सुनकर और हृदय में धारण कर हर्षित एवं संतुष्ट हुई और भगवान् को वंदना-नमस्कार कर चली गई।

(च) तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थीणामं नयरी होत्था। वण्णओ। कोट्ठए चेइए, वण्णओ। तत्थणं सावत्थीए णयरीए बहवे संखप्पामोक्खा समणोवासगा परिवसंति।× × ×।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा णिग्गया, जाव पज्जुवासइ। तएणं ते समणोवासगा इमीसे कहाए जहा आलभियाए जावपज्जुवासंति। तएणं समणे भगवं महावीरे तेसिं समणोवासगाणं तीसे य महति० धम्मकहा, जाव परिसा पडिगया।

—भगव श १२/उ १ सू १, २

उस काल उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी। कोष्ठक नामक उद्यान था। उस श्रावस्ती नगरी में शंख प्रमुख बहुत से श्रमणोपासक रहते थे।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर श्रावस्ती पधारे। परिषद् वंदन के लिए गई। यावत् पर्युपासना करने लगी। भगवान् के आगमन को जानकर वे श्रावकभी, आलभिका नगरी के श्रावकों के समान वंदनार्थ गये। पर्युपासना करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् ने उस महापरिषद् को और उन श्रमणोपासकों को धर्मोपदेश दिया यावत् परिषद् वापस चली गई।

(छ) तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसंबी णामं णयरी होत्था। वण्णओ। चंदोवतरणे चेइए। × × ×। तत्थणं कोसंबीए णयरीए × × × उदायणेणामं रायाहोत्था। × × ×।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, जावपरिसा पज्जुवासइ ×××।

तएणं समणे भगवं महावीरे उदायणस्स रण्णो मियावईए देवीए जयंतीए समणोवासियाए तीसेय महतिमहा० जाव धम्मं परिकहेइ, जाव परिसा पडिगया, उदायणे पडिगए, मियावईदेवी वि पडिगया।

—भग० श १२/उ२ सू ३०, ३१,४०

उस काल उस समय में कौशाम्बी नाम की नगरी थी। चंद्रावतरण उद्यान था। उस कौशाम्बी नगरी में उदायन नाम का राजा था। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे। यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

श्रमण भगवान् महावीर ने उदायन राजा, मृगावती देवी, जयंती श्रमणोपासिका और महापरिषद् को धर्मोपदेश दिया। यावत् परिषद् लौट गई।

उदायन राजा व मृगावती भी चले गये।

(ज) तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया णामं णयरी होत्था। × × संखवणे चेइए। × × ×।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे। जाव-परिसा पज्जुवासइ। × ××। तएणं समणे भगवं महावीरे तेसिं समणोवासगाणं तीसेय महति० धम्मकहा, जाव आणाए आराहए भवइ।

—भग श ११/उ१२ सू १७४, ७८

उस काल और उस समय में आलंभिका नाम की नगरी थी। वहाँ शंखवन नामक उद्यान था।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे। यावत् परिषद् उपासना करती है। भगवान् उन आगत श्रमणोपासकों को और आई हुई महापरिषद् को यावत् आज्ञा के आराधक होवे—यहाँ तक धर्मोपदेश दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(झ) नंदिवर्द्धन का आगमन—

क्रमाच्च क्षत्रियकुंडग्रामं स्वामी समाययौ।
तस्थौ समवसरणे विदधे चाथ देशनाम् ॥२९॥
स्वामिनं समवसृतं नृपतिर्नन्दिवर्धनः।
ऋद्ध्या महत्या भक्त्या च तत्रोपेयाय वन्दितुम् ॥३०॥
स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य वन्दित्वा च जगद्गुरुम्।
उपाविशद्यथास्थानं भक्तितो रचिताञ्जलिः ॥३१॥

त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

वर्धमान तीर्थंकर ग्राम, नगर, आकर आदि में विहार करते हुए क्रमशः क्षत्रिय कुंडग्राम पधारे।

वहाँ समवसरण में बैठकर धर्मदेशना दी।

भगवान् को समवसृत जानकर राजा नंदीवर्द्धन मोटी समृद्धि और भक्ति से भगवान् को वंदनार्थ आया।

तीन प्रदक्षिणाकर जगद्गुरुओं को वंदन कर भक्ति से अंजलि जोड़कर योग्य स्थान में बैठा।

(ञ) श्रेणिक राजा और चेलणा देवी—

भगवान् के समवसरण में

तएणं से सेणिए राया भंभसारे जाणसालियस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म-हट्ठ तुट्ठ-जाव मज्जणघरं अणुप्पविसइ अणुप्पविसित्ता जाव कप्परुक्खे चेव अलंकिय-विभूसिए णरिंदे जाव मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव चेल्लणादेवी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता चेल्लणं देविं एवं वयासी— एवं खलु देवाणुप्पिए! समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे जाव पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे विहरइ।

तं महप्फलं देवाणुप्पिए! तहारूवाणं अरहंताणं जाव तं गच्छामो देवाणुप्पिए! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो, एयं णे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए जाव आणुगामियत्ताए भविस्सइ। × × ×।

तएणं से सेणिए राया चेल्लणाए देवीए सद्धिं धम्मियं जाणप्पवरं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुरूहइ दुरुहित्ता सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, ओववाइयगमेणं णेयव्वं जाव पज्जुवासइ।

एवं चेल्लणादेवी जाव महत्तरगपडिनिक्खित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ सेणियं रायं पुरओ काउं ठिइया चेव जाव पज्जुवासइ।

—दसासु० दसा १०/सू० १०

रथ के आ जाने पर भंमसार श्रेणिक राजा यानशालिक के मुख से 'धार्मिक रथ तैयार है' ऐसा वृत्तान्त सुनकर हर्षित और संतुष्ट हुए। और स्नानघर में पहुंचे।

वहाँ स्नान कर अच्छे वस्त्र और आभूषण पहने तथा कल्पवृक्ष के समान सुशोभित होकर बाहर निकले, फिर चेल्लणा देवी के पास आये और कहने लगे कि—हे देवानुप्रिय! धर्म की प्रवर्त्तना करने वाले और चारतीर्थों की स्थापना करने वाले भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गुणशिल उद्यान में पधारे हैं और तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

हे देवानुप्रिये! तथारूप अर्थात् तप और संयम से युक्त, केवलज्ञान और केवल-दर्शन के धरनेवाले अर्हन्त भगवान् के नाम-गोत्र आदि के सुनने से ही कर्म-निर्जरा रूप महाकाल होता है तो उनके अभिगमन-सामने जाने, वन्दन-नमस्कार करने, प्रश्न पूछने और उनकी पर्युपासना-सेवा आदि करने से जो फल होता है उसका तो कहना ही क्या। अतः हे देवानुप्रिये! अपने भगवान् के पास चले और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन (स्तुति) करें, नमस्कार करें, आदर करें, सम्मान करे।

वे भगवान् कल्याण—मोक्ष देने वाले होने से कल्याणरूप हैं। सर्वहित की प्राप्ति करानेवाले होने से मंगलरूप हैं। भव्यों को आराधना करने योग्य होने से देवस्वरूप है। सम्यग्बोध देने वाले होने से ज्ञानस्वरूप हैं, उन भगवान् की पर्युपासना-सेवा करे।

भगवान् के दर्शन आदि, हम लोगों के हिताय-इहलोक और परलोक में हित के लिए, सुख के लिए, भवसागर तैरने में सामर्थ्य के लिए, मोक्ष के लिए, और यावत् भव-भव में सुख के लिए होगा।

इस प्रकार चेल्लणा रानी अपने पति राजा श्रेणिक से भाग्य को उदय करने वाले भगवान के आगमन रूप वचन सुनकर हर्षित और संतुष्ट हुई। और उसने राजा के वचन को स्वीकार किया।

तब श्रेणिक राजा चेल्लणा देवी के साथ प्रधान धार्मिक रथ पर चढ़े। कोरण्ट पुष्पों की माला से युक्त छत्र को धराते हुए यावत् भगवान् के पास गये और सेवा करने लगे।

विशेष वर्णन औपपातिक सूत्र से जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार चेल्लणा देवी भी सब अंतःपुर के सेवकजनों से घिरी हुई जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे—वहाँ आयी।

आकर उसने भगवान् की स्तुति की—नमस्कार किया तथा श्रेणिक राजा को आगे कर, राजा के पीछे खड़ी होकर भगवान् की पर्युपासना करने लगी।

तएणं समणे भगवं महावीरे सेणियस्स रण्णो भंभसारस्स चेल्लणादेवीए तीसे महइमहालियाए परिसाए, इसिपरिसाए, जइपरिसाए, मणुस्सपरिसाए, देवपरिसाए, अणेगसभाए जाव धम्मो कहिओ, परिसापडिगया, सेणियराया पडिगओ।

—दसासु० दसा १०/सू ११

चेल्लणा देवी के साथ श्रेणिक राजा भगवान् के समीप में आने के बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रेणिक राजा भंभसार और चेल्लणा देवी को चार प्रकार की महा-परिषद् में अर्थात् ऋषि परिषद्, मुनि परिषद्, मनुष्य परिषद्, देव परिषद्, जिनमें हजारों श्रोतागण सुनने के लिए एकत्रित हुए है—ऐसी परिषद् के मध्य में विराजमान होकर "जीव जिस प्रकार कर्मों से बद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं और क्लेश पाते हैं।" इत्यादि विचित्र प्रकार से श्रुत-चारित्र-लक्षण धर्म कहा।

धर्मकथा सुनकर परिषद् अपने-अपने स्थान गयी और श्रेणिक राजा भी गये।

(ट) जमाली आदि –

तस्सणं माहणकुंडग्गामस्स नयरस्स पच्चत्थिमेणं एत्थणं खत्तिय-कुंडग्गामे नामं नयरे होत्था—वण्णओ। तत्थणं खत्तियकुंडग्गामे नयरे जमाली नामं खत्तियकुमारे परिवसइ॥ × × × १५६॥

तएणं खत्तियकुंडग्गामे णयरे सिंघाडगतिक-चउक्क-चच्चर जाव बहुजण-सद्दे इ वा जहा ओववाइए जाव एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी माहणकुंडग्गामस्स नगरस्स बहिया बहुसालए चेइए अहापडिरूवं जाव विहरइ।

तं महप्फलं खलु देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नाम-गोयस्स वि सवणयाए जहा ओववाइए जाव एगाभिमुहे खत्तियकुंडग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकुंडग्गामे नयरे जेणेव बहु-सालए चेइए, तेणेव उवागच्छंति एवं जहा ओववाइए जाव तिविहाए पज्जु-वासणयाए पज्जुवासंति॥१५७॥

—भग० श ९/उ३३/प्र० १५६, १५७/पृ० ४३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस ब्राह्मणकुंडग्राम नामक नगर के पश्चिम दिशा में क्षत्रियकुंड ग्राम नामक नगर था। उस क्षत्रियकुंड ग्राम नामक नगर में जमाली नाम का क्षत्रिय कुमार रहता था। वह आढ्य, (धनिक) दीप्त-तेजस्वी यावत् अपरिभूत था। वह अपने उत्तम भवन पर, जिसमें मृदंग बज रहे हैं, अनेक प्रकार की सुन्दर युवतियों द्वारा सेवित है, बत्तीस प्रकार के नाटकों द्वारा हस्त-पादादि अवयव जहाँ नचाये जा रहे हैं, जहाँ बार-बार स्तुति की जा रही है।

अत्यन्त खुशियाँ मनाई जा रही हैं, उस भवन में प्रावृष्, वर्षा, शरद, हेमन्त, बसंत और ग्रीष्म—इन छह ऋतुओं में अपने वैभव के अनुसार सुखका अनुभव करता हुआ, समय बिताता हुआ, मनुष्य संबंधी पाँच प्रकार के इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध—इन काम-भोगों का अनुभव करता हुआ रहता था।

क्षत्रियकुंड ग्राम नामक नगर में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर में यावत् बहुत से मनुष्यों का कोलाहल हो रहा था। यावत् बहुत-से मनुष्य परस्पर इस प्रकार कहते थे कि—हे देवानुप्रियो! आदिकर (धर्म-तीर्थ की आदि करने वाले) यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, इस ब्राह्मणकुंड ग्राम नगर के बाहर, बहुशाल नामके उद्यान में यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते हैं। हे देवानुप्रियो! तथा रूप अरिहंत भगवान् के नाम, गोत्र के श्रवण मात्र से भी महाफल होता है, यावत् वह जन-समूह एक दिशा की ओर जाता है और क्षत्रियकुंड ग्राम नामक नगर के मध्य में होता हुआ, बाहर निकलता है। और बहुशालक उद्यान में जाता है। वह जन-समूह तीन प्रकार की पर्युपासना करता है।

तएणं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स तं महयाजणसद्दं वा जाव जणसण्णिवायं वा सुणमाणस्स वा पासमाणस्स वा अयं एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—"किं णं अज्ज खत्तियकुंडग्गामे णयरे इंदमहे इ वा खंदमहे इ वा मगुंदमहे इ वा, नागमहे इ वा, जक्खमहे इ वा, भूयमहे इ वा, कूवमहे इ वा, तडागमहे इ वा, णई महे इ वा, दहमहे इ वा, पव्वयमहे इ वा, रुक्खमहे इ वा, चेइयमहे इ वा, थूभमहे इ वा, जं णं एए बहवे उग्गा, भोगा, राइण्णा, इक्खागा, णाया, कोरव्वा, खत्तिया, खत्तियपुत्ता, भडा, भडपुत्ता, जहा ओववाइए, जाव सत्थवाहप्पभिइओ ण्हाया, कयबलिकम्मा जहाओववाइए, जाव णिग्गच्छंति? एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कंचुइज्ज पुरिसं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—किं णं देवाणुप्पिया! अज्ज खत्तियकुंडग्गामे णयरे इंदमहे इ वा जाव णिग्गच्छंति।

तएणं से कंचुइज्जपुरिसे जमालिणा खत्तियकुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे समणस्स भगवओ महावीरस्स आगमणगहियविणिच्छए करयल जमालिं खत्तियकुमारं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी—णो

१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज खत्तियकुंडग्गामे णयरे इंदमहे इ वा, जाव णिग्गच्छंति, एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज समणे भगवं महावीरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी माहणकुंडग्गामस्स णयरस्स बहिया बहुसालए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं जाव विहरइ ।

तएणं एए बहवे उग्गा भोगा जाव अप्पेगइया वंदणवत्तियं जाव णिग्गच्छंति । [तएणं जमाली खत्तियकुमारे कंचुइपुरिसस्स अंतियं एयं अट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठ-तुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घंटं आसरह जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जमालिणा खत्तियकुमारेणं एवं वुत्ता समाणा जाव पच्चप्पिणंति ।

—भग० श० ६/उ३३/सू १५८ से १६१

बहुत से मनुष्यों के शब्द और कोलाहल सुनकर और अवधारण कर क्षत्रियकुमार जमाली के मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि—

"क्या क्षत्रियकुंडग्राम नगर में इन्द्र का उत्सव है, स्कंद का उत्सव है, वासुदेव का उत्सव है, नाग का उत्सव है, यक्ष का उत्सव है, भूत का उत्सव है, कूप का उत्सव है, तालाब का उत्सव है नदी का उत्सव है, द्रह का उत्सव है, पर्वत का उत्सव है, वृक्ष का उत्सव है, चैत्य का उत्सव है या स्तूप का उत्सव है, कि जिससे ये सब उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातकुल और कुरुवंश—इन सबके क्षत्रिय, क्षत्रियपुत्र, भट और भटपुत्र इत्यादि औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार यावत् सार्थवाह प्रमुख, स्नानादि करके यावत् बाहर निकलते हैं—इस प्रकार विचार करके जमाली क्षत्रियकुमार ने कञ्चुकी (सेवक) को बुलाया और इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! क्या आज क्षत्रियकुंडग्राम नामक नगर के बाहर इन्द्र आदि का उत्सव है, जिससे ये सब लोग बाहर जा रहे हैं।"

जमाली क्षत्रियकुमार के इस प्रश्न को सुनकर वह कंचुकी पुरुष हर्षित एवं संतुष्ट हुआ।

श्रमण भगवान् महावीर के आगमन का निश्चय करके उसने हाथ जोड़कर जमाली क्षत्रियकुमार को जय-विजय शब्दों द्वारा बधाया ।

तदनन्तर उसने इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! आज क्षत्रियकुंडग्राम नामक नगर के बाहर इन्द्र आदि का उत्सव नहीं है किन्तु सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नगर के बाहर बहुशाल नामक उद्यान में पधारे हैं और यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते हैं।

इसीलिए—ये उग्रकुल, भोगकुलादि के क्षत्रिय आदि वंदन के लिए जा रहे हैं।

कंचुकी पुरुष से यह बात सुनकर एवं हृदय में धारण करके जमाली क्षत्रियकुमार हर्षित एवं संतुष्ट हुआ और कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र चार घंटा वाले अश्वरथ को जोड़कर यहाँ उपस्थित करो और मेरी आज्ञा को पालन कर निवेदन करो।

जमाली क्षत्रियकुमार की इस आज्ञा को सुनकर तदनुसार कार्य करके इन्हें निवेदन किया।

तएणं से जमालिखत्तियकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा, निसम्म हट्ठ-तुट्ठ जाव हियए, उट्ठाए, उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव णमंसित्ता एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते। णिग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते। णिग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते। णिग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, एवमेयं भंते। तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! जाव से जहेयं तुब्भे वयह, णं णवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि, तएणं अहं देवाणुप्पियाणं अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं।

—भग० श ९/उ३३ सू१६४

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म सुनकर और हृदय में धारण करके जमाली क्षत्रियकुमार हर्षित और संतुष्ट हृदय वाला हुआ यावत् खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया और इस प्रकार कहा—हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ। हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर विश्वास करता हूँ। हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर रूचि करता हूँ। हे भगवन्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है, तथ्य है, असंदिग्ध है, जैसा कि आप कहते हैं। हे देवानुप्रिय! मैं अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर, गृहवास का त्याग करके, मुण्डित होकर आपके पास अनगार धर्म को स्वीकार करना चाहता हूँ। भगवान् ने कहा—हे देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो, धर्म कार्य में समय मात्र भी प्रमाद मत करो।

जं णं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मे णिसंते, से वि य धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए।

—भग० श ९/उ३३/सू१६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् के पास धर्म श्रवण कर जमाली क्षत्रियकुमार को उस पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि हुई। वह उसके अनुसार प्रवृत्ति करने को तत्पर हुआ और अपने माता-पिता से दीक्षा की आज्ञा मांगने लगा।

तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए।

तएणं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मापियरो जाहे णो संचाएंति विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य बहूहिं आघवणाहि य, पण्णवणाहि य आघवित्तए वा, जाव विण्णवित्तए वा, ताहे अकामाइं चेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स णिक्खमणं अणुमण्णित्था।

—भग० श ६/उ३३ सू १६७,१७६

हे माता-पिता ! आप मुझे दीक्षा की आज्ञा दीजिये। आप की आज्ञा होने पर मैं श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास दीक्षा लेना चाहता हूँ।

जब जमालीकुमार के माता-पिता उसे विषय के अनुकूल और प्रतिकूल बहुत सी उक्तियाँ, प्रज्ञप्तियाँ, संज्ञप्तियाँ और विज्ञप्तियाँ द्वारा उसे समझाने में समर्थ नहीं हुए, तब बिना इच्छा के जमालीकुमार को दीक्षा लेने की आज्ञा दी।

तएणं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सरिसयं, सरित्तयं, सरिव्वयं, सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण्ण-गुणोववेयं, एगाभरण-वसणगहियणिज्जोयं कोडुंबियवरतरुणसहस्सं सद्दावेह।

तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सरिसयं, सरित्तयं जाव सद्दावेंति। तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जमालिस खत्तियकुमारस्स पिउणा कोडुंबियंपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठा ण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता एगाभरणवसण-गहिय-णिज्जोया जेणेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया। जं अम्मेहिं करणिज्जं।

तएणं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तं कोडुंबियवरतरुणसहस्संपि एवं वयासी—तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलिकम्मा जाव गहियणिज्जो जमालिस्स खत्तियकुमारस्स सीयं परिवहेह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स जाव पडिसुणित्ता ण्हाया जाव गहियणिज्जोआ जमालिस्स खत्तियकुमारस्स सीयं परिवहंति।

तएणं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणि सीयं दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठ-ट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ; तंजहा-सोत्थिय-सिरिवच्छ जावदप्पणा ; तयाणंतरं च णं पुण्णकलस-भिंगारं जहा—ओववाइए, जाव गगणतलमणुलिहंतीपुरओ अहानुपुव्वीए संपट्ठिया एवं जहा ओववाइय तहेव भाणियव्वं, जाव आलोयं च करेमाणा जयजय-सद्दं पउंजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीएसंपट्ठिया।

तयाणंतरं च णं बहवे उग्गा भोगा जहा ओववाइए जावमहापुरिसवग्गु-रापरिक्खित्ता, जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

—भग० श ९/उ ३३ सू १९९ से २०४

जमाली कुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! समान त्वचावाले, समान उम्रवाले, समान रूप लावण्य और यौवन गुणों से युक्त तथा एक समान आभूषण और वस्त्र पहने हुए एक हजार उत्तम पुरुषों को बुलाओ।" सेवक पुरुषों ने स्वामी के वचन स्वीकार कर शीघ्र ही हजार पुरुषों को बुलाया। वे हजार पुरुष हर्षित और तुष्ट हुए। वे स्नानादि करके एक समान आभूषण और वस्त्र पहनकर जमालीकुमार के पिता के पास आये और हाथ जोड़ कर बधाये तथा इस प्रकार बोले—

"हे देवानुप्रिय ! हमारे योग्य जो कर्म हो वह कहिये। तब जमालीकुमार के पिता ने उनसे कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम सब जमालीकुमार की शिबिका को उठाओ।" उन पुरुषों ने शिबिका उठाई। हजार पुरुषों द्वारा उठाई गई जमालीकुमार की शिबिका के सबसे आगे ये आठ मंगल अनुक्रम ये चले। यथा—

१—स्वस्तिक
२—श्रीवत्स
३—नन्द्यावर्त
४—वर्धमानक
५—भद्रासन
६—कलश
७—मत्स्य और
८—दर्पण

इन आठ मंगलों के पीछे पूर्ण कलश चला, इत्यादि औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यावत् गगनतल को स्पर्श करती हुई वैजयन्ती (ध्वजा) चली। लोग जय-जयकार का उच्चारण करते हुए अनुक्रम से चले।

इसके बाद उग्रकुल, भोगकुल में उत्पन्न पुरुष यावत् महापुरुषों के समूह जमालीकुमार के आगे, पीछे और आसपास चलने लगे।

तएणं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव-विभूसिए हत्थिक्खंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणंधरिज्जमाणेणं सेयवर-चामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं हय - गय - रह - पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे, महयाभडचडगर जाव परिक्खित्ते जमालिस्स खत्तिय-कुमारस्स पिट्ठओ अणुगच्छइ।

तएणं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरओ महं आसा, आसवरा, उभओपासिं णागा णागवरा, पिट्ठओ रहा, रहसंगेल्ली।

तएणं से जमाली खत्तियकुमारे अब्भुग्गतभिंगारे, परिगहियतालियंटे, ऊसवियसेयछत्ते, पवीइयसेयचामरवालवीयणीए, सव्वड्ढीए जावणाइयरवेणं तयाणंतर च बहवे लट्ठिग्गाहा कुंतग्गाहा जाव पुत्थयग्गाहा, जाव वीणग्गाहा तयाणंतर च णं अट्ठसयं गयाणं, अट्ठसयं तुरयाणं अट्ठसयं रहाणं, तयाणंतरं च णं लउडअसिकोंतहत्थाणं पायत्ताणीणं पुरओ संपट्ठियं, तयाणंतरं च णं बहवे राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिईओ पुरओ संपट्ठिआ खत्तियकुंडग्गामं णयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव माहणकुंडग्गामे णयरे, जेणेव बहुसालए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पाहारेत्थ गमणाए।

—भग० श ९/उ ३३ सू २०५ से २०७

जमाली कुमार के पिता ने स्नानादि किया, यावत् विभूषित होकर हाथी के उत्तम कंधे पर चढ़ा। कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त छत्र धारण करते हुए, दो श्वेत चामरों से विंजाते हुए, घोड़ा, हाथी, रथ और सुभटों से युक्त, चतुरंगिनी सेना सहित और महासुभटों के वृन्द से परिवृत्त जमालीकुमार के पिता, उसके पीछे चलने लगे।

जमालीकुमार के आगे महान् और उत्तम घोड़े, दोनों ओर उत्तम हाथी, पीछे रथ और रथ का समूह चला। इस प्रकार ऋद्धि सहित यावत् वादिन्त्र के शब्दों से युक्त जमालीकुमार चलने लगा। उसके आगे कलश और तालवृन्त लिये हुए पुरुष चले। उसके सिर पर श्वेत छत्र धारण किया हुआ था। दोनों ओर श्वेत चामर और पंखे विंजाये जा रहे थे।

इनके पीछे बहुत-से लकड़ी वाले, भालावाले, पुस्तकवाले यावत् वीणावाले पुरुष चले। उनके पीछे एक सौ आठ हाथी, एक सौ आठ घोड़े और एक सौ आठ रथ चले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके बाद लकड़ी, तलवार और भाला लिये हुए पदाति पुरुष चले। उनके पीछे बहुत-से युवराज, धनिक, तलवार यावत् सार्थवाह आदि चले।

इस प्रकार क्षत्रियकुंडग्राम, नगर के बीच में चलते हुए नगर के बाहर बहुशालक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर के पास जाने लगे।

तएणं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स खत्तियकुंडग्गामं णयरं मज्झं-मज्झेणं णिग्गच्छमाणस्स सिंघाडग-तिय-चउक्क जाव पहेसु बहवे अत्थत्थिया जहा ओववाइए, जाव अभिणंदिया य अभित्थुणंता य एवं वयासी—'जय-जय णंदा! धम्मेणं, जय-जय णंदा! तवेणं, जय-जय णंदा! भद्दं ते अभग्गेहिं णाण-दंसणं चरित्तमुत्तमेहिं, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं पालेहि समण-धम्मं; जियविग्घोवि य वसाहि तं देव! सिद्धि मज्झे णिहणाहि य राग-दोस-मल्ले, तवेणं धिइधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं, अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च धीर।

तेलोक्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं च णाणं, गच्छ य मोक्खं परं पदं जिणवरोवदिट्ठेणं सिद्धिमग्गेणं अकुडिलेणं, हंता परीसहचमूं, अभि-भविय गामकंटकोवसग्गाणं, धम्मे ते अविग्घमत्थू त्तिकट्टु अभिणंदंति य अभिथुणंति य।

—भग० श ९/उ ३३ सू २०८

क्षत्रिय कुण्डग्राम के बीच से निकलते हुए जमाली कुमार को शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क यावत् राजमार्गों में बहुत से धनार्थी और कामार्थी पुरुष, अभिनन्दन करते हुए एवं स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

"हे नन्द (आनन्द-दायक) धर्म द्वारा तेरा जय हो। हे नन्द! तप से तुम्हारी जय हो। हे नन्द! तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो। हे नन्द! अखंडित उत्तम ज्ञान, दर्शन और चारित्र द्वारा अविजित ऐसी इन्द्रियों को जीते और श्रमण धर्म का पालन करें। धैर्य रूपी कच्छ को मजबूत बांधकर सर्व विघ्नों को जीते और श्रमण धर्म का पालन करें। धैर्य रूपी कच्छ को मजबूत बाँध कर सर्व विघ्नों को जीते। इन्द्रियों को वश करके परीषह रूपी सेना पर विजय प्राप्त करें। तप द्वारा राग द्वेष रूपी मल्लों पर विजय प्राप्त करें।

हे धीर! तीन लोक रूपी विश्व-मंडप में आप आराधना रूपी पताका लेकर अप्रमत्तता पूर्वक विचरण करें और निर्मल विशुद्ध ऐसे अनुत्तर केवलज्ञान प्राप्त करें तथा जिनवरोपदिष्ट सरल सिद्धि मार्ग द्वारा परम पद रूप मोक्ष को प्राप्त करें।

तुम्हारे धर्म-मार्ग में किसी प्रकार का विघ्न नहीं हो। इस प्रकार लोग अभिनन्दन और स्तुति करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तएणं से जमाली खत्तियकुमारे नयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे-पेच्छिज्जमाणे हिययमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे-अभिणंदिज्जमाणे मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे-विच्छिप्पमाणे वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे-अभिथुव्वमाणे कंतिसोहग्गगुणेहिं पत्थिज्जमाणे-पत्थिज्जमाणे बहूणं नरनारिसहस्साणं दाहिणहत्थेणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे-पडिच्छमाणे मंजु-मंजुणा घोसेणं आपडिपुच्छमाणे-आपडिपुच्छमाणे भवनपंतिसहस्साइं समइच्छमाणे-समइच्छमाणे खत्तियकुंडग्गामे नयरे मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकुंडग्गामे नयरे जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्तादीए तित्थगरातिसए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ।

—भग श ९/उ३३/सू २०९

औपपातिक सूत्र में वर्णित कोणिक के प्रसंगानुसार जमालीकुमार हजार पुरुषों से देखा जाता हुआ ब्राह्मणकुंड-ग्राम नगर के बाहर बहुशाल उद्यान में आया और तीर्थंकर भगवान् के छत्र आदि अतिशयों को देखते ही सहस्रपुरुष वाहिनी से नीचे उतरा।

तएणं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति-वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु भंते! जमाली खत्तियकुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणब्भूए जीविऊसविए हिययनंदिजणणे उंबरपुप्फं पिव दुल्लभे सवणयाए किमंग! पुण पासणयाए?

से जहा नामए उप्पले इ वा, पउमे इ वा जाव सहस्सपत्ते इ वा पंके जाए जले संवुडे नोवलिप्पति पंकरएणं, नोवलिप्पति जलरएणं, एवामेव जमाली वि खत्तियकुमारे कामेहिं जाए, भोगेहिं संवुड्ढे नोवलिप्पति कामरएणं नोवलिप्पति भोगरएणं नोवलिप्पति मित्त-णाइ-णियग-सयणसंबंधि-परिजणेणं।

एसणं देवाणुप्पिया! संसारभयुव्विग्गे भीए जम्मण-मरणेणं, इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। तं एयंणं देवाणुप्पियाणं अम्हे सीसभिक्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सीसभिक्खं।

—भग० श ९/उ३३/सू० २१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर जमालीकुमार को आगे करके उसके माता-पिता श्रमण भगवान् महावीर की सेवा में उपस्थित हुए और भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा करके इस प्रकार बोले—"हे भगवन् यह जमालीकुमार हमारा इकलौता, प्रिय और इष्टपुत्र है। इसका नाम सुनना भी दुर्लभ है तो दर्शन दुर्लभ हो—इसमें तो कहना ही क्या !

जिस प्रकार कीचड़ में उत्पन्न होने और पानी में बड़ा होने पर भी कमल पानी और कीचड़ में निर्लिप्त रहता है, इसी प्रकार जमालीकुमार भी काम से उत्पन्न हुआ और भोगों में बड़ा हुआ, परन्तु वह काम में किंचित् भी आसक्त नहीं है।

मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबंधी और परिजनों में लिप्त नहीं है। हे भगवन् ! यह जमालिकुमार संसार के भय से उद्विग्न हुआ है। जन्म-मरण के भय से भयभीत हुआ है। यह आप के पास मुंडित होकर अनगार धर्म स्वीकार करना चाहता है। अतः हे भगवन् ! हम यह शिष्य रूपी भिक्षा देते हैं। आप इसे स्वीकार करें।

तएणं समणे भगवं महावीरे जमालिं खत्तियकुमारं एवं वयासी—अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं ! तएणं से जमाली खत्तियकुमारे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव णमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सममेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ।

तएणं सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरण-मल्लालंकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारि जाव विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी जमालिं खत्तियकुमारं एवं वयासी-जइयव्वं जाया ! घडियव्वं जाया ! परिक्कमियव्वं जाया। अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएयव्वंति कट्टु जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मापियरो समणं भगवं महावीरं वंदंति, णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

—भग० श ६/उ ३३/सू० २११ से २१३

तत् पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने जमाली क्षत्रियकुमार से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो—वैसा करो। किन्तु विलम्ब मत करो। भगवान् के ऐसा कहने पर जमाली क्षत्रियकुमार हर्षित और तुष्ट हुआ। और भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा कर यावत् वंदना-नमस्कार कर, उत्तर-पूर्व (ईशाणकोण) में गया। उसने स्वयमेव आभरण, माला और अलंकार उतारे।

उसकी माता ने उन्हें हंस के चिह्नवाले पटशाटक (वस्त्र) में ग्रहण किया। फिर हार और जलधारा के समान आंसू गिराती हुई अपने पुत्र से इस प्रकार बोली—हे पुत्र ! संयम में प्रयत्न करना, संयम में पराक्रम करना। संयम पालन में किंचित् मात्र भी प्रमाद मत करना।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार कहकर जमाली क्षत्रियकुमार के माता-पिता भगवान् को वंदना नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा से वापिस चले गये।

जमाली अनगार हुए—

तएणं से जमाली खत्तियकुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, एवं जहा उसभदत्तो तहेव पव्वइओ ; णवरं पंचहिं पुरिससएहिं सद्धिं तहेव जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, सा० अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठ-ट्ठम जाव मासद्ध-मासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

—भग० श ६/उ ३३/सू २१४

क्रमाच्च क्षत्रियकुंडग्रामं स्वामी समाययौ।
तस्थौ समवसरणे विदधे चाथ देशनाम् ॥२९॥

× × ×

जमालिर्नाम जामेयो जामाता च प्रभोस्तदा।
प्रियदर्शनया सार्धं तत्र वन्दितुमाययौ ॥३२॥

जमालिर्देशनां श्रुत्वा पितरावनुमान्य च।
क्षत्रियाणां पञ्चशत्या सहितो व्रतमाददे ॥३३॥

जमालिभार्या भगवद्दुहिता प्रियदर्शना।
सहिता स्त्रीसहस्रेण प्राव्राजीत् स्वामिनोऽन्तिके ॥३४॥

ययौ विहर्तुमन्यत्र ततश्च भगवानपि।
जमालिरप्यनुचरः सहितः क्षत्रियर्षिभिः ॥३५॥

एकादशांगीमध्यैष्ट जमालिर्विहरन् क्रमात्।
सहप्रव्रजितानां च तमाचार्यं व्यधात्प्रभुः ॥३६॥

जमाली का विहार—

चतुर्थषष्ठाष्टमादीन्यतप्यत तपांसि सः।
चन्दनामनुगच्छन्ती सा चापि प्रियदर्शना ॥३७॥

नाथं जमालिर्नत्वोचेऽन्यदाऽहं सपरिच्छदः।
विहारेणानियतेन प्रयामि त्वदनुज्ञया ॥३८॥

अनर्थं भाविनं ज्ञात्वा भगवान् ज्ञानचक्षुषा।
भूयो भूयः पृच्छतोऽपि जमालेर्नोत्तरं ददौ ॥३९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिषिद्धमनुज्ञातं जमालिरिति बुद्धितः।
विहर्तुं सपरीवारः प्रभुपार्श्वाद्विनिर्ययौ ॥४०॥
—त्रिशलाका० पर्व १० सर्ग ८

भगवान् महावीर विहार करते हुए क्षत्रियकुंडग्राम पधारे। वहाँ समवसरण में बैठकर देशना दी। उस समय जमाली नाम भगवान् का भानेज और जमाता, भगवान् की पुत्री-प्रियदर्शना सहित भगवान् को वंदनार्थ आये। भगवंत की देशना सुनकर प्रतिबोध को प्राप्त हुआ जमाली माता-पिता की आज्ञा लेकर पाँच सौ क्षत्रियों के साथ भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की। जमाली की स्त्री और भगवान् की पुत्री प्रियदर्शना भी एक हजार स्त्रियों के साथ भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की।

तत्पश्चात् जमाली मुनि भी क्षत्रिय मुनियों सहित प्रभु के साथ विहार करने लगे।

अनुक्रमतः जमालि एकादश अंग का अध्ययन किया। भगवान् ने उसे सहस्र क्षत्रिय मुनियों का आचार्य किया। जमाली ने छट्ठ और अष्टम आदि तप करना प्रारम्भ किया। उसी प्रकार चंदना का अनुसरण करती हुई प्रियदर्शना भी तप करने लगी।

उस समय जमाली स्वयं के परिवार सहित भगवान् को वंदन किया और बोला—भगवान्! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं नियत विहार करना चाहता हूँ। भगवान् ने ज्ञान चक्षु से उसमें भावी अनर्थ जाना। इस कारण जमाली मुनि ने बार-बार पूछा तथापि कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

"जिस में निषेध नहीं होता उसमें आज्ञा समझनी चाहिए" ऐसा विचार कर जमाली मुनि परिवार सहित अन्यत्र विहार करने के लिए भगवान् के पास से निकले।

(ठ) भगवान महावीर और कोणिक राजा की भगवद् भक्ति—

ते णं कालेणं ते णं समएणं चम्पा नाम नयरी होत्था।× × ×। तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसि-भाए पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था।×××। बहुजणो अच्चेइ आगम्म पुण्णभद्दं चेइयं पुण्णभद्दं चेइयं।× × ×। से णं पुण्णभद्दे चेइए एक्केणं महया वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। × × ×। तस्स णं वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एक्के असोगवरपायवे पण्णत्ते। × × ×। तस्स णं असोगवर पायवस्स हेट्ठा ईसिं खंधसमल्लीणे एत्थ णं महं एक्के पुढविसिलापट्टए पण्णत्ते। × × ×। तत्थ णं चंपाए णयरीए कूणिए णामं राया परिवसइ। × × ×। तस्स णं कोणियस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था। × × ×। तस्स णं कोणिअस्स रण्णो एक्के पुरिसे विउलकय-वित्तिए भगवओ पवित्तिवाउए, भगवओ तद्देवसिअं पवित्तिं

णिवेएइ। तस्स णं पुरिसस्स बहवे अण्णे पुरिसा दिण्ण-भति-भत्त-वेयणा भगवओ पवित्तिवाउआ भगवओ तद्देवसिअं पवित्तिं निवेदेंति। × × ×।

—ओव० सू० १, २, ३, ८, १३, १४, १५, १६, १७

उस काल उस समय में 'चम्पा' नाम की नगरी थी। उस चंपा नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा के भाग में 'पूर्णभद्र' नाम का चैत्य था। बहुजन पूर्णभद्र चैत्य पर आ-आकर अर्चना करते थे। वह पूर्णभद्र चैत्य एक बहुत बड़े वनखंड से, दिशा-विदिशा में चारों ओर से घिरा हुआ था।

उस वनखंड के लगभग मध्यभाग में एक विशाल अशोक वृक्ष था।

वहाँ, उस श्रेष्ठ अशोकवृक्ष के नीचे, उसके थड़ के कुछ समीप पृथ्वी का एक बड़ा शिलापट्टक था।

उस चंपानगरी में 'कूणिक' नाम का राजा रहता था। उस कूणिक राजा की धारिणी नाम की रानी थी।

उस कूणिक राजा ने भगवान् की (विहारादि) प्रवृत्ति को जानने के लिए, एक पुरुष को विपुल वृत्ति (आजीविका देकर नियुक्त किया था, जो भगवान् की उस दिन संबंधी (प्रत्येक दिन की) प्रवृत्ति का, उससे निवेदन करता था। उस पुरुष के भी बहुत से अन्य पुरुष भगवान् की प्रवृत्ति के निवेदक थे। जिन्हें दैनिक आजीविका और भोजन रूप वेतन देकर रोक रखे थे। वे उसे भगवान् की दैवसिक-प्रवृत्ति के समाचार देते थे।

भगवान महावीर और धर्म-संदेशवाहक

तएणं से पवित्तिवाउए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिस-वस-विसप्पमाण-हियए ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउअ-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकिय-सरीरे, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ।

—ओव० सू० २०

तब भगवान् की प्रवृत्ति के निवेदक उस पुरुष ने यह बात जानकर, हर्षित या विस्मित और संतुष्ट चित्त, आनंदित (किञ्चित् मुख-सौम्यता आदि भावों से समृद्ध), मन में प्रीति से युक्त, परम, सुन्दर मानसिक भावों से सम्पन्न और हर्षावेश से विकसित हृदयवाला होकर स्नान, बलिकर्म, कौतुक मंगल और प्रायश्चित करने के बाद, स्नान से शुद्ध बने हुए, शरीर पर मंगल वस्त्रों के वेश को सुन्दर ढंग से पहनाकर, थोड़े भारवाले बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को सजाया। फिर वह अपने घर से बाहर निकला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंपा नगरी में भगवान के पदार्पण की कोणिक राजा को संदेशवाहक द्वारा सूचना—

सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ्‍प डिणिक्खमित्ता, चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव कोणियस्स रण्णो गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव कूणिए राया भंभसारपुत्ते, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ। वद्धावित्ता एवं वयासी-'जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं कंखंति' जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पीहंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पत्थंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं अभिलसंति, जस्स णं देवाणुप्पिया णामगोयस्स वि सवणयाए हट्ठतुट्ठ जावहिअया भवंति, से णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुग्गामं दुइज्जमाणे, चंपाए णयरीए उवणगरग्गामं उवागए, चंपं णगरिं पुण्णभद्दं चेइअं समोसरिउं कामे। तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पिअट्ठयाए पिअं निवेदेमि ; पिअं भे भवउ'।

—ओव० सू० २०

वह प्रवृत्ति निवेदक अपने घर से निकल कर, चम्पानगरी के मध्य में होता हुआ। जहाँ कूणिक राजा का निवास स्थान था। जहाँ बाहरी सभा-भवन था। और जहाँ भंभसार का पुत्र कूणिक राजा (बैठा) था, वहाँ आया। जय-विजय से (आपकी वृद्धि हो—इस प्रकार) बधाया अर्थात् आप जय-विजय करते हुए वृद्धि को प्राप्त होवें—ऐसा आशीर्वाद दिया। फिर वह इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रिय ! (सरल स्वभाववाले) आप जिनके दर्शन चाहते हैं एवं प्राप्त होने पर छोड़ना नहीं चाहते हैं, हे देवानुप्रिय ! जिनके दर्शन नहीं हुए हो तो पाने की इच्छा करते हैं। हे देवानुप्रिय ! जिनके दर्शन हो—ऐसे उपायों की अन्यजन से अपेक्षा करते हैं अर्थात् चाहते हैं। हे देवानुप्रिय ! जिनके दर्शन के लिए अभिमुख होना सुन्दर मानते हैं और हे देवानुप्रिय जिनके नाम (महावीर, ज्ञातपुत्र, सन्मति आदि) और गोत्र (काश्यप) के सुनने मात्र से हर्षित, संतुष्ट (यावत्) हर्षावेश से विकसित हृदय वाले हो जाते हैं—वे ही श्रमण भगवान् महावीर स्वामी क्रमशः विचरते हुए, मार्ग में आने वाले गाँवों को पावन करते हुए चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्यमें आने के लिए चंपानगरी के उपनगर में पधारे हैं। यह देवानुप्रिय का प्रीतिकर विषय होने से प्रिय समाचार निवेदन कर रहा हूँ। वह आपके लिए प्रिय बने।

कूणिक का भगवान को वंदन—

तएणं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते तस्स पवित्तिवाउअस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हिअए विअसिअ-वर-कमल-णयण-वयणे पअलिअ-वर-कडग-तुडिय-केऊर-मउड- कुंडल-हार - विरायंत-रइय-वच्छेपालंब-

पलंबमाण-घोलंत भूसण-धरे ससंभमं तुरियं चवलं नरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउआओ ओमुअइ। ओमुइत्ता अवहट्टु पंच-राय-ककुहाइं ; तं जहा—खग्गं १, छत्तं २, उप्फेसं ३, वाहणाओ ४, वालवीअणं ५, एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ। करेत्ता आयंते चोक्खे परम सुइभूए अंजलिमउलियग्ग हत्थे तित्थगराभिमुहे सत्तट्ठ-पयाइं अणुगच्छइ सत्तट्ठ-पयाइं अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ। वामं जाणुं अंचेत्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि साहट्टु, तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसेइ। निवेसेत्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता कडग-तुडिय-थंभिआओ भुआओ पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता करयल-जाव कट्टु एवं वयासी ××× नमोऽत्थुणं जाव ××× ठाणं संपत्ताणं।

—ओव० सू० २१

तब भंभसार का पुत्र कूणिक, उस प्रवृत्ति-निवेदक से यह बात कान से सुनकर हृदय से धारण कर बहुत प्रसन्न हुआ। श्रेष्ठ कमल के समान नेत्र और मुख विकसित हो गये। (भगवान् के आगमन-श्रवण से उत्पन्न हर्षावेश के कारण) कङ्कण, त्रुटिय (हाथ के तोड़े) केयूर, (अंगद भुजबंध) मुकुट, कुंडल ओर हारसे सुशोभित बना हुआ वक्ष कंपित हो रहा था। लम्बी लटकती हुई माला और हिलते हुए भूषणों के धारक नरेन्द्र ससंभ्रम (आदर सहित) जल्दी-जल्दी सिंहासन से उठे, उठकर, पादपीठ से (चौकी से) नीचे उतरे। उतर कर पादुकाएँ खोली। पाँच राज चिन्हों को दूर किये। यथा—(१) खड्ग, (२) छत्र, (३) मुकुट, (४) उपानद् (पगरखी, जूते) और चामर। एक साटिक उत्तरासंग किया। जल स्पर्श से मैल से रहित अति स्वच्छ बने हुए हस्त-सम्पुट (अञ्जली) से कमल की कली के समान आकार वाले हाथों से युक्त (अर्थात् हाथ जोड़कर) जिधर तीर्थंकर देव विराजमान थे—उधर मुख करके, सात-आठ कदम सामने गये। बायें पैर को संकुचित किया। दायें पैर को धरणितल पर, संकोचकर रखा। और शिर को तीन बार धरती से लगाया। फिर थोड़ा-सा ऊपर उठकर कड़े और तोड़े से स्थिर बनी हुई भुजाओं को उठाकर, हाथ जोड़े और अंजली को सिर पर लगाकर इस प्रकार बोले—

कूणिक का भगवान को वंदन—

नमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स तित्थगरस्स··· जाव संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स।

वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासइ मे (मे से) भगवं तत्थगए इहगयं :—ति कट्टु वंदइ णमंसइ।

वंदित्ता णमंसित्ता सीहासण-वर-गए पुरत्थाभिमुहे निसीयइ। निसीइत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्स पवित्तिवाउअस्स अट्ठुत्तरं सयसहस्सं पीइदाणं दलयइ दलइत्ता सक्कारेइ सम्माणेइ। सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी—'जया णं देवाणुप्पिया। समणे भगवं महावीरे इहमागच्छेज्जा इह समोसरिज्जा, इहेव चंपाए णयरीए बहिया पुण्णभद्दे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरेज्जा, तया णं मम एअमट्ठं निवेदिज्जासि'—त्तिकट्टु विसज्जिए।

—औव० सू० २१

अरिहंत (इन्द्रों से पूजित या परम शक्तिमान् अथवा कर्मशत्रु को नष्ट करने वाले) भगवान्, आदिकर, तीर्थंकर, स्वयंसंबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषवर-पुण्डरीक, पुरुषवर गंधहस्ती, लोकोत्तम, लोकनाथ, लोकहितंकर, लोकप्रदीप, लोक प्रद्योतकर अभयदाता, चक्षुदाता, मार्गदाता, शरणदाताजीवनदाता, बोधिदाता, धर्मदाता, धर्मदेशक, धर्मनायक धर्मसारथि, धर्मवर चातुरंत चक्रवर्ती, द्वीप, त्राण-सरण-गतिप्रतिष्ठारूप, अप्रतिहत-वर-ज्ञान दर्शन धर, व्यावृत्त छद्म, जिन, जापक, तिरक, तारक, बुद्ध, बोधक, मुक्त, मोचक, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी (समस्त पदार्थों, उनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवस्थाओं भूत-भविष्य और वर्तमान की सभी अनंतानन्त पर्यायों को विस्तार से और सामान्य रूप से जानने वाले)।

शिव-सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित, अचल-स्थिर-नीरोग, अनंत, अक्षय, अव्याबाध, अपुनरावर्तित सिद्धगति नाम वाले स्थान को प्राप्त (शुद्धात्मा) से नमस्कार हो।

श्रमण भगवान् महावीर (जो कि) आदिकर, तीर्थंकर (यावत्) सिद्धि गति नाम वाले स्थान को पाने के इच्छुक (भावी सिद्ध) हैं। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक हैं (उन्हें) नमस्कार हो।

यहाँ पर स्थित (मैं) वहाँ पर स्थित भगवान् को वंदना करता हूं। वहाँ पर स्थित भगवान् यहाँ पर स्थित मुझे देखते हैं।

वह वंदना नमस्कार करके, पूर्व की ओर मुख रखकर, सिंहासन पर ठीक तरह से बैठा। उस प्रवृत्ति-निवेदक को एक लाख आठ हजार (रजतमुद्रा) का प्रतिदान दिया। (श्रेष्ठ वस्त्रादि से) सत्कार किया। (आदर-सूचक वचनों से) सम्मान किया। पुनः इस प्रकार बोला—'हे देवानुप्रिय! जब श्रमण भगवान् महावीर यहाँ आवें—यहाँ समवसरें, इस चंपानगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में संयमियों के योग्य आवासस्थान को ग्रहण करके, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरें तब यह सूचना मुझे देना।

इस प्रकार कहकर उस प्रवृत्ति-निवेदक को विसर्जित किया।

चंपा नगरी में भगवान महावीर का पदार्पण तथा लोगों में उनकी चर्चा—

तेणं कालेणं तेणं समए णं चम्पाए नयरीए। × × ×। बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ—'एवं खलु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवाणुप्पिया। समणे भगवं महावीरे, आइगरे तित्थगरे, सयंसंबुद्धे, पुरिसुत्तमे जाव संपाविउकामे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, इहमागए, इह संपत्ते, इह समोसढे; इहेव चम्पाए णयरीए बाहिं पुण्णभद्दे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ'।

—ओव० सू ५२

उस काल उस समय में चंपानगरी थी। बहुत से मनुष्य एक दूसरे को इस प्रकार सामान्य रूप से कहते थे' विशेष रूप से कहते थे। प्रकट रूप से एक ही आशय को भिन्न-भिन्न शब्दों के द्वारा प्रकट करते थे। इस प्रकार कार्य-कारण की व्याख्या सहित तर्क युक्त कथन करते थे—हे देवानुप्रिय! बात ऐसी है कि—श्रमण भगवान् महावीर जो कि स्वयं-संबुद्ध आदि कर्त्ता और तीर्थंकर है, पुरुषोत्तम है यावत् सिद्धि गति रूप स्थान की प्राप्ति के लिए प्रवृत्ति करने वाले हैं—वे क्रमशः विचरण करते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव को पावन करते हुए यहाँ पधारे हैं, यहाँ ठहरे है, यहाँ विराजमान हैं।

इसी प्रकार चंपानगरी के बाहर, पूर्णभद्र चैत्य में, संयमियों के योग्य स्थान को ग्रहण करके, संयम और तप से भावित आत्म विहार कर रहे हैं।

(ड) मनुष्य परिषद्—

तं महप्फलं खलुभो देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए।

एगस्सवि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणायए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए?

तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरे, वंदामो णमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं (विणएणं) पज्जुवासामो।

एयणे पेच्चभवे इहभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

—ओव० सू ५२

हे देवानुप्रिय! तथा रूप—महाफल की प्राप्ति कराने रूप स्वभाव वाले अर्थात् अरिहंत के गुणों से युक्त अर्हन्त भगवान् के नाम (पहचान के लिए बनी हुई लोक में रूढ संज्ञा) गोत्र (गुण के अनुसार दिया हुआ नाम) को भी सुनने से महत् फल की प्राप्त होती है। तो फिर पासमें जाने से, स्तुति करने से, नमस्कार करनेसे, संयम यात्रादि की समाधि पृच्छा करने से और उनकी सेवा करने से होने वाले फल की तो बात ही क्या? अर्थात् निश्चय ही महत् फल की प्राप्ति होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह (हमारे द्वारा की गई भगवद् वंदना आदि) परभव में और इस भव में पथ्य अंत के समान हित के लिए, सुख के लिए, परिस्थितियों को साधना के अनुकूल बना के लिए और मोक्ष के लिए या भव-परम्परा में मोक्षमार्ग में बाधक नहीं होने वाले सुखलाभ के लिए, हमें कारण रूप बनेगीं।

—ओव० सू ५२/पृ० ५२, ५३

बहवे उग्गा उग्गपुत्ता भोगा भोगपुत्ता एवं दुपडोयारेणं—राइण्णा खत्तिया माहणा भडा जोहा पसत्थारो मल्लई लेच्छई लेच्छईपुत्ता अण्णे य बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-प्पभितयो अप्पेगइया वंदणवत्तियं अप्पेगइया पूयणवत्तियं अप्पेगइया सक्कारवत्तियं अप्पेगइया सम्माणवत्तियं अप्पेगइया दंसणवत्तियं अप्पेगइया कोऊहलवत्तियं अप्पेगइया अस्सुयाइं सुणेस्सामो सुयाइं निस्संकियाइं करिस्सामो अप्पेगइया मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो, अप्पेगइया पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामो, अप्पेगइया जिणभत्तिरागेणं अप्पेगइया जीयमेयंति कट्टु ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता सिरसा कंठे मालकडा आविद्धमणि-सुवण्णा कप्पिय-हारद्ध-हार-तिसर-पालंब-पलंबमाण-कडिसुत्त-सुकय-सोहाभरणा पवरवत्थपरिहिया चंदणोलित्तगायसरीरा, अप्पेगइया हयगया अप्पेगइया गयगया अप्पेगइया रहगया अप्पेगइया सिबिया-गया अप्पेगइया संदमाणियागया अप्पेगइया पाय-विहार-चारेणं पुरिसवग्गुरा-परिक्खित्ता महया उक्किट्ठ-सीहणाय-बोल-कलकल-रवेणं 'पक्खुभिय-महा-समुद्द-रवभूयं पिव' करेमाणा चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छंति, २ त्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छंति, २ त्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्तादीए तित्थवराइसेसे पासंति, पासित्ता जाणवाहणाइं ठवेंति, २ त्ता जाणवाहणेहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति, करेत्ता वदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा णमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति।

—ओव० सू ५२।पृ० ५२, ५३

इस कारण बहुत से उग्र (आदिदेव के द्वारा स्थापित आरक्ष के वंशज), उग्रपुत्र (कुमार अवस्था वाले उग्रवंशी), भोग (आदिदेव के द्वारा गुरु रूप से स्थापित व्यक्तियों के वंशज अर्थात् पुरोहित), भोगपुत्र, राजन्य (भगवान् के वयस्यों के वंशज), राजन्यपुत्र क्षत्रिय (सामान्य राजकुलीन) क्षत्रियपुत्र, ब्राह्मण, ब्राह्मणपुत्र, भट (शूर), भटपुत्र, योद्धा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यौद्धापुत्र, प्रशास्ता (धर्मशास्त्र पाठक), प्रशास्तृ पुत्र, मल्लकी (राजविशेष) मल्लकी पुत्र, लेच्छकी, लेच्छकिपुत्र और भी बहुत से मांडलिक राजा, युवराज, तलवार (पट्टबंध-विभूषित राजस्थानीय पुरुष) माडम्बिक (एक जाति के नगर के अधिपति), कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठि (श्री देवता) अंकित सुवर्णपट्ट-विभूषित धनपति), सेनापति, सार्थवाह आदि में से कई वंदना करने के लिए, कई पुजा करने के लिए, कई सत्कार-सम्मान करने के लिए, कई दर्शन करने के लिए, तो कई कुतूहल वश भगवान् के पास जाने को तैयार हुए।

कई लोग अर्थ निर्णय करने के लिए—नहीं सुने हुए, भाव सुनेंगे, सुने हुए भावों को संशय रहित बनायेंगे। कई जीवादि अर्थ, पदार्थों में रहे हुए धर्म और नहीं रहे हुए धर्म से सम्बधित (अन्वय-व्यतिरेक) हेतु, कारण (तर्क संगत या युक्तियुक्त व्याख्या) और व्याकरण (दूसरों के द्वारा पूछे गये अर्थों के उत्तर) पूछेंगे—

कई-सभी से अपने सब भांति के सम्बन्धों का विच्छेद करके, गृहवास से निकलकर अनगार धर्म को स्वीकार करेंगे या पाँच अणुव्रत या सात शिक्षाव्रत रूप गृहिधर्म को स्वीकार करेंगे, कई जिनभक्ति के राग से और कई—यह (दर्शन करने को जाना) हमारी वंश परम्परा का व्यवहार है।

इस प्रकार विचार करके स्नान किया, बलिकर्म, कौतुकादि और मंगल रूप प्रायश्चित्त करके, सुन्दर वस्त्रों से सुसजित हुए। उन्होंने शिर पर और कंठ में मालाएँ धारण कीं।

मणि-सुवर्ण जडित अलंकार पहनें। सुन्दर हार, अर्द्धहार, तीन लडियों वाले हार, कटिसूत्र और अन्य भी शोभा बढ़ाने वाले आभरण धारण किये। देह के अवयवों पर चंदन का लेप लगाया।

कई घोड़े पर बैठे। इसी प्रकार हाथी, रथ, शिविका (कूटाकर ढँकी हुई पालखी) और स्यंदमाणिका (पुरुष प्रमाण लम्बी पालखी) पर सवार हुए, कई पैदल ही चारों ओर पुरुषों से घिरे हुए, आनन्द-महाध्वनि, सिंहनाद, बोल और कलकल महान् शब्द से सारी नगरी को, घोष से युक्त क्षुभित महासमुद्र के तुल्यसी करते हुए चले।

कुणिक का भगवान को अभिवंदन करने के लिए जाना

XXX। जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव आभिसेक्केहत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे।

तएणं तस्स कूणियस्स रण्णो भिंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थियरयणं दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठ मंगलया पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया, तंजहा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोवत्थिय-सिरिवच्छ-णंदियावत्त - वद्धमाणग - भद्दासण-कलस - मच्छ-दप्पणया ।

तयाणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा दंसण-रइय-आलोय-दरिसणिज्जा वाउद्धुय-विजयवेजयंती य ऊसिया गगणतल-मणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ।

ओव० सू ६३, ६४

कूणिक राजा जहाँ बाहरी सभाभवन था, जहाँ आभिषेक्य श्रेष्ठ हस्ति था—वहाँ आया, वहाँ आकर अंजनगिरि=(काजल के पर्वत) के शिखर के समान गजपति पर नरपति सवार हुआ ।

उस भंभसार पुत्र कूणिक राजा के आभिषेक्य हस्तिरत्न पर सवार हो जाने पर सर्व प्रथम ये आठ मंगल क्रमशः रवाना किये गये । वे इस प्रकार है—

१—स्वस्तिक, २—श्रीवत्स, ३—नन्द्यावर्त्त, ४—वर्द्धमानक, ५—भद्रासन, ६—कलश ७—मत्स्य और ८ दर्पण ।

इसके बाद जल से परिपूर्ण कलश एवं झारी और दिव्य छत्र पताका—जो कि चामर से युक्त, राजा के दृष्टिपथ में स्थित, वायु से फहराती हुई विजय सूचक-वैजयन्ती नामक लघुपताकाओं से युक्त और ऊँची उठाई हुई थी । वह गगनतल को स्पर्श करती हुई सी आगे रवाना हुई ।

कौणिक की भगवान को अभिवंदन करने की तैयारी

तएणं तस्स कूणियस्स रण्णो 'चंपाए णयरीए' मज्झंमज्झेणं निग्गच्छ-माणस्स बहवे अत्थत्थिया कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया किव्विसिया कारोडिया कारवाहिया संखिया चक्किया नंगलिया मुहमंगलिया वद्धमाणा पूसमाणया खंडियगणा ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं मणाभिरामाहिं हिययगमणिज्जाहिं वग्गूहिं जयविजयमंगलसएहिं अणवरयं अभिणंदंता य अभित्थुणंता य एवं वयासी—

जय-जयणंदा ! जय-जय भद्दा ! भद्दं ते,
अजियं जिणाहि
जियं पालयाहि,
जियमज्झे वसाहि ।
इंदो इव देवाणं चमरो इव असुराणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धरणो इव नागाणं चंदो इव ताराणं
भरहो इव मणुयाणं
बहूइं वासाइं बहूइं वाससयाइं

'बहूइं वाससहस्साइं' 'बहूइं वाससयसहस्साइं' अणहसमग्गो हट्ठतुट्ठो परमाउं पालयाहि इट्ठजणसंपरिवुडो चंपाए णयरीए अण्णेसिं च बहूणं गामागर-णयर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब' पट्टण-आसम-निगम-संवाह-संणिवेसाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं 'सामित्तं भट्टित्तं' महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं-विउलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहराहि त्ति कट्टु जय-जय सद्दं पउंजंति।

ओव० सू ६८

चंपानगरी के मध्य से होकर निकलते हुए कूणिक राजाकी बहुत से अर्थार्थी (=धन-प्राप्ति के अभिलाषी) कामार्थी (=मनोज्ञ शब्द और रूप की प्राप्ति के अभिलाषी) भोगार्थी (मनोज्ञ गंध, रस और स्पर्श की प्राप्ति के अभिलाषी) लाभार्थी (=मात्र भोजनादि के इच्छुक), किल्विषिक (=भांड) आदि, कापालिक, करपीड़ित, शांखिक (शंख फूँकने वाले) चाक्रिक (=चक्र नामक शस्त्र के धारक या कुंभकार, तैलिक आदि), लांगलित (भट्ट विशेष या किसान), मुख मांगलिक (=चाटुकार) वर्द्धमान (स्कंधों पर पुरुषों को आरोपित करनेवाले) भाट-चारण और छात्र समुदाय के के द्वारा इष्ट (वाञ्छित), कान्त (कमनीय=सुन्दर), प्रिय, मनोज्ञ (मन को खींचने वाली), मनोऽम (मन को भाने वाली) और मनोभिराम (=मन में रम जानेवाली) वाणी से तथा जय-विजय आदि सैंकड़ों मांगलिक शब्दों से लगातार अभिवंदना (आनंद-वर्धक बधाई) और अभिस्तवना (=स्तुति) की जाती रही थी। वे इस प्रकार बोल रहे थे।

हे नन्द! (=भुवन में समृद्धि के करने वाले) (तुम्हारी) जय हो! जय हो!

हे भद्र! (=कल्याणवान्। या कल्याणकारि) तुम्हारी जय हो! जय हो! आपका कल्याण हो। नहीं जीते हुए को जीते। जीते हुए (व्यक्तियों) के बीचमें निवास करें।

देवों में इन्द्र के समान, असुरों में चमर (इन्द्र) के समान, नागों में धरण (इन्द्र) के समान, ताराओं में चंद्र के समान और मनुष्यों में भरत (चक्रवर्ती) के समान बहुत वर्षों तक, बहुत सी शताब्दियों तक बहुत सी सहस्राब्दियों (हजारों वर्षों) तक, बहुत सी शत सहस्राब्दियों (=लाखों वर्षों) तक दोष रहित सपरिवार अति संतुष्ट और परमायु अर्थात् उत्कृष्ट आयु भोगें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इष्टजन से परिवृत्त होकर चंपानगरी का एवं और भी बहुत से ग्राम, आकर (लवण आदि के उत्पत्ति स्थान), नगर (कर से मुक्त शहर), खेट (धूलिकोट वाले गाँव), कर्बट (=कुनगर) मडम्ब, द्रोणमुख (जलपथ और स्थलपथ से युक्त निवास स्थान) पत्तन (=बन्दरगाह अथवा केवल जल-मार्गवाली या केवल स्थलमार्ग वाली बस्ती) आश्रम, निगम, संवाह (पर्वत की तलेटी आदि के गाँव) और सन्निवेश (=घोष आदि) का आधिपत्य, पुरोवर्तित्व (आगेवानी), भर्तृत्व=पोषकता) स्वामित्व, महत्तरत्व (=बड़प्पन) और आज्ञाकारक सेनापतित्व करते हुए—पालन करते हुए, कथानृत्य, गीति-नाट्य, वाद्य, वीणा, करताल, तूर्य, मेघ, मृदंग को कुशल पुरुषों के द्वारा बजाये जाने से उठने वाली महाध्वनि के साथ विपुल भोगों को भोगते हुए विचरें—यों कहकर वे व्यक्ति जयघोष करते थे।

कोणिक का भगवान को अभिवन्दन करने के लिए जाना।

तए णं से कूणिए राया भिंभसारपुत्ते × × × चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, २ त्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताईए तित्थयराइसेसे पासइ, पासित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवेइ, ठवेत्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, २ त्ता अवहट्टु पंच रायककुहाइं, तंजहा— खग्गं छत्तं उप्फेसं वाहणाओ वाल-वीयणयं, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तंजहा—

सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए
अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरयणाए
एगसाडियं उत्तरासंगकरणेणं
चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं
मणसो एगत्तिभावकरणेणं

समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, २ त्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ तंजहा—

काइयाए वाइयाए माणसियाए।

काइयाए—ताव संकुइयग्गहत्थपाए सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ।

वाइयाए—जं जं भगवं वागरेइ एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छिय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वदह अपडिकूलमाणे पज्जुवासइ । माण-सियाए—महयासंवेगं जणइत्ता तिव्वधम्माणुरागरते पज्जुवासइ ।

—ओव० सू० ६९

तब भंभसारपुत्र कूणिकराजा, हजारों नयनमालाओंसे दर्शित बनता हुआ, हजारों हृदयमालासे अभिनंदित होता हुआ, हजारों मनोरथ मालासे (उसके सहवासमें निवास के लिए) वाञ्छित होता हुआ, कान्ति-सौभाग्यसे प्रार्थित होता हुआ, हजारो वचनों से प्रशंसित होता हुआ चंपानगरी के बीचोंबीच होकर निकला ।

चंपानगरी से निकलकर, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ आये । वहाँ आकर, न अधिक नजदीक न अधिक दूर ऐसे स्थान से श्रमण भगवान् महावीर के छत्र आदि तीर्थंकर के अतिशय (विशेषताएं) देखें ।

'तब आभिषेक्य हस्तिरत्नको खड़ा रखा और उससे नीचे उतरे ।

हस्तिरत्न से उतरकर, पाँच राजचिह्नों को अलग किये—यथा—खड्‌ग, छत्र, मुकुट, उपानद् (जुते) और चामर ।

फिर जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आये और पाँच अभिगम (धर्म सभाके औपचारिक नियम) सहित श्रमण भगवान् महावीर के सम्मुख आये । यथा—

१—सचित्त (सजीव) द्रव्योंको छोड़ना,

२—अचित्त द्रव्योंको व्यवस्थित करना,

३—एक शाटक (=अखण्ड बिना सिला हुए वस्त्र दुपट्टे) से उत्तरासंग (=उत्तर= श्रेष्ठ+आसंग=लगाव) करना,

४—धर्मनायक के दृष्टिगोचर होते ही हाथ जोड़ना और

५—मनका एकत्त्व भाव करना या एक चित्त होना ।

फिर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की—वंदना की और उन्हें नमस्कार किया ।

वंदना नमस्कार करके, तीन प्रकार की पर्युपासनासे पर्युपासना करने लगा । यथा—कायिकी, वाचिकी और मानसिकी ।

कायिकी—हाथ पैर को संकुचित करके श्रवण करते हुए—नमस्कार करते हुए, भगवान् की ओर मुँह रखकर विनय से हाथ जोड़े हुए, पर्युपासना करता था ।

वाचिकी—जो जो भगवान् कहते, उससे—यह ऐसाही है भंते ! यही तथ्य है भन्ते ! यही सत्य है भंते ! निःसंदेह ऐसा ही है भंते ! यही इष्ट है भंते । यही स्वीकृत है भंते ! यही वाञ्छित—गृहीत है भंते । जैसा कि आप यह कह रहे हैं । यों अप्रतिकूल बनकर पर्युपासना करता था ।

मानसिकी—अतिसंवेग (=उत्साह या मुमुक्षुभाव) उत्पन्न करके, धर्म के अनुरागमें तीव्रता से आरक्त होकर पर्युपासना करता था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतपुर स्थित सुभद्रा प्रमुख देवियों का भगवान को वंदनार्थ जाना

तए णं ताओ सुभद्दप्पमुहाओ देवीओ अंतोअंतेउरंसि ण्हायाओ कय-बलिकम्माओ कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ताओ सव्वालंकारविभूसियाओ बहूहिं खुज्जाहिं चिलाईहिं वामणीहिं वडभीहिं बब्बरीहिं पउसियाहिं जोणियाहिं पल्हवियाहिं ईसिणियाहिं थारुइणियाहिं लासियाहिं लउसियाहिं सिंहलीहिं दमिलीहिं आरबीहिं पुलिंदीहिं पक्कणीहिं बहलीहिं मरुंडीहिं सबरीहिं पारसीहिं णाणादेसीहिं विदेसपरिमंडियाहिं इंगिय-चिंतिय-पत्थिय-वियाणियाहिंसदेसणे-वत्थ-गहिय-वेसाहिं चेडियाचक्कवाल-वरिसधर-कंचुइज्ज - महत्तर-वंदपरिक्खित्ताओ अंतेउराओ निग्गच्छंति, २ त्ता जेणेव पाडियक्कजाणाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छिता पाडियक्क-पाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं दुरूहंति, दुरूहित्ता णियगपरियालसद्धिं संपरिवुडाओ चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणंनिग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्तादीए तित्थयराइसेसे पासंति, पासित्ता पाडियक्क-पाडियक्काइं जाणाइं ठवेंति, ठवेत्ता जाणेहिंतो पच्चोरुहंति, २ त्ता बहूहिं खुज्जाहिं (जाव) चेडियाचक्कवाल-वरिसधर-कंचुइज्ज-महत्तर-वंद परिक्खित्ताओ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, २ त्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति, तंजहा—

सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए
अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए
विणओणयाए गायलट्ठीए
चक्खुप्फासे अंजलिपग्गेहणं
मणसोएगत्तिभावकरणेणं

समणं भगवं महावीरं तिक्खुतो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, २ त्ता वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता कुणियरायं पुरओकट्टु ठिइयाओ चेव सपरिवाराओ अभिमुहाओ विणएणं पंजलिकडाओ पज्जुवासंति ।

—ओव० सू ७०

तब (= भगवान् के आगम की सूचना मिलनेपर) अंतः पुर में निवास करने वाली सुभद्रा प्रमुख देवियों ने स्नान किया । ···यावत् प्रायश्चित्त किया और वे सभी अलंकारों से विभूषित हुई ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर बहुतसी कुब्जाओं, चेटिकाओं, वामनियों, वडभियों, बब्बरी, पयाउसिया, जोणिया, पण्हविआ, इसिगिणिआ, वासिइणिया, लासिया, लउसिया, सिंहली, दमिली, आरबी, पुलंदी, पक्कणी, बहली, मुरुंडी, सबरी और पारसी—इन नाना देश-विदेश की निवासिनियों—जोकि अपनी स्वामिनी के इंगित (मुखादि के चिह्न या चेष्टा) चिन्तित (सोची हुई बात) और प्रार्थित (=अभिलषित बात) की जानकार थी, जो अपने देश की वेषभूषाको पहने हुए थीं, उन चेटियों के समूह वर्षधर (=नाजर, कृत नपुंसक), कंचुकीय (=अंतःपुर के रक्षक) और महत्तरग (=अंतःपुर के रक्षकोंके अधिकारी) से घिरी हुई, अंतःपुर से निकली।

जहाँ प्रत्येक के यान खड़े थे, वहाँ आयीं और जुते हुए यात्राभिमुख यानों पर सवार हुई।

अपने परिवार से घिरी हुई चंपानगरीके मध्य से होकर निकली, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था—वहाँ आयीं।

दृष्टि योग्य स्थानसे श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थंकरत्वसूचक छत्रादि अतिशय देखें। तब यानोंको ठहराये और उनसे नीचे उतरीं।

बहुत सी कुब्जाओं से यावत् घिरी हुई, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आयीं अभिगम सहित उनके सन्मुख गई। यथा—

१—सचित द्रव्योंको छोड़ना,

२—अचित्त द्रव्योंको नहीं छोड़ना,

३—विनयसे देह को झुकाना,

४—चक्षुः स्पर्श होनेपर हाथ जोड़ना,

और ५—मन को एकाग्र करना।

फिर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिणा—प्रदक्षिणा की। वन्दना की। नमस्कार किया। कूणिक राजाको आगे रखकर, विनयसे करबद्ध होकर पर्युपासना करने लगीं।

चंपा में (बारह प्रकार की परिषद् में) महावीर का उपदेश :—

तए णं समणे भगवं महावीरे कूणियस्स रण्णो भिंभसारपुत्तस्स सुभद्दापमुहाणं देवीणं तीसे य महतिमहालियाए परिसाए इसिपरिसाए मुणिपरिसाए जइपरिसाए देवपरिसाए अणेगसयाए अणेगसयवंदाए अणेगसयवंदपरिवाराए ओहबले अइबले महब्बले अपरिमियबलवीरियतेयमाहप्पकंतिजुत्ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारयणवत्थणियमहुरगंभीरकोंचणिग्घोसदुंदुभिस्सरे उरे वित्थडाए कंठे वट्टियाए सिरे समाइण्णाए अगरलाए अमम्मणाए सुव्वत्तक्खरसण्णिवाइयाए पुण्णरत्ताए सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सईए जोयणणीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासइ-अरिहा धम्मं परिकहेइ। तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अगिलाए धम्मं आइक्खइ, सावि य णं अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमइ।

—ओव० सू० ७१

तब ओघबली (सदा समान बलवाले), महाबली, (प्रशस्त बलवाले), अपरिमित शारीरिक शक्ति (बल = शारीरिक प्राण), वीर्य (आत्म जनित बल), तेज, माहात्म्य (महानुभावता) और कान्ति से युक्त और शरद ऋतु के नवमेघ की मधुर गंभीर ध्वनि क्रौंच पक्षी के निर्घोष और दुंदुभि-नाद के समान स्वरवाले उन श्रमण भगवान् महावीर ने भंभसार पुत्र कूणिक को, सुभद्रा आदि देवियों को, कई सौ कई सौ वृन्द और कई सौ वृन्द परिवार वाली उस अति विशाल परिषद् को, ऋषि (अतिशय ज्ञानी साधु) परिषद् को, मुनि (मौनधारी साधु परिषद् को, यति (चरण में उद्यत साधु) परिषद् और देव परिषद् को, हृदय में विस्तृत होती हुई, कंठ में ठहरती हुई, मस्तक में व्याप्त होती हुई, अलग-अलग निज स्थानीय उच्चारणवाले अक्षरों से युक्त, अस्पष्ट उच्चारण से रहित (वा हकलाहट से रहित), उत्तम स्पष्ट वर्ण-संयोगों से युक्त, स्वरकला से संगीतमय और सभी भाषाओं में परिणत होनेवाली सरस्वती के द्वारा, एक योजन तक पहुँचनेवाले स्वर से, अर्द्धमागधी भाषा में धर्म को पूर्णरूप से कहा।

भगवान से धर्म सुनकर—आगार-अनागार धर्म ग्रहण किया—

तएणं सा महतिमहालिया मणूसपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्महट्ठतुट्ठ × × × हियया उट्ठाए उट्ठेइ, २त्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, २त्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता अत्थेगइया मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, अत्थेगइया पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवण्णा।

—ओव० सू ७८

तब वह विशाल मनुष्य-सभा श्रमण भगवान् महावीर के समीप धर्म को सुनकर—हृदय में धारणकर, हर्षित, संतुष्ट यावत् विकसित हृदय हुई और उठ खड़ी हुई।

श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की—वंदना की और नमस्कार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कई मुण्ड होकर गृहवास से निकलकर अनगार अवस्था में आये और कइयों ने पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के गृहिधर्म को स्वीकार किया।

भगवान की धर्मदेशना से प्रभावित होकर परिषद् को श्रद्धा होना।

अवसेसा णं परिसा समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

"सुअक्खाए ते भंते! निग्गंथे पावयणे।
सुपण्णत्ते ते भंते! निग्गंथे पावयणे।
सुभासिए ते भंते! निग्गंथे पावयणे।
सुविणीए ते भंते! निग्गंथे पावयणे।
सुभाविए ते भंते! निग्गंथे पावयणे।
अणुत्तरे ते भंते! निग्गंथे पावयणे।
धम्मं णं आइक्खमाणा उवसमं आइक्खह,
उवसमं आइक्खमाणा विवेगं आइक्खह,
विवेगं आइक्खमाणा वेरमणं आइक्खह,
वेरमणं आइक्खमाणा अकरणं पावाणं कम्माणं आइक्खह।

णत्थि णं अण्णे केइ समणे वा माहणे वा जे एरिसं धम्ममाइक्खित्तए, किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं?"

एवं वंदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

—ओव० सू० ७६

श्रावक धर्म व साधु धर्म को स्वीकार करने वालों को छोड़कर शेष परिषद ने श्रमण भगवान् महावीर की वन्दना की, नमस्कार किया। फिर इस प्रकार बोली—

भंते! आपने निर्ग्रन्थ प्रवचन सुन्दर रूप से कहा। इसी प्रकार सुप्रज्ञप्त (= विशेषता युक्त उत्तम रीति से कहा हुआ), सुभाषित (= सुन्दर भाषा में कहा हुआ) सुविनीत (= शिष्यों में उत्तम विनियोजित) सुभावित (= तत्त्व कथन उत्तम भावयुक्त बना हुआ) और अनुत्तर (= सर्वोत्तम) है। भंते! जड़-चेतन की ग्रंथियों का मोचक है आपका उपदेश—

आपने धर्म की व्याख्या करते हुए उपशम (= क्रोधादि के निरोध) का व्याख्यान दिया। उपशम की व्याख्या करते हुए विवेक (= बाह्य परिग्रह या बहिर्भाव के त्याग) का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप कहा। विवेक की व्याख्या करते हुए विरमण (=मन की निवृत्ति अथवा निज स्वरूप में लौटने की प्रक्रिया) का कथन किया और विरमण की व्याख्या करते हुए पाप-कर्मों (अशुभ अव—आत्मा की मलिन अवस्था में गति) को नहीं करने का कहा।

नहीं अन्य कोई श्रमण या ब्राह्मण—जो ऐसा धर्म कह सके। तो फिर इससे श्रेष्ठ धर्म का उपदेश कौन दे सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

इस प्रकार कहकर, जिस दिशा से आये थे—उसी दिशा में वापस गये।

भगवान की धर्म देशना से प्रभावित होकर कूणिक को श्रद्धा होना।

तएणं से कूणिए राया भिंभसारपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ ××× हियए उट्ठाए उट्ठेइ, २ त्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, २ त्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

सुयक्खाए ते भंते! निग्गंथे पावयणे। × × ×। किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं?—

एवं वंदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

—ओव० सू० ८०

तब भंभसार का पुत्र कोणिक राजा, श्रमण भगवान महावीर के समीप धर्म को सुनकर हृदय में धारण कर, हर्षित, संतुष्ट, यावत विकसित हृदय वाला हुआ और उठ खड़ा हुआ।

श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, वंदना की और नमस्कार किया।

भंते! आपने निर्ग्रन्थ प्रवचन सुन्दर रूप से कहा। इसी प्रकार सुप्रज्ञप्त, सुभाषित, सुविनीत, सुभावित और अनुत्तर है। भंते! जड़-चेतन की ग्रंथियों का मोचक है। आपका उपदेश।

नहीं है अन्य कोई श्रमण या माहण—जो ऐसा धर्म कह सके। तो फिर इससे श्रेष्ठ धर्म का उपदेश कौन दे सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

भगवान की धर्म-देशना से प्रभावित होकर सुभद्रा प्रमुख देवियों को श्रद्धा होना—

तए णं ताओ सुभद्दापमुहाओ देवीओ समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ × × × हिययाओ उट्ठाए उट्ठेंति, २ त्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति,२त्ता वंदंति णमंसंति वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

"सुयक्खाए ते भंते! निग्गंथे पावयणे ××× किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं ? एवं वंदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूयाओ तामेव दिसं पडिगयाओ।

—ओव० सू० ८१।पृ० ७८, ७९

तब सुभद्रा प्रमुख देवियाँ, श्रमण भगवान महावीर के समीप धर्म को सुनकर, हृदय में धारण कर, हर्षित, संतुष्ट; यावत् विकसित हृदय हुई और उठ खड़ी हुई।

श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिणा, प्रदक्षिणा की, वन्दना की और नमस्कार किया। फिर इस प्रकार बोली—

भंते! आपने निर्ग्रन्थ प्रवचन सुन्दर रूप से कहा है। इसी प्रकार सुप्रज्ञप्त (=विशेषता युक्त उत्तम रीति से कहा हुआ), सुभाषित (=सुन्दर भाषा में कहा हुआ), सुविनीत, (=शिष्यों में उत्तम विनियोजित) सुभावित, (=तत्त्व कथन उत्तम भावयुक्त बना हुआ) और अनुत्तर (=सर्वोत्तम) है। भंते! जड़-चेतन की ग्रंथियों का मोचक है, आपका उपदेश।

नहीं है अन्य कोई श्रमण या माहण—जो ऐसा धर्म कह सके। तो फिर इससे श्रेष्ठ धर्म का उपदेश कौन दे सकता है। अर्थात् कोई नहीं।

इस प्रकार जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में वापिस गये।

(ड) भगवान् महावीर और जनमानस का आगमन

.१ ऋषभदत्त और देवानंदा—

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं माहणकुंडग्गामे णयरे होत्था—वण्णओ। बहुसालए चेइए—वण्णओ/तत्थणं माहणकुंडग्गामे णयरे उसभदत्ते णामं माहणे परिवसइ—अड्ढे, दित्ते, वित्ते जाव बहुजणस्स अपरिभूए; रिउव्वेद-जजुव्वेद-सामवेद-अथव्वणवेद जहा खंदओ। जाव अण्णेसु य बहुसु बंभण्णएसु नयेसु सुपरिणिट्ठिए समणोवासए अभिगयजीवाजीवे उवलद्ध-पुण्ण-पावे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तस्स णं उसभदत्तस्स माहणस्स देवाणंदा णामं माहणी होत्था, सुकुमालपाणि-पायाजाव पियदंसणा, सुरूवा समणोवासिया अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपावा जाव विहरइ ॥१३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसापज्जुवासइ ॥१३८॥

तएणं से उसभदत्ते माहणे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ × × × हियए जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता देवाणंदं माहणिं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए! समणे भगवं महावीरे आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं जाव सुहंसुहेणं विहरमाणे बहुसालए चेइए अहापडिरूवं ××× विहरइ।

तं महप्फलं खलु देवाणुप्पिए! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नाम-गोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिए! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो ××× पज्जुवासामो एयंणे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए अणुगामियत्ताए भविस्सइ ॥१३९॥

तएणं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तेणं माहणेणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठ ××× हियया करयल ××× कट्टु उसभदत्तस्स माहणस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ ॥१४०॥

तए णं से उसभदत्ते माहणे देवाणंदाए माहणीए सद्धिं धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढे समाणे नियगपरियालसंपरिवुडे माहणकुंडग्गामं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता छत्तादीए तित्थकरातिसए पासइ, पासित्ता धम्मियं जाणप्पवरं ठवेइ, ठवेत्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता समणं भगवं महावीरं पंच-विहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ; तंजहा ××× एवं जहा बिइयसए जाव तिविहाए पज्जुवासणयाए पज्जुवासइ ॥१४५॥

तए णं सा देवाणंदा माहणी धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहति, पच्चो-रुहित्ता बहूहिं खुज्जाहिं जाव महत्तरगवंदपरिक्खित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ ××× जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता, वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उसभदत्तं माहणं पुरओकट्टु ठिया चेव सपरिवारा सुस्सूसमाणी नमंसमाणी अभिमुहा विणएणं पंजलिकडा पज्जुवासइ ॥१४६॥

—भग० श ९/उ ३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में 'ब्राह्मण-कुंडग्राम' नाम का नगर था। बहुशालक नाम का चैत्य था। उस ब्राह्मण-कुंडग्राम नगर में 'ऋषभदत्त' नाम का ब्राह्मण रहता था। वह आढ्य (धनवान्) तेजस्वी, प्रसिद्ध यावत् अपरिभूत था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में निपुण था। स्कंदक तापस की तरह वह भी ब्राह्मणों के दूसरे बहुत से नयों (शास्त्रों) में कुशल था। वह श्रमणों का उपासक, जीवजीवादि तत्वों का जानकार, पुण्य-पाप को पहिचानने वाला, यावत् आत्मा को भावित करता हुआ रहता था।[१]

उस ऋषभदत्त ब्राह्मण के 'देवानंदा' नाम की स्त्री थी। उसके हाथ-पैर सुकुमाल थे यावत् उसका दर्शन भी प्रिय था। उसका रूप सुन्दर था। वह श्रमणोपासिका थी।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। जनता यावत् पर्युपासना करने वहाँ गयी।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आगमन की बात सुनकर वह ऋषभदत्त ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ। वह अपनी पत्नी देवानंदा ब्राह्मणी के पास आया।

और इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिये! तीर्थ की आदि के करने वाले यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, आकाश में रहे हुए चक्र से युक्त यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए यहाँ पधारे।

श्रमण भगवान महावीर के आगमन की बात सुनकर वह ऋषभदत्त ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ। यावत् उल्लसित हृदय वाला हुआ। वह अपनी पत्नी देवानंदा ब्राह्मणी के पास आया। और इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिये! तीर्थ की आदि करने वाले यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी श्रमण भगवान महावीर स्वामी, आकाश में स्थित चक्र की तरह यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए यहाँ पधारे और बहुशालक नामक उद्यान में यथायोग्य अवग्रह धारण करके यावत् विचरते हैं।

हे देवानु प्रिये! तथारूप के अरिहंत भगवंत के नाम और गोत्र के श्रवण का भी महान् फल है, तो उनके सम्मुख जाने, वंदन-नमस्कार करने, प्रश्न पूछने और पर्युपासना करने आदि में होने वाले फल के विषय में कहना ही क्या है। तथा एक भी आर्य और धार्मिक सुवचन के श्रवण से महाफल होता है, तो फिर विपुल अर्थ को ग्रहण करने से महाफल हो, इसमें तो कहना ही क्या है। इसलिए देवानुप्रिये! अपन चलें और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन-नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें। यह कार्य अपने लिए इस भव में और परभव में हित, सुख, संगतता, निःश्रेयस और शुभ अनुबन्ध के लिए होगा।

१—ऐतिहासिक व्यक्तियों का यह कथन है कि श्री ऋषभदत्त पहले वैदिक मतावलम्बी थे। किन्तु बाद में भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानिक मुनिवरों के सम्पर्क से श्रमणोपासक बन गये थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभदत्त से यह बात सुनकर देवानंदा बड़ी प्रसन्न यावत् उल्लसित हृदय वाली हुई। और दोनों हाथ जोड़, मस्तक पर अंजली करके ऋषभदत्त ब्राह्मण के इस कथन को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

इसके बाद वह ऋषभदत्त ब्राह्मण देवानंदा ब्राह्मणी के साथ धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर चढ़ा हुआ और अपने परिवार से परिवृत्त, ब्राह्मणकुंड ग्राम नामक नगर के मध्य में होता हुआ निकला और बहुशालक उद्यान में आया। तीर्थङ्कर भगवान् के छत्र आदि अतिशयों को देखकर उसने धार्मिक श्रेष्ठ रथ को खड़ा रखा और नीचे उतरा। रथ पर से उतर कर वह श्रमण भगवान महावीर के पास पाँच प्रकार के अभिगम से जाने लगा। वे अभिगम इस प्रकार है—

(१) सचित द्रव्य का त्याग करना,

(२) अचित्त द्रव्य का त्याग नहीं करना अर्थात् वस्त्रादि को समेट कर व्यवस्थित करना,

(३) विनय से शरीर को अवनत करना (नीचे की ओर झुका देना),

(४) भगवान् के दृष्टिगोचर होते ही दोनों हाथ जोड़ना और

(५) मन को एकाग्र करना।

इन पाँच अभिगम द्वारा जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी हैं, वहाँ आई और भगवान् को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया।

वंदन-नमस्कार करने के बाद ऋषभदत्त ब्राह्मण को आगे कर अपने परिवार सहित शुश्रूषा करती हुई और नत बनकर सन्मुख स्थित रही हुई, विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उपासना करने लगी।

(ख) देवाणंदा के स्तन से दुग्धधारा बह निकली

तएणं सा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया पप्फुयलोयणा संवरियवलय-बाहा कंचुयपरिक्खित्तिया धाराहयकलंबगं पिव समूसवियरोमकूवा समणं भगवं महावीरं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ ॥१४७॥

भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—किणं भंते! एसा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया, तं चेव ××× रोमकूवा देवाणुप्पियं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ?

गोयमादि! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—एवं खलु गोयमा! देवाणंदा माहणी ममं अम्मगा, अहण्णं देवाणंदाए माहणीए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्तए। 'तण्णं एसा देवाणंदा माहणी तेणं पुव्वपुत्तसिणेहरागेणं आगयपण्हया ××× समूसवियरोमकूवा ममं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी - देहमाणी चिट्ठइ ॥१४८॥

तएणं समणे भगवं महावीरे उसभदत्तस्स माहणस्स देवाणंदाए माहणीए तीसेय महतिमहालियाए इसिपरिसाए ××× परिसा पडिगया ॥१४९॥

—भग० श ९/उ ३३

इसके बाद उस देवानंदा ब्राह्मणी के पाना चढ़ा अर्थात् उसके स्तनों में दूध आया। उसके नैन आनंदाश्रुओं में भींग गये। हर्ष से प्रफुल्लित होती हुई उसकी भुजाओं को व नयों में रोका (उसकी भुजाओं के कड़े तंग हो गये) हर्ष से उसका शरीर प्रफुल्लित हो गया। उसकी कंचुकी विस्तीर्ण हो गई। मेघ की धारा से विकसित कदम्ब पुष्प के समान उसका सारा शरीर रोमांचित हो गया। वह श्रमण भगवान महावीर स्वामी की ओर अनिमेष दृष्टि से देखने लगी।

इसके पश्चात् 'हे भगवन्'! ऐसा कहकर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदना-नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा--हे भगवन्! उस देवानंदा ब्राह्मणी को किस प्रकार पाना चढ़ा। (इसके स्तनों में से दूध कैसे आ गया) यावत् उसको रोमाञ्च कैसे हुआ? और आप देवानुप्रिय की ओर अनिमेष दृष्टि से देखती हुई क्यों खड़ी है?

हे गौतम! ऐसा कहकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा—हे गौतम! यह देवानंदा मेरी माता है, मैं देवानंदा का आत्मज (पुत्र) हूँ। इसलिए देवानंदा को पूर्व के पुत्र स्नेहानुराग से पाना चढ़ा यावत् रोमाञ्च हुआ और यह मेरी ओर अनिमेष दृष्टि से देखती हुई खड़ी है।

इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ऋषभदत्त ब्राह्मण, देवानंदा ब्राह्मणी और उस बड़ी ऋषि परिषद् आदि को धर्मकथा कही, यावत् परिषद् वापिस चली गई।

(ग) अथ भव्यानुग्रहाय ग्रामाकरपुरादिषु।
विहरन् ब्राह्मणकुण्डग्रामेऽगात् परमेश्वरः ॥१॥
बहुशालाभिधोद्याने पुरात्तस्माद्बहिः स्थिते।
चक्रुः समवसरणं त्रिवप्रं त्रिदशोत्तमाः ॥२॥
न्यषदत्प्राङ्मुखस्तत्र पूर्वसिंहासने प्रभुः।
गौतमाद्या यथास्थानं सुराद्याश्चावतस्थिरे ॥३॥
श्रुत्वा सर्वज्ञमायातं पौरा भूयांस आययुः।
देवानन्दार्षभदत्तावेयतुस्तौ च दंपती ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिश्च प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च जगद्गुरुम् ।
श्रद्धावानृषभदत्तो यथास्थानमुपाविशत् ॥५॥
देवानंदा प्रभुं नत्वार्षभदत्तस्य पृष्ठतः ।
शुश्रूषमाणोर्ध्वंज्ञाऽस्थादानन्दविकचानना ॥६॥
स्तनाभ्यां प्राक्षरत्स्तन्यं रोमाञ्चश्चाभवत्तनौ ।
तदा च देवानन्दायाः पश्यन्त्याः परमेश्वरम् ॥७॥
तथाविधां च तां प्रेक्ष्य जातसंशयविस्मयः ।
स्वामिनं गौतमस्वामी पप्रच्छेति कृताञ्जलिः ॥८॥
उत्प्रस्तवा निर्निमेषदृष्टिर्देवचधूरिव ।
देवानन्दा तवाऽऽलोकात्सूनोरिव कथं प्रभो ! ॥९॥
अथाख्यद्भगवान् वीरो गिरा स्तनितधीरया ।
देवानां प्रिय ! भो देवानन्दायाः कुक्षिजोऽस्म्यहम् ॥१०॥
दिवश्च्युतोऽहमूषितः कुक्षावस्या द्व्यशीत्यहम् ।
अज्ञातपरमार्थापि तेनैषा वत्सला मयि ॥११॥
देवानन्दर्षभदत्तौ मुमुदाते निशम्य तत् ।
सर्वा विसिष्मिये पर्षत्तादृगश्रुतपूर्विणी ॥१२॥
क्व सूनुस्त्रिजगन्नाथः क्व चावां गृहिमात्रकौ ।
इत्युत्थाय ववन्दाते दम्पती तौ पुनः प्रभुम् ॥१३॥
पितरौ दुःप्रतीकारावीदृग्धीर्भगवानपि ।
तावुद्दिश्य जनांश्चापि विदधे देशनामिति ॥१४॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

भव्यजनों के अनुग्रहार्थ ग्राम, आकर, नगर आदि में विहार करते हुए श्री वीरप्रभु अन्यदा ब्राह्मणकुंडग्राम पधारे। उसके बाहर बहुशाल नाम उद्यान में देवताओं ने तीन गढ वाले समवसरण की रचना की। उसमें प्रभु पूर्व सिंहासन पर पूर्वाभिमुख विराजे। और गौतम आदि गणधर और देव स्वयं के योग्यस्थान में बैठे।

सर्वज्ञ को आया हुआ जानकर नगर जन वहाँ आये। उनके साथ देवानंदा और ऋषभदत्त भी आये। श्रद्धावान् ऋषभदत्त भगवान् को वंदन कर योग्यस्थान में बैठे। देवानन्दा भी भगवान् को नमस्कार कर ऋषभदत्त के पीछे आनंद प्रफुल्लित मुख से देशना सुनने बैठी। उस समय प्रभु को देखते ही देवानंदा के स्तन में से दूध झरने लगा। और शरीर में रोमाञ्च प्रगट हुआ। ऐसी स्थिति को देखकर गौतम स्वामी के संशय और विस्मय उत्पन्न हुआ। फलस्वरूप दोनों हाथ जोड़कर भगवान् को पूछा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे भगवन् ! पुत्र की तरह आपको देखकर इस देवानंदा की दृष्टि देववधु की तरह निर्निमेष कैसे हो गई । भगवान् श्री वीरप्रभु मेघ के समान गंभीर वाणी से बोले—

हे देवानुप्रिय गौतम ! मैं इस देवानंदा की कुक्षि में उत्पन्न हुआ हूँ । देवलोक में से च्यवनकर मैं इस कुक्षि में बयासी रात्रि रहा हूँ—इससे परमार्थ को नहीं जानने के कारण वह हमारे पर वत्सल्य भाव रखती है ।

भगवान् के इस प्रकार के वचन सुनकर (जिनको पूर्व में नहीं सुना था—) देवानंदा ऋषभदत्त सर्व परिषद् विस्मय को प्राप्त हुई । इस तीन जगत के स्वामी पुत्र कहाँ । और एक सामान्य गृहस्थाश्रमी कहाँ । ऐसा विचार उन दंपतियों ने उठकर फिर भगवान् को वंदन-नमस्कार किया । माता-पिता को प्रतिबोध होना दुर्लभ है । भगवान् ने उन्हें तथा अन्य लोगों को उद्देश्य कर देशना दी ।

(घ) तए णं से उसभदत्ते माहणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो × × × नमंसित्ता एवं वदासी—एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! जहा खंदओ जाव सेजहेयं तुब्भेवदहत्तिकट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमति, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरे तिक्खुत्तो आयाहिण-पायाहिणं करेइ, × × × नमंसित्ता एवं वयासी - आलित्तेणं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्त-पलित्तेणं भंते ! लोए जराए मरणेण य ॥१५०॥ एवं एएणं कमेणं जहाखंदओ तहेव पव्वइओ जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ × × × बहूहिं चउत्थ-छट्ठ-ट्ठम-दसम × × × विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसित्ता सट्ठिंभत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरति, णग्गभावे जावतमट्ठं आराहेइ आराहेत्ता × × × सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१५१॥

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण करके ऋषभदत्त ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ, तुष्ट हुआ । उसने खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार प्रदक्षिणा की यावत् नमस्कार किया । और इस प्रकार निवेदन किया कि 'हे भगवन् ! आपका कथन यथार्थ है । जो आप कहते हैं, वह उसी प्रकार है । इस प्रकार कहकर ऋषभदत्त ब्राह्मण ईशान कोण की ओर गया और स्वयमेव आभरण, माला और अलंकारों को उतार दिया । फिर स्वयं पंचमुष्टि लोच किया ।

भगवान् ने ऋषभदत्त को दीक्षित किया । मुनि ऋषभदत्त ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । अंत में एक मास की संलेखनाकर, साठ भक्त का अनशन कर सर्व दुःख का अंत किया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तए णं सा देवाणंदा माहणी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं × × × णमंसित्ता एवं वयासी-एवमेयं भंते ! एवं जहा उसभदत्तो तहेव जाव धम्ममाइक्खियं ॥१५२॥

तएणं समणे भगवं महावीरे देवाणंदं माहणिं सयमेव पव्वावेइ, पव्वावित्ता सयमेव अज्जचंदणाए अज्जाए सीसिणित्ताए दलयइ ॥१५३॥

तएणं सा अज्जचंदणा अज्जा देवाणंदं माहणिं सयमेव मुंडावेति, सयमेव सेहावेति। एवं जहेव उसभदत्तो तहेव अज्जचंदणाए अज्जाए इमं एयारूवं धम्मियं उवदेसं सम्मं संपडिवज्जइ, तमाणाए तहगच्छइजाव संजमेण संजमति ॥१५४॥

तएणं सा देवाणंदा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतियं समाइयमाइयाइं एकारस अंगाइं अहिज्जइ, सेसंतं चेव × × × सव्वदुक्खप्पहीणा ॥१५५॥

—भग० श ६/उ ३३/प्र० १५० से १५५/पृ० ४३६ से ४३८

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से धर्म सुनकर और हृदय में धारण करके देवानंदा ब्राह्मणी हृष्ट (आनंदित) और तुष्ट हुई। श्रमण महावीर स्वामी की तीन बार प्रदक्षिणा कर यावत् नमस्कार कर इस प्रकार बोली—'हे भगवान् ! आपका कथन यथार्थ है। इस प्रकार ऋषभदत्त ब्राह्मण के समान कहकर निवेदन किया कि हे भगवन् ! मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ। तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने देवानंदा को स्वयमेव दीक्षा दी। दीक्षा देकर आर्या चंदना को शिष्या रूप में दिया। इसके पश्चात् आर्या चंदना ने आर्या देवानंदा को स्वयमेव प्रव्रजित किया, स्वयमेव मुंडित किया, स्वयमेव शिक्षा दी। देवानन्दा ने ऋषभदत्त ब्राह्मण के समान आर्या चंदना के वचनों को स्वीकार किया और उनकी आज्ञा का पालन करने लगी। यावत् संयम में प्रवृत्ति करने लगी। देवानंदा आर्या ने चंदना आर्या के पास सामायिकादि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। यावत् वह देवानंदा आर्या सभी दुःखों से मुक्त हुई।

देवानन्दर्षभदत्तावथ नत्वैवमूचतुः।
आवां विरक्तौ संसारवासादस्मादसारतः ॥१९॥

देहि जंगमकल्पद्रो ! दीक्षां संसारतारणीम् ।
तरीतुं तारयितुं च कोऽपरस्त्वदृते क्षमः ॥२०॥

अस्त्वेतदिति नाथेन प्रोक्तौ तौ धन्यमानिनौ।
ईशान्यां दिशि गत्वोज्झांचक्रतुर्भूषणादिकम् ॥२१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमुष्टिकचोत्पाटं कृत्वा संवेगतस्तु तौ।
नाथं प्रदक्षिणीकृत्य वन्दित्वा चैवमूचतुः ॥२२॥

स्वामिञ्जन्मजरामृत्युभीतौ त्वां शरणं श्रितौ।
स्वयं दीक्षाप्रदानेन प्रसीदाऽनुगृहाण नौ ॥२३॥

ददौ तयोः स्वयं दीक्षां समाचारं शशंस च।
आवश्यकविधिं चाख्यन्निरवद्यमनस्कयोः ॥२४॥

वसन्ति सन्तो यत्राहरपि तत्रोपकारिणः।
किं पुनर्भगवान् विश्वकृतज्ञग्रामणीः प्रभुः ॥२५॥

देवानन्दां चन्दनायै स्थविरेभ्यस्त्वथर्षभम्।
स्वामी समर्पयामास तौ चाऽपातां परं व्रतम् ॥२६॥

अधीतैकादशांगौ तौ नानाविधतपःपरौ।
अवाप्य केवलज्ञानं मृत्वा शिवमुपेयतुः ॥२७॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

भगवान् की वाणी सुनकर देवानंदा और ऋषभदत्त भगवान् को नमस्कार बोले—हे स्वामी ! हम दोनों संसार से विरक्त हुए हैं। अतः हे जंगम कल्पवृक्ष ! हमें संसार से तारने वाली दीक्षा दो। तुम्हारे सिवाय तिरने और तारने में दूसरा कोई समर्थ नहीं है। भगवान् ने तथास्तु—जैसा सुख हो—वैसा करो।

आत्मा को धन्य मानते हुए वे दंपति ईशान दिशा में जाकर आभूषण आदि छोड़ दिये और संवेग से पाँच मुष्टि से केशका लुंचन कर प्रभु को वंदन कर बोले—हे स्वामी ! हम जन्म, जरा और मृत्यु से भय प्राप्तकर आप की शरण में आये हैं। अतः हमें अनुग्रह कर दीक्षा प्रदान करो।

तत्पश्चात् भगवान् ने निर्दोष मनवाले उन दंपतिओं को दीक्षा दी। और सामाचारी और आवश्यक की विधि बतलाई।

सब सत्पुरुष उपकारी होते हैं तो फिर सर्व कृतज्ञ पुरुषों में शिरोमणी प्रभु की बात को क्या कहना।"

बाद में भगवान् ने आर्या चंदना को देवानंदा को सौंपा तथा स्थविर साधुओं को ऋषभदत्त को सौंपा। दोनों सुखपूर्वक महाव्रत का पालन किया तथा ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। विविध तप में तत्पर होकर केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. राजगृह में पदार्पण की सूचना—

१ तएणं से महत्तरगा जेणेव समणं भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणंभगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदंतिनमंसंति, वंदित्तानमंसित्ता नामगोयं आपुच्छंति नामगोयं आपुच्छित्ता नामगोयं संपधारंति, संपधारित्ता एगओ मिलंति, एगओ मिलित्ता एगतावक्कमंति, एगंतमवक्कमित्ता एवं वयासी जस्स णं देवाणुप्पिया! सेणिए राया भंभसारे दंसणं कंखति, जस्स णं देवाणुप्पिया! सेणिए राया दंसणं पीहेति, जस्सणं देवाणुप्पिया, सेणिए राया दंसणं पत्थति, जस्स णं देवाणुप्पिया! सेणिए राया दंसणं अभिलसति।

जस्स णं देवाणुप्पिया! सेणिए राया नामगोत्तस्स वि सवणाए हट्ठतुट्ठे जाव भवति, सेणं समणे भगवं महावीरे आदिगरे तित्थगरे जाव सव्वण्णु सव्वदंसी पुव्वाणुपुव्वि चरमाणेगामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे इहमागए इहसमोसढे इह संपत्ते जाव अप्पाणं भावेमाणे सम्मं विहरइ। तं गच्छामि णं देवाणुप्पिया। सेणियस्स रन्नो एयमट्ठं निवेदेमो पियं भे भवउ त्तिकट्टु अण्णमण्णस्स वयणं पडिसुणेति, पडिसुणित्ता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता, रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सेणियस्स रन्नो गिहे जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं करयलपरिग्गहियं जावजएणं विजएणं वद्धावेति, वद्धावित्ता एवं वयासी जस्सणं सामी दंसणं कंखतिजाव सेणं समणे भगवं महावीरे गुणसिले चेइए जाव विहरइ तस्सणं देवाणुप्पिय पियं निवेदेमो। पियं भे भवउ॥

—दसासुदशासा १०/सू ६

राजगृह में भगवान् के पदार्पण के पश्चात् श्रेणिक राजा के उद्यानपाल आदि जिस स्थान में श्रमण भगवान् महावीर विराजते थे वहां आये और उन्होने भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणाकर उन्हें वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करने के बाद उनका नाम-गोत्र पूछा और हृदय में धारण किया।

इसके पश्चात् वे सब एकत्रित हुए और एकांत स्थान में जाकर परस्पर कहने लगे कि हे देवानुप्रियो! जिनके दर्शन की श्रेणिक राजा भंभसार इच्छा, स्पृहा, प्रार्थना और अभिलाषा करते हैं तथा जिनके नाम और गोत्र सुनकर श्रेणिक राजा हर्षित और संतुष्ट हो जाते हैं वे धर्म के प्रवर्तक चारों तीर्थों के प्रवर्तन करने वाले, केवलज्ञान से सकल पदार्थ को जानने वाले, केवल दर्शन से समस्त वस्तुओं का साक्षात्कार करने वाले ग्रामानुग्राम विचरते हुए सुख पूर्वक विहार करते हुए राजगृह नगर में पधारे हैं और नगर के बाहर यहाँ गुणशिलक नामक उद्यान में विराजमान है। तथा संयम व तप से अपनी आत्मा को भावित करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए विचरते हैं तो हे देवानुप्रियो ! हम चले और श्रेणिक राजा को इस प्रिय वृत्तान्त को निवेदन करें ।

'आपका कल्याण हो' ऐसा मंगलमय बचन बोलते हुए एक दूसरे के कथन को स्वीकार करते हैं ।

इसके अनन्तर जहाँ राजगृह नगर है वहाँ नगर के मध्य में होकर जहाँ श्रेणिक राजा का राजमहल है—जहाँ भी श्रेणिक राजा विराजमान थे—वहाँ आये ।

वहाँ जाकर उन्होंने हाथ जोड़कर श्रेणिक राजा को जय-विजय के साथ बधाकर कहने लगे—हे स्वामी ! दर्शन करने की आप इच्छा करते हैं वे ही महावीर स्वामी ने नगर के बाहर गुणशिल नाम के उद्यान में पदार्पण किया है । अतः उनके आगमन रूप वृत्तान्त को हम आप को निवेदन करते हैं—आपका कल्याण हो ।

४. हस्तिनापुर की परिषद्

तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था-वण्णओ । तस्सणं हत्थिणापुरस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे, एत्थणं सहसंबवणे नामे उज्जाणे होत्था । × × × ॥ ५७ ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढेपरिसा निग्गया । धम्मोकहिओ । परिसापडिगया ॥

तएणं सा महतिमहालया मह्च्चपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइनमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेवंदिसं पाउब्भूया तामेवदिसंपडिगया ॥

—भग० श ११/उ ६ सू ५७, ७४, ८२

उस काल उस समय में हस्तिनापुर नामक नगर था, वर्णन । उस हस्तिनापुर नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा (ईशान कोण) में सहस्राम्र नामक उद्यान था ।

उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे । जनता धर्मोपदेश सुनकर यावत् चली गई ।

इसके पश्चात् वह महती परिषद् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से उपर्युक्त अर्थ को सुनकर और हृदय में धारण कर हर्षित एवं संतुष्ट हुई और भगवान् को वंदना नमस्कार कर चली गई ।

५. युगान्तरकृतभूमि—पर्यायान्तरकृतभूमि

समणस्स णंभगवओ महावीरस्स दुविहा अंतकडभूमी होत्था, तंजहा-जुगंतकडभूमी य परियायंतकडभूमी य । जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकड-भूमी, चउवासपरियाए अंतमकासी ।

—कप्प० सू १४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान् महावीर के समय में मोक्ष जाने वालों के लिए दो प्रकार की भूमिका थी। यथा—१—युगान्तरकृत भूमिका, और २—पर्यायांतकृत भूमिका।

युगान्तर कृत भूमिका अर्थात् जो लोग अनुक्रम से मोक्ष प्राप्त करते हैं।

पर्यायान्तकृतभूमिका अर्थात् भगवान् के केवली होने के बाद जो लोग मुक्ति प्राप्त करते हैं उनकी मोक्ष परत्व—पर्यायांत कृत भूमिका कही जाती है।

भगवान् के तीसरे पुरुष तक युगान्तर कृतभूमिका थी अर्थात् सर्वप्रथम भगवान् महावीर मोक्ष गये। उसके बाद उनका कोई शिष्य मोक्ष गया और बाद में उनके प्रशिष्य अर्थात् जंबू स्वामी मोक्ष गये।

यह युगान्तरकृत भूमिका जंबू स्वामी तक ही चली। उसके बाद बंध हो गयी।

और भगवान् महावीर के केवली होने के चार वर्ष व्यतीत होने के बाद कोई एक मोक्ष गये। अर्थात् भगवान् को केवली होने के बाद चार वर्ष बाद मुक्ति का मार्ग बहता रहा और जंबू स्वामी तक चला।

६. विविध संकलन

(क) वद्धमाणसामी (वर्द्धमानस्वामी)—धर्मो० पृ० ११०

× × × अण्णया समोसरिओ समुप्पन्नं नाणाइसओ भूवणभूसणो वद्ध-माणसामी। × × ×।

एक बार दशार्णपुर नगर में वर्द्धमान स्वामी—भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ।

(ख) वड्ढमाणपरिणामे (वर्धमानपरिणाम)—भग० श २५/उ७ सू ५०३

समाइयसंजएणं भंते! किंवड्ढमाणपरिमाणे होज्जा? हायमाणपरिणामे? अवट्ठियपरिणामे?

गोयमा! वड्ढमाणपरिणामे जहापुलाए। एव जावपरिहारविसुद्धिए।

वर्द्धमान परिणाम—बढ़ता हुआ परिणाम।

सामायिक चारित्र—वर्द्धमान परिणामी, हीयमान परिणामी और अवस्थित परिणामी भी होते हैं।

७. भगवान् महावीर और अच्छेरे

(क) दस अच्छेरगा पन्नत्ता, तंजहा—

संगहणी-गाहा

उवसग्ग गब्भहरणं,

इत्थीतित्थं अभाविया परिसा।

कण्हस्स अवरकंका,

उत्तरणं चंदसूराणं ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिवंसकुलुप्पत्ती,
चमरुप्पात्तो य अट्ठसयसिद्धा।
अस्संजतेसु पूआ,
दसवि अणंतेण कालेणं॥

—ठाण० स्था १०/सू १६०

आश्चर्य दस है—

१ उपसर्ग—तीर्थंकरों के उपसर्ग होना। (×)
२ गर्भ हरण—भगवान् महावीर का गर्भापहरण। (×)
३ स्त्री का तीर्थंकर होना।
४ अभावित परिषद्—तीर्थंकर के प्रथम धर्मोपदेशक की विफलता। (×)
५ कृष्ण का अपरकंका राजधानी में आना।
६ चंद्र और सूर्य का विमान सहित पृथ्वी पर आना। (×)
७ हरिवंश कुल की उत्पत्ति।
८ चमर का उत्पात—चमरेन्द्र का सौधर्म-कल्प में जाना (प्रथम देवलोक) (×)
९ एक सौ आठ सिद्ध—एक समय में एक साथ एक सौ आठ व्यक्तियों का मुक्त होना

१० असंयमी की पूजा—

—ये दसों आश्चर्य अनंत काल के व्यवधान से हुए हैं—

नोट—प्रस्तुत सूत्र में दस आश्चर्यों का वर्णन है। आश्चर्य का अर्थ है—कभी-कभी घटित होने वाली घटना। जो घटना सामान्यतया नहीं होती, किन्तु स्थिति विशेष में अनंतकाल के बाद होती है, उन्हें आश्चर्य कहा जाता है।

जैन शासन में आदि काल से भगवान् महावीर के काल तक दस ऐसी अद्भुत घटनायें घटनायें घटीं, जिन्हें आश्चर्य की संज्ञा दी गई है। ये घटनायें भिन्न-भिन्न तीर्थंकरों के समय में घटित हुई है। इनमें १, २, ४, ६ और ८ (× चिन्ह) भगवान् महावीर से तथा शेष भिन्न-भिन्न तीर्थंकरों के शासन काल से संबंधित है। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

ठाण०टीका—आ विस्मयतश्चर्यन्ते अवगम्यन्त इत्याश्चर्याणि — अद्भुतानि, इह च सकारः कारस्करादित्वादिति, 'उवसग्गे' त्यादिगाथाद्वयं, उपसृज्यते क्षिप्यते च्याव्यते प्राणी धर्मादेभिरित्युपसर्गा-देवादिकृतोपद्रवाः ते च भगवतो महावीरस्य छद्मस्थकाले केवलिकाले च नरानरतिर्यक्कृता अभूवन्, इदं च किल न कदाचिद्भूतपूर्वं, तीर्थंकरा हि अनुत्तरपुण्यसम्भारतया नोपसर्गभाजनमपि तु सकलनरामरतिरश्चां सत्कारादिस्थानमेवेत्यनन्तकालभाव्ययमर्थो लोकेऽद्भुतभूतइति ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथागर्भस्य-उदरसत्त्वस्य हरणं-उदरान्तरसंक्रामणं गर्भहरणं एतदपि तीर्थंकरापेक्षयाऽभूतपूर्वंसद्भगवतो महावीरस्यजातं, पुरन्दरादिष्टेनहरिणेगमेषिदेवेन देवानन्दाभिधानब्राह्मणयुदरात्त्रिशलाभिधानाया राजपत्न्याउदरेसंक्रमणाद्, एतदप्यनन्तकालभावित्वादाश्चर्यमेवेति ॥३॥ × × ×

तथा भगवतो महावीरस्य वन्दनार्थमवतरणमाकाशात् समवसरणभूम्यां चन्द्रसूर्ययोः शाश्वतविमानोपेतयोर्बभूवेदमप्याश्चर्यमेवेति ॥६॥

तथाचमरस्य-असुरकुमारराजस्योत्पतनं-ऊर्ध्वंगमनं चमरोत्पातः, सोऽप्याकस्मिकत्वादाश्चर्यकमिति, श्रूयतेहि चमरचञ्चाराजधानीनिवासी चमरेन्द्रोऽभिनवोत्पन्नः सन्नूर्ध्वमवदधिनाऽऽलोकयामास, ततः स्वशीर्षोपरि सौधर्मव्यवस्थितं शक्रं ददर्श, ततो मत्सराध्मातः शक्रतिरस्काराहितमतिरिहागत्य भगवतं महावीरं छद्मस्थावस्थमेकमांत्रिकीं प्रतिमां प्रतिपन्नं सुंसमारनगरोद्यानवर्त्तिनं सबहुमानं प्रणम्यभगवंस्त्वत्पादपंकजवनं मे शरणमरिपराजितस्येति विकल्प्य विरचितघोररूपो लक्षयोजनमानशरीरः परिघरत्नं प्रहरणं परितो भ्रमयन् गर्जन्नास्फोटयन् देवांस्त्रासयन्नुत्पपात, सौधर्मावतंसकविमानवेदिकायां पादन्यासं कृत्वा शक्रमाक्रोशयामास, शक्रोऽपि कोपाज्ज्वलयमानस्फारस्फुरत्स्फुलिङ्गशतसमाकुलं कुलिशं तं प्रतिमुमोच ॥७॥

स च भयात् प्रतिनिवृत्य भगवत्पादौ शरणं प्रपेदे, शक्रोऽप्यवधिज्ञानावगततद्व्यतिकरस्तीर्थंकराशातनाभयात् शीघ्रमागत्य वज्रामुपसंजहार, बभाण च मुक्तोऽस्यहो भगवतः प्रसादात् नास्ति मत्तस्ते भयमिति ॥८॥

१ उपसर्ग—तीर्थंकर अत्यन्त पुण्यशाली होते हैं। सामान्यतया उनके कोई उपसर्ग नहीं होते। किन्तु इस अवसर्पिणी काल में तीर्थंकर महावीर को अनेक उपसर्ग हुए। अभिनिष्क्रमण के पश्चात् उन्हें मनुष्य, देव और तिर्यंचकृत उपसर्गों का सामना करना पड़ा। अस्थिकग्राम में शूलपाणि यक्ष ने महावीर को अट्टहास से डराना चाहा; हाथी, पिशाच और सर्प का रूप धारण कर डराया और अंत में भगवान् के शरीर के सात अवयवों—सिर, कान, नाक, दांत, नख, आँख और पीठ में भयंकर वेदना उत्पन्न की।

एक बार भगवान महावीर म्लेच्छ देश दृढभूमि के बहिर्भाग में आये। वहाँ पेढाल उद्यान के पोलासचैत्य में ठहरे और तेले की तपस्या कर एक रात्रि की प्रतिमा में स्थित हो गये। उस समय 'संगम' नामक देव ने एक रात में २० मारणान्तिक कष्ट दिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद तीर्थंकरों के कोई उपसर्ग नहीं होते किन्तु भगवान् महावीर को केवलज्ञान प्राप्ति के बाद गोशालक ने अपनी तेजोलब्धि से बहुत पीड़ित किया—यह एक आश्चर्य है।

२—गर्भापहरण—भगवान् महावीर देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ में आषाढ शुक्ला ६ को आये, तब उसने चौदह स्वप्न देखे थे। बयासी दिन के बाद सौधर्म देवलोक के इन्द्र ने अपने पैदल सेना के अधिपति 'हरिनैगमेषी' को बुलाकर कहा—'तीर्थंकर सदा उग्र, भोग, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, ज्ञात, कौरव्य और हरिवंश आदि विशाल कुलों में उत्पन्न होते हैं। भगवान् महावीर अपने पूर्व कर्मों के कारण ब्राह्मण कुल में आये हैं। तुम जाओ और उस गर्भ को सिद्धार्थ क्षत्रिय की पत्नी त्रिशला के गर्भ में रख दो। वह देव तत्काल वहाँ गया। उस दिन आश्विन कृष्णा त्रयोदशी थी। रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था। दूसरे प्रहर के अंत में उसने हस्तोत्तरा नक्षत्र में गर्भ का संहरण कर त्रिशला के गर्भ में रख दिया।

४—अभावित परिषद्—बारह वर्ष और साढे छह मास तक छद्मस्थ रहने के पश्चात् भगवान् को बैशाख शुक्ला दशमी से जृम्भिका ग्राम के बहिर्भाग में केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। उस समय महोत्सव के लिए उपस्थित चतुर्विध देवनिकाय ने समवसरण की रचना की। भगवान् ने देशना दी। किसी के मन में विरति के भाव उत्पन्न नहीं हुए। तीर्थंकरों की देशना कभी खाली नहीं जाती। किन्तु यह अभूतपूर्व घटना थी।

उनकी दूसरी देशना मध्यमपापा में हुई और वहाँ गौतम आदि गणधर दीक्षित हुए।

६—चंद्र और सूर्य का विमान सहित पृथ्वी पर आना—एक बार भगवान् महावीर कौशाम्बी नगरी में विराज रहे थे। उस समय दिन के अंतिम प्रहर में चंद्र और सूर्य अपने अपने मूल शाश्वत विमानों सहित समवसरण में भगवान् महावीर को वंदना करने आये। शाश्वत विमानों सहित आना—एक आश्चर्य है। अन्यथा वे उत्तर वैक्रिय द्वारा निर्मित विमानों में आते हैं।

८—चारका उत्पात—प्राचीन समय में विभेल सन्निवेश में पूरण नाम का एक धनाढ्य गृहपति रहता था। एक बार उसने सोचा—पूर्व भव में किये हुए तप के प्रभाव से मुझे यह सारा ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है, सम्मान मिला है। अतः भविष्य में और विशेष फल की प्राप्ति के लिए मुझे गृहवास छोड़कर विशेष तप करना चाहिए। उसने अपने सम्बंधियों से पूछा और अपने ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकार देकर 'प्रणाम' नामक तापसव्रत स्वीकार कर लिया। उस दिन से वह यावज्जीवन तक दो-दो दिन की तपस्या में संलग्न हो गया।

पारणे के दिन वह चार पुट वाले लकड़ी के पात्र को लेकर मध्याह्न बेला में भिक्षा के लिए जाता। पात्र के प्रथम पुट में पड़ी भिक्षा वह पथिकों को बांट देता, दूसरे पुट की भिक्षा कौए आदि पक्षियों को खिला देता, तीसरे पुट की भिक्षा मछली आदि जलचरों को खिला देता। और चौथे पुट में प्राप्त भिक्षा को स्वयं खाता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार उसने बारह वर्ष तक कठोर तप तपा—किया और अंत में एक मासका अनशनकर चमरचंपा में असुरों के इन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ।

उसने अवधि ज्ञान से ऊपर स्थित सौधर्मावतंसक विमान में सौधर्मेन्द्र को देखा। उसका क्रोध प्रबल हो उठा। उसने अपने अनुचर देवों से कहा—अरे! यह दुरात्मा कौन है जो मेरे सिर पर बैठा हुआ है।

उन्होंने कहा—स्वामिन् यह सौधर्म देवलोक का इन्द्र है जिसने अपने पूर्वार्जित पुण्यों के प्रभाव से विपुल ऋद्धि और अतुल पराक्रम प्राप्त किया है।

इतना सुनते ही चमरेन्द्र का क्रोध और अधिक प्रबल हो गया। उसने उसके साथ युद्ध करने के लिए उत्सुक हो यहाँ से अपना शस्त्र ले प्रस्थान किया।

सभी देवों ने ऐसा न करने के लिए आग्रह किया, परन्तु उसने अपना हठ नहीं छोड़ा।

यह पराक्रमी है। यदि मैं किसी भी प्रकार से उससे पराजित हो जाऊँगा तो किसकी शरण लूंगा—यह सोचकर चमरेन्द्र सुसुमारपुर में आया। वहाँ भगवान् महावीर प्रतिमा में स्थित थे। वह भगवान् के पास आकर बोला—भगवन्! मैं अपने प्रभाव से इन्द्र को जीत लूंगा—ऐसा कहकर उसने एक लाख योजन का वैक्रिय रूप बनाया। चारों ओर अपने शस्त्र को घुमाता हुआ, गर्जन करता हुआ, उछलता हुआ, देवों को भयभीत करता हुआ, दर्प से अंधा हो सौधर्मेन्द्र की ओर लपका। एक पैर उसने सौधर्मावतंसक विमान की वेदिका पर और दूसरा पैर सुधर्मा (सभा) में रखा। उसने अपने शस्त्र इन्द्रकील पर तीन बार प्रहार किया और सौधर्मेन्द्र को बुरा-भला कहा।

सौधर्मेन्द्र ने अवधिज्ञान से सारी बात जान ली। उसने चमरेन्द्र पर प्रहार करने के लिए वज्र फेंका। चमरेन्द्र उसको देखने में भी असमर्थ था। वह वहाँ से डर कर भागा। वैक्रिय शरीर का संकोचकर भगवान् के पास आया और दूर से ही आपकी शरण है, आपकी शरण है—ऐसा चिल्लाता हुआ अत्यन्त सूक्ष्म होकर भगवान् के पैरों के बीच में प्रवेश कर गया। शक्र ने सोचा—'अर्हन् आदि की निश्रा के बिना कोई भी असुर वहाँ नहीं जा सकता'। उसने अवधिज्ञान से सारा पूर्व वृत्तान्त जान लिया। वज्र भगवान् के अत्यन्त निकट आ गया। जब वह केवल चार अंगुल मात्र दूर रहा, तब इन्द्र ने उसका संहरण कर डाला। भगवान् को वंदना कर वह सोचा—चमर! भगवान् की कृपा से तुम बच गये। अब तुम मुक्त हो, डरो मत! इस प्रकार चमर को आश्वासन देकर शक्र अपने स्थान पर चला गया। शक्र के चले जाने पर चमर बाहर आया और अपने स्थान की ओर लौट गया।

(ख) इतश्च गौतमोऽपृच्छन्नाथ! भावाः स्वभावतः।
किं यान्त्यन्यत्वमर्केन्दुविमाने यदिहेयतुः ॥३५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वाम्याख्यत् स्युर्दशाश्चर्याण्युपसर्गा यदर्हताम् ।
गर्भापहारश्चन्द्रार्क विमानावतरस्तथा ॥३५१॥
चमरोत्पातः परिषदभव्याऽष्टोत्तरं शतम् ।
सिद्धा अपरकंकायां कृष्णस्य गमनं तथा ॥३५२॥
असंयतार्चा स्त्रीतीर्थं हरिवंशकुलोद्भवः ।
ततोऽसौ संगतोऽर्केन्दुविमानावतरः खलु ॥३५३॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

गौतम स्वामी ने भगवान् से प्रश्न किया— हे स्वामी ! क्या स्थिर पदार्थ है। वे क्या स्वयं के स्वभाव से चलित हुए होंगे। क्या जिसमें सूर्य चंद्र के विमान चलित होकर यहाँ आये।

प्रत्युत्तर में भगवान् ने कहा—इस अवसर्पिणी में दस आश्चर्य हुए हैं—

१—अरिहंत को केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद उपसर्ग।
२—गर्भ से हरण
३—सूर्य चन्द्र के विमान का अवतरण
४—चमरेन्द्र का उत्पात
५—अभावी परिषद्
६—एक समय में उत्कृष्ट अवगाहनावाले १०८ सिद्ध
७—धातकी खंड की अपरकंका में कृष्ण का गमन
८—असंयती की पूजा
९—स्त्री तीर्थंकर
१०—हरिवंशकुलोत्पत्ति

उपरोक्त दस आश्चर्यों में सूर्य-चंद्र के विमान का अवतरण भी आश्चर्ययुक्त हुआ है।

दस आश्चर्यों में से कौन-कौन से किसके समय में हुए इसका विवरण इस प्रकार है—

१ प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के समय में एक साथ १०८ सिद्ध होना।

२ दसवें तीर्थंकर शीतल के समय में हरिवंश की उत्पत्ति।

३ उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लीका स्त्री के रूप में तीर्थंकर होना।

४ बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के समय में कृष्ण वासुदेव का कपिल वासुदेव के क्षेत्र (अपरकंका) में जाना अथवा दो वासुदेवों का मिलन।

५ चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के समय में १ गर्भापहरण, २ उपसर्ग, ३ चमरोत्पाद ४ अभाविद् परिषद् ५ चन्द्र और सूर्य का अवतरण (ये पाँचों क्रमशः हुए हैं।)

नौवें तीर्थंकर सुविधि से सोलहवें तीर्थंकर शांति के काल तक असंयति पूजा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. गणधर-गौतम !—एक प्रसंग

१ श्री वीरोऽपि ततः स्थानाद्विहरन् सपरिच्छदः ।
सुरासुरैः सेव्यमानः पृष्ठचंपापुरीं ययौ ॥१६६॥
सालो राजा महासालो युवराजश्च बान्धवौ ।
त्रिजगद् बान्धवं वीरं तत्र वन्दितुमेयतुः ॥१६७॥
श्रुत्वा तौ देशनां बुद्धौ जामेयं गागलिं स्वयम् ।
यशोमतीपीठरयोः सुतं राज्येऽभ्यषिञ्चताम् ॥१६८॥
अथ सालमहासालौ विरक्तौ भववासतः ।
श्रीमहावीरपादाब्जमूले जगृहतुर्व्रतम् ॥१६९॥
कालान्तरेण विहरन् भगवान् सपरिच्छदः ।
चतुस्त्रिंशदतिशयो ययौ चम्पां महापुरीम् ॥१७०॥
स्वामिनोऽनुज्ञया सालमहासालर्षिसंयुतः ।
ततः पुरीं पृष्ठचम्पां गौतमो गणभृद्ययौ ॥१७१॥
ववन्दे गौतमं तत्र भक्तितो गागलिर्नृपः ।
तन्मातापितरावन्ये पौरामात्यादयोऽपि च ॥१७२॥
तत्रासीनः सुरकृते सौवर्णे कमलासने ।
इन्द्रभूतिश्चतुर्ज्ञानो विदधे धर्मदेशनाम् ॥१७३॥
गागलिः प्रतिबुद्धोऽथ राज्ये न्यस्य निजं सुतम् ।
दीक्षां गौतमपादान्ते पितृभ्यां सममाददे ॥१७४॥
स तैस्त्रिभिः सालमहासालाभ्यां च समावृतः ।
चचाल गौतममुनिश्चम्पायां वन्दितुं प्रभुम् ॥१७५॥
अनुगौतममायातां पंचानामपि वर्त्मनि ।
शुभभाववशात्तेषामुदपद्यत केवलम् ॥१७६॥
प्राप्ताः सर्वेऽपि चम्पायां पुर्यां तत्र जिनेश्वरम् ।
ते प्रदक्षिणयामासुः प्रणनाम तु गौतमः ॥१७७
तीर्थं नत्वाऽथ ते पंच चेलुः केवलिपर्षदि ।
तानूचे गौतमो हन्त वन्दध्वं परमेश्वरम् ॥१७८॥
स्वाम्यूचे गौतमर्षे ! मा केवल्याशातनां कृथाः ।
गौतमोऽप्यक्षमयत्तान्मिथ्यादुष्कृतपूर्वकम् ॥१७९॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरासुरों सेवित श्री वीरप्रभु वहाँ से विहार कर परिवारके साथ पृष्ठचम्पा नगरी पधारे। वहाँ साल नामक राजा और महासाल नामक युवराज—वे दोनों भाई त्रिजगत् के बन्धु श्री वीरप्रभु को वंदनार्थ आये। प्रभु की देशना सुनकर वे दोनों प्रतिबोधित हुए। फलस्वरूप यशोमती और पिठर का गागली नामक पुत्र जो उसका भानेज था। उसका राज्याभिषेक किया। और वे दोनों संसारवास से विरक्त होकर श्री वीर प्रभु के पास से दीक्षा ग्रहण की।

कालान्तर में भगवान् महावीर विहार करते-करते परिवार के साथ चोत्तीस अतिशय सहित चंपापुरी पधारे। भगवान् की आज्ञा लेकर गौतम स्वामी साल और महासाल साधुओं के साथ पृष्ठ चंपा पधारे। वहाँ गागली राजा ने भक्ति से गौतम गणधर को वंदना की। उसी प्रकार उसके माता-पिता और दूसरे मंत्री आदि पौरजनों ने भी उनको वंदन किया।

तत्पश्चात् देवकृत सुवर्ण के कमल पर बैठकर चतुर्ज्ञानी इन्द्रभूति ने धर्म देशनादी। उसे सुनकर गागली प्रतिबोधित हुआ। फलस्वरूप स्वयं के पुत्र को राज्य पर बैठाकर स्वयं के माता-पिता सहित उसने गौतम स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। वह मुनियों से और साल और महासाल से परिवृत्त हुए गौतम स्वामी के साथ भगवान् को वंदनार्थ चंपा नगरी की ओर प्रस्थान हुए।

अस्तु गौतम स्वामी के पीछे चलते हुए मार्ग में शुभ भावना से उन पाँचों को केवल ज्ञान समुत्पन्न हुआ। सब चंपानगरी में पधारे। उन सबने भगवान् को प्रदक्षिणा की। और गौतम स्वामी को प्रणाम किया।

तत्पश्चात् तीर्थ को वंदन कर वे पाँचों केवली परिषद् की ओर चले।

गौतम ने उन्हें कहा कि भगवान् को वंदना करो। भगवान् महावीर बोले कि—हे गौतम। केवली की आशातना मत करो। तत्काल गौतम ने मिथ्यादुष्कृत किया और उनसे क्षमा-याचना की।

गौतम् का अष्टापद पर आरोहण—

खिन्नोऽथ गौतमो दध्यौ न किमुत्पत्स्यते मम।
केवलज्ञानमिह च भवे सेत्स्यामि किं न हि?॥१८०॥
योऽष्टापदे जिनान्नत्वा वसेद्रात्रिं स सिध्यति।
भवेऽत्रैवेत्यर्हदुक्तं वक्तृन् सोऽथास्मरत्सुरान्॥१८१॥
देवतावाक्प्रत्ययेन तदानीं गौतमो मुनिः।
इयेषाष्टापदं गन्तुं तीर्थकृद्वन्दनाकृते॥१८२॥
तदिच्छां तापसबोधं चार्हन् विज्ञाय भाविनम्।
आदिदेशाष्टापदेऽर्हद्वन्दनायाथ गौतमम्॥१८३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्छाऽनुरूपस्वाम्याज्ञामुदितो गौतमो मुनिः।
वायुवच्चारणलब्ध्या क्षणादष्टापदं ययौ ॥१८४॥
इतश्चाष्टापदं मोक्षहेतुं श्रुत्वा तपस्विनः।
कौडिन्यदत्तसेवाला आरोढुं समुपस्थिताः ॥१८५॥
चतुर्थकृतसदाप्याद्य आर्द्रकन्दादिपारणः।
प्रापाऽऽद्यां मेखलां सार्धं पंचशत्या तपस्विनाम् ॥१८६॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

तत्पश्चात् गौतम स्वामी खेद को प्राप्त होकर चिन्तन करने लगे—"क्या मुझे केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं होगा? क्या मैं इस भव में सिद्धत्व को प्राप्त नहीं होऊँगा। ऐसा विचार कर ही रहे थे कि उसी समय जो अष्टापद पर स्वयं की लब्धि से जाकर वहाँ स्थित जिनेश्वरों को नमस्कार करें—एक रात्रि वहाँ रहे—वह उस भव में सिद्धि को प्राप्त होता है।

इस प्रकार अरिहंत भगवंत ने देशना में कहा है। ऐसा स्वयं को देवताओं का कहा हुआ है—ऐसा यादकर, देव वाणी की प्रतीती आने से तत्काल गौतम स्वामी अष्टापद पर स्थित जिनबिम्बों का दर्शन करने के लिए वहाँ जाने की इच्छा की और भगवान् से आज्ञा मांगी।

वहाँ भविष्यत् में तापसों को प्रतिबोध होगा—ऐसा जानकर—प्रभु ने अष्टापद तीर्थ पर तीर्थंकरों को वंदन करने की आज्ञा दी।

फलस्वरूप स्वयं की इच्छानुसार प्रभु की आज्ञा होने से गौतम स्वामी हर्षित हुए और चारण लब्धि से वायु की तरह वेग से क्षणभर में अष्टापद पर्वत के समीप पधारे।

उस वर्ष में कौंडिन्या दत्त और सेवाल आदि १५०० तपस्वी गण अष्टापद को मोक्ष का हेतु सुनकर वे सभी गिरि पर चढ़कर आये थे।

उनमें से पाँच सौ तपस्वी चतुर्थ तप करके आर्द्र कंदादि का पारण करते हुए अष्टापद की पहली मेखला तक आये थे।

द्वितीयः षष्ठकृत्प्राप शुष्ककन्दादिपारणः।
द्वितीयां मेखलां सार्धं पंचशत्या तपस्विनाम् ॥१८७॥
तृतीयोऽष्टमकृत्प्राप शुष्कसेवालपारणः।
तृतीयां मेखलां सार्धं पंचशत्या तपस्विनाम् ॥१८८॥
ऊर्ध्वमारोढुमसहास्ते तस्थुर्यायवदुन्मुखाः।
ददृशुर्गौतमं तावत् स्वर्णाभं पीवराकृतिम् ॥१८९॥
ते मिथः प्रोचिरे शैलं वयमेतं कृशा अपि।
न रोढुमीश्महे स्थूल आरोक्ष्यत्येष तत्कथम् ॥१९०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं तेषु ब्रुवाणेषु गौतमस्तं महाचलम् ।
समारुरोह जङ्घे चादृश्यः सुर इव क्षणात् ॥१९१॥
तेऽन्योऽन्यं जगदुः शक्तिर्महर्षेरस्य काऽप्यसौ ।
यद्यायास्यत्यसौ शिष्यीभविष्यामोऽस्यतद्वयम् ॥१९२॥
निश्चित्यैवं तापसास्ते प्रत्यायान्तं स्वबन्धुवत् ।
आबद्धरणरणकाः प्रतीक्षन्ते स्म सादरम् ॥१९३॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

दूसरे पाँच सौ तापस छट्ठ तप करके सुके कंदादि से पारणा करते हुए दूसरी मेखल तक आये थे। तीसरे पाँच सौ तापस अट्ठम भक्त का पारणा करके, सुकी सेवाल का पारण करते हुए तीसरी मेखला तक आये थे। वहाँ से ऊँचे चढ़ने में असमर्थ होने के कारण उन तीनों का समूह पहली, दूसरी और तीसरी मेखला में अटक गया था।

उस अवसर पर सुवर्ण जैसी कांतिवाले और पुष्ट आकृति वाले गौतम को उन्होंने वहाँ आते हुए देखा। उनको देखकर वे परस्पर कहने लगे कि अपना शरीर कृशता को प्राप्त हो गया है। तथापि यहाँ से आगे नहीं चढ़ सकते। तो फिर इस स्थूल शरीर वाले मुनि कैसे चढ़ सकते हैं। इस प्रकार वे बातचीत कर रहे थे कि इतने में गौतम उस महागिरि पर चढ़ गये। और पलभर में देव की तरह उनसे अदृश्य रूप में हो गये। बाद में वे परस्पर बोले—

"इस महर्षि के पास कोई महाशक्ति है उससे वे वापस यहाँ आयेंगे। तो फिर अपने को उनका शिष्य हो जाना चाहिए।

यह निश्चय कर वे तापस एक ध्यान में बन्धु की तरह आदरपूर्वक उनके वापस आने की राह देखते रहे।

गौतमोऽपि ययौ चैत्यं भरतेश्वरकारितम् ।
नन्दीश्वरस्थचैत्याभं चतुर्विंशजिनांकितम् ॥१९४॥
अवन्दिष्टार्हतां तत्र स चतुर्विंशतेरपि ।
बिंबान्यप्रतिबिम्बानि भक्त्या परमया युतः ॥१९५॥
निर्गत्य गौतमश्चैत्यात्तलेऽशोकमहातरोः ।
उपाविशद् वन्द्यमानः सुरासुरनभश्चरैः ॥१९६॥
चक्रे च गौतमस्तेषां यथाऽर्हं धर्मदेशनाम् ।
संदेहांश्चाच्छिदत् पृष्टस्तर्कितः केवलीतितैः ॥१९७॥
देशनां कुर्वतातेन प्रस्तावादिदमौच्यत ।
अस्थिचर्मावशिष्टांगाः किडित् किडित संधयः ॥१९८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्लानिभाजो ध्रुवन्तोऽपि जीवसत्त्वेन गामिनः।
तपोभिरुग्रैरीदृक्षा भवन्ति खलु साधवः ॥१९९॥
तत्तु श्रुत्वा वैश्रवणस्तस्य स्थौल्यं विभावयन्।
स्वस्मिन्नपि विसंवादि वचोऽस्येत्यहसन्मनाक् ॥२००॥
इन्द्रभूतिर्मनोज्ञानी ज्ञात्वा तद्भावमब्रवीत्।
नांगकार्श्यं प्रमाणं स्यात् किं त्वहो ध्याननिग्रहः॥२०१॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

यहाँ गौतम स्वामी भरतेश्वर के द्वारा कराये हुए नंदीश्वर द्वीप के चैत्य जैसे चैत्य में प्रवेश किया। और उनमें स्थित चौबीस तीर्थंकरों के अनुपम बिम्ब को उन्होंने भक्ति से वंदना की। बाद में चैत्य में से निकल कर गौतम गणधर एक मोटे अशोक वृक्ष के नीचे बैठे। वहाँ अनेक सुर-असुर और विद्याधर उनको वंदना की।

बाद में गौतम स्वामी उनकी योग्यतानुसार धर्मदेशना दी। और उनके द्वारा पूछे गये संदेह को तर्क शक्ति से केवली की तरह दूर किया। देशना देते हुए प्रसंगोपात उनको जनाया कि—

यदि साधुओं का शरीर शिथिल हो गया हो और वे ग्लानि प्राप्तकर जाने की मात्र जीव सत्ता से धूजते-धूजते चले ऐसा हो जाता है।

गौतम स्वामी का ऐसा वचन सुनकर वैश्रवण (कुबेर) उनके शरीर की स्थूलता देखकर वह वचन उनमें ही अघटित जानकर जरा हंसा। उस समय मनः पर्यव ज्ञानी इन्द्रभूति उनके भाव को जानकर बोले कि—मुनिपन में कुछ भी शरीर की कृशता का प्रमाण नहीं है परन्तु शुभ्रध्यान से आत्मा का निग्रह करना चाहिए।— यह सिद्धांत में प्रमाण भी है।

तत्पीनत्वं कृशत्वं वा न प्रमाणं तपस्विनाम्।
शुभ्रध्यानं हि परमपुरुषार्थनिबन्धनम् ॥२३८॥
एतदर्थं पुंडरीकाध्ययनं गौतमोदितम्।
जग्राहैकसंस्थयापि श्रीदसामानिकः सुरः ॥२३९॥
प्रतिपेदे स सम्यक्त्वं नत्वा वैश्रवणः पुनः।
स्वाभिप्रायपरिज्ञानान्मुदितः स्वाश्रयं ययौ ॥२४०॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

इस कारण हे सभाजनो। तपस्वियों को कृशपन होता है या पुष्टपन होता है—ऐसा कोई प्रमाण नहीं है। शुभध्यान ही परमपुरुषार्थ का कारणभूत है।

इस प्रकार गौतम स्वामी के द्वारा कथित पुंडरीक का अध्ययन के पास बैठा हुआ वैश्रमण का सामानिक देव एक निष्ठा से श्रवण किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैश्रमण भी सम्यक्त्व को प्राप्त किया और गौतम स्वामी ने स्वयं का अभिप्राय जान लिया। इस कारण हर्षित होकर वह स्वयं के स्थान की ओर गया।

पाँच सौ तापसों ने गौतम स्वामी से दीक्षा ग्रहण की

एवं देशनया स्वामी गोतमोऽतीत्य तां निशाम्।
प्रभाते चोत्तरन् शैलात्तापसैस्तैरदृश्यत ॥२४१॥
तापसास्तं प्रणम्योचुर्महात्मं स्तपसां निधे!
तव शिष्यी भविष्यामस्त्वमस्माकं गुरुर्भव ॥२४२॥
तानूचे गौतमस्वामी गुरुर्मे परमेश्वरः।
सर्वज्ञोऽर्हन्महावीरः स एव गुरुरस्तुवः ॥२४३॥
अथ तानाग्रपरान् दीक्षयामास गौतमः।
सद्यो देवतया तेषां यतिलिंगं समर्पितम् ॥२४४॥
गौतमेन समं चेलुर्गन्तुं ते स्वामिनोऽन्तिके।
सह यूथाधिपतिना विन्ध्याद्रौ कुञ्जराइव ॥२४५॥
पथ्येकस्मिन् सन्निवेशे भिक्षाकाले गणाग्रणीः।
किं वः पारणकायेष्टमानयामीत्युवाच तान् ॥२४६॥
तैश्च पायसमित्युक्ते गौतमो लब्धि संपदा।
स्वकुक्षिपूरणमात्रं पात्रे कृत्वा तदानयत् ॥२४७॥
इन्द्रभूतिर्बभाषे तान्निषीदत महर्षयः!।
पायसेनामुना यूयं सर्वे कुरुत पारणम् ॥२४८॥
पायसेनेयता किं स्यात्तथापि गुरुरेष नः।
एवं विमृश्य ते सर्वे मुनयः समुपाविशन् ॥२४५॥
तान्महानसलब्ध्येन्द्रभूतिः सर्वानभोजयत्।
स्वयं तु बुभुजे पश्चात्तेषां जनितविस्मयः ॥२५०॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

इस प्रकार देशना देकर शेष की रात्रि वहाँ निर्गमन कर गौतम स्वामी प्रातःकाल उस पर्वत से उतरने लगे। फलस्वरूप बाट जोते हुए तापसों ने सर्वप्रथम गौतम स्वामी को देखा।

तापस लोग उनके पास आये और उनको प्रणाम किया। प्रणाम कर वे बोले—हे तपोनिधि महात्मा। हम आपका शिष्य होना चाहते हैं और आप हमारा गुरु हो।

प्रत्युत्तर में गौतम स्वामी ने कहा—भगवान् महावीर तुम्हारे गुरु हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद में उन तापसों ने बहुत आग्रह किया—फलस्वरूप गौतम स्वामी ने वहीं पर इन सबको दीक्षा दी। देवताओं ने उन सबको यतिलिंग दिया।

बाद में विंध्यगिरि में यूथपति के साथ जैसे दूसरे हाथी चलते हैं वैसे वे सब गौतम स्वामी के साथ-साथ भगवान की ओर जाने लगे।

चलते-चलते मार्ग में एक ग्राम आया। भिक्षा का समय हो गया। फलस्वरूप गौतम गणधर ने तापस मुनि को पूछा कि—आपके लिए पारणा करने के लिए क्या इष्ट वस्तु लानी चाहिए।

उन्होंने कहा कि पायसन्न लाओ। फलस्वरूप गौतम स्वामी लब्धि की संपत्ति से स्वयं का पोषण हो उतनी क्षीर एक पात्र में लाये। बाद में इन्द्रभूति गौतम बोले—हे महर्षियो ! आप सब बैठ जाओ और इस पायसान्न से सब पारणा करो।

फलस्वरूप इतने पायसन्न से क्या होगा। ऐसा विचार सर्व तापसों के मन में आया। तथापि अपने गुरु की आज्ञा अपने को माननी चाहिए। ऐसा विचार कर सब एक साथ बैठ गये।

बाद में इन्द्रभूति ने अक्षीण महान लब्धि से सबको भोजन करा दिया। गौतम स्वामी ने उन सबको विस्मय कर दिया। बाद में स्वयं आहार करने के लिए बैठे।

गौतम स्वामी के द्वारा दीक्षित तापसों को कैवल्यज्ञान

गौतम का स्नेह केवलज्ञान में बाधक

दिष्ट्या धर्मगुरुर्वीरः प्राप्तोऽस्माभिर्जगद्गुरुः।
पितृकल्पो मुनिश्चैव बोधिश्चात्यन्तदुर्लभा ॥२५१॥
सर्वथा कृतपुण्याः स्म इति भावयतामभूत्।
भुञ्जानानां केवलं द्राक् तत्र सेवालभक्षिणाम् ॥२५२॥
प्रभुं प्रदक्षिणीकृत्य तेऽगुः केवलिपर्षदि।
वन्दध्वं स्वामिनमिति तानभाषिष्ट गौतमः ॥२५३॥
केवल्याशातनां मा स्म कार्षीरित्यवदत्प्रभुः।
मिथ्यादुष्कृतपूर्वं तान् क्षमयामास गौतमः ॥२५४॥
भूयोऽपि गौतमो दध्यौ सेत्स्याम्यत्र भवे न हि।
गुरुकर्माऽहमेते तु धन्यामद्दीक्षिताअपि ॥२५५॥
उत्पदे केवलज्ञानं येषामेषां महात्मनाम्।
एवं विचिन्तयन्तं तं भगवानित्यभाषत ॥२५६॥
किं सुराणां वचस्तथ्यं जिनानामथ गौतम !।
जिनानामिति तेनोक्ते मा कार्षीरधृतिं ततः ॥२५७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृणच्छिदलवर्मोर्णाकटतुल्या भवन्ति हि ।
स्नेहा गुरुषु शिष्याणां तवोर्णाकटसन्निभः ॥२५८॥
अस्मासु चिरसंसर्गात् स्नेहो दृढतरस्तव ।
तेनरुद्धं केवलं ते तदभावेभविष्यति ॥२५९॥
गौतमस्य प्रबोधार्थमन्येषां चानुशिष्टये ।
व्याकरोद् द्रुमपत्रीयाध्ययनं परमेश्वरः ॥२६०॥
—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

जब तापसगण भोजन करने बैठे थे तब 'अपने पूर्ण भाग्ययोग से श्री वीरपरमात्मा जगद्गुरु अपने को धर्मगुरु के रूप में प्राप्त हुए है। उसी प्रकार पिता की तरह ऐसे मुनि बोधकर्त्ता प्राप्त हुए हैं। वे भी बहुत दुर्लभ है। अतः अपने सब पुण्यवान् है।'

इस प्रकार भावना भावते हुए शुष्क सेवाल भक्षी पाँच सो तापसों को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

दत्त आदि पाँच सौ तापसों को दूर से प्रभु के प्रातिहार्य का अवलोकन करते हुए उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

इसी प्रकार कौडिन्य आदि पाँच सौ को भगवंत के दर्शन दूर से होते ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

बाद में उन सबने श्री वीरप्रभु को प्रदक्षिणा कर केवली की सभा की ओर आये।

अस्तु गौतम स्वामी तापसों को बोले—इन वीर प्रभु को वंदना करो।

भगवान बोले—गौतम! केवली की आशातना मत करो।

गौतम तुरन्त ही मिथ्या दुष्कृत्य कर उनसे क्षमायाचना की। उस समय गौतम ने फिर चिन्तन किया। अवश्य ही मैं इस भव में सिद्धगति को प्राप्त नहीं करूँगा। क्योंकि मैं गुरुधर्मी हूँ। इन महात्माओं को धन्य है। मेरे द्वारा दीक्षित होते हुए जिन्होंने तत्क्षण केवलज्ञान प्राप्त किया है।

ऐसा चिन्तन करते हुए गौतम को श्री वीरप्रभु बोले—हे गौतम! तीर्थंकरों का वचन सत्य होता है या देवताओं का?

गौतम ने कहा—तीर्थंकरों का।

तब भगवान महावीर ने कहा—अब अधैर्य नहीं रखना चाहिए। गुरु का स्नेह शिष्यों पर द्वीदल ऊपर के तृण जैसा होता है और वह स्नेह तत्काल दूर हो जाता है। इसके विपरीत गुरुपद शिष्य का जो स्नेह होता है—वह स्नेह तुम्हारा तो ऊनकी कडाह (चटाई) जैसा दृढ़ है।

चिरकाल के संसर्ग से हमारे पर तुम्हारा स्नेह बहुत दृढ़ रहा हुआ है। इस कारण से तुम्हारा केवलज्ञान रुका हुआ है। उस स्नेह का जब अभाव होगा तब केवलज्ञान प्रकट होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद में भगवान ने गौतम और दूसरों को बोध करने के लिए द्रुमपत्रीय अध्ययन की व्याख्या की।

गुरु भक्ति पर गणधर गौतम का उदाहरण

जाणंतो वि तमत्थं भत्तीए सुणेज्ज गुरु-समीवंमी।
गणहारि-गोयमो विव समत्थ-सुयनाण जलरासी॥

—धर्मो पृ.१२८

गुरु के समीप रहने से भक्ति से जानकारी होती है—जैसे गौतम स्वामी (गणधर) ने समस्त श्रुतरत्न रूपी जलराशि को भगवान की भक्ति से प्राप्त किया।

२. **जंबूस्वामी—एक प्रसंग**

(क) एसो एत्थोसप्पिणीए अंतिमकेवली। एदम्हि णिव्वुइं गदे विण्णुआइरियो सयल सिद्धंतिओ उवसमियचउकसायो णंदिमित्ता इरियस्स समप्पिय दुवालसंगो देवलोअं गदो। पुणो एदेण कमेणऊवराइयो गोवद्धणो भद्दबाहुत्ति एदे पंच पुरिसो लीए सयलसिद्धंतिया जादा।

एदेसिं पंचण्हंपि सुदके वलीणं कालो वस्ससदं १००।
तदो भद्दबाहुभयवंते सग्गं गदे सयल सुदणाणस्स वोच्छेदो जादो।

कसागापा० भाग १/२ टीका/१

अस्तु जंबूस्वामी इस भरतक्षेत्र सम्बन्धी अवसर्पिणीकाल में पुरुष परम्परा की अपेक्षा अन्तिम केवली हुए हैं।

इन जंबूस्वामी के मोक्ष चले जाने पर सकल सिद्धान्त के ज्ञाता और जिन्होंने चारों कषायों को उपशमित कर दिया था ऐसे विष्णु आचार्य, नंदीमित्र आचार्य को द्वादशांग समर्पित करके अर्थात् उनके लिए द्वादशांग का व्याख्यान करके देवलोक को प्राप्त हुए।

पुनः इसी क्रम से पूर्वोक्त दो, और अपराजित, गोवर्द्धन तथा भद्रबाहु इस प्रकार ये पाँच आचार्य पुरुष परम्परा क्रम में सकल सिद्धान्त के ज्ञाता हुए।

इन पाँचों ही श्रुतकेवलियों का काल सौ वर्ष होता है। तदनन्तर भद्रबाहु भगवान के स्वर्ग चले जाने पर सकल श्रुतज्ञान का विच्छेद हो गया।

(ख) श्रीगौतमः सुधर्माख्य श्रीजम्बूस्वामिरन्तिमः।
मोक्षंगते महावीरे त्रयः केवलिनोऽव्ययमी॥

—वीरच० अधि १। श्लो ४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष चले जाने पर श्री गौतम, सुधर्मा और अन्तिम जम्बूस्वामी ये तीन केवली बासठ वर्ष तक धर्म का प्रवर्तन करते रहें।

३. इस अवसर्पिणीकाल के जंबूस्वामी अंतिम केवली

भूयोऽपि श्रेणिकनृपो बभाषे भगवन्निह।
कुत्रेदं केवलज्ञानं व्युच्छेदमुपयास्यति ॥५१॥
तदाऽऽगाद् ब्रह्मलोकेन्द्रसामनिको महाद्युतिः।
विद्युन्माली प्रभुं नन्तुं चतुर्देवीसमन्वितः ॥५२॥
तं दर्शयन् स्वाम्युवाचोच्छेत्स्यते ह्यत्र केवलम्।
भूयोऽपि श्रेणिकोऽपृच्छत् किं स्याद्देवेषुकेवलम् ॥५३॥
स्वाम्यथाख्यदसौ च्युत्वा सप्तमेऽन्हि भविष्यति।
आढ्यस्यर्षभदत्तस्य सूनुस्त्वत्पुरवासिनः ॥५४॥
भावी जंब्वाख्यया शिष्यो मच्छिष्यस्य सुधर्मणः।
ततो नाग्रेसरमसावर्जयिष्यति केवलम् ॥५५॥
राजाऽपृच्छत्पुनर्नाथमासन्नच्यवनोऽप्यसौ।
कस्मान्न मन्दतेजस्को देवा ह्यन्तेऽल्पतेजसः ॥५६॥
स्वाम्यूचे सांप्रतमयं मन्दतेजाः सुरः खलु।
अस्य तेजः पूर्वपुण्यैरत्युत्कृष्टं पुराह्यभूत् ॥५७॥
एवमाख्याय भगवान् सर्वभाषाजुषा गिरा।
विदधे दुरितप्रत्यादेशनीं धर्मदेशनाम् ॥५८॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

भगवान महावीर का राजगृही पदार्पण होता है। श्रेणिक राजपुत्रों के परिवार से भगवान का दर्शन करता है।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने भगवान से पूछा— हे भगवन्! केवलज्ञान का उच्छेद कब होगा?

उस समय महा कांतिवाला विद्युन्माली ब्रह्मदेवलोक के इन्द्र का सामानिक देव स्वयं की चार देवियों के साथ भगवान को नमस्कार करने के लिए आया था। उसको बताकर भगवान बोले—इस पुरुष से केवलज्ञान उच्छेद को प्राप्त होगा। अर्थात् यह अन्तिम केवली होगा।

तब श्रेणिक राजा विस्मित होकर बोला—क्या देवों को भी केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्युत्तर में भगवान बोले—यह विद्युन्माली देव आजसे सातवें दिन अपने स्थानसे च्यवन कर तुम्हारे नगर के निवासी धनाढ्य ऋषभदत्त का पुत्र होगा। और बाद में हमारा शिष्य सुधर्मा का जंबू नामक शिष्य होगा। उसको केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद अन्य किसी को भी केवलज्ञान उत्पन्न न होगा।

इसके बाद श्रेणिक ने प्रश्न किया कि—हे नाथ! इस देव के च्यवन का समय नजदीक होते हुए भी इस देव का तेज मन्द क्यों नहीं हुआ? क्योंकि अन्तकाल में देव का तेज मन्द होता है?

प्रत्युत्तर में भगवान बोले—अभी तो इस देव का तेज मन्द है, पूर्व के पुण्योदय से पहले इससे भी उत्कृष्ट तेज था।

इस प्रकार प्रश्नोत्तर होने के बाद भगवान् सर्वभाषानुसारी वाणी द्वारा पाप को नष्ट करने वाली धर्मदेशना दी।

५ सर्वज्ञ अवस्था के वर्धमान स्वामी के विहार स्थल

१. सुरभिपुर पधारे—

सुरभिपुर—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ३।श्लो०२८८ में २९०

इतश्च यः सुदंष्ट्राहिकुमारो नौजुषः प्रभोः।
उपसर्गानकृतस क्वचिद् ग्रामेऽभवद्धली ॥१॥
स कृष्याजीवकोऽन्येद्युः सीरेण कृष्टमुर्वराम्।
यावत्प्रवृत्तस्तावन्तं श्रीवीरो ग्राममाययौ ॥२॥

—त्रिशलाका० पर्व१०/सर्ग ६

जब छद्मस्थावस्था में भगवान वाहण में बैठकर नदी उतरते थे उस समय सुदंष्ट्र नामक नागकुमारदेव प्रभु को उपसर्ग किये। वह नागकुमार कालान्तर में च्यवन कर किसी ग्राम में खेडुत हुआ। और कृषि-कर्म से आजीविका चलाता था। वह हल चला रहा था कि भगवान का सुरभिपुर पदार्पण हुआ।

२. सुरभिपुर से विहार कर पोतनपुर पधारे।

एवमाख्याय भगवान् प्रययौ पोतनंपुरम्।
मनोरमाभिधोद्याने तद्बहिः सममासरत् ॥२१॥
प्रसन्नचंद्रो जिनेन्द्रं वन्दितुं पोतनेश्वरः।
समाजगामाश्रौषीच्चदेशनां मोहनाशिनीम् ॥२२॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान सुरभिपुर से विहार कर अनुक्रमतः पोतनपुर पधारे। वहाँ नगर के बाहर मनोरमोद्यान में समवसरण किया। वहाँ का राजा प्रसन्नचन्द्र भगवान् को वन्दनार्थ आया। और मोहनाश करने वाली भगवान् की देशना सुनी।

·३ साकेत नगर में—

तेणं कालेणं तेणं समएणं साएयं नामं नयरं होत्था। उत्तरकुरुउज्जाणे पासामिओजक्खो। मित्तनंदीराया। सिरिकंतादेवी। वरदत्ते। × × ×। तित्थयरागमणं। × × ×।

—विया० २/अ १०

उस काल में—उस समय साकेत नामक नगर था। वहाँ उत्तरकुरु नाम का उद्यान था जिसमें पाशामृग यक्ष का निवास स्थान था। वहाँ का राजा मित्रनंदी, उसकी पत्नी श्रीकांता तथा पुत्र युवराज वरदत्त था।

वहाँ श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। (इकतीसवाँ वर्ष)

·४ हस्तिनापुर में—

शिवराजर्षि को विभंग ज्ञान उत्पन्न होने के बाद (अठाइवाँ वर्ष)

तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणापुरे णामं णयरेहोत्था वण्णओ। तस्सणं हत्थिणापुरस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमेदिसीभागे, एत्थणं सहसंबवणे नामंउज्जाणे होत्था। × × × ५७।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा × × ×। निग्गया। धम्मो कहिओ परिसा × × × पडिगणा। × × × ॥७४॥

—भग० श११/उ० ९/सू० ५७, ७४/पृ०४९३, ५००

उस काल—उस समय में हस्तिनापुर नामक नगर था। उस हस्तिनापुर नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में (ईशान कोण) सहसाम्र नामक उद्यान था। उस काल—उसी समय में, श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे। जनता धर्मोपदेश सुनकर वापस चली गई।

·५ उल्लुकतीर नगर में—

तेणं कालेणं तेणं समएणं उल्लुयतीरे णामं णयरे होत्था, वण्णओ। एगजंबुए चेइय, वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे जाव परिसा पज्जुवासइ।

—भग० श१६/उ ५ सू० ५४/पृ० ७२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में भगवान् महावीर उल्लुकतीरनगर में—एक जम्बू चैत्य में पधारे।

.६ मृगाग्राम में

तेणं कालेणं तेणं समएणं मियग्गामे नामं नयरे होत्था, वण्णओ ॥९॥

तस्स णं मियग्गामस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए चंदण-पायवे नामं उज्जाणे होत्था ॥१०॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे ('पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे मियग्गामे नयरे चंदणपायवे उज्जाणे') समोसरिए ॥१७॥

—विवा० श्रु १/अ १

उस काल—उस समय में मृगाग्राम नामक एक सुप्रसिद्ध नगर था। उस मृगाग्राम नामक नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा के मध्य—ईशान कोण में संपूर्ण ऋतुओं में होनेवाले फल, पुष्पादि से युक्त चंदन-पादप नामक एक रमणीय उद्यान था।

उस काल तथा उसी समय में श्रमण भगवान् महावीर मृगाग्राम नगर के बाहर चंदनपादप उद्यान में पधारे।

.७ पुरिमताल नगर में

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरिमताले नामं नयरे होत्था।×××॥२॥

तस्स णं पुरिमतालस्स नयरस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थणं अमोह-दंसी उज्जाणे ॥३॥

तस्स णं पुरिमताले नयरे महब्बले नामं राया होत्था ॥५॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुरिमताले नयरे समो-सढे। परिसा निग्गया। राया निग्गओ। धम्मो कहिओ। परिसा राया य गओ ॥१२॥

—विवा० श्रु १/अ ३

उस काल उस समय में पुरिमताल नामक नगर था। उस पुरिमताल नगर के उत्तर-पूर्व दिशा में अमोघदर्शी नामक उद्यान था। उस पुरिमताल नगर में महाबल नाम का राजा था।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर पुरिमताल नगर पधारे। परिषद् वंदनार्थ निकली। राजा भी आया। भगवान् ने धर्मकथा कही। धर्मोपदेश को सुनकर राजा तथा परिषद् दल वापिस अपने-अपने निवास स्थान लौट आये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.८ साहंजनी नगरी में

तेणं कालेणं तेणं समएणं साहंजणी नामं नयरी होत्था ।२।

तीसेणं साहंजणीए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए देवरमणे नामं उज्जाणे होत्था ।।३।।

तत्थणं साहंजणीए नयरीए महच्चंदे नामं राया होत्था ।।५।।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए । परिसा राया य निग्गए । धम्मो कहिओ । परिसा गया ।।११।।

—विवा० श्रु १/अ ४

उस काल उस समय में साहंजनी नाम की नगरी थी । उस साहंजनी नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व में दिशा के मध्य भाग में देवरमण नाम का एक उद्यान था । उस साहंजनी नगरी का तत्कालीन राजा महाचन्द्र नाम का था । उस काल उसी समय में श्रमण भगवान् महावीर साहंजनी नगरी के देवरमण उद्यान में पधारे । उनका आगमन जानकर उनके दर्शनार्थ जनता एवं राजा श्रमण भगवान् महावीर के निकट गये । भगवान् ने उन्हें धर्मोपदेश से सम्बोधित किया, जनता और राजा ने धर्मोपदेश का श्रवण पूर्ण संतुष्टि सहित किया और फिर निज-निज गृह लौट गये ।

.९ पाटलिसंड नगर में

तेणं कालेणं तेणं समएणं पाडलिसंडे नयरे । 'वणसंडे उज्जाणे । उंबरदत्ते जक्खे ।।२।।

तत्थणं पाडलिसंडे नयरे सिद्धत्थे राया ।।३।।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समोसरणं जावपरिसा पडिगया ।।६।।

—विवा० श्रु १/अ ७

उस काल—उस समय में पाटलिसंड नगर था । वनसंड नामक उद्यान था । वहाँ उंबरदत्त नामक यक्ष रहता था । उस पाटलिसंड का सिद्धार्थ राजा था । उस समय श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे ।

.१० रोहीतक नगर में

तेणं कालेणं तेणं समएणं रोहीडए नामं नयरे होत्था । × × × । पुढवी-वडेंसए उज्जाणे । धरणो जक्खो । वेसमणदत्ते राया । सिरी देवी । पूसनंदी कुमारे जुवराया ।।२।।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे जावपरिसा पडिगया । ५

—विवा० श्रु १/अ ९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में रोहीतक नाम का नगर था। पृथिव्यवतंसक नामक उद्यान था। धरण नामक यक्ष, अर्थात् वहाँ यक्ष का स्थान था। वैश्रमणदत्त नाम का राजा था। श्रीदेवी नाम की रानी थी। पुष्पनंदी कुमार युवराज था।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। यावत् परिषद् दर्शन कर वापस पधारीं !

.११ वर्धमानपुर नगर में

तेणं कालेणं समएणं वद्धमाणपुरे नामं नयरे होत्था। विजयवद्धमाणे उज्जाणे। माणिभद्दे जक्खे। विजयमित्ते राया ॥२॥

×××। समोसरणं परिसा जावगया ॥३॥

—विवा० श्रु १/अ १०

उस काल—उस समय में, वर्द्धमानपुर नामक एक नगर था, वहाँ विजयवर्द्धमान नाम का एक सुन्दर उद्यान था जहाँ यक्ष माणिभद्र का निवास स्थान था। उस नगरी का राजा विजयमित्र था।

उसी काल-उसी समय में 'श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे। परिषद् वापस लौट गई।

.१२ आमलकल्पा नगरी में

तेणं कालेणं तेणं समएणं आमलकप्पा णामं णयरी होत्था × × ×। तीसेणं आमलकप्पाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए, अंबसालवणेणामं चेइए होत्था जावपडिरूवे असोयवरपायवे पुढविसिलापट्टए। × × ×।

सेउराया धारिणी देवी सामी समोसढे परिसानिग्गया राजा जाव पज्जुवासइ।

—राय० सू २

उस काल उस समय में आमलकल्पा नाम की नगरी थी। उस आमलकल्पा नगरी के बाहर उतर और पूर्व दिशा के बीच ईशान कोन में अंबशाल नामक यक्ष का यक्षायतन था।

उस अंबशाल वन के मध्य भाग में अशोक नामक वृक्ष था। जिसके नीचे पृथ्वी-शिलापट्ट था।

उस आमलकल्पा नगरी में श्वेत नामक राजा राज्य करता था जिसकी धारिणी पट्टरानी थी।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर साधु-साध्वियों के साथ आमलकल्पा नगरी के अंबशाल नामक बाग में पधारे। परिषद् धर्मकथा सुनकर वापस गयी। श्वेत राजा भगवान की सेवा करने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.१३ राजगृह से कृतंगला नगरी पदार्पण

तेइसवां वर्ष—आर्य स्कन्धक के समय में)

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था। वण्णओ। सामी समोसढे। परिसा णिग्गया, धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया— × × × । २

तएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥१९॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं कयंगला नामं नगरी होत्था—वण्णओ ॥२०॥

तीसेणं कयंगलाए नगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए छत्तपलासए नामं चेइए होत्था—वण्णओ ॥२१॥

तएणं समणे भगवं महावीरे उत्पन्ननाणदंसणधरे अरहाजिणे केवली जेणेव कयंगला नयरी जेणेव छत्तपलासए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेभाणे विहरइ जाव समोसरणं। परिसा निग्गच्छइ ॥२२॥

तीसेणं कयंगलाए नयरीए अदूरसामंते सावत्थी नामं नयरी होत्था। × × × ॥२३॥

—भग० श२/उ० १/ सू०२,१९ से २३/पृ० ७९/८२-८३

तएणं समणे भगवं महावीरे कयंगलाओ नयरीओ छत्तापलासाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥५६॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नगरे समोसरणं जाव परिसा पडिगया ॥६५॥

उस काल उस समय में राजगृह नगर था। जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर परिषद् वापिस लौट गई।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर ने राजगृह नगर के गुणशील चैत्य (बगीचे) से विहार किया। वहाँ से विहार कर, वे जनपद में विचरने लगे।

उस काल—उस समय में, कृतंगला नाम की नगरी थी। उस कृतंगला नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा के बीच में अर्थात् ईशान कोण से 'छत्रपालशक' नाम का चैत्य था। वहाँ किसी समय उत्पन्न हुए केवलज्ञान, केवलदर्शन के धारक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। यावत् भगवान् का समवसरण हुआ। परिषद् धर्मोपदेश सुनने के लिए गई।

उस कृतंगला नगरी के पास में श्रावस्ती नाम की नगरी थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कृतंगला नगरी के छत्रपलाशक उद्यान से निकले और बाहर जनपद में विचरण करने लगे।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर में पधारे।

.१४ वाणिज्यग्राममें

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नयरे होत्था × × × जियसत्तू राया, तस्स धारिणी नामं देवी। × × × सामी समोसढे।

—दसासु० द ५/सू २

उस काल उस समय में वाणिज्यग्राम नगर था। वहाँ का राजा जितशत्रु था। उसकी धारिणी देवी थी। श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ।

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे ॥२॥

तस्सणं वाणियगामस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए दूइपलासे नामं उज्जाणे होत्था ॥३॥

तत्थणं वाणियगामे नयरे मित्ते नामं राया होत्था—वण्णओ ॥५॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे। परिसा पडिगया। रायाय गओ ॥११॥ —विवा० श्रु १/अ २/सू २,३,५/११

उस काल उस समय में वाणिज्यग्राम नाम का एक समृद्धिशाली नगर था। उस नगर के ईशान कोण में द्युतिपलाश नाम का एक उद्यान था। उस वाणिज्यग्राम नगर में मित्र नाम का राजा था।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। परिषद् का आगमन हुआ। वहाँ का राजा भी कूणिक तरह दर्शनार्थ गया। भगवान् ने धर्म का उपदेश दिया।

(ग) इतश्चास्ति निरूपमं परमाभिर्विभूतिभिः।
नाम्ना वाणिजकग्राम इति ख्यातं महापुरम् ॥२३५॥
तत्र प्रजानां विधिवत्पितेव परिपालकः।
जितशत्रुरिति ख्यातो बभूव पृथिवीपतिः ॥२३६॥
आसीद् गृहपतिस्तत्रनयानन्ददर्शनः।
आनंदो नाम मेदिन्यामायात इवचंद्रमाः ॥२३७॥
× × ×
तदा च पृथ्वीं विहरञ्जिनः सिद्धार्थनन्दनः।
तत्पुरोपवने दूतिपलाशे समवासरत् ॥२४१॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम समृद्धि से युक्त निरूपम वाणिज्यग्राम नामक एक विख्यात नगर था। नगरी के राजा का नाम जितशत्रु था। वहाँ आनन्द नामक गृहपति रहता था।

एक समय पृथ्वी पर विहार करते-करते सिद्धार्थ नन्दन वीरप्रभु वाणिज्यग्राम के दुतिपलाश नामक उद्यान में पधारे।

(घ) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव जेणेव वाणियगामे नयरे जेणेव दूइपलासए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए। परिसा निग्गया जाव पडिगया।

—उवा० अ १/सू १७,६७६८

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर जहाँ वाणिज्यग्राम नगर था—जहाँ दुतिपलाश चैत्य था। वहाँ पधारे। पधार कर यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण कर संयम तप से अपनी आत्मा को भावित कर विचरने लगे—

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कदाइ (वाणियगामाओ नयराओ दूइपलासाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं) विहरइ।

तएणं समणे भगवंमहावीरे अण्णदाकदाइ बहिया जणवयविहारं विहरइ।

—उवा० अ १/सू ५४,८३

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर अन्यदा वाणिज्यग्राम नगर के दुतिपलाश चैत्य से निकल कर बाहर जनपद विहार करने लगे—

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषद् वंदनार्थ निकली। वन्दन कर वापस आयी।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर बाहर जनपद विहार करने लगे।

(च) तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियग्गामे नामं नयरे होत्था-वण्णओ। दूतिपलासए चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया।

—भग० श६/ उ ३२ /सू० ७७/पृ० ४१३

उस काल उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था। वहाँ दुतिपलाश नामक चैत्य (उद्यान) था। वहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। परिषद् वंदन के लिए निकली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(छ) तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियग्गामे नयरे होत्था—वण्णओ। दूतिपलासए चेइए। सामी समोसढे × × × परिसा पडिगया।

—भग० श १०/उ ४/ सू. ४२/पृ० ४७४

उस काल उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था। द्युतिपलाश चैत्य था। श्रमण भगवान महावीर स्वामी वहाँ पधारे।

(सुदर्शन श्रमणोपासक के समय में)

(ज) तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियग्गामे नामं नगरे होत्था वण्णओ। दूतिपलासए चेइए वण्णओ जाव पुढविसिलापट्टओ। × × ×। सामी समोसढे जाव परिसा पज्जुवासइ।

—भग० श ११/उ ११/सू ११५/पृ० ५१२

उस काल उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था। द्युतिपलाश नामक उद्यान था। उसमें एक पृथ्वीशिलापट्ट था। उस वाणिज्यनगर में श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे। परिषद् पर्युपासना करने लगी।

नोट—उस समय वाणिज्यग्राम में सुदर्शन श्रमणोपासक रहता था।

भगवान महावीर के विहार स्थल का तीसवाँ वर्ष

(झ) तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नयरे होत्था, एत्थ नयरवण्णओ भाणियव्वो। तस्सणं वाणियगामस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए दूइपलासए नामं चेइए होत्था। चेइय वण्णओ भाणियव्वो। जियसत्तू राया, तस्स धारिणी नामं देवी। एवं सव्वं समोसरणं भाणियव्वंजावपुढवीसिलापट्टए, सामीसमोसढे, परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया।

—दसासु० द ५/सू २

उस काल उस समय में वाणिज्यग्राम नगर था। उस वाणिज्यग्राम नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में द्युतिपलाश नामक चैत्य था। भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। परिषद् का आगमन हुआ। भगवान् ने धर्मकथा कही।

(अ) तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे णामं नयरे होत्था। वण्णओ। दूइपलासए चेइए। वण्णओ। × × ×। तएणं समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे। जावपरिसा पज्जुवासइ। —भग० श० १८/उ १० सू २०४

उस काल उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर और द्युतिपलाश नामक उद्यान था। किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर वाणिज्यग्राम से द्युतिपलास चैत्य में पधारे यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.१५ मिथिला नगरी में

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं महिलाए णामं णयरीए होत्था। वण्णओ। तीसेणं महिलाए णामं णयरिए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थणं माणिभद्दे णामं चेइए होत्था। चिराइए वण्णओ। तीसेणं महिलाए णयरिए जियसत्तू णामं धारिणी देवी। वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे परिसा णिग्गया, धम्मकहिओ, परिसा पडिगया।

—सूर० सू १/प्रा २/प्रा १/प्रा १

उस काल उस समय में मिथिला नाम की नगरी थी। उस मिथिला के बाहर उत्तर-पूर्व दिशामें माणिभद्र नाम का चैत्य था। चिरातवन था। मिथिला नगरी का राजा जितशत्रु था। धारिणी देवी थी। उस काल उस समय में भगवान् महावीर पधारे। परिषद् वंदनार्थ निकली। धर्मकथा कही। परिषद् वापस गयी।

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं तम्मि उज्जाणे सामी समोसढे, परिसा णिग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया जाव राया जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

चंद० सू० ५/प्रा १/प्रा १

उस काल उस समय में मिथिला नाम की नगरी थी। तम्मि नामक उद्यान था। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषद् व राजा वंदनार्थ गये।

(ग) तेणं कालेणं समएणं मिहिला णामं नगरी होत्था—वण्णओ। माणिभद्दे चेतिए—वण्णओ। सामी समोसढे, परिसा निग्गया।

— भग० श ६/उ१/सु १/पृ० ३६६

उस काल उस समय में मिथिला नाम की नगरी थी। वहाँ माणिभद्र नाम का चैत्य (उद्यान) था। वहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। परिषद् वंदन के लिए निकली।

(घ) तेणं कालेणं तेणं समएणं मिहिला णामं णयरी होत्था। रिद्धित्थिमियसमिद्धा वण्णओ, तीसेणं महिलाए णयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थणं माणिभद्दे णामं चेइए होत्था, वण्णओ। जियसत्तू राया, धारिणी देवी, वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया।

जंबू०/सु १/पृ ६

उस काल उस समय में मिथिला नाम की नगरी थी। ऋद्धि-समृद्ध वाली थी। उस मिथिला नगरी के उत्तर-पूर्व दिशा में माणिभद्र नाम का चैत्य था। जितशत्रु राजा था। धारिणी देवी थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। परिषद् निकली। धर्मकथा कही।

.१६ अन्यान्य देशों में विहार

(क) तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइं रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

—अंत० व ६/अ ३/सू ५८

इसके बाद अर्जुनमाली को दीक्षित करने के बाद किसी समय श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर के गुणशिलक उद्यान से निकलकर बाहर जनपद में विचरने लगे।

(ख) तीर्थंकर काल का—प्रथम वर्ष का विहार

मेघकुमार को पहली तथा दूसरी बार प्रव्रज्या देने के बाद—

तएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय विहारं विहरइ।

—नाया० श्रु १/अ २

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर से, गुणसिलक चैत्य से निकले। निकलकर बाहर जनपदों में विहार करने लगे—विचरने लगे।

(ग) पोलासपुर नगर में विहार

तएणं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ पोलासपुराओ नयराओ सहस्संबं वणओ पडिनिग्गच्छइ, पडिनिग्गच्छित्ता बहिया जणवयविहार विहरइ।

—उवा० अ ७/सू ११

श्रमण भगवान् महावीर अन्य कोई दिवस पोलासपुर नगर से और सहस्राम्रवन उद्यान से निकलकर बाहर के देशों में विचरने लगे।

(घ) देश-पर्वत-नगरादि में विहार

विश्वभव्योपकारार्थं व्रजत्येव नमोऽङ्गणे।
नानादेशाद्रिपुर्यादिन् धर्मचक्रपुरः सरः॥

—वीरवर्धच० अधि १६/श्लो ५४

सदैव धर्म चक्र जिनका अनुगामी है; ऐसे वीर पुत्र ने, संसार के समस्त जीवों के उपकार हेतु, गगनाङ्गण में भ्रमण करते हुये अनेकानेक देश, पर्वताचल एवम् नगरादि में विहार किया।

२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(च) अन्यान्य ग्राम-नगर आदि में विहार—

इतश्च भगवान् वीरो लोकानुग्रहकाम्यया।
व्यहार्षीन्नगर ग्रामाकर द्रोणमुखादिषु ॥१॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १०

श्री वीर भगवान् लोगों के अनुग्रह करने की इच्छा से नगर, गाम, खीण और द्रोणमुख (खेडुत लोगों के ग्राम) आदि में विहार करते थे।

(छ) उदायन राजा की दीक्षा के बाद विहार—

इतश्च भगवान् वीरः प्रव्राज्योदायनं नृपम्।
मरुमंडलतस्तत्राभ्यागत्य समवासरत् ॥३११॥
दिष्ट्याऽद्य भगवाना गादिति हृष्टोभयोऽपिहि।
गत्वा नत्वा भगवन्तं भक्तिमानेवमस्तवीत् ॥३१२॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ११

श्री वीर प्रभु उदायन राजा को दीक्षा देकर मरुमंडल में से वहाँ आकर समवसरे।

(ज) ततोऽपि भगवान् कर्तु तीर्थंकृत्कर्मनिर्जराम्।
विजहार वृतो देवैः कोटिसंख्यैर्जघन्यतः ॥१११॥
कानपि श्रावकीचक्रे यतीचक्रे च कानपि।
धर्मदेशनया राजामात्यप्रभृतिकान् प्रभुः ॥११२॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ११

भगवंत श्री वीर प्रभु जघन्य से भी कोटि देवों से भी परिवारित तीर्थंकृत नाम कर्म की निर्जरार्थ विहार करने लगे। धर्म देशना से कितनेक राजा-मंत्री—आदि को उन्होंने श्रावक किये और कितनों को यति किया।

(झ) ततोऽसौ भगवान् देवैर्वीज्यमानः सुचामरैः।
वृतो गणैर्द्विषड्भेदैः सितछत्रत्रयाङ्कितः ॥४८॥
परीत परया भूत्या ध्वनत्सु वाद्यकोटिषु।
विहारं कर्तुमारेभे विश्वसंबोधहेतवे ॥४९॥
तदापटहतूर्याणां दध्वनुः कोटयस्तराम्।
आसीद्रुद्धं चलद्भिर्नभश्छत्रध्वजपंक्तिभिः ॥५०॥
जयमोहं जगच्छत्रुं नन्देश भुवनत्रये।
घोषयन्तोऽमरा इत्थं परितस्तं विनिर्ययुः ॥५१॥
देवोऽसौ विहरत्येवमनुयातः सुरासुरैः।
अनिच्छापूर्विकां वृत्तिमास्कन्दन्निव भानुमान् ॥५२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वत्रास्थानतो दिक्षु सर्वासु जायतेऽर्हतः ।
शतयोजन मात्रं च सुभिक्षमीतिवर्जनम् ॥५३॥
विश्वभव्योपकारार्थं व्रजत्येव नमोऽङ्गणे ।
नानादेशाद्रिपुर्यादीन् धर्मचक्रपुरःसरः ॥५४॥
—वीरवर्धमानच० अधि १६

भगवान् महावीर के विहार स्थल

देवों के द्वारा उत्तम चंवरों से वीज्यमान, द्वादश गुणों से आवृत्त, श्वेत तीन छत्रों से शोभित और उत्कृष्ट विभूति से विभूषित भगवान् ने करोड़ों बाजों के बजने पर संसार को संबोधन के लिए विहार करना प्रारंभ किया।

उस समय करोड़ों पटह (ढोल) और तूर्यों (तुरई) के बजने पर तथा चलते हुए देवों से तथा छत्र-ध्वजा आदि की पंक्तियों से आकाश व्याप्त हो गया।

हे ईश, जगत के जीवों के शत्रुभूत मोह को जीतनेवाले आपकी जय हो, आप आनन्द को प्राप्त हों, इस प्रकार से जय, नन्द आदि शब्दों की तीन लोक में घोषणा करते हुए देवगण भगवान् को सर्व ओर से घेरकर निकले।

सुर-असुर देवगण जिनके अनुगामी हैं— ऐसे श्री वीर जिनेन्द्र अनिच्छापूर्वक गति को प्राप्त हुए सूर्य के समान विहार करने लगे।

विहार करते समय सर्वत्र भगवान् के अवस्थान से सर्व दिशाओं में सौ योजन तक सभी इति-भीतियों से रहित सुभिक्ष (सुकाल) रहता है।

धर्मचक्र जिनके आगे चल रहा है, ऐसे वीरप्रभु ने संसार के भव्य जीवों के उपकार के लिए गमनांगण में चलते हुए अनेक देश, पर्वत और नगरादि में विहार किया।

(अ) ततः सपरिवारोऽपि स्वामी सिद्धार्थनन्दनः ।
विहरन्नन्यतोऽगच्छत् सयुथ इव हस्तिराट् ॥१४॥
—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १०

श्री वीरप्रभु युथसहित गजेन्द्र की तरह वहाँ से अन्यत्र विहार किया। (राजगृह से)

(ट) राजगृह से अन्यत्र विहार

भव्यानां प्रतिबोधाय ततश्च भगवानपि ।
सुरासुरैः सेव्यमानो विजहार वसुन्धराम् ॥१६॥
—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२

भगवान् महावीर स्वामी सुर-असुरों से सेवित होने पर भी भव्यजनों के प्रतिबोधार्थं वहाँ से अन्यत्र विहार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ठ) दर्शाणनगर से अन्यत्र विहार—

जगन्नाथोऽपि भव्यनामुपकारपराणः ।
विजहार ततः स्थानादन्येषु नगरादिषु ।।५६।।

—त्रिशलका० पर्व १० सर्ग १०

वीर प्रभु भव्य जनों के उपकारार्थ वहाँ से दूसरे नगर आदि स्थान में विहार किया—

(ड) राजगृह से अन्यत्र विहार—

तएणं अहं रायगिहाओ पडिणिक्खंते बहिया जणवयविहारं विहरामि ।

—णाया० श्रु १/अ १३

मैं (भगवान् महावीर) राजगृह नगर से बाहर निकल कर बाहर जनपद में विचरण करने लगे ।

(ढ) भगवान् महावीर के विहार स्थल—

राजगृह से—अभयकुमार की दीक्षा के बाद—

भव्यानां प्रतिबोधाय ततश्च भगवानपि ।
सुरासुरैः सेव्यमानो विजहार वसुन्धराम् ।।१०६ ।।

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२

भगवंत श्री वीरप्रभु सुर-असुरों से सेवित होते हुए भव्यजनों को प्रतिबोध देने के लिये राजगृह से अन्यत्र विहार किया ।

(ण) भगवान् का चंपा से विहार—

तएणं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ चंपाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ ।

—उवा अ २

श्रमण भगवान् महावीर ने अन्य किसी दिन चंपा से प्रस्थान किया और जनपदों में विचरने लगे ।

(त) वाणिज्यग्राम से भगवान् का विहार—

तएणं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ बहिया जाव विहरइ ।

—उवा० अ १

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर वाणिज्यग्राम से अन्य जनपदों में विहार कर गये और वहाँ धर्मोपदेश देते हुए विचरने लगे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(थ) आनंद श्रावक के अवधिज्ञान के पश्चात् भगवान् का वाणिज्यग्राम से विहार—

तएणं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ बहिया जणवय विहारं विहरइ।

—उवा० अ १

कुछ समय पश्चात् भगवान् महावीर वाणिज्यग्राम से अन्यत्र देशों में विहार कर गये। और धर्म प्रचार करते हुए विचरने लगे।

·१७ पोलासपुर पदार्पण

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे नगरे। सिरिवणे उज्जाणे ॥७१॥ तत्थणं पोलासपुरे नयरे विजयेणामं राया होत्था ॥७२॥ ××× ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव सिरिवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥७५॥

—अंत० व ६/अ १५

उस काल—उस समय में पोलासपुर नगर था। वहाँ श्रीवन नाम का उद्यान था। उस पोलासपुर नगर में विजय नाम का राजा था।

उस काल—उसी समय श्रमन् भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचरते हुए पोलासपुर नगर के श्रीवन उद्यान में पधारे। आकर यथारूप अवग्रह ग्रहण कर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित कर विचरने लगे।

भगवान के विहार स्थल

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरं नामं नयरं। सहस्संबवणं उज्जाणं। × × ×।

समणे भगवं महावीरे जाव (जेणेव पोलासपुरे नयरे जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥१२॥)

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णदाकदाइ पोलासपुराओ नगराओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय विहारं विहरइ ॥२९॥

—उवा० अ० ७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में पोलासपुर नाम का नगर था। वहाँ सहस्रंबवननामक उद्यान था। उस काल—उस समय में श्रमण भगवान महावीर जहाँ पोलासपुर नगर था—जहाँ सहस्रंब उद्यान था—वहाँ आये। आकर यथा प्रतिरूप अवग्रह धारण कर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

इतश्च पोलासपुरे गोशालोपासकोऽवसत्।
शब्दालपुत्रः कुलालऽमित्रा तस्य च प्रिया ॥३०५॥
चिचिन्त्यैवं स्थिते तस्मिन् प्रातस्तत्र समागतः।
श्रीवीरः समवासार्षीत् सहस्राम्रवणे वने ॥३११॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

पोलासपुर नगर में शब्दालपुत्र नामक एक कुंभकार रहता था। वह गोशालक का उपासक था। उसकी अग्निमित्रा स्त्री थी। उस समय वीर प्रभु उस नगरी के सहस्राम्र वनोद्यान में पधारे।

(ग) तएणं कल्लं जाव जलंते समणे भगवं महावीरे जाव समोसरिए (पोलासपुरे नयरे)

उवा० अ ७/४

श्रमण भगवान् का पोलासपुर नगर में पदार्पण हुआ।

(घ) तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—× × × जेणेव पोलासपुरे नयरे जेणेव आजीवियसभा तेणेव उवागच्छइ। × × ×। सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—आगएणं देवाणुप्पिया! इहं माहमाहणे × × × समणे भगवं महावीरे महामाहणे।

—उवा० अ ७/सू १८

मंखलीपुत्र गोशालक पुलासपुर नगर में सद्दालपुत्र के पास आया। सद्दालपुत्र ने मंखलिपुत्र गोशालक को कहा—यहाँ महा माहण—(श्रमण भगवान् महावीर का आगमन हुआ था।

१८ कौशाम्बी पदार्पण—

(क) एवं च बोधयन् भव्यानम्भोजानीव भास्करः।
भूयो जगाम कौशाम्बीं नगरीं परमेश्वरः ॥३३७॥
प्रभोश्चरमपौरुष्यां वन्दनायेन्दुभास्करौ।
स्वाभाविकविमानस्थौ तस्यां युगपदेयतुः ॥३३८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तयोर्विमानतेजोभिर्नभस्युद्योतिते सति।
लोकस्तथैव तत्राऽस्थात् कौतुकव्यग्रमानसः ॥३३९॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

सूर्य की तरह भव्यजनों को प्रतिबोध करते हुए श्री वीर भगवान् पुनः कौशाम्बी नगरी पधारे। दिवस के अंतिम प्रहर में चंद्र-सूर्य स्वाभाविक (शाश्वत) विमान में बैठकर वीर को वंदनार्थ आये। उनका विमान के तेज से आकाश से उद्योत हुआ देखकर लोग कौतुक से वहाँ बैठे रहे।

(ख) 'सर्वज्ञावस्था में' (पन्द्रहवाँ वर्ष)

तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसंबी नामं नगरी होत्था—वण्णओ। चंदोतरणे चेइए वण्णओ। × × ×।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, जाव परिसा पज्जुवासइ॥

—भग० श १२/उ२/सू ३०-३१/पृ० ५४५

उस काल-उस समय में कौशाम्बी नामक सुप्रसिद्ध नगरी थी। चंद्रावतरण नामक उद्यान था। उस काल-उसी समय श्रमण भगवान् महावीर पधारे।

(ग) तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसंबी नामं नगरी होत्था। × × ×। बाहिं चंदोतरणे उज्जाणे। सेयभद्दे जक्खे॥२॥

तत्थणं कोसंबीए नयरीए सयाणिए नामं राया होत्था—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे। मियावई देवी॥४॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे॥९॥

—विवा० श्रु २/अ ५

उस काल-उस समय में कौशाम्बी नामक नगरी थी। उसके बाहर चंद्रावतरण नाम का उद्यान था। उसमें श्वेतभद्र नामक यक्ष का स्थान था। उस समय कौशाम्बी नगरी में शतानीक नामक एक हिमालय आदि पर्वत के समान महान प्रतापी राजा राज्य करता था। उस राजा की रानी का नाम मृगावती देवी था।

उस काल शतनीक राजा के राजत्वकाल में ही श्रमण भगवान् महावीर कौशाम्बी नगरी अवस्थित चन्द्रावतरण उद्यान में पदार्पण किये।

(घ) मृगावती की दीक्षा के समय भगवान् का कौशाम्बी में पदार्पण—
(कौशाम्बी)

यद्येति भगवान् वीरः प्रव्रजामि तदा ह्यहम् ॥१८३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इमं च तस्याः संकल्पं विज्ञाय परमेश्वरः।
सुरासुरपरीवारोऽचिरादेव समाययौ ॥१८४॥
बहिश्च समवसृतं श्रुत्वाऽर्हन्तं मृगावती।
द्वाराण्युद्घाट्य निर्भीका महाभृद्ध्या समाययौ ॥१८५॥
सा वन्दित्वा जगन्नाथं यथास्थानमवास्थित।
प्रद्योतोऽप्येत्य वन्दित्वा त्यक्त वैरमुपाविशत् ॥१८६॥
आयोजनविसर्पिण्या सर्वभाषानुयातया।
गिरा श्रीवीरनाथोऽथ विदधे धर्मदेशनाम् ॥१८७॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

एकदा मृगावती को वैराग्य उत्पन्न हुआ—जहाँ तक श्री वीरप्रभु विचरते हैं। वहाँ तक मैं उनके पास संयम को ग्रहण करूँ। उसका यह संकल्प जानकर श्री वीर प्रभु सुर-असुर परिवार के साथ तत्काल वहाँ पधारे—प्रभु का बाहर पदार्पण हुआ जान कर मृगावती ने पुर द्वार को खोल कर निर्णय रूप से मोटी समृद्धि के साथ में प्रभु के पास आयी और प्रभु को वंदना कर योग्य स्थान में बैठी।

प्रद्योतराज—भी प्रभु का भक्त होने के कारण वहाँ आकर वैर छोड़ कर बैठा।

बाद में एक योजन प्रसरण करती हुई और सर्व भाषा को अनुसरती हुई वाणी से श्री वीर प्रभु ने धर्म देशना दी।

(ख) कौशाम्बी में पुनः आगमन—५५वें वर्ष में

विहरंतो वयं भूयोऽप्यागमामेह पत्तने।
लोकोऽस्मद् वन्दनार्थं च प्रचचाल ससंभ्रम ।१२५।
ऊस्मदागमनोदन्तं श्रुत्वाम्भोहारिणीमुखात्।
स भेकोऽचिन्तयदिदं क्वाप्येवं श्रुतपूर्व्यहम् ॥१२६॥
अहापोहं ततस्तस्य कुर्वाणस्य मुहुर्मुहुः।
स्वप्नस्मरण वज्जातिस्मरणं तत्क्षणादभूत् ॥१२७॥
स दध्यौ दर्दुरश्चैवं द्वारे संस्थाप्य मां पुरा।
द्वाःस्थो यं वन्दितुमगात् स आगाद्भगवानिह ॥१२८॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

मैं (भगवान् महावीर) कौशाम्बी नगरी से विहार कर पुनः कौशाम्बी नगरी गया। उस समय लोग संभ्रम से मुझे वंदनार्थ आये थे। उस समय पहली वापिका में से जल भरती स्त्रियों के मुख से हमारे आगमन का वृत्तांत सुनकर उस वापिका में रहा हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहले दर्दुर विचार करने लगा कि मैंने पूर्व ऐसे सुना है। बार-बार उसका ऊहापोह करने से स्वप्न में स्मरण की तरह उसे तत्काल जातिस्मरण ज्ञान हुआ।

·१९ श्रावस्ती में पदार्पण

(क) तेणं कालेणं तेणं समयेणं सावत्थी नामं णयरी होत्था, वण्णओ। तीसे णं सावत्थिए णयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए तत्थ णं कोट्ठए णामं चेइए होत्था, वण्णओ। × × ×।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, जाव परिसा पडिगया।×××।

—भग० श १५/सू १, ८/पृ० ६५४, ६५५

उस काल उस समय में श्रावस्ती नामक नगरी थी। श्रावस्ती नगरी के उत्तर-पूर्व में कोष्ठक नामक उद्यान था। उस काल—उस समय में, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। यावत् परिषद् धर्मोपदेश सुनकर चली गई।

(ख) शंख श्रावक के समय में—

तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नगरी होत्था—वण्णओ। कोट्ठए चेइए—वण्णओ। × × ×। तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा जाव पज्जुवासइ। × × ×।

—भग० श १२/उ१/सू १-२ पृ. ५३८

उस काल उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी। कोष्ठक नामक उद्यान था। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी श्रावस्ती पधारे। परिषद् वंदनार्थ गई। यावत् पर्युपासना करने लगी।

(उणतीसवां वर्ष)

(ग) कौशाम्बी नगरी से श्रावस्ती नगरी पदार्पण

इत्याख्याय ततो नाथः श्रावस्तीं विहरन् ययौ।
तस्यां च समवासार्षीदुद्याने कोष्ठकाभिधे ॥ ३५४ ॥

—त्रिशलाका० पर्व० १०/सर्ग ८

कौशाम्बी नगरी से विहारकर श्रावस्ती नगरी पधारे। वहाँ नगर के बाहर कोष्ठक नामक उद्यान में पधारे।

(घ) श्रावस्त्यामन्यदा पुर्यां भगवान् विहरन् ययौ।
तत्र कोष्ठकसंज्ञे चोपवने समवासरत् ॥ ३३१ ॥
तत्र चानन्दतुल्यर्द्धिगृं ह्यासीन्नन्दिनीपिता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

× × ×

तत्रैवानन्दतुल्यर्द्धिर्गृह्यासील्लान्तिकापिता ॥३३४॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

एकदा प्रभु विहार करते करते श्रावस्तीपुरी पधारे। वहाँ कोष्ठक नामक उपवन में विराजे। उपनगरी में नंदिनी पिता नामक एक गृहस्थ रहता था। दूसरे गृहस्थ का नाम लांतक पिता था। उनकी ऋद्धि आनंद के समान थी।

(च) तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नयरी। × ×× ।२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे ॥७॥ × × ×।

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णदाकदाइ सावत्थीए नयरीए कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥१५॥

—उवा० अ० ९

उस काल—उस समय में श्रावस्ती नगरी थी। वहाँ भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। उस काल-उस समय में, भगवान् महावीर अन्यदा श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक चैत्य से निकल कर बाहर जनपद में विहार करने लगे।

(छ) तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नयरी। × ×× ।२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे ॥ ७ ॥

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ सावत्थीए नयरीए कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥१५॥

—उवा० अ १०

उस काल उस समय में श्रावस्ती नगरी थी। भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर अन्यदा श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक चैत्य से निकल कर बाहर जनपद में विहार करने लगे।

२० आलंभिया नगरी में

(क) ततश्च विहरन् स्वामी पुरीमालभिकां ययौ।
तत्र शंखवनोद्याने भगवान् समवासरत् ।२९९।
पूर्यां तत्राभवच्चुल्लशतिको नामतो गृही।
कामदेवसमस्त्वृद्ध्या बहुलेति च तत्प्रिया ॥३०० ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

वीर भगवान् काशी नगरी से विहार कर आलंभिका नगरी पधारे। वहाँ शंख नामक उद्यान में ठहरे। उस नगरी में चुल्लशतक नामक गृहस्थ रहता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) आलंभिका नगरी में पदार्पण

तेणं कालेणं तेणं समणे भगवं महावीरे जाव जेणेव आलभिया नयरी जेणेव संखवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावभाणे विहरइ ॥७॥

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ आलभियाए नयरीए संख-वणाओ उज्जाणाओ पडिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥१५॥

—उवा अ० ५

उस काल, उस समय में श्रमण भगवान् महावीर जहाँ आलंभिका नगरी थी और जहाँ शंखवन उद्यान—वहाँ पधारे। पधार कर यथारूप अवग्रह ग्रहण कर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित कर विचरने लगे।

अन्यदा श्रमण भगवान् महावीर आलंभिका नगरी के शंखवन उद्यान से बहिर्गमन जनपद विहार करने लगे।

(ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक के समय में)

(ग) तेणं कालेणं समएणं आलभियानामं नयरी होत्था। वण्णओ। संखवणे-चेइए। वण्णओ। ×××

तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे जाव समोसढे, जाव परिसा पज्जुवासइ।

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ आलभियाओ नगरीओ संखवणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥१८५॥

—भग० श ११/उ १२/सू १७४, १७८/पृ० ५३०-३१

उस काल उस समय में आलंभिका नाम की नगरी थी। वहाँ शंखवन नामक उद्यान था। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे। यावत् परिषद् उपासना करती है। तुंगिका नगरी के श्रावकों के समान वे श्रमणोपासक भी भगवान् का आगमन सुनकर हर्षित और संतुष्ट हुए। यावत् भगवान् की पर्युपासना करने लगे।

पश्चात् किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी आलंभिका नगरी के शंखवन में उद्यान से निकल कर बाहर जनपद में विचरने लगे।

(घ) तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया नामं नगरी होत्था—वण्णओ। तत्थणं संखवणे नामं चेइए होत्था वण्णओ। × × × ॥१८६॥

सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया॥ १९०

—भग० श ११/उ १२/सू० १८६, १९०/पृ० ५३३, ३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में आलंभिका नगरी थी। वहाँ शंखवन नामक उद्यान था। कुछ काल बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। परिषद् वंदनार्थ आयी

·२१ काशी नगरी—वाराणसी में—

(क) इतश्च काशिर्नाम्नाऽनुगंगमास्ति पुरीवरा।
विचित्ररचनारम्या तिलकश्रीरिवावने ॥२७६॥

सूत्रामेवामरावत्यामविसूत्रितविक्रमः।
जितशत्रुरभूत्तत्र धरित्रीधवपुंगवः ॥२७७॥

आसीद्गृहपतिस्तस्यां महेभ्यश्चुलनीपिता।
प्राप्तो मनुष्यधर्मेव मनुष्यत्वं कुतोऽपिहि ॥२७८॥

× × ×

तस्या पुर्यामथान्येद्युरुद्याने कोष्ठकाभिधे।
भगवान् समवसृतो विहरंश्चरमो जिनः ॥२८२॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

गंगा नदी के काठे पर काशी नामक एक उत्तम नगरी है। वह विचित्र और रमणीक है। वहाँ का राजा जितशत्रु था। वहाँ चुलनीपिता नामक एक धनाढ्य गृहस्थ रहता था।

एकदा उस नगरी में कोष्ठक नामक उद्यान में विहार करते हुए श्री वीर प्रभु पधारे।

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव जेणेव वाणारसी नयरी जेणेव कोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहा-पडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥७॥

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ वाणारसीए नयरीए कोट्ठयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ ॥१५॥

—उवा अ ३

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर जहाँ वाराणसी नगरी थी—जहाँ कोष्ठक चैत्य था—वहाँ आये। आकर यथारूप अवग्रह धारण कर तपस्या में अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर अन्यथा—किसी समय वाराणसी नगरी के कोष्ठक चैत्य से निकलकर बाहर जनपद में विहरण करने लगे।

(ग) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव जेणेव वाणारसी नयरी जेणेव कोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥७॥

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ वाणारसीए नयरीए कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥१५॥

—उवा० अ ४

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर जहाँ वाराणसी नगरी थी। जहाँ कोष्ठक नामक उद्यान् था वहाँ पधारे। पधार कर यथारूप अवग्रह ग्रहण कर संयम-तप से अपनी आत्मा को भावित करने लगे।

अन्यदा श्रमण भगवान् महावीर वाराणसी नगरी के कोष्ठक उद्यान् में निकलकर बाहर जनपद में विहरण करने लगे।

(घ) तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नयरी। काममहावणे चेइए ॥९७॥

तत्थणं वाणारसीए अलक्के नामं राया होत्था ॥९८॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। परिसा निग्गया ॥९९॥

—अंत० व ६/अ १६

उस काल-उस समय में वाराणसी नाम की नगरी थी। वहाँ काममहावन चैत्य था। अलक्ष नाम का राजा राज्य करता था। उस काल, उस समय में श्रमण भगवान् महावीर वाराणसी नगरी के बाहर काममहावन उद्यान में पधारे। परिषद् उनके दर्शनार्थ आयी।

·२२ राजगृह नगर से पृष्ठ चंपा की ओर विहार—

श्री वीरोऽपि ततः स्थानाद्विहरन् सपरिच्छदः।
सुरासुरैः सेव्यमानः पृष्ठचंपापुरीं ययौ ॥ १६६ ॥
सालो राजा महासालो युवराजश्च बान्धवौ।
त्रिजगद् बान्धवं वीरं तत्र वन्दितुमेयतुः ॥ १६७ ॥

त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरासुर से सेवित श्री वीरप्रभु वहाँ से विहारकर परिवार के साथ में पृष्ठचंपानगरी पधारे। वहाँ साल नामक राजा और महासाल नामक युवराज—दोनों भाई त्रिजगत के बंधु श्री वीर भगवान् को वंदनार्थ आये। प्रभु की देशना सुनकर दोनों भाई प्रतिबोध को प्राप्त हुए।

.२३ चंपानगरी में भगवान् का पदार्पण—

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे × × × आगासगएणं चक्केणं, आगासगएणं छत्तेणं, आगासियाहिं चामराहिं, आगास-फालि-आमएणं सपायवीढेणं सीहासणेणं, धम्मज्झएणं, पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं (चउद्दसहिं समणसाहस्सीहिं, छत्तीसाए अज्जिआ-साहस्सीहिं-सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे, सुहंसुहेणं विहरमाणे, चम्पाए नयरीए बहिया उवणगरग्गामं उवागए, चंपं नगरिं पुण्णभद्दं चेइयं समोसरिउ" कामे।

—ओव० सू० १६

आकाशवर्ती धर्मचक्र, आकाशवर्ती तीन छत्र, आकाशवर्ती या ऊपर उठते हुए चामर, पादपीठ (=पैर रखने की चौकी, सहित, आकाश के समान स्वच्छ स्फटिकमय सिंहासन और आगे-आगे चलते हुए धर्मध्वज (चौदह हजार साधु और छत्तीस हजार श्राविकाएँ) के साथ घिरे हुए क्रमशः विचरते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम को पावन करते हुए और शारीरिक खेद से रहित—संयम में आनेवाली बाधा पीड़ा से रहित विहार करते हुए, चंपानगरी के बाहर के उपनगर में पधारे और वहाँ से चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य में पधारने वाले थे।

(ख) तएणं समणे भगवं महावीरे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पल-कमल-कोमलुम्मिलियम्मि अह पंडुरे पहाए-रत्तासोगप्पगास किंसुअसुअ-मुह-गुंजद्ध-राग सरिसे कमलागर-संड-बोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते, जेणेव चंपा णयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

ओव० सू २२

जब गगन मण्डल में मुस्कराती ऊषा रात्रि को विदाकर अपने अंक में फूलते पादपों एवम् सुकुमार कलियों के कोमल नयनों को स्वयम् के हलके स्पर्श से खोल रही थी और जब यह प्रभात लाल अशोक के पुष्प के समान प्रभा वाले पलाश (खाँखरे) के सुमन, शुक की चोंच एवम् गुंजा फल के अर्द्धभाग के लाली (अरुण-लाल) के समान हो रहा था एवम् कमलागरों (जलाशयों) के कमल दल के चैतन्य-प्रदायक, सहस्त्र रश्मियों वाले दिवस स्रष्टा अर्थात् 'रवि' के, तेज से ज्वाजल्यमान रूप सहित व्योम के पूर्वभाग में उदय होने के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चात्, जहाँ, चम्पानगरी थी जिसमें पूर्णभद्र चैत्य अवस्थित था, वहाँ श्रमण भगवान महावीर पधारे एवम् आवास को ग्रहण कर संयम और तप सहित आत्मा को भावित कर विचरने लगे।

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए ॥ २ ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं 'समणे भगवं महावीरे' समोसढे। × ५२।

—नाया० श्रु १/अ ६

उस काल—उस समय में— चंपा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र चैत्य था। वहाँ श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ।

(घ) चंपा नगरी में पदार्पण—

तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे भारहे वासे चंपा नामं नयरी होत्था। × × × तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए। परिसा निग्गया।

—निर० वर्ग १

उस काल उस समय में चंपा नगरी में श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ।
नोट—रथमूसल संग्राम के समय भगवान का पदार्पण हुआ।

(च) चंपा नगरी में पदार्पण—

इतश्च जाह्नवीहंसश्रेणिभिरिव चारुभिः।
चैत्यध्वजै राजमाना चम्पेत्यस्ति महापुरी ॥२६५॥
भोगिभोगायतभुजस्तंभः कुलगृहं श्रियः।
जितशत्रुरिति नाम्ना तस्यामासीन्महीपतिः ॥२६६॥
अभूद गृहपतिस्तस्यां कामदेवाभिधः सुधीः।
आश्रयोऽनेकलोकानां महातरुरिवाध्वनि ॥२६७॥
तदा च विहरन्नुर्वी तत्रोर्वीमुखमंडने।
पूर्णभद्राभिधोद्याने श्रीवीरः समवासरत् ॥२७०॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

गंगा के किनारे पर रहे हुए हंसों की श्रेणी की तरह सुन्दर चैत्य ध्वजों से विराजमान चंपा नामक एक मोटी नगरी थी। वहाँ का राजा जितशत्रु था। उस नगर में कामदेव नाम कुलपति रहता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यदा पृथ्वीपर विहार करते-करते श्री वीरप्रभु पृथ्वी के मुखमंडन जैसे नगर में बाहर पूर्णभद्र चैत्य में आकर पधारे।

(छ) चंपानगरी की ओर विहार—

एतैर्द्वादशसंख्यातैर्गणैर्भक्तिभरोत्कटैः ।
संपरीतो जगन्नाथस्ततो हि विहरन् शनैः ॥२१७॥
नानादेशपुरग्रामान् बोधयन् भव्यभाक्तिकान् ।
बहुधर्मोपदेशेन कुर्वन्मोक्षपथे स्थिरान् ॥२१८॥
निर्धूयाज्ञानकुध्वान्तं प्रकाश्याध्वानमूर्जितम् ।
मुक्तेर्वचोंऽशुभिर्देव आजगाम क्रमान्महान् ॥२१९॥
सचम्पानगरोद्यानं फलपुष्पादिशोभितम् ।
विहृत्य षड्दिनोनानि त्रिंशद्वर्षाणि तीर्थराट् ॥२२०॥

—वीरवर्धमानच० अधि १६

भक्तिभार से व्याप्त इन बारह गणों से वेष्टित जगत् के नाथ श्री वर्धमान तीर्थंकर देव तत्पश्चात् धीरे-धीरे विहार करते, नाना देश-पुर ग्रामवासी जनों को संबोधते, धर्मोपदेश से मोक्ष मार्ग में स्थिर करते हुए तथा अपनी वचन-किरणों से अज्ञानान्धकार का नाशकर और उत्तम मार्ग का प्रकाश कर छह दिन कम तीस वर्ष तक विहार करके क्रम से फल-पुष्पादि शोभित चंपानगरी के उद्यान में आये।—

(ज) चम्पा नगरी में—

(झ) रथमूसल संग्राम के बाद—

अन्यदा पावयन् पृथ्वीं विहारेण जगद्गुरुः ।
जगाम चम्पां श्रीवीरस्तत्रैव समवासरत् ॥४०४॥
श्रीवीरस्वामिनः पार्श्वे तत्र कालादिमातरः ।
विरक्ताः सूनुनिधनात् प्राव्रजञ्छ्रेणिकप्रियाः ॥४०६॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२

अन्यदा विहार से पृथ्वी को पवित्र करते जगद्गुरु श्री वीर प्रभु चंपा नगरी में पधारे। उस समय कितनीक श्रेणिक राजा की स्त्रियों स्वयं के पुत्रों के मरण आदि कारणों से विरक्त होकर भगवान् के पास दीक्षा ली।

(ट) कामदेव श्रावक के व्रत-ग्रहण के अवसर पर

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव जेणेव चम्पा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ चंपाए नयरीए पुण्णभद्दाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥१५॥

देव द्वारा कामदेव की परीक्षा के बाद—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव जेणेव चंपा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥४२॥

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ चंपाओ नयरीओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥४९॥

—उवा० अ २

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर जहाँ चंपानगरी थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था। वहाँ पधारे। पधार कर यथा-अवग्रह ग्रहण कर संयम-तपसे अपनी आत्मा को भावित कर विहरण करने लगे।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर अन्यदा कभी चंपानगरी के पूर्णभद्र चैत्यसे निकल कर बाहर जनपद में विहार करने लगे।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर जहाँ चंपा नगरी थी—जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था—वहाँ पधारे। पधार कर यथा-अवग्रह ग्रहण कर संयम-तप से अपनी आत्मा को भावित कर विहरण करने लगे।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर अन्यदा चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य से निकल कर बाहर जनपद विहार करने लगे।

(ढ) चंपा नयरी। पुण्णभद्दे उज्जाणे। पुण्णभद्दे जक्खे। दत्ते राया। रत्तवतीदेवी। महचंदे कुमारे जुवराया। × × ×। तित्थयरागमणं।

—विवा० श्रु २/अ ६

चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र नामक उद्यान था। वहाँ के राजा का नाम दत्त, उनकी रानी का नाम रूपवती तथा महचन्द नाम का उनका कुमार-युवराज था। श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ।

(ड) तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपा नामं नयरी होत्था × × × पुण्णभद्दे चेइए। तत्थणं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए कूणिए नामं राया होत्था। × × ×। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए। परिसा निग्गया।

—निर० व १/सू० ४, ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल-उस समय में—इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में चम्पा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र चैत्य था। उस चंपा नगरी में श्रेणिक राजा का पुत्र, चेल्लणा देवी का आत्मज कूणिक नामक राजा था।

उस काल-उस समय में, श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। परिषद् वंदनार्थ आयी।

(ढ) तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नगरी होत्था—वण्णओ ॥१॥

तीसे णं चंपाए नगरीए पुण्णभद्दे नामं चेइए होत्था—वण्णओ। सामी समोसढे, जाव परिसा पडिगया ॥२॥

—भग श, ५/उ २/सू० १, २

उस काल-उस समय में, चम्पा नाम की एक नगरी थी, उस नगर के बाहर पूर्णचन्द्र नामक चैत्य था। (व्यंतरायतन) वहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। यावत् परिषद् वंदनार्थ तथा धर्मोपदेश श्रवणार्थ भगवान् के निकट आई तथा वंदन और उपदेश श्रवण, के पश्चात् भक्त जन निज-निज स्थान पर लौट गये।

(ण) तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपा नामं नयरीहोत्था। × × × पुण्णभद्दे चेइए। तत्थणं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नोपुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए कूणिए नामं रायाहोत्था। × × × तस्स णं कूणियस्स रन्नो पउमावई नामं देवी होत्था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए परिसा निग्गया।

—निर० सू० ४,५

उस काल उस समय में जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में चंपानगरी थी। पूर्णभद्र चैत्य था। चंपानगरी में श्रेणिक राजा का पुत्र चेलणा देवी का आत्मज कूणिक नामक राजा था। उस कूणिक राजा के पद्मावती नामक देवी थी। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषद् वंदनार्थ निकली।

(त) तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। वण्णओ पुण्णभद्दे नामं चेइए, वण्णओ। कोणिए राया। धारिणी देवी। सामी समोसढे परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसापडिगया।

दसासु० द ६/सू १

उस काल उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी। पूर्णभद्र नाम का चैत्य था। कोणिक राजा था। धारिणी देवी थी। भगवान् महावीर पधारे। परिषद् वंदनार्थ निकली। धर्मकथा श्रवण कर परिषद् वापस गयी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(थ) संघ से अलग हुआ जमाली—चंपानगरी में आया।
तब भगवान का चंपानगरी में पदार्पण।

सोऽन्येद्युः पुरिचंपायां पूर्णभद्राभिधेवने।
श्रीवीरं समवसृतं गत्वाऽवादीन्मदोद्धरः ॥७५॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

संघ से अलग हुआ जमाली-वीरप्रभु को चंपानगरी में पधारा हुआ जानकर वहाँ गया।

(द) जमाली-भगवान् के शासन से अलग होकर फिर भगवान् के चंपानगरी में दर्शन किये।

तएणं से जमाली अणगारे अण्णया कयाइ ताओ रोगायंकाओ विप्पमुक्के, हट्ठे जाए, अरोए बलियसरीरे, सावत्थीओ णयरीओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे जेणेव चंपाणयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ।

—भग० श ६/उ ३३ सू २३०

किसी समय जमाली अनगार आहारादि से उत्पन्न रोग से मुक्त हुआ, रोगरहित और बलवान शरीर वाला हुआ। श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान से निकल कर अनुक्रम से विचरता हुआ एवं ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ चंपानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में आया।

उस समय श्रमण भगवान् महावीर भी वहाँ पधारे हुए थे।

(ध) पृष्ठ चंपा से चंपा की ओर विहार

(द) कालान्तरेण विहरन् भगवान् सपरिच्छदः।
चतुस्त्रिंशदतिशयो ययौ चंपां महापुरीम् ॥१७०॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

भगवान् श्री वीरप्रभु कालान्तर में विहार करते-करते परिवार के साथ में चौतीस अतिशय सहित चंपापुरी पधारे।

(न) जमाली अणगार पृथक् होकर पाँच सौ अणगार के साथ श्रावस्ती नगर में था। उस समय भगवान् चम्पा नगरी में थे।

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णयाकयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे (गामाणुगामंदूइज्जमाणे) सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपानयरी जेणेव पुण्ण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥२२३॥

भग० श ६/उ ३३/पृ० ४५७

जब जमाली पाँच सौ साधुओं के साथ श्रावस्ती नगरी में था—इधर भगवान् महावीर ब्राह्मणकुंड नगर के बाहर बहुशालक उद्यान में अनुक्रम से विचरते हुए यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए चंपानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में पधारे और यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके तप और संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

२४. सुघोष नगर में—

सुघोसं णगरं। देवरमणं उज्जाणं। वीरसेणोजक्खो। अज्जुणो राया। ××× (तित्थयरागमणं)

—विवा श्रु २/अ८

सुघोष नामक नगर था। देवरमण नामक उद्यान था। वहाँ वीरसेन यक्ष का निवास था। अर्जुन राजा था। उस समय तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी पधारे।

'२५ महापुर नगर में

महापुरं नयरं। रत्तासोगं उज्जाणं। रत्तपाओ जक्खो। बले राया। सुभद्दा देवी। महब्बले कुमारे। × × ×

तित्थयरागमणं जावपुव्वभवो।

—विवाश्रु २/अ ७

महापुर नगर था। रक्ताशोक उद्यान था। उसमें रक्तपाद यक्ष का विशाल स्थान था। नगर में महाराज बल का राज्य था। उस समय तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी पधारे।

'२६ कनकपुर नगर में

कणगपुरं नयरं। सेयासोयं उज्जाणं। वीरभद्दो जक्खो। पियचंदो राया। सुभद्दा देवी। वेसमणे कुमारे जुवराया। सिरिदेवीपामोक्खा पंचसया। तित्थयरागमणं। धणवई जुवरायपुत्ते जाव पुव्वभवो। × × ×

—विवा०श्रु २/अ ७

कनकपुर नगर था। श्वेताशोक नामक उद्यान था। उसमें वीरभद्र नामके यक्ष का यथायतन था। प्रियचंद्र राजा था। सुभद्रा नामकी देवी थी। उसी समय तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'२७ सौगंधिका नगरी में

सौगंधिया नयरी। नीलासोगं उज्जाणं। सुकालोजक्खो। अप्पडिहओ राया। सुकण्णा देवी। महचंदे कुमारे। तस्स अरहदत्ता भारिया। जिणदासो पुत्तो। तित्थयरागमणं।

—विवा० श्रु २/अ ५

सौगंधिका नामक नगरी थी। नीलाशोक नामक उद्यान था। जहाँ सुकाल नामक यक्ष का स्थान था। अप्रतिहत राजा था। सुकृष्णा देवी थी। महाचंद्र कुमार था। वहाँ तीर्थंकर भगवान् महावीर का आगमन हुआ।

'२८ विजयपुर नगर में

विजयपुरं नयरं। नंदणवणंउज्जाणं। असोगो जक्खो। वासवदत्ते राया कण्हादेवी। सुवासवे कुमारे। × × ×

(सामीसमोसरणं।) × × ×

—विवा० श्रु० २/अ ४

विजयपुर नामका एक नगर था। वहाँ नन्दन वन नामका उद्यान था। वहाँ अशोक नामक यक्ष का यक्षायतन था। वहाँ के राजा का नाम वासवदत्त था। वहाँ तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी पधारे।

'२९ वीरपुर नगर में

वीरपुरं नयरं। मणोरमं उज्जाणं। वीरकण्हमित्ते राया। सिरी देवी। सुजाए कुमारे। × × ×

सामीसमोसरणं। × × ×।

—विवा० श्रु २/अ ३

वीरपुर नामक एक नगर था, वहाँ मनोरम उद्यान था, वीरकृष्णमित्र वहाँ का राजा, श्री देवी रानी और सुजात कुमार था। श्रमण भगवान् महावीर पधारे।

'३० वीतभय नगर में पदार्पण

(क) उदायन की दीक्षा के लिए

चंपानगरी से वीतभय नगर की ओर विहार—

रात्रिजागरणे तस्य शुभध्यानेन तस्थुषः।
ईदृगध्यवसायोऽभूद्विवेकस्य सहोदरः॥ ६१३॥
धन्यास्ते नगरग्रामा ये श्रीवीरेण पाविताः।
राजादयोऽपि ते धन्या यैर्धर्मोऽश्रावि तन्मुखात्॥ ६१४॥

× × ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी वीतभयमपि विहारेण पुनाति चेत्।
तत्पादमूले प्रव्रज्यामादाय स्यां तदाकृती ॥ ६१७ ॥
वयं चाभय! तज्ज्ञात्वा तदनुग्रहकाम्यया।
चंपापुर्याः प्रचलिताः समवासार्ष्म तत्पुरे ॥ ६१८ ॥
अस्मान्प्रणम्य श्रुत्वा च देशनां गतवान् गृहे।

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ११

उदायन राजा ने विचार किया—

यदि महावीर स्वामी इस वीतभय नगर को स्वयं के विहारसे पवित्र करे तो मैं उनके चरण में दीक्षित होकर × × ×

भगवान् ने अभयकुमार को कहा—हे अभय कुमार ऐसा उनका अध्यवसाय जानकर उनका अनुग्रह करने की इच्छा से मैंने चंपा नगरी से विहार कर वीतभय नगर पदार्पण किया।

उदायन राजा हमारे पास आकर, वंदन कर, देशना सुनकर वापस अपने घर गया।

(३१) भगवान् महावीर का दशार्ण नगर से विहार—

(क) जगन्नाथोऽपि भव्यनामुपकारपराणः ।
विजहार ततः स्थानादन्येषु नगरादिषु ॥ ५६ ॥

—त्रिशलाका० पर्व० १०/सर्ग १०

दशार्णभद्र राजा को दीक्षित कर भगवान् महावीर ने भव्य जनों के उपकार के लिए दशार्ण नगर से अन्य नगर आदि स्थान में विहार किया।

(ख) दशार्ण देश में आगमन—दशार्णनगर

इतश्च पुर्याश्चम्पायाः सुरासुरसमावृतः।
क्रमेण विहरन् प्राप दशार्णविषयं प्रभुः ॥ १ ॥
दशार्णपुरमित्यस्ति नाम्ना तत्र महापुरम्।
दशार्णभद्र इत्यासीत्तत्र राजा महर्द्धिकः ॥ २ ॥

× × ×

इतश्च तत्र भगवान् पुराद्बहिरूपाययौ।
देवैश्च तत्र समवसरणं च व्यरच्यत ॥ १० ॥

—त्रिशलाका पर्व १०/सर्ग १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) दसण्णपुरे नयरे राय-गुण-गणालंकिओ दसण्णभद्दो राया कामिणीयण—पंचसयपरिवारो भोगे भुंजंतो विहरइ।

अण्णया समोसरिओ समुप्पन्न-नाणाइसओ भुवणभूसओ वद्धमाणसामी। वनिद्धाविओ राया उत्त पुरिसेहिं तित्थयरागमणेण।

—धर्मो० पृ० ११०

सुरासुर से समावृत श्री वीरप्रभु चम्पानगरी से विहार कर अनुक्रमतः दशार्ण देश में आये। उस देश में दशार्णपुर नामक नगर है वहाँ का राजा दशार्ण भद्र था। वीर भगवान् दशार्ण नगर के बाहर पधारे। देवों ने समवसरण की रचना की।

.३२ मेंढिकग्राम-श्रावस्ती से विहार—

(क) तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव जेणेव मेंढियगामे नयरे जेणेव साणकोट्ठए चेइए जाव परिसा पडिगया—

—भग० श १५/सू १४५

प्रभुः श्रीवर्धमानोऽपि मेंढकग्राममभ्यगात्।
चैत्ये च समवासार्षीत्तत्र कोष्ठकनामनि ॥४७१॥

—त्रिशलाका० पर्व १० सर्ग ८

अन्यथा श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से विहार करते हुए मेंढिक ग्राम नगर के बाहर शालकोष्ठक उद्यान में पधारे।

(ख) तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ सावत्थीओ णयरीओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं मेंढियगामे णामं णयरे होत्था, वण्णओ। तस्स णं मेंढियगामस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए, एत्थ णं साणकोट्ठए णामं चेइए होत्था, वण्णओ जाव पुढविसिलापट्टओ। तस्स णं साणकोट्ठगस्स णं चेइयस्स अदूरसामंते, एत्थ णं महेगे मालुयाकच्छए यावि होत्था, किण्हे किण्होभासे जाव णिउरंबभूए, पत्तिए, पुप्फिए, फलिए, हरियगरेरिज्जमाणे, सिरिए अईव-अईव उवसोभेमाणे चिट्ठइ। तत्थ णं मेंढियगामे णयरे रेवई णामं गाहावइणी परिवसइ, अड्ढा जाव अपरिभूया। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव जेणेव मेंढियगामे णयरे जेणेव साणकोट्ठए चेइए जाव परिसा पडिगया।

—भग० श १५/सू १४३/१४५/पृ० ६९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाहज्वर में— भगवान् महावीर के विहार-स्थल—

एकदा भगवतो मेंढिकग्रामनगरे विहरतः।

—ठाण० स्था ६/सू ६०/टीका

[लगभग छप्पन वर्ष की अवस्था में] किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, श्रावस्ती नगरी अवस्थित 'कोष्ठक उद्यान' से बर्हिगमन कर अन्य प्रान्तों में विचरण करने लगे।

उसी काल—उसी समय, मेंढिकग्राम नगर के बाह्य में, उत्तर-पूर्व दिशा मध्य, शालकोष्ठक नामक एक उद्यान अवस्थित था। वहाँ का यावत् भू-भाग शिलापट थी। उस उद्यान के सन्निकट एक मालुका (एक बीज वाले वृक्षों का वन) महाकच्छ था, जो श्याम वर्ण, श्याम कांतिवाला, यावत् महामेघ के तुल्य था। पत्र, पुष्प, फल तथा हरित वर्ण से देदीप्यमान तथा अत्यन्त सुशोभित था। उस मेंढिकग्राम नगर में रेवती नाम की गाथापत्नी निवास करती थी जो आढ्ययावत् अपरिभूत थी।

अन्यदा, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम से विहार करते हुये मेंढिकग्राम नगर के बाह्यावस्थित उस 'शालकोष्ठक उद्यान' में पधारे। परिषद् वंदना कर लौट गई।

.३३ ऋषभपुर नगर में

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभपुरे नयरे। थूभकरंडग उज्जाणं। धण्णो जक्खो। धणावहो राया। सरस्सई देवी। × × ×। सामीसमोसरणं। × × ×।

—विवा० श्रु २/अ २

उस काल—उस समय में, ऋषभपुर नामक नगर था। वहाँ पर स्तूपकरंडक नामक उद्यान था। धनावह नाम का राजा राज्य करता था। उसकी सरस्वती नाम की रानी थी। वहाँ महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ।

.३४ मथुरा नगरी में

तेणं कालेणं तेणं समएणं महुरा नामं नगरी। भंडीरे उज्जाणे। सुदरिसणे जक्खे। सिरिदामे राया। बंधुसिरि भारिया। × × ×। तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा निग्गया, राया निग्गओ जाव परिसा पडिगया ॥६॥

—विवा० श्रु १/अ ६

उस काल—उस समय में मथुरा नाम की एक सुप्रसिद्ध नगरी थी। वहाँ भंडीर नाम का उद्यान था। उसमें सुदर्शन नाम यक्ष का यक्षायतन—स्थान था। वहाँ श्रीदाम का राजा राज्य करता था। उसकी बंधु श्री नाम की रानी थी।

उस काल—उसी समय में श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे। परिषद् भगवान् के वंदनार्थ आयी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.३५ राजगृही में

पोतनपुर में प्रसन्नचंद्र राजर्षि की दीक्षा के बाद भगवान् का कालान्तर में राजगृही पदार्पण—पचपनवें वर्ष में

विहरन् स्वामिना सार्धं तप्यमानस्तपः परम् ।
अजायत स राजर्षिः क्रमात्सूत्रार्थपारगः ॥२४॥

तेनर्षिणाऽपरैश्चापि ऋषिभिः परिवारितः ।
विहरन् भगवान् वीरो ययौ राजगृहेऽन्यदा ॥२५॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

पोतनपुर से भगवान् के साथ विहार करते हुए और उग्र तपस्या करते हुए प्रसन्नचंद्र राजर्षि अनुक्रम से सूत्रार्थ के पारगामी हुए। अन्यदा प्रसन्नचंद्र और अन्यान्य मुनियों से परिवारित भगवान् राजगृही नगरी पधारे।

.३६ कांपिल्यपुर नगर में—

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं कंपिल्लपुरे नयरे। सहस्संबवणे उज्जाणे। जियसत्तू राया ॥२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे जाव जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥७॥

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ कंपिल्लपुराओ नयराओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ ॥१५॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे ॥२५॥
सामी बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥३२॥

—उवा० अ ६

उस काल उस समय में, कंपिलपुर नगर में सहस्राम्रवन नामक एक सुन्दर उद्यान था। उसी काल—उस समय, श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे तथा यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण कर संयम-तप से अपनी आत्मा को भावित कर विहरण करने लगे।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर कम्पिलपुर अवस्थित सहस्राम्रवन उद्यान से बहिर्गमन कर जनपद में यत्र-तत्र विहार करने लगे।

२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और फिर उसी समय भगवान् महावीर कम्पिलपुर नगर पधारे। तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर जनपद में अन्यत्र विहार करने लगे।

(ख) ततश्च काम्पिल्यपुरे जगाम विहरन् प्रभुः।
सहस्राम्रवणनाम्न्युद्याने समवासरत् ॥ ३०२ ॥
तत्रासीत्कामदेवर्द्धिगृहस्थः कुंडकोलिकः।
नाम्ना पुष्पेति तद् भार्या शीलालंकारशालिनी ॥ ३०३ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

अन्यथा विहार करते-करते कांपिल्यपुर पधारे और सहस्राम्रवन नामक उद्यान में ठहरे। वहाँ कामदेव जैसा धनवान् कुंडकोलिक गृहस्थ रहता था।

·३७ शौरिकपुर नगर में—

तेणं कालेणं तेणं समएणं सोरियपुरं नयरं। सोरियवडेंसगं उज्जाणं सोरिओ जक्खो। सोरियदत्ते राया ॥ २ ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी सोमोसढे जाव परिसा पडिगया ॥७॥

—विवा० श्रु १/अ ८

उस काल उस समय में शौरिकपुर नामक नगर था। वहाँ शौरिकावतंसक उद्यान था। उसमें शौरिक नामक यक्ष का आयतन-स्थान था। वहाँ के राजा का नाम शौरिकदत्त था।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषद् वंदनार्थ गयी—वापस भी वंदनाकर आ गयी।

·३८ हस्तिशीर्ष नगर में—

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे नामं नयरे होत्था। × × ४। तस्स णं हत्थिसीसस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं पुप्फकरंडए नामं उज्जाणे होत्था × × × ॥ ५ ॥ तत्थणं हत्थिसीसे नयरे अदीणसत्तू नामं राया होत्था ॥७॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे। परिसा निग्गया। अदीणसत्तू जहा कूणिए तहा निग्गए ॥१२॥

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ हत्थिसीसाओ नयराओ पुप्फकरंडयउज्जाणाओ कयवणमालपियजक्खायणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥२८॥

—विवा० श्रु २/अ १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तएणं समणे भगवं महावीरे × × × पुव्वाणुपुव्विं (चरमाणे गामाणुगामं) दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिसीसे नयरे जेणेव पुप्फकरंडयउज्जाणे जेणेव कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥ परिसा राया निग्गए ॥३२॥

—विवा० श्र २ / अ १

उस काल-उस समय में हस्तिशार्ष नामक एक नगर था, उसके बाहर उत्तर-पूर्व दिशाओं के मध्य में पुष्पकरण्डक नामक एक अति रमणीय उद्यान अवस्थित था। उस नगर का राजा अदीनशत्रु था।

श्रमण भगवान् महावीर वहाँ पधारे। कोणिक राजा की तरह अदीनशत्रु भी भगवान् के दर्शनार्थ वहाँ गया।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर किसी समय हस्तिशीर्ष नगर के पुष्पकरंडक उद्यान स्थित कृतमालाप्रिय नामक यक्षायतन से बहिर्गमन कर जनपद में विहार करने लगे।

उस काल—उसी समय (सुबाहुकुमार के संकल्प को जानकर) क्रमशः ग्रामानुग्राम विहार करते हुये हस्तिशीर्ष नगर के पुष्पकरण्डक उद्यानान्तर्गत कृतमालाप्रिय यक्षायतन में श्रमण भगवान महावीर पधारे एवम् यथा-प्रतिरूप अनगार वृत्ति के अनुकूल अवग्रह—ग्रहण कर वहाँ अवस्थित हो गये।

हस्तिशीर्ष नगर से अन्यत्र विहार—

ततेणं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ हत्थिसीसाओ णगराओ पुप्फकरंडाओ उज्जाणाओ कतपियणमालवजक्खायतणाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयं विहरति। —विवा० श्रु २/अ १/सू २८

तदनतर श्रमण भगवान् महावीर ने किसी अन्य समय हस्तिशीर्ष नगर के पुष्पकरण्डक उद्यानगतकृतवनमाल नामक यक्षायतन से विहारकर अन्यदेश में भ्रमण करना आरंभ कर दिया।

वापस फिर हस्तिशीर्ष नगर में पदार्पण हुआ था।

.३९. कांकदी नगरी में

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं काकंदी नयरी । × × × ६५ ॥
तेणं कालेणं तेणं समएणं समोसरणं ॥६८ । × × × ॥
सामी बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ × × × । ७० ॥

अणुत्त० व३ अ२/सू ६५, ६८, ७० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल—उस समय में काकन्दी नाम की नगरी थी। उस काल—उस समय में श्री भगवान् महावीर स्वामी काकन्दी नगरी के बाहर विराजमान हो गये।

और तत्पश्चात् श्री भगवान् महावीर स्वामी जनपद-विहार के लिए बाहर गये।

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं काकंदी नामं नयरी होत्था—रिद्धत्थिमिय-समिद्धा। सहसंबवणे उज्जाणे—सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे। जियसत्तूराया ॥ × × × ॥४॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणेभगवं महावीरे समोसढे। परिसा निग्गया। जहा कोणिओ तहानिगाओ। तएणं समणे भगवं महावीरे अणया कयाइ कायंदीओ नयरीओसहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥२८॥

—अणुत्त० व ३/अ १ सू ४,१०,२८

उस काल उस समय में कांकदी नाम की नगरी थी। वह सब तरह के ऐश्वर्य और धन-धान्य से परिपूर्ण थी। उसमें किसी भी प्रकार के भी भय की शंका नहीं थी। उसके बाहर एक सहस्राम्रवन नाम का उद्यान था। जो सब ऋतुओं में फल और फूलों से भरा रहता था। उस नगरी का जितशत्रु नामक राजा था।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। नगर की परिषद् मण्डली उनके वन्दनार्थ गयी। कोणिक राजा के समान जितशत्रु राजा भी गया।

श्रमण भगवान् महावीर अन्यदा किसी समय कांकदी नगरी के सहस्राम्रवन उद्यान् से निकल कर बाहर जनपद के लिए विचरने लगे।

(ग) तेणं कालेणं तेणं समएणं काकंदी नयरी। जियसत्तूराया। × × ×। तेणं कालेणं तेणं समएणं समोसरणं। × × ×। सामी बहिया जणवयविहारं विहरइ।

—अणुत्त० ३/अ२/सू० ६५, ६८—७०

उस काल उस समय में काकन्दी नाम की नगरी थी। उस नगरी का राजा जितशत्रु था। उस काल समय में श्री श्रमण भगवान् महावीर सहस्राम्रवन उद्यान में पधारे। वहाँ सुनक्षत्र कुमार को अनगार बनाया। फिर वहाँ से अन्यत्र विहार किया।

.४० कुंडग्राम—ब्राह्मणकुंडग्राम-क्षत्रियकुंडग्राम में

(क) समणे भगवं महावीरे आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी माहण-कुंडग्गामस्स नगरस्स बहिया बहुसालए चेइए अहापडिरूवं × × × विहरइ।

—भग० श/६/उ३३/ सू० १५७/पृ० ४३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिकर (धर्मतीर्थ की आदि करने वाले) यावत् सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी—ब्राह्मणकुंडग्राम नगर के बाहर, बहुशाल नामक उद्यान में यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके विचरते है।

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं माहणकुंडग्गामे णयरे होत्था। वण्णओ। बहुसालए चेइए। वण्णओ × × ×। तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा पज्जुवासइ।

—भग० श९/उ३३/सू १३७, १३८/पृ०४९२

उस काल उस समय में 'ब्राह्मण-कुंडग्राम' नाम का नगर था। बहुशालक नाम का चैत्य (उद्यान) था। उस ब्राह्मणकुंडग्राम में 'ऋषभदत्त' नाम का ब्राह्मण रहता था। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। जनता पर्युपासना करने लगी।

(ख) अथ भव्यानुग्रहाय ग्रामाकरपुरादिषु।
विहरन् ब्राह्मणकुंडग्रामेऽगात् परमेश्वरः ॥१॥
बहुशालाभोद्याने पुरात्तस्माद्बहिः स्थिते।
चक्रुः समवसरणं त्रिवप्रं त्रिदशोत्तमाः ॥२॥
न्यषदत्प्राङ्मुखमात्र पूर्वसिंहासने प्रभुः।
गौतमाद्या यथास्थानं सुराद्याश्चाद्यावतस्थिरे ॥३॥
श्रुत्वा सर्वज्ञमायातं पौरा भूयांस आययुः।
देवानंदार्षभदत्तावेयतुस्तौ च दंपती ॥४॥

— त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

ग्राम आकर नगर आदि मे विहार करते हुए श्री वीर भगवान् ब्राह्मणकुंडग्राम पधारे। उसके बाहर बहुशाल नामक उद्यान में देवों ने तीन गढवाले समवसरण की रचना की। वहाँ भगवान् विराजे।

भगवान् महावीर के विहार स्थल—

(ग) तेणं कालेणं, तेणं समएणं माहणकुंडग्गामे णयरे होत्था। वण्णओ। बहुसालए चेइए। × × ×। तेणं कालेणं, तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा जाव पज्जुवासइ।

—भग० श ९/उ३३

उस काल उस समय में ब्राह्मण-कुण्डग्राम नाम का नगर था। बहुशालक नामक चैत्य था। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। जनता यावत् पर्युपासना करने लगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(घ) अपापा के बाद—

अथ भव्यानुग्रहाय ग्रामाकरपुरादिषु।
विहरन् ब्राह्मणकुण्डग्रामेऽगात् परमेश्वरः ॥ १ ॥
बहुशालाभिधोद्याने पुरात्तस्माद्बहिःस्थिते।
चक्रुः समवसरणं त्रिवप्रं त्रिदशोत्तमाः ॥ २ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ८

भव्यजनों के अनुग्रह के लिए ग्राम, आकर और नगर आदि में विहार करते हुए श्री वीरप्रभु किसी दिन ब्राह्मणकुंडग्राम पधारे। उसके बाहर बहुशाल नामक उद्यान में देवों ने तीन गढ़वाले समवसरण की रचना की।

देवानंदा की दीक्षा के बाद—

(ख) भगवान् वर्धमानोऽपि जगदानन्दवर्धनः।
विजहार ततो धात्रीं ग्रामाकरपुराकुलाम् ॥ २८ ॥
क्रमाच्च क्षत्रियकुण्डग्रामं स्वामी समाययौ।
तस्थौ समवसरणे चिदधे चाथ देशनाम् ॥ २९ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

वर्धमान् भगवान् जगतजीवों के आनंद में वृद्धि करते हुए ग्राम, नगर, आकर से आकुल-ऐसी पृथ्वीपर विहार करने लगे। अनुक्रमतः प्रभु क्षत्रियकुंड ग्राम पधारे। समवसरण में बैठकर भगवान् ने देशना दी।

·४० मोका नगरी में—

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं मोया नामं नयरी होत्था-वण्णओ ॥१॥

तीसे णं मोयाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे नंदणे नामं चेइए होत्था-वण्णओ ॥२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा निग्गच्छइ, पडिगया परिसा ॥३॥

—भग० श ३/उ१/सू १, २, ३

उस काल उस समय में 'मोका' नाम की नगरी थी। उस नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशि, अर्थात् ईशान कोण में, नन्दन नामका चैत्य था। उस काल—उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यहाँ पधारे। भगवान् के आगमन को सुनकर परिषद् दर्शनार्थ उनके सन्निकट आई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ मोयाओ नयरीओ नंदणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था—वण्णओ—जाव परिसा पज्जुवासइ।

—भग० श ३/उ१/सू २६, २७

श्रमण भगवान् महावीर अन्य किसी दिन नंदन चैत्य में मोका नगरी पधारे। तत्पश्चात् मोका नगरी से बाहर जनपद विहार किया।

इसके बाद भगवान् महावीर का राजगृह नगर पदार्पण हुआ।

·४१ तुंगिया नगरी के श्रावकों के समय-काल में—

तएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जयवयविहारं विहरइ ॥९१॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं तुंगिया नामं नयरी होत्था ॥९२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था—सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया ॥१०५॥

— भग० श २/उ५/सू ९१, ९२, १०५

किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशीलक बगीचे से निकल कर बाहर जनपद में विचरने लगे। उस काल—उस समय में तुंगिया नाम की नगरी थी।

नोट—बनारस (काशी) से ८० कोस दूर पाटलिपुत्र (पटना) शहर है। वहाँ से दस कोस दूर तुंगिया नाम की नगरी है। (श्री समेत शिखर रास)

उस काल—उस समय में, राजगृह नाम का नगर था। वहाँ श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषद् वंदनार्थ गई और यावत् धर्मोपदेश सुनकर वापिस लौट गई।

·४२. राजगृह नगर में

(क) मेघकुमार दीक्षित हुआ उस वर्ष राजगृह नगरी में पदार्पण।

इतश्च विहरन् भव्यावबोधाय जगद्गुरुः।
सुरासुरपरीवारो ययौ राजगृहं पुरम् ॥३६२॥
तस्मिन् गुणशिले चैत्ये चैत्यवृक्षोपशोभितम्।
सुरप्रक्लृप्तं समवसरणं शिश्रिये प्रभुः ॥३६३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुत्वा च समवसृतं श्रीवीरं श्रेणिको नृपः ।
ऋद्ध्या महत्या ससुतो वन्दितुं समुपाययौ ॥३६४॥

× × ×

पीयूषवृष्टिदेशीयां विदधे धर्मदेशनाम् ॥३७५॥
—श्रुत्वा तां देशनांभर्त्तुः सम्यक्त्वं श्रेणिकोऽश्रयत् ॥३७६॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

भगवान् महावीर अन्य प्राणियों को प्रतिबोधित करते हुए सुर-असुर के परिवार के साथ राजगृही नगरी पधारे । वहाँ गुणशील चैत्य में देवों द्वारा कृत चैत्यवृक्ष से सुशोभित समवसरण में भगवान् ने प्रवेश किया । श्रेणिक राजा ने वंदन नमस्कार किया । वीर भगवान् महावीर अमृत वृष्टि जैसी धर्म-देशना दी । प्रभु की देशना सुनकर श्रेणिक राजा ने सम्यक्त्व धारण किया ।

·२ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए ॥२॥
तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे ॥८॥
तएणं समणे भगवं महावीरे बहियाजणवयविहारं विहरइ ॥१७॥
तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए ॥४४॥

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णदाकदाइ रायगिहाओ नयराओ पडिं-मिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥५२॥

उवा० अ ८

उस काल उस समय में राजगृह नगर था । गुणशिलय चैत्य था । उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर पधारे ।

उसके बाद श्रमण भगवान् बाहर जनपद विहार करने लगे ।

उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर पधारे ।

उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर अन्यदा राजगृह नगर से निकल कर बाहर जन-पद विहार किया ।

·३ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया । सामी समोसढे ।

—अणुत्त० व ३/अ२/सू ७२

उस काल उस समय राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था । नगर के बाहर गुणशैलक नामक चैत्य में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान हो गये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.४ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे।

—अणुत्त० व ३/अ १/सू० ५३, ५४

उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। उसके बाहर गुणशैलक नाम का चैत्य-उद्यान था। वहाँ श्रेणिक राजाका राज्य था। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर उक्त चैत्य में विराजमान हो गये।

.५ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे—रिद्धत्थिमियसमिद्धे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। धारिणी देवी। × × × ।६।

× × × । सामी समोसढे ॥८॥

—अणुत्त० व १/अ१/सू ६,८

उस काल उस समय में राजगृह नगर था। ऋद्धि-सिद्धि से समृद्ध था। गुणशिलक चैत्य था। वहाँ का श्रेणिक राजा था। उसके धारिणी देवी थी।

भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ।

६. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आदिकरे गुणसिलए जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

अंत० व ६/अ २/सू४/६/पृ०५७६

उस काल उस समय में आदिकर भगवान् महावीर राजगृह नगर के गुणशीलक चैत्य में पधारे और समय और तप से अपनी आत्मा को भावित करने लगे।

.७ तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णयाकयाइ मोयाओ नयरीओ नंदणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था—वण्णओ जाव परिसा पज्जुवासइ॥

—भग० श ३/उ१/सू० २५.२६

इसके बाद किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मोका नगरी के उद्यान से निकलकर जनपद में विचरने लगे।

उसकाल उससमय में 'राजगृह नाम का नगर था। भगवान् वहाँ पधारे—परिषद् भगवान् की पर्युपासना करने लगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.८ तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे दाहिणड्ढभरहे रायगिहे नामं नयरे होत्था × × ×।१२॥

गुणसिलिए चेतिए — वण्णओ ॥१३॥

तत्थणं रायगिहे नयरे सेणिए नामं राया होत्था। × × ×।।१४॥

तस्सणं सेणियस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था।× × ×।१७॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए (तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे) विहरइ ॥९४॥

तएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नयराओ गुणसिलयाओ चेइ-याओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता बहियाजणवयविहारं विहरइ ।।१९६।।

नाया० श्रु १/अ १

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरेजाव पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामंदूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नयरे जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।।२०३॥

.९ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं। परिसा निग्गया ॥२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते जाव सुक्क-ज्झाणोवगए विहरइ ॥२॥ —नाया० श्रु १ अ० ६/सू० १.२

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर राजगृह पधारे। अभी इन्द्रभूति गौतम स्वामी छद्मस्थावस्था में थे।

१० तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था, तत्थणं रायगिहे णयरे सेणिएणामं राया होत्था। तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए, एत्थणं गुणसेलए णामं चेइए होत्था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामा-णुगामं दूइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव गुणसेलए चेइए तेणेव समो-सढे। परिसा निग्गया। सेणिओ वि राया निग्गओ। धम्मं सोच्चा परिसा पडिगया ॥२॥

—नाया० श्रु १/अ १०/सू २

—नाया श्रु १/अ ११/सू २

—नाया० श्रु १/अ १३/सू २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.११ तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा। समोसढे। परिसा निग्गया। सेणिए वि निग्गए।

—नाया० श्रु १/अ १३/सू ६

तए णं ऽहं रायगिहाओ पडिनिक्खंते बहिया जणवयविहारेणं विहरामि।

—नाया० श्रु १/अ १३/सू १२

राजगृह नगर के गुणशिलक चैत्य में भगवान् का पदार्पण हुआ।

वहाँ से जनपद विहार भी हुआ।

दसार्ण नगर से अन्यत्र विहार कर

राजगृह के वैभारगिरि पर पदार्पण।

इतश्च वैभारगिरौ श्रीवीरः समवासरत्।
विदाञ्चकार तं सद्यो धन्यो धर्मसुहृद्गिरा ॥१४५॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १०

वीर प्रभु विहार करते २ वैभारगिरि पधारे। धन्य धर्ममित्र के कहने से भगवान् के पदार्पण की सूचना जानी।

.१२ पोतनपुर से राजगृह

विहरन स्वामिना सार्धं तप्यमानस्तपः परम।
अजायत स राजर्षिः क्रमात्सूत्रार्थ पारगः ॥२४॥
तैर्नर्षिणाऽपरैश्चापि ऋषिभिः परिवारितः।
विहरन् भगवान् वीरो ययौ राजगृहेऽन्यदा ॥२५॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ६

भगवान् के साथ विहार करते और उग्र तपस्या करते प्रसन्नचंद राजर्षि पारगामी हुए। अन्यदा प्रसन्नचंद्र और अन्य मुनियों के साथ भगवान् राजगृह नगरी पधारे।

.१३ कालोदाई आदि के समय में—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव गुणसिलए चेइए समोसढे जाव परिसा पडिगया ॥२१४॥

तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ नगराओ, गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥२२१॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे, गुणसिलए चेइए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होत्था। तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णयाकयाइ जावसमोसढे, परिसाजाव पडिगया।

—भग श ७/उ १०/सू० २१४, २२१, २२२/पृ ३०६-३११-१२

राजगृह नगर के उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गुणशील चैत्य (उद्यान) में यावत् पधारे। यावत् परिषद् वापस चली गयी।

किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशील उद्यान से निकलकर बाहर जनपद में विचरने लगे। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पुनः राजगृह नगर के बाहर गुणशील चैत्य में पधारे।

·१४ राय गिहे जाव एवं वयासी × × × १५९ तएणं समणे भगवं महावीरे बहिया जाव विहरइ। × × × ।१६०

—भग० श १८/उ८

भगवान् महावीर राजगृह पधारे। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर बाहर के जनपद में विचरने लगे।

फिर वापस भगवान् महावीर राजगृह पधारे। परिषद् वंदना कर चली गई।

·१५ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था, वण्णओ। तस्स रायगिहस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए गुणसिलए णामं चेइए होत्था। सेणिए राया, चिल्लणा देवी ॥४॥५॥६॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव रायगिहे नगरे जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥७॥

परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया ॥८॥

—भग० श १/उ१/

उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। उस राजगृह नगर के बाहर उत्तर-पूर्व के दिशा भाग में अर्थात् ईशान कोण में गुणशिलक नाम का चैत्य-व्यंतरायतन था। श्रेणिक राजा था। चेलना नाम की रानी थी। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर पूर्वानुपूर्व-ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जहाँ राजगृह नगर गुणशिलक चैत्य था वहाँ पधारे।

परिषद् वंदन और धर्मश्रवण के लिए निकली। भगवान् ने धर्म कहा। परिषद् वापिस चली गई।

उस काल उस समय में इस जंबूद्वीप के दक्षिण भरतक्षेत्र में राजगृह नाम का नगर था। गुणशिलक नाम का चैत्य था। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नाम का राजा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस श्रेणिक राजा के धारिणी नाम की देवी थी।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर पूर्वानुपूर्व-ग्रामानुग्राम से विहार करते हुए राजगृह नगर के गुणशिलक चैत्य में पधारे। पधार कर यथा प्रतिरूप अभिग्रह को धारण कर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित कर रहने लगे।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर के गुणशिलक चैत्य से निकल कर बाहर जनपद विहार करने लगे।

.१६ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे होत्था/वण्णओ/गुणसिलए चेइए/वण्णओ/जाव परिसा पडिगया।

—भग० श१८/उ३/प्र५६/पृ० ७६१

उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। गुणशील नामक उद्यान था। भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ—यावत् परिषद् वंदन कर चली गई।

इस अवसर पर माकंदी अनगार ने भगवान् ने प्रश्नोत्तर किये थे।

.१७ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था। × × ×। गुणसिलए चेइए। रायगिहे नगरे सेणिए राया होत्था। × × ×। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे जाव गामाणुगामं दूइज्जमाणे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तएणं रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर एवं जाव परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ।

— दसासु० द १०/सू १,४

उस काल उस समय राजगृह नाम का नगर था। गुणशैल्य चैत्य था। श्रेणिक राजा था—उस काल उस समय आदिकर तीर्थंकर भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अपनी आत्मा को भावित करते हुए पधारे। परिषद् का आगमन हुआ यावत् पर्युपासना करने लगी।

.१८ रायगिहे जाव एवं वयासी × × × तएणं समणे भगवं महावीरे बहिया जाव विहरइ।

—भग० का १८/उ८/सू०१

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से प्रश्नोत्तर किये।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर बाहर के जनपद में विचरने लगे।

.१९ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जाव पुढविसिलापट्टओ, तस्स णं गुणसिलस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते बहवे अन्नउत्थिया परिवसंति, तए णं समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे जाव परिसा पडिगया।

—भग० श,१८/उ८/प्र० २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर, यावत् पृथ्वी शिलापट्ट था। उस गुणशील उद्यान के समीप बहुत से अन्यतीर्थी रहते थे। अन्यदा किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे—यावत् परिषद् वंदना कर चली गयी।

.२० तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ णयराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं उल्लुयतीरे णामं णयरे होत्था, वण्णओ। तस्स णं उल्लुयतीरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए एत्थ णं एगजंबूए णामं चेइए होत्था वण्णओ। तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव एगजंबूए समोसढे जाव परिसा पडिगया।

—भग० श १६/उ३ प्र४७/४८/पृ०७१७

किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर अवस्थित गुणशीलक उद्यान से बहिर्गमन कर अन्य प्रान्तों में बिहार करने लगे। उसी समय—उल्लुकतीर नामक नगर के बाहर अर्थात् ईशाण कोण में एक 'जम्बूक' नाम का उद्यान अवस्थित था जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम से बिचरते हुए यावत् किसी दिन पधारे। परिषद् निज-निज स्थान लौट गई।

.२१ राजगृही में पदार्पण

अधिराजगृहं वीरश्चैत्ये गुणशिलाह्वये।
गत्वाऽथ समवासार्षीत् सुरासुरनिषेवितः ॥३२७॥
चुलनी पितृतुल्यर्द्धिर्महाशतकनामकः।
गृह्यभूत्तस्य पत्न्यश्च रेवत्याद्यास्त्रयोदशः ॥३२८॥

—त्रिशालाका० पर्व १०/सर्ग ८

अन्यदा वीरप्रभु राजगृह नगर के बाहर गुणशील नामक चैत्य में पधारे। उस नगर में चुलनी पिता की तरह समृद्धि वाला महाशतक नामक एक गृहस्थ रहता था—उसके रेवती आदि तेरह पत्नियाँ थी।

.२२ शालिभद्र-धन्यमुनि के साथ प्रभु राजगृह पधारे

अन्येद्युः श्रीमहावीरस्वामीना सहितौ मुनी।
आजग्मतू राजगृहं पुरं जन्मभुवं निजाम् ॥१५३॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १०

अन्यदा वीरस्वामी के साथ दोनों महामुनि स्वयं की जन्मभूमि राजगृह पधारे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'२३ रोहणीय चोर था—उस समय

राजगृह में पदार्पण

तदा च नगरग्रामाकरेषु विहरन् क्रमात् ।
उग्रव्रतमहासाधुसहस्रपरिवारितः ॥१४॥
सुरैः संचार्यमाणेषु स्वर्णाम्भोजेषु चारुषु ।
न्यस्यन् पदानि तत्राऽऽगाद्वीरश्चरमतीर्थकृत् ॥१५॥
वैमानिकैर्ज्योतिष्कैरसुरैर्व्यन्तरैरपि ।
सुरैः समवसरणं चक्रे जिनपतेस्ततः ॥१६॥
आयोजनविसर्पिण्या सर्वभाषानुयातया ।
भारत्या भगवान् वीरः प्रारेभे धर्मदेशनाम् ॥१७॥
तदानीं रौहिणेयोऽपि गच्छन् राजगृहं प्रति ।
मार्गान्तराले समवसरणाभ्यर्णयामायौ ॥१८॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ११

उस समय नगर, ग्राम और खाणो आदि में विहार करते हुए चौदह हजार साधुओं से परिवारित चरम तीर्थंकर श्री वीरप्रभु राजगृह नगरी पधारे ।

राजगृह में पदार्पण—(शिशिर ऋतु में)

तदा च समवासार्षीत्तत्र श्रीज्ञातनन्दनः ।
सर्वातिशयसंपन्नः सेव्यमानः सुरासुरैः ॥१०॥
देव्या चेल्लणया सार्धमपराह्णेऽन्यदा नृपः ।
वीरं समवसरणस्थितं वन्दितुमभ्यगात् ॥११॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ७

एक समय (शिशिर ऋतु में) सर्व अतिशय सम्पूर्ण और सुर-असुर सेवित ज्ञातनन्दन श्री वीर प्रभु वहाँ पधारे । भगवान् का आगमन सुनकर श्रेणिक राजा अपराह्न काल में चेल्लणा देवी के साथ श्री वीरप्रभु को वंदनार्थ आये ।

राजगृह में पदार्पण

अन्यस्मिन्नह्नि समवसृतं श्रीज्ञातनन्दनम् ।
नन्तुं गजघटाघण्टाटंकारैः पूरयन् दिशः ॥१२७॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ७/श्लो०१२७/

अन्यथा वीरभगवान् राजगृह पधारे । श्रेणिक राजा वंदनार्थ गया ।

स आर्द्रककुमारर्षिरभाषत ततोऽभयम् ।
निःकारणोपकारी त्वं ममाभूर्धर्मबान्धवः ॥३५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

× × ×

तदा पुरे राजगृहेऽभ्युपेतं
श्रीवीरनाथं स मुनिर्ववन्दे।
तत्पादपद्मद्वयसेवया स्वं।
कृतार्थयित्वा च शिवं प्रपेदे ।।३५६।।

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ७

राजगृह नगर में पधारे हुए श्री वीरप्रभु को आर्द्रकुमार मुनि ने वंदना की। और उनके चरण कमल की सेवा में कृतार्थ होकर अंत में मोक्ष प्राप्त किया।

·२४ विपुलाचल पर्वत पर

विहरंतु वसुह विद्धरथ-रइ।
विउलइरि पराइउ भुवणवइ।।

—वीरजि० संधि २/कड ८/पृ ३६

भगवान् महावीर—वसुधा पर विहार करते हुए तथा काम व्यसन को दूर करते हुए राजगृह के समीप विपुलाचल पर्वत पर पहुँचे।

·२५ विपुलाचल पर्वत पर—

आहिंडिवि मंडिवि सयल माहि।
धम्में रिसि परमेसरु।।
ससिरिहि विउलइरिहि आइयउ।
काले वीर-जिणेसरु ।।

वीरजि०—संधि ४/कड१

भगवान् महावीर विचरण करते हुए तथा अपने धर्मोपदेश से समस्त जगत को अलंकृत करते हुए यथा समय सुन्दर विपुलाचल पर्वत पर जाकर विराजमान हुए।

·२६ एवं श्रीवर्धमानेशो विदधद्धर्मं देशनाम्।।
कुमाद्राजगृहं प्राप्य तस्थिवान् विपुलाचले।।
श्रुत्वैतदागम सद्यो मगधेशात्वमागतः ।।

—उत्तपु०/पर्व ७४/श्लो ३८४/पूर्वार्ध, ३८५

इस प्रकार वर्धमान महावीर स्वामी धर्मदेशना करते हुए अनुक्रम से राजगृह नगर आये। वहाँ विपुलाचल नामक पर्वत पर स्थित हो गये। जब श्रेणिक राजा ने भगवान् के आगमन का समाचार सुना तब शीघ्र वहाँ आया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.२७ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था वण्णओ ॥२॥
तत्थणं धणे नामं सत्थवाहे। भद्दाभारिया ॥३॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए समोसढे ॥५८॥

—नाया० श्रु १/सू १८

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहाँ धनासार्थवाह रहता था। भद्रा उसकी भार्या थी।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर के गुणशिलक चैत्य में पधारे।

.२८ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान राजगृह के बाहर स्थित विपुलाचल पर्वत पधारे।

इत्येषोऽतिशयैर्दिव्यैश्चतुस्त्रिंशत्प्रमाणकैः।
प्रातिहार्याष्टकैः संज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयैः ॥७९॥
अन्यैरन्तातिगैर्दिव्यैर्गुणैश्चालंकृतः प्रभुः।
नानादेशपुरग्रामखेटान् वै विहरन् क्रमात् ॥८०॥
धर्मोपदेशपीयूषैः प्रीणयन् सज्जनान् बहून्।
मुक्तिमार्गे सतोऽनेकान् स्थापयंस्तत्त्वदर्शनैः ॥८१॥
मिथ्याज्ञानकुमार्गान्धतमो निघ्नन् वचोंऽशुभिः।
रत्नत्रयात्मकं मुक्तिमार्गं व्यक्तं प्रकाशयन् ॥८२॥
सम्यक्त्वज्ञानचारित्रतपोदीक्षामहामणीन्।
समीहितान् ददन्नित्यं भव्येभ्यः कल्पशाखिवत् ॥८३॥
संघैर्देवैर्वृतो राजगृहाद्बाह्यस्थितस्य च।
विपुलाचलतुङ्गस्योपरि धर्माधिपोऽगमत् ॥८४॥

—वीरवर्धच०/अधि—१६/श्लो ७६ से ८४

चौतीस दिव्य अतिशयों से, आठ प्रतिहार्यों से, सद्ज्ञानादि अनंत चतुष्टय से एवं अन्य अनंत दिव्यगुणों से अलंकृत वीरप्रभु ने अनेक देश-पुर-ग्राम-खेटों में क्रमशः विहार करते हुए, धर्मोपदेश रूपी अमृत के द्वारा सज्जनों को तृप्त करते, बहुतों को मुक्तिमार्ग में स्थापित करते, अनेकों का तत्त्व-दर्शन रूप वचन-किरणों से मिथ्यात्व ज्ञान रूप कुमार्ग के गाढ़ अन्धकार को हरते, मुक्ति का मार्ग स्पष्ट रूप से प्रकाशित करते, भव्य जीवों के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पवृक्ष के समान सम्यक्त्व ज्ञान-चारित्रतप और दीक्षारूपी मनोवांछित महामणियों को नित्य देते हुए चतुर्विध संघ और देवों से आवृत्त और धर्म के स्वामी ऐसे श्री वीरजिनेन्द्र राजगृह के बाहर स्थित विपुलाचल के उन्नत शिखर के ऊपर आये।

·२९ अइसयविहूइसहिओ, गण-गणहर-सयलसंघपरिवारो।
विहरन्तो च्चिय पत्तो, विउलगिरिन्दं महावीरो॥

—पउच० अधि २/ शा ३७

शिष्य समुदाय, गणधर एवम् सकल संघ के साथ विहार करते हुए तथा ज्ञानादि अतिशय विभूतियों से युक्त भगवान् महावीर एक बार विपुलाचल पर पधारे।

·३० तो अद्धमागहीए, भासाए सव्वजीवहियजणणं।
जलहरगम्भीररवो, कहेइ धम्मं जिणवरिन्दो॥

—पउच० अधि २ गा ६१

·३१ जृंगक ग्राम से विहार (कैवलयज्ञान की प्राप्ति के बाद प्रथम विहार) अपापा नगरी की ओर विहार।

(क) उपकाराऽर्हलोकानामभावात्तत्र च प्रभुः।
परोपकारैकपरः प्रक्षीणप्रेमबंधनः॥१४॥
तीर्थकृन्नामगोत्राऽऽख्यं कर्मवेद्यं महन्मया।
भव्यजन्तुप्रबोधेनानुभाव्यमिति भावयन्॥१५॥
द्युसन्निकायकोटीभिरसंख्याताभिरावृतः।
सुरैः संचार्यमाणेषु स्वर्णाब्जेषु दधत्क्रमौ॥१६॥
स्फुटे मार्गे दिन इवदेवोद्द्योतेन निश्यपि।
द्वादशयोजनाऽध्वानां भव्यसत्त्वैरलंकृताम्॥१७॥
गौतमाद्यैः प्रबोधार्हैर्भूरिशिष्यसमावृतैः।
यज्ञाय मिलितैर्जुष्टामपापामगमत्पुरीम्॥१८॥
तस्या अदूरे पुर्याश्च महासेनवनाभिधे।

त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ५

जृंगक ग्राम में उपकार के योग्य जीवों का बिल्कुल अभाव होने से परोपकार में तत्पर और जिनका प्रेम बंधन क्षीणता को प्राप्त हो गया है—भगवान् ने वहाँ से विहार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् मेरे तीर्थंकर नामगोत्र नाम का मोटा कर्म है—वेदने योग्य है। भव्य-जनों को प्रतिबोधित देने के योग्य है—ऐसा विचार कर असंख्य कोटि देवों से परिवारित देवों द्वारा संचारित सुवर्ण कमल पर चरण मुकते हुए भगवान् दिवस की तरह देवों के उद्योत से रात्रि में भी प्रकाश करते हुए बारह योजन की विस्तारवाली भव्य-प्राणियों में अलंकृत और यश के लिए मिले हुए, प्रबोध के योग्य—बहुत से शिष्यों से परिवारित गौतमादि विप्रों द्वारा सेवित अपापा नगरी में पधारे—महासेन उद्यान में ठहरे।

नोट—भगवान् महावीर वैशाख शुक्ला एकादशी को मध्यम पावा पहुँचे। महासेन उद्यान में ठहरे।

अपापा नगरी में (चतुर्विध संघ की स्थापना के बाद) अपापा नगरी से—

तत्रातिगम्य कतितिद्दिवसानि विश्व-
विश्वोपकारनिरतः प्रतिबोध्यलोकम् ।
स्वामी सुरासुरनरेश्वर सेव्यमान-
पादारविन्दयुगलो विजहार पृथ्व्याम् ॥१८६॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ५

सर्व विश्व का उपकार करने में तत्पर और सुर-असुर तथा राजाओं में जिनके चरण कमलों का सेवन किया है—ऐसे वीरप्रभु कितनेक दिन अपापा नगरी में वास कर लोकों को प्रतिबोधित कर वहाँ से अन्यत्र विहार किया।

(ख) अंतिम—अपापानगरी—

अथ तत्र सुराश्चक्रुर्वप्रत्रितयभूषितम् ।
रम्यं समवसरणं स्वामिनो देशनासदः ॥१॥
ज्ञात्वा निजायुर्युःबीन्तमन्तिमां देशनां प्रभुः ।
कर्तुं तस्मिन्नुपाविक्षत् सुरासुरनिषेवितः ॥२॥
स्वामिनं समवसृतं ज्ञात्वाऽपापापुरीपतिः ।
हस्तिपालः समागत्य नत्वा च समुपाविशत् ॥३॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १३

अपापा नगरी में भगवान् अन्तिम बार पधारे। यहाँ भगवान् का अन्तिम चातुर्मास था। हस्तिपाल राजा भगवान् के पास आकर नमस्कार किया।

(ग) भगवान का विपुलाचल से विहार करते हुए से पावापुर आगमन

अंत-तित्थणाहु विमहि विहरिवि ।
जण-दुरियाइँ दुलघइँ पहरिवि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पावा-पुरवरू पत्तउ मणहरि ।
णव-तरु-पल्लवि वणि बहु-सरवरि ॥
संठिउ पविमल-रयण-सिलायलि ।
रायहंसु णावइ पंकय-दलि ॥
दोण्णि दियहँ पविहारू मुएप्पिणु ।
सुक्क - झाणु - तिज्जउ झाएप्पिणु ॥

—वीरजि० संधि ३

अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर विपुलाचल (राजगृह) से चलकर पृथ्वी पर विहार करते हुए एवं जनता के दुर्लंध्य दुष्कर्मों का अपहरण करते हुए पावापुर नामक उत्तम नगर में पहुँचे ।

उस नगर के समीप एक मनोहर वन था, जहाँ वृक्ष नये पल्लवों से अच्छादित थे और अनेक सरोवर थे ।

उस वन में भगवान् एक विशुद्ध रत्न-शिला पर विराजमान हुए । जैसे मानों एक राजहंस कमल पत्र पर आसीन हो ।

वहाँ से उन्होंने दो दिन तक कोई विहार नहीं किया और वे तृतीय शुक्ल ध्यान में मग्न रहे ।

(घ) भगवान् का अंतिम विहार पावापुरी—

एयहं सहिउ जिणाहिउ विहरिवि
तीस वरिस भवियण तमुपहरेवि ।
पावापुर वरवणे संपत्तउ
सत्तभेय मुणिगण संजुत्तउ ।
तहिं तणु सग्गेविहाणे ठाइवि ।
सेसाइं विकम्मइं विग्घाइवि ॥
कत्तिय मासि चउत्थइ जामइं
कसण चउद्दसि रयणि विरामइं ।
गउ णिव्वाण ठाणे परमेसरु
तिल्लोकाहिउ वीरु जिणेसरु ।

वड्ढच० संधि १० कड ४०

साधु-साध्वियों आदि सभी के साथ जिनानधिप—महावीर ने विहार किया तथा ३० वर्षों तक अपने उपदेशों से भव्यजनों के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करते हुए वे वीर प्रभु सात प्रकार के संघ सहित पावापुरी के श्रेष्ठ उद्यान में पहुँचे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पावापुरी के उस उद्यान में कायोत्सर्ग विधान से ठहर कर शेष अघातिया कार्मों को घातकर कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि के चौथे पहर के अंत में वे त्रिलोकाधीप परमेश्वर वीर-जिनेश्वर निर्वाण स्थल को पहुंचे।

(ख) अंतिम विहार पावापुरी—

जिनेन्द्रवीरोऽपि विबोध्य संततंसमंततो भव्यसमूहसंतति।
प्रपद्य पावानगरी गरीयसी मनोहरोद्यानवने तदीपके॥

चतुर्थकालेऽर्धचतुर्थमासके विहीनताविश्चतुरब्दशेषके।
सकार्तिके स्वातिसुकृष्णपक्षे तसुप्रभातसमये स्वभावत॥

अघाति कर्माणि निरुद्धयोगको विधूपघाती धावद्विबंधनं।
विबन्धवस्थानमवाप शंकरो निरन्तरायोरुसुखानुबंधनम्॥

—हरिवंशपुराण सर्ग ६६

तीर्थंकर महावीर जन-जन को उपदेश देते हुए मध्यमा पावानगरी में पधारें और वहाँ के एक मनोहर उद्यान में चतुर्थकाल के ३ वर्ष ८॥ मास बाकी रहने पर कार्तिक अमावश्या के प्रभात काल में योग का निरोध करके, कर्मों का नाश करके मुक्ति को प्राप्त हुए।

६. भगवान महावीर के समीप देवों का आगमन—

.१ सूर्याभ देव के आभियोगिक देवों का —

(क) तएणं ते आभियोगिया देवा सुरभियाभेणं देवेणं एवं वुत्ता × × × जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव आमलकप्पा णयरी जेणेव अंबसालवणे चेइए जेणेव समणं भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासि—अम्हेणं भंते। सूरियाभस्स देवस्स आभियोगा देवा देवाणुप्पियाणं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो।

देवाइ समणे भगवं महावीरे ते देवे एवं वयासी—पोराणमेयं देवा! जीयमेयं देवा! किच्चमेयं देवा! करणिज्जमेयं देवा! आचिन्नमेयं देवा! अब्भणुण्णामेयं देवा! जं णं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा अरहंते भगवंते वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता तओ साइं साइं णामगोयाइं साधिंति तं पोराणमेयं देवा! जाव अब्भणुण्णायमेयं देवा!

—राय० सु १६/२०/पृ० ५६/६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्याय देव के आभियोगिक देव—जहाँ जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र की आमलकप्पा नगरी का अंबसाल वन का चैत्य था—जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे वहाँ आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन वक्त उठ बैठ हाथ-जोड़ प्रदक्षिणावर्त फिरा—इस प्रकार किया। इस प्रकार वंदन नमस्कार किया। वंदन, नमस्कार कर ऐसे कहने लगा—अहो भगवन्! हम सूर्याभदेव के ओभियोगिक देव—देवानुप्रिय को वंदन करते हैं, नमस्कार करते हैं, सम्मान करते हैं, सत्कार करते है, आप कल्याणकारी हैं, मंगलकारी हैं, हम आपकी पर्युपासना करते हैं।

अहो देवानुप्रिय! इस प्रकार आमंत्रण करके श्रमण भगवान् महावीर कहते हैं—

१ तुम्हारा पुराने काल से चला आ रहा—यह कर्त्तव्य है।

२ हे देवो! यह तुम्हारा जीताचार है। ऐसा बहुत देव करते आये हैं।

३ अहो देवो! यह तुम्हारा कर्तव्य है।

४ अहो! देवो! यह तुम्हारा कल्प है।

५ अहो! देवो! वंदना करने योग्य है।

६ अहो! देवो! इस वंदन-नमस्कार करने की मेरी आज्ञा है।

अन्य तीर्थंकरों ने भी ऐसा कहा है। अहो देव! जो भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी व वैमानिक देव हैं—वे सब अरिहंत भगवंत को वंदन करते हैं, नमस्कार करते हैं। वंदन-नमस्कार करने के बाद अपने नाम-गोत्र का उच्चारण करते हैं। इसलिये यह तुम्हारा पुराना कर्तव्य है यावत् हमारी आज्ञा हो। अहो देवो!

.२ सूर्याभिदेव का—

(क) तएणं से सुरियाभे देवे चउहिं अग्गमहिसीहिं जाव सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहिय बहूहिं सूरियाभविमाणवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहिय सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव णादितरवेण जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहियं करेति करित्ता वंदंति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'अहण्णंभंते! सूरियाभे देवे देवाणुप्पियाणं वंदामि नमंसामि जाव पज्जुवासामि ॥४९॥

सूरियाभाइ समणे भगवं महावीरे सूरियाभं देवं एवं वयासी—पोराणमेयं सूरियाभा। जीयमेयं सूरियाभा। किच्चमेयं सूरियाभा। करणिज्जमेयं सूरियाभा। आइण्णमेयं सूरियाभा। अब्भणुण्णायमेयं सूरियाभा। जं णं भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया देवा अरहंते वंदंतिनमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता तओपच्छा साइं साइं नामगोत्ताइं साहिंति तं पोराणमेयं सूरियाभा। जाव अब्भणुण्णामेयं सूरियाभा। तएणं से सूरियाभे देवे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाणेहट्ठ-जाव समणं भगवंतं महावीरं वंदंति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासण्णे नातिदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासति ॥५०॥

तएणं समणे भगवं महावीरे सूरियाभस्स देवस्स तीसेय महतिमहालिताए परिसाए जाव परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ॥५१॥

सुर्याभदेव चार हजार अग्रमहिषी देवियों यावत् सोलह हजार आत्मरक्षकदेव और भी बहुत सुर्याभ विमानवासी वैमानिक देव-देवियों के साथ परिवार से परिवारा हुआ, सर्वदेव सम्बन्धी ऋद्धियुक्त यावत् वादित्र के झणकारयुक्त जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे—वहाँ आया।

वहाँ आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार उठ-बैठकर, हाथ जोड़कर प्रदक्षिणावर्त फिराये—ऐसे किया। ऐसा करके वन्दन नमस्कार किया।

वंदन-नमस्कार करके ऐसे कहने लगा—अहो भगवान् ! मैं सुर्याभदेव देवानुप्रिय को वंदन-नमस्कार करता हूँ यावत् पर्युपासना करता हूँ।

श्रमण भगवान् महावीर सुर्याभदेव को ऐसे बोले—

१. **अहो सुर्याभदेव !** —यह तुम्हारा पुराना आचार है।

२. **अहो सुर्याभदेव !** —यह तुम्हारा जीताचार है। अर्थात् जो जो सुर्याभदेव हुए हैं उन्होंने तीर्थंकर को इसी प्रकार वंदन किया है।

३. **अहो सुर्याभदेव !** —यह तुम्हारा कर्तव्य है।

४. **अहो सुर्याभदेव !** —यह तुम्हारी करणी है।

५. **अहो सुर्याभदेव !** —यह आचरण करने योग्य कार्य है।

६. **अहो सुर्याभदेव !** —इस कर्तव्य की तीर्थंकरों ने आज्ञा दी है।

अस्तु सुर्याभ ! जो-जो भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी व वैमानिकदेव हैं—वे सब अरिहंत भगवंत को वंदन करते हैं, नमस्कार करते हैं—फिर अपना नाम गोत्र कहते हैं अतः अहो सुर्याभ ! यह तुम्हारा पुराना कर्त्तव्य है यावद् तीर्थंकरों ने आज्ञा दी है।

तब सुर्यायदेव श्रमण भगवान् महावीर का उक्त कथन श्रवण कर हर्ष-सन्तोष को प्राप्त हुआ। श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार कर नीचे आसनसे न बहुत दूर न बहुत नजदीक सुश्रुषा करता हुआ, नम्रता धारण करता हुआ भगवान् के सन्मुख हाथ जोड़कर सेवा करने लगा।

तब श्रमण भगवान् महावीर ने सूर्याभदेव तथा उस बड़ी परिषद् को धर्मोपदेश दिया।

धर्मकथा श्रवण कर परिषद् जिस दिशा से आयी—वापस गयी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) तएणं से सूरियाभे देवे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्महट्ठतुट्ठजाव-हयहियए उट्ठाए उट्ठेति उट्ठित्ता समणं भगवंतं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

अहं णं भंते ! सूरियाभे देवे किं भवसिद्धिते अभवसिद्धिते ? सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी ? परित्त-संसारिते अणंतसंसारिते ? सुलभ बोहिए दुलभ बोहिए ? आराहते विराहते ? चरिमे अचरिमे ? ॥५२॥

सूरियाभाइ समणे भगवं महावीरे सूरियाभं देवं एवं वयासी--

सूरियाभा ! तुमं णं भवसिद्धिए नो अभवसिद्धिते जाव चरिमे णो अचरिमे ॥५३॥

तएणं से सूरियाभे देवे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए परमसोमणस्सिए समणं भगवंतं महावीरं वंदति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तएणं से सुरियाभे देवे समणं भगवतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ वंदति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता नियगपरिवालसद्धिं संपरिवुडे तमेव दिव्वं जाणविमाणं दुरूहति दुरूहित्ता जामेवदिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ॥८९॥

—राय० सू० ४६, ५०, ५१, ५२ से ५४, ८६

तब सूर्याभदेव श्रमण भगवान् महावीर के समीप धर्म श्रवण कर, अवधारण कर हर्ष-सन्तोष को प्राप्त हुआ, हृदय विकसायमान हुआ, उठा, खड़ा हुआ।

खड़ा होकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार कर ऐसा कहने लगा—

अहो भगवान् ! मैं सूर्याभदेव क्या ! भवसिद्धिक हूँ या अभवसिद्धिक हूँ ? सम्यग् दृष्टि हूँ या मिथ्यादृष्टि हूँ ? परित्त संसारी हूँ या अनंत संसारी हूँ ? सुलभबोधी हूँ या दुर्लभबोधी ? आराधक हूँ या विराधक हूँ ? चरिम हूँ या अचरिम हूँ। अर्थात् यह मेरा देव सम्बन्धी भव अन्तिम है या और भी मुझे करना पड़ेगा ?

प्रत्युत्तर में श्रमण भगवान् महावीर—सुर्याभदेव को ऐसा बोले—हे सुर्याभ !

१—तुम भवसिद्धिक हो परन्तु अभवसिद्धिक नहीं हो।

२—तुम सम्यग् दृष्टि हो परन्तु मिथ्यादृष्टि नहीं हो।

३—तुम परित्त (अल्प) संसारी हो परन्तु अनंत संसारी नहीं हो।

४—तुम सुलभबोधी हो परन्तु दुर्लभबोधी नहीं हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५—तुम आराधक हो परन्तु विराधक नहीं हो।

६—तुम चरिम हो परन्तु अचरिम नहीं हो। अर्थात् यह देव सम्बन्धी तुम्हारा अन्तिम भव है।

तब वह सूर्याभदेव श्रमण भगवान् महावीर का उक्त कथन श्रवण कर हर्ष-सन्तोष को प्राप्त हुआ, चित्त में आनन्दित हुआ, परम शीतल हुआ—श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया। वंदन नमस्कार कर ऐसा कहने लगा—

अहो भगवान्! आप सब जानते हो, सब देखते हो।

तब वह सूर्याभदेव श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार हाथ जोड़कर प्रदक्षिणा कर वन्दन-नमस्कार किया।

वंदन-नमस्कार करके अपने परिवार के साथ परिवरा हुआ उस ही दिन गमन के विमान में बैठा, बैठकर जिस दिशा से आया था उस दिशा में वापस गया।

.३ गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों को सूर्याभदेवद्वारा नाटक दिखाने की इच्छा-निवेदन

तएणं से सूरिआभे देवे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए परमसोमणस्सिए समणं भगवंतं महावीरं वंदति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तुब्भेणं भंत्ते! सव्वं जाणह सव्वं पासह, सव्वओजाणह सव्वओ पासह, सव्वं कालंजाणह, सव्वं कालं पासह, सव्वे भावे जाणह सव्वे भावे पासह। जाणंति णं देवाणुप्पिया! ममपुव्विं वा पच्छा वा ममएयरूवं दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं लद्धं पत्तं अभिसमण्णागयंति, तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाणं भत्तिपुव्वगं गोयमातियाणं समणाणं निग्गंथाणं दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं बत्तीसति बद्धं नट्टविहं उवदंसित्तए ॥५४॥

तएणं समणे भगवं महावीरे सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे सूरियाभस्स देवस्स एयमट्ठं णो आढातिणो परियाजति—तुसिणीए संचिट्ठति ॥५५॥

प्रथम नाटक—तएणं ते बहवे देवकुमाराय देवकुमारीओय समणस्स भगवओ महावीरस्स सोत्थिय - सिरिवच्छ - नंदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ-दप्पण-मंगलभत्तिचित्तं णामं दिव्वं नट्टविधिं उवदंसेंति ॥६६॥

द्वितीय नाट्य—तएणं ते बहवे देवकुमाराय देवकुमारीओय समसेव समोसरणं करेंति करित्ता तं चेव भाणियव्वं जाव दिव्वे देवरमणे पवत्ते या वि होत्था। तएणं ते बहवे देवकुमाराय देवकुमारीओय समणस्स भगवओ महावीरस्स आवड-पच्चावड-सेढि-पसेढि-सोत्थिय-सोवत्थिय-पूस-माणव-वद्धमाणग-

२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मच्छउ-भगरंड-जार-मार-फुल्लावलि-पउमपत्त- सागरतरंग-वसंतलता-पउमलय-भत्तिचित्तं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥६७॥

तृतीय नाट्य—एवं च एक्किएक्कियाए णट्टविहीए समोसरणादिया एसो वत्तव्वया जाव दिव्वे देवरमणे पवत्तेयावि होत्था। तएणं ते बहवे देवकुमारा देवकुमारियाओ य समणस्स भगवतो महावीरस्स ईहामिअ-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर - वणलय - पउमलयभत्तिचित्तं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥६८॥

चतुर्थ नाट्य—एगतो वंकं एगओ चक्कवालं दुहओ चक्कवालं चक्कद्धचक्कवालं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥६९॥

पंचम नाट्य—चंदावलिपविभत्तिं च सूरावलिपविभत्तिं च वलियावलिपविभत्तिं च हंसावलिप० च एगावलिप० च तारावलिप० च मुत्तावलिप० च कणगावलिया च रयणावलिप० च णामं दिव्वं णट्टविहं उवदंसेंति ॥७०॥

षष्टम नाट्य—चंदुग्गमणप० च सूरुग्गमणप च उग्गमणु-ग्गमणप० च णामं दिव्वं णट्टविहं उवदंसेंति ॥७१॥

सप्तम नाट्य—

चंदागमणप० च सूरागमणप० च आगमणागमणप० च णामं—उवदंसेंति ॥७२॥

अष्टम नाट्य—

चंदावरणप० सूरावरणप० च आवरणावरणप० णामं उवदंसेंति ॥७३॥

नवम नाट्य—

चंदत्थमणप० च सूरत्थमणप० अत्थमणऽत्थमणप० नामं—उवदंसेंति ॥७४॥

दसम नाट्य—

चंदमंडलप० च सूरमंडलप० च नागमंडलप० च जक्खमंडलप० च भूतमंडलप० च मंडलमण्डलप० नामं उवदंसेंति ॥७५॥

एकादशवां नाट्य—

उसभमण्डलप० च सीहमण्डलप० च हयविलंबियं गयवि हयविलसियं गयविलसियं मत्तहयविलसियं मत्तगजविलसियं मत्तहयवि० मत्तगयवि० दुयविलम्बियं णामं णट्टविहं उवदंसेंति ॥७६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वादशवां नाट्य—

सागरपविभत्ति च नागरप० च सागरनागरप० च णामं···उवदंसेंति।७७।

त्रयोदशवां नाट्य—

णंदाप० च चंपाप० च णंदा-चंपाप० च णामं उवदंसेंति ॥७८॥

चतुर्दशवां नाट्य—

मच्छंडाप० च मयरंडाप० च जारप० च मारप० च मच्छंडा-मयरंडाजारा-माराप० च णामं उवदंसेंति ॥७९॥

पंद्रहवां नाट्य—

'क' त्ति ककारप० च 'ख' त्ति खकारप० च 'ग' त्ति गकारप० च 'घ' त्ति घकारप० च 'ङ' त्ति ङकारप० च ककार-खकार-गकार-घकार-ङकारप० च णामं उवदंसेंति ॥८०॥

सोलहवां नाट्य —एवं चकारवग्गो वि।

सतरहवां नाट्य— टकारवग्गो वि।

अठारहवां नाट्य—तकारवग्गो वि।

उन्नीसवां नाट्य—पकारवग्गो वि।

बीसवां नाट्य—

असोयपल्लवप० च अंबपल्लवप० च जंबूपल्लवप० च कोसंबपल्लवप० च पल्लवप० च णामं उवदंसेंति ॥८१॥

इक्कीसवां नाट्य—

पउमलयाप० जाव सामलयाप० च लयाप० च णामं उवदंसेंति।

बाइसवां नाट्य—दुयणामं उवदंसेंति

तेइसवां नाट्य—बिलंबियं णामं·· उवदंसेंति।

चौबीसवां नाट्य—दुयबिलंबियं णामं—उवदंसेंति।

पचीसवां नाट्य—अंचियं

छबीसवां नाट्य—रिभियं

सताईसवां नाट्य—अंचियरिभियं

अठाइसवां नाट्य—आरभंड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्नतीसवां नाट्य—भसोलं

तीसवां नाट्य—आरभडभसोलं ।

इकतीसवां नाट्य—

उप्पयनिवयपवत्तं संकुचियं पसारियं रयारइयं भंतं संभतं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ।

बतीसवां नाट्य—

तएणं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य समामेव समोसरणं करेंति जाव दिव्वे देवरमणे पवत्ते यावि होत्था। तएणं ते बहवे देवकुमारा य देव-कुमारीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स पुव्वभवचरियणिबद्धं च जोव्वण-चरियमिबद्धं च कामभोगचरियनिबद्धं च निक्खमणचरियनिबद्धं च तव-चरणचरियनिबद्धं च णाणुप्पायचरियनिबद्धं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥८४॥

तएणं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य गोयमादियाणं समणाणं निग्गंथाणं दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवजुतिं दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं बत्तीसइबद्धं नाडयं उवदंसित्ता समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयहिण-पयाहिणं करेंति करित्ता वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवा-गच्छंति उवासित्ता सूरियाभं देवं करयल परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति वद्धावित्ता एवं आणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

तएणं से सूरियाभे देवेतं दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं पडिसाहरइ पडिसाहरेत्ता खणेणं जाते एगे एगभूए। तएणं से सूरियाभे देवे समणं भगवंत महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ वंदंति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता नियगपरिवालसद्धिं संपरिवुडे तमेव दिव्वं जाणविमाणं दुरूहति दुरूहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ॥८९॥

—राय० सू ५४, ५५, ६६, से ८४, ८६

सूर्याभदेव श्रमण भगवान् महावीर से अपनी जिज्ञासा भरे प्रश्नों का उत्तर सुनकर हर्ष और संतोष को प्राप्त हुआ। चित्त में आनन्दित हुआ, परम शीतल हुआ। श्रमण भग-वान् महावीर को वंदन, नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर ऐसा कहने लगा—भगवान् महावीर को।—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे भगवन् ! तुम सब जानते हो, सब देखते हो। तीनों काल के वर्तन को जानते हो, केवलज्ञान से तीनों काल के वर्तन को देखते हो। केवलज्ञान, केवलदर्शन से सर्व वस्तु के भाव-पर्याय को भी जानते हो, देखते हो।

हे देवानुप्रिय ! मेरे पूर्व की घटनाओं को जानते हो, तत्पश्चात् घटनाओं को भी जानते हो।

परन्तु गौतमादि गणधर जो छद्मस्थ श्रमण निर्ग्रन्थ है—को मुझे जो देव संबंधी दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य भाव मिला है, प्राप्त हुआ है, सम्मुख आया है—उसे मैं चाहता हूँ कि अहो ! देवानुप्रिय ! भक्ति पूर्वक गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों को दिव्य देव सम्बन्धी ऋद्धि, दिव्य देव सम्बन्धी द्युति, दिव्य देव सम्बन्धी भाव, दिव्य बत्तीस प्रकार का नाटक दिखाना चाहता हूँ। श्रमण निर्ग्रन्थों को दिव्य-ऋद्धि आदि को दिखाना चाहता हूँ।

तब श्रमण भगवान् महावीर ने सूर्याभदेव के उक्त कथन को श्रवणकर सूर्याभदेव के उक्त कथन का आदर नहीं किया, अच्छा भी नहीं जाना परन्तु मौन रहे।

१—तब बहुत से देवकुमार-देवकुमारियों ने—श्रमण भगवान् महावीर के सम्मुख बत्तीस प्रकार के नाटक की रचना की। उसकी विधि—

१—सर्व प्रथम भगवान् महावीर के सम्मुख साथिया, श्रीवत्स साथिया, नंदावर्त्त साथिया, सरावला संपुट, भद्रासन, कलश, मच्छ, युग्म और दर्पण (आरिसा)—ये आठ मंगल के चित्राकार नाटक की रचना रचकर बतायी।

२—तब फिर वे देवकुमार-देवकुमारी का एक ही साथ समवसरण किया—इकट्ठे मिले, मिलकर उक्त प्रकार का सब कथन कहना यावत् दिव्य देव रमणीय प्रवर्तते हुए—तब फिर देवकुमार-देवकुमारीकाओं श्रमण भगवान् महावीर के सम्मुख—१ आवर्त्त, प्रत्यावर्त, २ उत्तरावर्त साथिया के रूप, सीधी श्रेणी, उलटी श्रेणी—इस प्रकार साथिया श्री स्वस्तिक लक्षण युक्त, मच्छियों के अंडे के आकार, जारा-मारी लक्षण विशेष मणि के आकार, फूलों की पंक्ति, पद्मकलकी पाखंडियाँ, विविध भांति के चित्रों के नाम का दिव्य प्रधान द्वितीय नाटक दिखाया।

३—ऐसे ही आगे के एक-एक नाटक की अलग-अलग विधि जानना। समवसरण कर नाटक किये, गीत गाये, वादित्र बजाये, देवरमण में प्रवर्तन किया—इत्यादि सब उक्त प्रकार से कहना।

तब वे बहुत देवों के कुमार, देवों की कुमारिका—श्रमण भगवान् महावीर के आगे वरगड, मृग, वृषभ, घोड़ा, मनुष्य, किन्नर, देव, शाहमृग, अष्टापद, चमरी गाय, हस्ति, अशोकलता, पद्मलता—इस प्रकार विविध प्रकार के चित्राकार नाम का तीसरा दिव्य नाटक बतलाया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४—एक तरफ से बांकी, दोनों तरफ से बांकी, एक तरफ से टूटी, दोनों तरफ से टूटी, एक तरफ से चक्रवाल (अर्द्धचंद्राकार)—दोनों तरफ से चक्रवाल (पूर्णचंद्राकार) इस प्रकार चक्रवाल नामक चतुर्थ नाटक बताया।

५—चंद्र की पंक्ति, सूर्यों की पंक्ति, हंसपक्षी की पंक्ति, एकावलीहार, ताराओं की पंक्ति, कनकावली हार की पंक्ति, रत्नावली हार की पंक्ति, मुक्तावली की—इस प्रकार आवली आकार नामक पंचम नाटक बताया।

६—चंद्र के उदय होने का नियम, सूर्य के उदय होने का नियम। इस प्रकार उदय प्रभृतिक नामक छट्ठा नाटक बताया।

७—चंद्र के गमन का नियम, सूर्य के गमन का नियम, शयन का नियम, गमनागमन नामक सातवां नाटक बताया।

८—चंद्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, आवरण नामक छट्ठा नाटक दिखाया।

९—चंद्र-अस्त होने का नियम, सूर्यास्त होने का नियम—अष मन प्रवृति नामक नववां नाटक बताया।

१०—चंद्र के मंडलाकार, सूर्य के मंडलाकार, नाग मंडलाकार, यक्ष मंडलाकार, भूत मंडलाकार, राक्षस मंडलाकार, गंधर्व मंडलाकार, इस प्रकार मंडल प्रभृति नामक दसवाँ नाटक बताया।

११—वृषभ की ललितं गति आकार, सिंह की ललित गति के आकार, घोड़े की ललित गति के आकार, ऐसे हस्ति की, मस्त घोड़े की विलास गति, मस्त गति विलास गति द्रुत विलम्बन नाम का ग्यारहवाँ दिव्य नाटक बताया।

१२—गाड़ियों के आकार, सागर के आकार, नगर के आकार, ऐसा सागर नगर विनति नाम का बारहवाँ नाटक दिखाया।

१३—नन्दावर्त की तरह, चंद्रमावर्त की तरह, नन्दा प्रविभक्ति नामक प्रधान तेरहवाँ नाटक बताया।

१४—मच्छ का आकार, मगर के आकार, जरा जलचर नीवाकर, मरा जलचर जीवाकार, मच्छ-मगर-जरा-मरा के अंडे के आकार अण्डाकार नामक दिव्य नाटक चौदहवाँ बताया।

१५—कक्का नामक अक्षराकार खख्खा नामक अक्षराकार गंगा नामक अक्षराकार, घघा नामक अक्षराकार ङङ्ङा नामक अक्षराकार इस वर्ग के पंच अक्षरों आकार का रूप बनाकर पन्द्रहवाँ नाटक बताया।

१६—जिस प्रकार का 'क' वर्ग नाटक किया—ऐसे ही 'च' वर्ग के पाँच अक्षर (च, छ, ज, झ, ञ) के आकार रूप बनाकर सोलहवाँ नाटक बताया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७—'ट' वर्ग के पंच अक्षर (ट, ठ, ड, ढ, ण) इनके आकार रूप बनाकर सतरहवाँ नाटक बताया।

१८—'त' वर्ग के पाँच (त, थ, द, ध, न) इनके आकार रूप बनाकर अठारहवाँ नाटक बताया।

१९—'प' वर्ग के पाँच अक्षर (प, फ, ब, भ, म) के आकार रूप बनाकर उन्नीसवाँ नाटक बताया।

२०—अशोक वृक्षाकार, अम्ब वृक्षाकार, जंबू वृक्षाकार, कोसंब वृक्षाकार— ऐसा पल्लवाकार नामक बीसवाँ नाटक बताया।

२१—पद्मलताकार, नागलता (बेली) कार यावत् चंपक, अशोक, कुंद, लता इत्यादि लताकार नामक इक्कीसवाँ नाटक बताया।

२२—शीघ्रतापूर्वक नृत्य करना—यह नृत्य विधि नाम का बाइसवाँ नाटक बताया।

२३—धैर्यता से नृत्य विधि नाम का तेइसवाँ नाटक बताया।

२४—पूर्व में शीघ्र—तत्पश्चात् धीरे—ऐसा नृत्य चौबीसवाँ बताया।

२५—अचिन्तमान नाम का पचीसवाँ नाटक बताया।

२६—रिभि नामक छबीसवाँ नाटक बताया।

२७—अंचित रिभीत नाम का सताइसवाँ नाटक बताया।

२८—आरंभड नाम का अठाइसवाँ नाटक बताया।

२९—भसोल नाम का उन्तीसवाँ नाटक बताया।

३०—अरभड भसोल नाम का तीसवाँ नाटक बताया।

३१—ऊपर उछलना, नीचे पड़ना, तिरछे कूदना, संकोचंग करना, प्रसरना, जाना, आना, भयभ्रांत होना, संभ्रांत होना, नाम का एकतीसवाँ नाटक बताया।

३२—तब वे बहुत देवकुमार, देव कुमारिका सब एकत्र मिलकर समवसरण किया यावत् दिव्यगीत, नृत्य, वादित्रसे प्रवर्तकर, तब फिर वे बहुत देवकुमार-देवकुमारिका श्रमण भगवान् महावीर जो पूर्व भव में नंद राजा थे वहाँ ११ लाख ८१ हजार मासखमण कर तीर्थंकर गोत्रोपार्जन किया—वे दसवें देवलोक में देव हुए वह चारित्र। वहाँ से च्यवन किया—८३वीं रात्रि में साहरन हुआ—देवानंदा की कुक्षी से हरण कर त्रिशला देवी की कुक्षी में स्थापित किया—वह जन्म हुआ।

मेरुगिरि पर देवों ने अभिषेक किया वह बाल्यावस्था का चारित्र, पाणि-ग्रहण (विवाह) कामभोग, चारित्र, दीक्षोत्सव चारित्र, दीक्षा ग्रहण तपाचरण चारित्र, केवल ज्ञानोत्पत्ति, चार तीर्थ की चारित्र स्थापना और भविष्यत् में मोक्ष किस प्रकार होगे—यह भी चारित्र-अन्तिम बत्तीसवाँ भगवंत के चारित्र नाम का दिव्य प्रधान नाटक बताया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब फिर वे बहुत से देवकुमार, देवकुमारिका ने चार प्रकार के बाजे बजाये।

यथा— १—माहलादि कूट कर बजे।

२—वीणादि घमकर बजे।

४—कंसलादि परस्पर आस्फ लकर बजे।

और ४—शंखादि फूकने से बजे।

तब फिर वे बहुत देवकुमार, देवकुमारिका चार प्रकार के गीत गाये। यथा—

१—प्रारम्भ में शीघ्र, फिर मन्द।

२—प्रारम्भ में मन्द, फिर शीघ्र

३—आदि-अन्त मन्द और

४—आदि-अन्त शीघ्र—ये चारों रोचित रूप गीत गाये।

तत्पश्चात् बहुत कुमार-कुमारिकाओं ने चार प्रकार का नाटक बताया। यथा—
१—अंचित, २—रिंभति, ३—आरभंड, और ४—मसोलका।

तत्पश्चात् वे बहुत से देवकुमार, देवकुमारिकाओं ने चार प्रकार का अभिनय-नई संस्कृतादि भाषा बोलकर बताये। यथा—

१—दृष्टांतिका,
२—प्रत्यानर्तिका
३—सामंतोपनीवातिका।
और ४—लोक मध्य दशानका।

तब फिर देवकुमार-देवकुमारिका गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों को दिव्यदेव सम्बन्धी ऋद्धियुक्त, दिव्यद्युति क्रांतियुक्त दिव्यदेव के भावयुक्त उक्त बत्तीस प्रकार का नाटक बताया।

बताकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार उठ-बैठकर हाथ जोड़कर प्रदक्षिणा की फिर कर वंदन नमस्कार किया।

वन्दन नमस्कार करके जहाँ सुर्याभदेव था—वहाँ आये। आकर सुर्याभदेव को दोनों हाथ जोड़कर दसों नख एकचित्त कर शिरमावर्त्त फिराकर मस्तक पर अंजली स्थापन कर जय हो विजय हो—इस प्रकार बंधाकर वह प्रथम दी हुई उनकी आज्ञा उनकों वापस की।

तत्पश्चात् वह सुर्याभदेव वह दिव्य देव, ऋद्धि-देव की द्युतिकांति देव के भाव जो प्रसारित किये थे। एक के अनेक रूप बनाये थे उसका प्रतिसंहार किया। क्षणमात्र में आप स्वयं एक रूप बन गया।

तब वह सुर्याभदेव श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार हाथ जोड़कर प्रदक्षिणा फिराकर वंदन नमस्कार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वन्दन नमस्कार कर अपने परिवार के साथ परिवारा हुआ उस ही दिव्य गमन के विमान में बैठा।

बैठकर जिस दिशा से आया था उस दिशा में वापस गया।

.४ भगवान महावीर को स्वस्थान स्थित देवों का वंदन

तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरियाभेदेवे (नामं) सोहम्मे कप्पे सूरियाभे विमाणे सभाए सुहम्माए × × × दिव्वाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ, इमं च णं केवलकप्पं जम्बुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे आभोए-माणे पासइ।

तत्थ समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे भारहे वासे आमलकप्पाए नयरीए बहिया अंबसालवणे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिए × × × सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरूहइ पच्चोरूहित्ता पाउयाओ ओमुयइ अमुयइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेति करित्ता तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठपयाहिं अणुगच्छइ अणुगच्छित्ता णामं जाणुं अंचेइ दाहिणं जाणुं धरणितलंसी निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निमेइ निमित्ता ईसिं पच्चुन्नमइ पच्चुन्नमित्ता × × × करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी— नमोऽत्थुणं जाव × × × ठाणं संपत्ताणं।

नमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स तित्थयरस्स जाव संपाविउ कामस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगते, पासइ मे भगवं तत्थगते इहगतं ति कट्टु वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता सीहासणवरगए पुव्वाभिमुहं सण्णिसण्णे।

—राय० सू० १२/१५/पृ० ४४/५०

उस काल उस समय में प्रथम सौधर्म स्वर्ग के सुर्याभ नामक विमान की सुधर्म सभा में सूरियाभ नामक सिंहासन पर, चार हजार सामानिक आदिदेव देवियों के साथ परिवरा हुआ—दिव्य प्रधान देव सम्बन्धी पाँचों इन्द्रिय के भोगोपभोग भोगते हुए विचरता था।

उस समय जंबूद्वीप नामक द्वीप को सम्पूर्ण विस्तीर्ण अवधि ज्ञान से देखता हुआ श्रमण भगवान् महावीर को जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र की आमल कप्पा नगरी के बाहर अंबशाल वन के चैत्य में यथा प्रतिरूप अवग्रह ग्रहण कर संयम-तप कर अपनी आत्मा को भावित करते हुए देखे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवों के मध्य में खड़ा हुआ प्रधान सुर्याभदेव उठा। उठकर पादपीठका पर खड़ा हुआ। खड़ा होकर बीच में नहीं सिलाई किया हुआ—ऐसा एकपट साड़ी के वस्त्र का उत्तरासन (मुख की यतना) कर भगवान् के सम्मुख वहीं सभा में सात आठ पैर गया, जाकर बायें घुटने को संकोच कर, धरती पर स्थापित किया, दाहिने घुटने को खड़ा रखकर कुछ नीचे नमा हुआ—दोनों हस्त के दशों नखों एकचित्त कर हाथ जोड़ सिर पर आवर्त कर यावत् नमोत्थूण पाठ का पूरा आचरण किया।

घन वहाँ रहे भगवंत को यहाँ रहा हुआ मैं वंदन करता हूँ। मुझे यहाँ रहे हुए को भववंत आप देखते हो—ऐसा कहकर वन्दन-नमस्कार किया।

.२ ईशानेन्द्र का

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे
होत्था—वण्णओ जाव परिसा परज्जु वासइ ॥२६॥
तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे
देवराया ईसाणे कप्पे ईसाणवडेंसए विमाणे × × ×।

जाव दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवजुतिं दिव्वं देवाणुभागं दिव्वं बत्तीसइबद्धं नट्टविहिं उववंसित्ता जाव जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए।

भग० श ३/उ १ सू. २६, २७

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर मोका नगरी के नंदन नामक चैत्य से बाहर निकलकर विहार करते हुए राजगृह नगर पधारे।

उस काल उस समय में ईशानेन्द्र भगवान् के पास आकर वंदन नमस्कार किया। बतीस प्रकार के नाटक दिखाकर वापस अपने स्थान चला गया।

(ख) तत्तो अ पुरिमताले वग्गुर ईसाण अच्चए महिमं।

—आव० निगा ४६०/पूर्वार्ध

मलय टीका—ततो भगवान् पुरिमतालपुरं गतः तत्र वग्गुरः श्रेष्ठी मल्लिजिनाय तन प्रतिमामर्च्चको गच्छन् ईसाण इति प्राकृतत्वाद् विभक्तिलोप ईशानेन ईशान देवन्द्रेण भणितः सन् महिमां—पूजां कृतवान्।

पुरिमताल नगर में ईशानेन्द्र का आगमन

इतश्च भगवान् वीरस्तस्थौ प्रतिमया स्थिरः।
अन्तरे शकटमुखोद्यानस्य च पुरस्य च ॥३१॥
तत्र वन्दितुमायात ईशानेन्द्रोजिनेश्वरम्।
ददर्श वागुरं यान्तं मल्लिबिम्बार्चनेच्छया ॥३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईशानो वागुरंचोचे किं प्रत्यक्षं जिनेश्वरम्।
अतिक्रम्याग्रतो यासितद्बिम्बार्चन हेतवे ? ॥३२॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ४

जब भगवान् महावीर पुरिमताल नगर के शकटमुख नामक उद्यान में प्रतिमा में स्थित थे। उस समय ईशानेंद्र भगवान् को वंदन करने के लिए आया था।

.३ सानतकुमारेन्द्र तथा माहेन्द्र का—

ग्यारवें चतुर्मास के बाद की घटना

(क) मलर टीका—ततो सामी कोसंबीतो निग्गंतूण सुमंगलं नाम गामं गतो, तत्थ सणंकुमारो एइवंदति पियंच पुच्छइ, तत्थ पढमं सिंदीकंदगनिवारणत्थ-मागतो संपयं पुणपियपुच्छतोत्ति। ततो सामी सुच्छेत्तं गतो, तत्थ माहिंदो पियपुच्छतो एइ, ततो सामी पालगं नाम गामं गतो, तत्थ वाइलो नाम वाणिओ जत्ताए पधावितो सामिं पेच्छइ, ततोसो अमंगलं तिकाऊण असि गहाय पधा-वितो एयस्स फलउत्ति, तत्थ सहत्थेण सिद्धत्थेण सीसं छिन्नं। अमुमेवार्थमाह

तत्तो अ सुमंगल सणंकुमार सुच्छित्त एइमाहिंदो।
वालुग वाइल वणिए अमंगलं अप्पणो असिणा।

आव० निगा ५२१

टीका—ततो भगवान् सुमंगलं नाम ग्रामंगतः, तत्र सनत्कुमारो देवेन्द्रः प्रियपृच्छक आगतः ततः सुक्षेत्रायां भगवान् जगाम, तत्र माहेन्द्रः प्रियपृच्छक आगमत्, तदनन्तरं पालकं नाम ग्रामं स्वामी गतः' तत्र वाइलो नाम वणिक् देशान्तर गच्छन् अमङ्गलमिति कृत्वा भगवत उपरिखंगमुद्गीर्य प्रधावितः तत आत्मना स्वहस्तेन असिना विनाशितः।

(ख) नाथोऽपि विहरन् प्राप ग्रामं नाम्ना सुमंगलम्।
तस्मिन् सनत्कुमारेन्द्रेणाऽभ्युपेत्याऽभ्यवन्द्यत ॥६०१॥
ततो जगाम भगवान् सुक्षेत्रे सन्निवेशने।
तस्मिन्माहेन्द्रकल्पेन्द्रणैत्य भक्त्याऽनमस्यत ॥६०२॥

—त्रिशलाका पर्व १०/सर्ग ४

जब कौशाम्बी नगरी से निकलकर भगवान् सुमंगल ग्राम पधारे तब सानतकुमारेन्द्र भगवान् के पास आया-वंदन किया सुखसाता पृच्छा की।

सुमंगल ग्राम से विहारकर भगवान् सुक्षेत्र पधारे। वहाँ माहेन्द्र ने प्रिय-पृच्छा की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ग) भोगपुर नगर में—सानतकुमारेन्द्र का

क्रमेण विहरन् प्राप पुरं भोगपुराभिधम् ।।४६७।।
× × ×
चिरदर्शनसोत्कंठो द्रष्टुं च स्वामिनं तदा ।
आगात् सनत्कुमारेन्द्रस्तत्राऽपश्यच्च तं शठम् ।।४६९।।

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ४/श्लो ४६७, ४६६

जब भगवान् महावीर सुसंमार नगर से विहारकर भोगपुर नगरी पधारे तब सनत्कुमारेन्द्र भगवान् के दर्शनार्थ आया।

.४ भगवान के छद्मस्थावस्था की घटना विशेष—पुर्णभद्र और मणिभद्र

(क) मलय टीका—ततो सामी चंपं नयरिं गतो, तत्थ सोमदत्तमाहणस्स अग्गिहोत्तसालाए वसहिं उवगतो, तत्थ चाउम्मासं खमइ, तत्थ दुवेजक्खा पुण्णभद्दमणिभद्दा रत्तिं पज्जुवासंति, चत्तारिमासे रत्तिं रत्तिं पूयं करेंति ताहे सोचिंतेइ किंपि जाणइ एस तो देवा महेंति, ताहे विन्नासणनिमित्तं पुच्छइ—को आतमा ? भगवानाह—योऽहमित्यभिमन्यते, सकीदृशः ? सूक्ष्मोऽसौ, किंतत् सूक्ष्मं ?, सूक्ष्मोऽसौ यदिन्द्रियैर्ग्रहीतु न शक्यतेइति, तथा किंतं ते पदेसणय ? किं पच्चक्खाण ? भगवानाह—साइदत्ता ! दुविहं पदेसणगं—धम्मियं अधम्मियंवा, पदेसणगं नाम उपदेशः, पच्चक्खाणे दुविहे—मूलपच्चक्खाणे उत्तरपच्चक्खाणे य, एएहिं पएहिं तस्स उवगयं। अमुमेवार्थमाह—

चंपावासांवासं जक्खिंदो साइदत्त पुच्छाय।
वागरण दुह पएसण पच्चक्खाणे अदुविहेअ।। आव० निगा ५२२

टीका—भगवान् चंपायां वर्षावासं कृतवान्, तत्र द्वौ यक्षेन्द्रौ भगवतो महिमां कृतवन्तौ, ततः स्वातिदत्तस्य ब्राह्मणस्य पृच्छा, भगवतो व्याकरण, द्विविधं प्रदेशनं द्विविधं च प्रत्याख्यानमिति।

छद्मावस्था का बारहवां चतुर्मास भगवान् महावीर ने चंपानगरी में किया। वहाँ दो यक्ष—पूर्णभद्र और मणिभद्र ने भगवान् महावीर की पर्युपासना की। चारमास सेवा की।

(ख) चंपा में बारहवें चतुर्मास के समय में—

(क) पूर्णभद्रमाणिभद्रौ यक्षौ तत्र महर्द्धिकौ।
रात्रौ रात्रौ समभ्येत्य पर्यपूजयतां प्रभुम् ।।६०७।।

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) तत्थ दुवे जक्खा पुन्नभद्दमाणिभद्दा रत्तिं पज्जुवासंति, चत्तारि मासे रत्तिं पूयं करेंति ।
—आव० निगा ५२१/टीका

भगवान् के बारहवें चतुर्मास में पूर्णभद्र और माणिभद्र नामक दो महर्द्धिक यक्ष हर रोज रात्रि में आकर भगवान् की पूजा करते थे ।

.५ वैशाली में शक्रेन्द्र का आवागमन—छट्ठे चातुर्मास के पूर्व—

(क) स्वामी जगाम वैशाल्यां शालां कर्मारसंश्रिताम् ।
अनुज्ञाय जनांस्तत्स्थां स्तस्थौ च प्रतिमाधरः ॥६०५॥
× × ×
क्व स्वामीति तदा ज्ञातुं प्रायुंक्त मघवाऽवधि ।
जिघांसुं तं च कर्मारमपश्यच्चाजगाम च ॥६०९॥
तस्यैव तं घनं मूर्ध्नि स्वशक्त्याऽपातयद्धरिः ।
कथंचिद्रोगमुक्तोऽपि जगामस यमालयम् ॥६१०॥
प्रणम्य स्वामिनं शक्रः कल्पं सौधर्मभ्ययगात् ।
—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ३

भगवं वेसालीए कम्मार घणेण देविंदो ॥४८५॥
—आव० निगा ४८५

मलयटीका—भगवांश्च वैशाल्यां गतः,
तत्र कम्मंकरो भगवन्तं घनेनाहन्तुं प्रवृत्त-
अत्रान्तरे देवेन्द्र आगतः, तेन स मारितः ॥

जब भगवान् विशाला नगरी पधारे थे उस समय इन्द्र—(प्रथम स्वर्ग का इन्द्र) का आगमन हुआ था। इन्द्र ने घण-प्रहार से लुहार को मारा था—क्योंकि कुम्हार घण से भगवान् को मारना चाहता था।

(ख) जृंभिकग्राम में शक्रेन्द्र का—

जंभियगामे नाणस्स उप्पया वागरेइ देविंदो ।
आ० निगा ५३३/पूर्वार्ध

चतुर्मास्यत्यये स्वामी जृम्भकग्राममाययौ ।
तत्र नाट्यविधिं शक्रो दर्शयित्वाऽब्रवीदिति ॥६१४॥
जगद्गुरो ! कतिपयैरद्य प्रभृति वासरैः ।
उत्पत्स्यतेऽत्रभवतः केवलज्ञानमुज्ज्वलम् ॥६१५॥
इत्युदित्वा सुनासीरो वीरं नत्वा ययौ दिवम् ।
—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्मास की समाप्ति के बाद जब भगवान् जृंभकग्राम पधारे। वहाँ शकेन्द्र आया और नाट्य-विधि दिखाकर बोला कि हे जगद्गुरु! थोड़े दिन बाद आपको केवलज्ञान-केवलदर्शन समुत्पन्न होगा।

(ग) हस्तिशीर्ष नगर में इन्द्र का आगमन—

ततो निग्गतो हत्थिसीसं नामं गामं गतो, × × ×। ताहेसक्को आगतो पुच्छइ-जत्ता भे? जवणिज्जं च भे? अव्वाबाहं च भे? इति, वंदित्ता पडिगतो।
—आव० निगा ५०६—मलय टीका

हस्तिशीर्ष नगर में शकेन्द्र का आगमन हुआ। भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया।

(घ) छद्मस्थावस्था में थूणा सन्निवेश में भगवान के पास इन्द्र का आधा-गमन—

(क) मलयटीका— × × ×। सामीवि थूणागसंनिवेसस्स बाहिं पडिमं ठितो, तत्थ सो सामीं पेच्छि ऊण चिंतेइ, अहो मे पलालं अहिज्जियं, एएहिं लक्खणेहिं जुत्तो किं एयारिसो समणोहोइ? ता अलाहि भयामि एयं, इतो य सक्को देवराया पलोएइ—अज्ज कहिं सामी विहरइ? ताहे पेच्छति सामिं तं च पूसं, ततो आगतो सामिं वंदित्ता भणइ—भो पूसो! तुमं लक्खणं न याणसि, एसो अपरिमियलक्खणो, ताहे सक्कोअब्भिंतरंलक्खणं वण्णेइ, रुधिरं गोक्खीरगोरं, भित्यादि, शास्त्रं न भवत्यलीकं, एसधम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी देविंदनरिंद-महितो भवियजणकुमुयाणंदकारओ भविस्सइ। × × ×। अभिहितसंग्रहणागे-दमाह—थूणाए बहिं पूसोलक्खणमब्भिंतरे यदेविंदो। —आव० नि/गा ४७२

टीका—थूणायां सन्निवेशे बहिर्भगवान् प्रतिमास्थितः, पुष्पोलक्षणं निरीक्षितवान्, अभ्यन्तरं चलक्षणं देवेन्द्रोऽचकथत्।

(ख) अथ द्रुतमुपेत्येंद्रो जिनेन्द्रं प्रतिमास्थितम्।
अवदन्त महाभृद्ध्या तस्य पुष्पस्य पश्यतः ॥३६१॥
शक्रं पुष्पं बभाषे च किं तु शास्त्राणि निन्दसि।
तत्कारकांश्च किं तैर्हि व मृषा भाषितं किल ॥३६२॥
× × ×
इन्द्राश्चतुःषष्टिरपि स्वामिनोऽस्य पदातयः।
कियन्मात्रं चक्रिणो स्ते येयः फलमभीप्ससि ॥३६६॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग० ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब भगवान् महावीर स्थाणुसन्निवेश पधारे—उस समय शकेन्द्र भगवान् के पास आया। पुष्प नैमित्तिकको खेदसे स्वयं के शास्त्रोंको दूषण देते हुए पाया। शकेन्द्र ने भगवान् को वंदन—नमस्कार किया। तत्पश्चात् इन्द्र ने पुष्प से कहा—अरे मूर्ख! तुम शास्त्र की निंदा क्यों करते हो। तुम अभी भगवान् के बाह्य लक्षण को जानते हो—आभ्यंतर लक्षण को नहीं। परन्तु भगवान् का मांस और रुधिर दुधकी तरह उज्ज्वल है और उनके मुख कमल का श्वास कमल की तरह सुगंधित है। ये तीन जगत के स्वामी धर्मचक्र—जगत् हितकारी है। इस प्रकार इन्द्र अपने स्थान चला गया।

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी एवं जहेव बितियउद्देसए तहेव दिव्वेणं जाणविमाणेणं आगओ जाव जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव णमंसित्ता।

तेणं कालेणं तेणं समएणं उल्लुयतीरेणामं णयरे होत्था/वण्णओ/ एगजंबूए चेइए, वण्णओ।

—भग० श १६/उ५/प्र ५४/पृ० ७२०

ऊल्लुक तीर नगर में भगवान् महावीर पधारे। उस समय में देवेन्द्र देवराज वज्रपाणि शकेन्द्र—दिव्यमान विमान से वहाँ आया। और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन—नमस्कार कर इस प्रकार पूछा।

(छ) × × × इमाइं अट्ठ उक्खित्तपसिणवागरणाइं पुच्छइ, इमाइं० २ पुच्छित्ता संभंतियवंदणएणं वंदइ, संभंतिए० २ वंदित्ता तमेव दिव्वं जाणविमाणं दुरूहइ, दुरूहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

—भग० श १६/उ५ प्र ५४/पृ० ७२१

देवेन्द्र देवराज शक्र पूर्वोक्ति संक्षिप्त आठ प्रश्न पूछकर उत्सुकतापूर्वक (शीघ्र ही) भगवान् को वंदन-नमस्कार करके उस दिव्य यान-विमान पर चढ़कर जिस दिशा से आया था—उसी दिशा में चला गया।

(ज) तेणं कालेणं तेणं समएणं विसाहा णामं णयरी होत्था/वण्णओ/ बहुपुत्तिए चेइए/वण्णओ/सामी समोसढे जाव पज्जुवासइ/तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरेएवं जहा सोलसमसए बिइय-उद्देसए तहेव दिव्वेणं जाणविमाणेणं आगओ। णवरं एत्थं अभियोगा वि अत्थि, जाव बत्तीसइविहं णट्टविहं उवदंसेइ उवदंसेत्ता जाव पडिगए।

—भग० श १८/उ२/ प्र ३८/पृ० ७५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर विशाखा नामक नगरी के बहुपुत्रिक चैत्य में पधारे। उस समय शकेन्द्र भगवान् के पास आया—वंदन नमस्कार किया। उसके साथ अभियोगिकदेव थे। उन्होंने बतीस प्रकार के नाटक दिखलाये।

(झ) आपापा में शक्रेन्द्र का आगमन

शुश्रूषमाणास्तत्रास्थुर्यथास्थानं सुरादयः।
एत्य नत्वा सहस्राक्ष इति स्वामिनमस्तवीत् ॥४॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२

अपापा नगरी में श्रमण भगवान् महावीर के दर्शनार्थ शकेन्द्र भी आया।

(ञ) शक्र-इन्द्र का परिवार सहित विपुलाचल पर्वत पर—

नाऊण देवराया, विउलमहागिरिवरे जिणवरिंदं।
एरावणं वलग्गो हिमगिरिसिहरस्स संकासं ॥३८॥
सामाणियपरिकिण्णो, अच्छरसुग्गीय माणमाहप्पो।
सव्वसुरासुरसहिओ, विउलगिरिं आगओ इन्दो ॥
दट्ठूण जिणवरिन्दं, करयलजुयलं करीय सीसम्मि।
सक्को पहट्ठमणसो, थोऊण जिणं समाढत्तो ॥

—पउच० अधि २/श्लो ३८, ४१-४२

थोऊण देवराया, अन्नेवि चउव्विहा सुरनिकाया।
भावेण कयपणामा, उवविट्ठा सन्निवेसेसु ॥४७॥

—पउच० अधि २/श्लो ४७

विपुल नामक पर्वत पर जिनवरेन्द्र पधारे हैं ऐसा अवधि ज्ञान से जानकर देवेन्द्र हेमगिरि के एक शिखर-सरीखे अपने ऐरावत हाथी पर चढा। सामानिक देवों से घिरा हुआ तथा अप्सरायें जिसका महात्म्य गा रही थी—ऐसा इन्द्र सभी सुर-असुरों के साथ विमलगिरि पर्वत पर आया। जिनवरेन्द्र को देखते ही दोनों हाथ मस्तक पर जोड़कर मन में आनन्दित होता हुआ वह भगवान की इस प्रकार स्तुति करने लगा।

इस प्रकार स्तुति करने के पश्चात् देवेन्द्र तथा दूसरे भी चारों निकायों के देव भावपूर्वक प्रणाम करके अपने-अपने योग्य-स्थान में जा बैठे।

(ट) मलयटीका—ततो भयवं चंपातो निग्गतो जंभियगामं गतो × ×। जहाएत्तियएहिं दिवसेहिं केवलनाणमुप्पज्जिहिइ, ततो सामी मिंढियगामं गतो, तत्थ चमरो वंदतो पिय पुच्छओ य एइ, वंदित्ता पुच्छित्ता य पडिगतो अमु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेवार्थमाह— जँभियगामे नाणस्स उप्पया वागरेइ देविंदो। मिंढियगामे चमरो वंदण पिय पुच्छणं कुणइ।

—आव० निगा ५२३

टीका—जृम्भिकग्रामे देवेन्द्रः शक्रो ज्ञानस्योत्पादं व्यागृणाति, तथा मिण्ढिक ग्रामे चमरो वंदनं प्रियपृच्छनं करोति।

छद्मावस्था का बारहवां चतुर्मास संपन्न कर भगवान ज़ृम्भिक ग्राम पधारे। वहाँ से विहार कर मिण्ढिक ग्राम पधारे।

ज़ृम्भिक ग्राम में शकेन्द्र आया था तथा मिण्ढिक ग्राम में चमरेन्द्र आया था।

.६ दर्दुरदेव का आगमन—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे चउदसाहिं समण-साहस्सीहिं जाव सद्धिं पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गमाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेवं रायगिहे णयरे, जेणेव गुणसीलए चेइए तेणेव समोसढे।×।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सोहम्मे कप्पे दद्दुरवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए दद्दुरंसि सीहासणंसि दद्दुरे देवे चउहिं समाणियसाहस्सीहिं चिउहिं अग्गमहिसीहिं, तिहिं परिसाहिं, एवं जहा सुरियाभे जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं विहरइ। इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विपुलेणं ओहिणा आभोएमाणे आभोएमाणे जाव नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगए जाव सुरियाभे।

—नाया० श्रु १/अ १३

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर चौदह हजार साधुओं के साथ विचरते हुए—एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए जहाँ राजगृह नगर था और गुणशील उद्यान था। वहाँ पधारे।

उस काल उस समय में सौधर्म कल्प में दर्दुरावतंसक नामक विमान में, सुधर्म नामक सभा में दर्दुर नामक सिंहासन पर, दर्दुर नामक देव चार हजार सामानिक देवों, चार अग्रमहिषियों और तीन परिषदों के साथ अर्थात् अपने संपूर्ण परिवार के साथ, सूर्याभ देव के समान दिव्य भोगोपभोग भोगता हुआ विचर रहा था।

उस समय उसने इस संपूर्ण जंबूद्वीप को अपने विपुल अवधि ज्ञान से देखते २ राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में भगवान् महावीर को देखा। तब वह परिवार के साथ भगवान् के पास आया। और सूर्याभदेव के समान नाट्यविधि दिखलाकर वापस लौट गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.७ चंपानगरी में देवों का आगमन

.१ असुरकुमारों का—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरकुमारा देवा अंतियं पाउब्भवित्था, कालमहाणीलसरिसणीलगुलियगवलअयसिकुसुमप्पगासा-वियसियसयवत्तमिव पत्तलनिम्मलाईसीसियरत्ततंबणयणा गरुलाययउज्जुतुंगणासा ओयवियसिलप्पवालबिंबफलसण्णिभाहरोट्ठा पंडुरससिसयलविमलणिम्मलसंखगोक्खीरफेणदगरयमुणालियाधवलदंतसेढी हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्ज-रत्ततलतालुजीहा अंजणघणकसिणरुयगरमणिज्जणिद्धकेसा वामेगकुंडलधरा अद्द-चंदणाणुलित्तगत्ता ईसीसिलिंधपुप्फप्पगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं पवरपरिहिया वयं च पढमं समइक्कंता बिइयं च असंपत्ता भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा तलभंगयतुडियपवरभूसणनिम्मलमणिरयणमंडियभुया दसमुद्दामंडियग्गहत्था चूलामणिचिंधगया सुरूवा महड्ढिया महज्जुइया महब्बला महायसा महासोक्खा महाणुभागा हारविराइयवच्छा कडगतुडियथंभियभुया अंगयकुंडलमट्ठगंडतला कण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमालामउलिमउडा कल्लाणगपवर वत्थ-परिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं रूवेणं एवं फासेणं संघाएणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए जुईए पभाए छायाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभा-सेमाणा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं आगम्मागम्म रत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेन्ति २ त्ता वंदंति णमंसंति [वंदित्ता] णमंसित्ता [साइं साइं णामगोयाइं सावेन्ति] णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति ॥ —ओव० सू ४७

चंपा नगरी में देवों का आगमन

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के समीप बहुत से असुरकुमार देव प्रकट हुए।

देवों का शरीर और शृंगार

उनका वर्ण-काली महानील मणि के समान था और नीलमणि, गुलिका, भैंसे के सींग और अलसी के फूल के समान दीप्ति थी।

विकसित शतपत्र (=कमल) के समान निर्मल पक्ष्मल (=बरौंनी वाले) कुछ कुछ सफेद, लाल और ताम्रवर्णवाले उनके नयन थे। उनकी नासिका गरुड़ की नाक-सी लम्बी, सीधी और ऊँची थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कारित शिला प्रवाल और बिम्बफल के समान लाल अधरोष्ठ थे।

उनके दांतों की पंक्ति निष्कलंक चंद्र के टुकड़े, निर्मल शंख, गाय के दूध, फेन, जलकण और कमल नाल के समान सफेद थी।

उनके हाथ पैर के तलवे, तालु और जीभ, अग्नि से निर्मल बने हुए स्वर्ण के समान लाल थे। अंजन और मेघ के समान काले और रुचक मणि के समान रमणीय और स्निग्ध बाल थे।

उनके बायें कान में एक-एक कुण्डल था। उनके शरीर पर चंदन का गीला लेप लगा हुआ था।

वे शिलिध्रा पुष्प के समान दीप्ति वाले, कोमल-पतले और दूषण रहित वस्त्रों को उत्तम ढंग से पहने हुए थे।

वे पहली वय (बाल अवस्था) से पार पहुँचते हुए और दूसरी वय को नहीं पाये हुये भद्रयौवन (कुमार अवस्था) में स्थित थे।

उनकी भुजाएँ मणि रत्नों से बने हुए अतिश्रेष्ठ तलं भंगक (=बाहु के आभरण) त्रुटिका और निर्मल भूषणों से सुशोभित थी। दसों अंगुलियों में पहनी हुई अंगुठियों से उनके हाथ सुशोभित थे।

उनके चूड़ामणि (=शिरोमणि) रूप में चिन्ह थे अर्थात् उनके मुकुट में चूड़ामणि का चिन्ह था।

वे सुरूप, महर्द्धिक, महती द्युति के धनी, महाबली, महासौख्य के स्वामी और महानुभाग थे।

उनके वक्षस्थल हार से सुशोभित थे। उनकी भुजाएँ कंकणों और बाहुरक्षिका से स्तंभित बन रहीं थी।

वे भुज बंध, कुन्डल, सुन्दर स्वच्छ कपोल या कस्तुरी से चित्रित गण्डस्थल वाले और कर्ण पीठ के धारक थे। उनके वस्त्राभरण या हस्ताभरण विचित्र पुष्पमालाओं से युक्त मुकुट थे।

वे कल्याणकारी श्रेष्ठ फूलों और विलेपनों से युक्त, झूलती हुई मालाओं और सभी वस्तुओं के पुष्पों से बनी हुई घुटनों तक लटकती हुई मालाओं से विभूषित प्रकाशमान् देहवाले थे।

वे दिव्य वर्ण, दिव्य गंध, दिव्य रूप, दिव्य स्पर्श, दिव्य संहनन, दिव्य संस्थान, दिव्य ऋद्धि, दिव्य युक्ति, दिव्य प्रभा, दिव्य छाया, दिव्य अर्चि, दिव्य तेज, दिव्य लेश्या से दशों दिशाएँ प्रकाशित करते हुए, शोभायमान करते हुए भगवान् महावीर के समीप में आकर, अनुराग सहित श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करते थे।

वंदना नमस्कार करते थे। फिर न अधिक नजदिक न अधिक दूर भगवान् की ओर मुख रखकर, विनय सहित दोनों हाथ जोड़कर, पर्युपासना कर रहे थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.८ नागकुमार यवत् स्तनितकुमारों का

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरिंदवज्जिया भवणवासी देवा अंतियं पाउब्भवित्था-णागपइणो सुवण्णा, विज्जू अग्गीया दीवा उदही दिसाकुमारा य पवणथणिया य भवणवासी। णाग-फडा-गरुल - वयर - पण्णकलस - सीह - हय-गय-मगर-मउड-वद्धमाण-णिजुत्त-विचित्त-चिंधगया सुरूवा महिड्ढिया सेसं तं चेव जाव पज्जुवासंति।

—ओव० सू ४८

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के समी असुरेन्द्रों को छोड़कर अन्य बहुत से नाग कुमार, सुवर्ण कुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधि कुमार, दिशा कुमार, पवन कुमार और स्वनित कुमार जाति के भवन वासीदेव प्रकट हुए।

उनके यथा स्थान से विचित्र (विविध) चिन्ह नियुक्त थे—यथा—

१—नागफण, २—गरुड़, ३—वज्र, ४—पुण्य कलश, ५—सिंह, ६—अश्व, ७—हाथी, ८—मगर और ९ वर्द्धमानक (शराव) चिन्ह से अंकित मुकुट थे। वे सुरूप महर्द्धिक आदि असुर कुमार देवों के वर्णन के समान थे। यहाँ तक पर्युपासना कर रहे थे।

.९ वाणव्यंतर देवों का—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे वाणमंतरा देवा अंतियं पाउब्भवित्था। पिसाया १, भूया य २, जक्ख ३, रक्खस ४, किंनर ५, किंपुरिस ६, भुयगवइणोय महाकाया ७, गंधव्वणिकायगणा णिउण-गंधव्वगीयरइणो ८, अणपण्णिय ९, पणपण्णिय १०, इसिवाईय ११, भूयवाईय १२, कंदिय १३, महाकंदियाय १४, कुहंड १५, पयए य १६, देवा। चंचल-चवल चित्त-कीलण-दव-प्पिया गंभीर-हसिय-भणिय-पीय-गीय-णच्चण-रई वणमाला मेल-मउड - कुंडल - सच्छंद - विउव्विया-भरण-चारू-विभूसण-धरा सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-सुरइय-पलंब-सोहंत-कंत-वियसंत-चित्त-वणमाल - रइय - वच्छा कामगमी कामरूवधारी णाणाविह-वण्ण-राग-वर-वत्थ-चित्त-चिल्लिय- णियंसणा विविह-देसी-णेवत्थ-ग्गहिय-वेसा पमुइय - कंदप्प-कलह-केलि-कोलाहल-प्पिया-हास-बोल-बहुला अणेग-मणि-रयण-विविह-निणुत्त-विचित्त-चिंधगया सुरूवा महिड्ढिआ जाव पज्जुवासंति।

ओव सू० ४९

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के समीप, बहुत से वाणव्यंतर देव प्रकट हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१—पिशाच, २—भूत, ३—यक्ष, ४—राक्षस, ५—किन्नर, ६—किंपुरुष, ७—महाकाय, महोरग, ८—अति ललित गंधर्व (=नाट्य गीत) और गीत (नाट्य वर्जित गेय गीत या संगीत) में रति (=आसक्ति) रखने वाले गंधर्वनिकाय (=गंधर्व जाति) के गण, ६—अणपणिय, १०—पणपण्णिय, ११—ऋषिवादिक, १२—भूत-वादिक, १३—क्रंदित, १४—महाक्रंदित, १५—कुष्मांड और १६—प्रयतदेव।

वे देव चंचल-चपल (=अति चंचल) चित्तवाले, क्रीड़ा और परिहास प्रिय थे। उन्हें गंभीर हास्य और वाणी का प्रयोग प्रिय था। वे गीत, नृत्य, में रतिवाले थे।

वे वनमाला, फूलों का सेहरा (आमेलक) मुकुट, कुण्डल, अपनी इच्छा के अनुसार विकुर्वित, (विविध रूप बनाने की शक्ति से निर्मित) अलंकार, और सुन्दर आभूषणों को पहने हुए थे। सभी ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले सुगंधित पुष्पों से सुन्दर ढंग से बनी हुई लम्बी मालाओं और शोभित, कांत, विकसित एवं विचित्र वन मालाओं से उनके वक्षस्थल सुशोभित थे। वे इच्छागामी और काम रूपधारी थे।

वे नाना भाँति के वर्ण-रंग वाले वाले श्रेष्ठ वस्त्र और विविध भड़कीले परिधान के धारक थे। विविध देशारूढ, वेष-भुषाएँ उन्होने ग्रहण कर रखी थी

वे प्रमुदित कंदर्प, कलह, केलि और कोलाहल में प्रीति रखने वाले थे। वे बहुत हंसने वाले और अधिक बोलने वाले थे।

उनके अनेक मणि-रत्नमय नियुक्त विविध एवं विचित्र चिह्न थे। वे सुरूप, महर्द्धिक थे यावत् पर्युपासना करने लगे।

.१० ज्योतिष्क देवों का

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जोइसिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था, विहस्सती चंदसूर सुक्क सणिच्छरा राहू धूमकेतू बुहाय अंगारका य तत्त तवणिज्ज-कणग-वण्णा जे गहा जोइसंमि चारं चरंति। केऊ य गइरइया। अट्ठावीसविहा य णक्खत-देवगणा। णाणासंठाण-संठियाओ पंचवण्णाओ ताराओ। ठियलेस्सा चारिणो य अविस्साम-मंडल गई। पत्तेयं णामंक-पागडियचिंध-मउडा। महिड्ढिया जाव पज्जुवासंति।

—ओव० सू ५०/पृ० ५०

उस काल और उस समय में भगवान् महावीर के समीप ज्योतिष्क देव प्रगट हुए। बृहस्पति, चंद्र, सूर्य, शुक्र, शनिश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध और अंगारक =(मंगल) जो कि तपित स्वर्णबिंदु के सामन वर्ण वाले हैं। एवं वे ग्रह—जो ज्योतिष्क में भ्रमण करते हैं। वे भगवान् महावीर के समीप प्रगट हुए।

टिप्पण—'जे य गहा' इस सूत्र में 'ज' पदसे बृहस्पति आदि नवग्रहों के सिवाय अन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहों को ग्रहण किया गया है (—टी०) क्योंकि मनुष्य लोक में और मनुष्य लोक के बाहर एक-एक चंद्र-सूर्य रूप युगल के ८८-८८ ग्रह होते हैं।

गतिशील केतु, नाना आकार वाले अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्र देवगण और पाँचों वर्ण के तारा जाति के देव प्रकट हुए। उनमें स्थित (=गति रहित) रहकर प्रकाश करने वाले और निरन्तर (अविश्राम) मंडलाकार गति से चलने वाले दोनों तरह के ज्योतिष्क देव थे।

प्रत्येक ने स्वनामाङ्कित विमान के चिह्न में मुकुट धारण किये हुए थे। वे महर्द्धिक थे—यावत् पर्युपासना करने लगे।

टिप्पण—'धूम केतु' के अतिरिक्त जलकेतु आदि केतुओं का केऊ य गहुगइया पदों के द्वारा उल्लेख किया गया है।

·११ वैमानिक देवों का—

तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवओ महावीरस्स वेमाणिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था। सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतक-महासुक्क-सहस्सा-राणय-पाणयारण-अच्चुयवई पहिट्ठा देवा। जिण-दंसणुस्सुगागमण-जणियहासा पालक-पुप्फक-सोमणस-सिरिवच्छ-णंदियावत्त-कामगम-पीइगम-मणोगम-विमल सव्वओभद्द-णामधिज्जेहिं विमाणेहिं ओइण्णा वंदका जिणिंदं। मिग-महिस-वराह-छगल-दद्दुर-हय-गयवइ-भुयग-खग्ग-उसभंक-चिंडिम-पागडिय-चिंध-मउडा पसिढिल-वर-मउड-तिरीड धारी कुंडल उज्जोवियाणणा मउड-दित्त-सिरया। रत्ताभा पउमपम्हगोरा सेया सुभ-वण्ण-गंध-फासा-उत्तम-विउव्विणो विविहवत्थगंधमल्लधरा महिड्ढिया महज्जुइया जाव पंजलिउडा पज्जुवासंति।
—ओव० सू ५१

उस काल उस समय में श्रमन् भगवान् महावीर के समीप में सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतक, महाशुक्र, सहस्र, आणत, प्राणत, आरण और अच्युत देव लोकों के पति—इन्द्र आये थे। वे सब देव अत्यंत प्रसन्न थे।

वे जिन के दर्शन पाने को उत्सुक और आगमन से उत्पन्न हुए हर्ष युक्त थे।

वे जिनेन्द्र के वन्दक देव—१—पालक, २—पुष्पक, ३—सोमनव, ४—श्री वत्स, ५—नन्द्यावर्त, ६—कामगम, ७—प्रीतिगम, ८—मनोगम, ९—विमल और १० सर्वतोभद्र, नाम के विमानों में अवतीर्ण हुए। (=जमीन पर आये)। वे इन्द्र १—मृग, २—महिष (=भैंसा) ३—वराह, ४ छगल (=बकरा) ५—मेंढक, ६—घोड़ा, ७—गजपति (श्रेष्ठ हाथी) ८—भुजंग, ९—खग्ग और १०—वृषभ के चिन्हों में विस्तृत मुकुटों को पहने हुए थे। वे मुकुट ढीले बंधन वाले थे। कानों के कुंडलों की प्रभा से उनके मुख उद्योत से युक्त हो रहे थे और मुकुटों में उनके शिर दीप्त थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे लाल वर्णवाले, कमलगर्भ के समान पीले वर्ण वाले और सफेद वर्ण वाले थे। वे उत्तम वैक्रिय करने की शक्तिवाले थे। विविध वस्त्र, गंध और माल्य के धारक, महर्द्धिक, महा तेजस्वी यावत् हाथ जोड़कर पर्युपासना करने लगे।

टिप्पण—वैमानिक देवों के देहों के तीन रंग है। पहले और दूसरे स्वर्ग के देवों के शरीर का लाल, तीसरे-चौथे-पांचवे स्वर्ग के शरीर का वर्ण पीला और आगे के स्वर्गों के देवों के शरीर का वर्ण सफेद होता है।

.१२ सुसुमार नगर में चमरेन्द्र का आगमन—

(क) श्रीवीरशरणस्थोहं जीवन्मुक्तो बिडौजसा।
इहाऽऽगच्छं चलत भो! गत्वा वंदामहे जिनम्॥
इत्युक्त्वा सपरीवारश्चमरः प्रभुमाययौ।
नत्वा चक्रे च संगीतं जगाम स्वांपुसरीं ततः॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ४/श्लोक ४ ६५, ६६

चमरेन्द्र ने आगत सामानिक देवों को बोला कि श्री वीरप्रभु के शरण में जाने से इन्द्र ने मुझे जीवन्मुक्त किया इसलिए मैं यहाँ वापस आ गया। तुम सब चलो—हम सबको भगवान् महावीर को वंदन करना चाहिए। ऐसा कहकर चमरेन्द्र स्वयं के सर्व परिवार के साथ प्रभु के पास आया और प्रभु को नमस्कार कर, संगीत करके वापस स्वयं की नगरी में गया।

(ख) श्रीवीरोऽप्यगमद् ग्रामे मेंढकग्रामनामनि ॥६१६॥
चमरेन्द्रस्तत्र चैत्य भगवन्तमवन्दत।
पृष्ट्वा सुखविहारं च जगाम भवनं निजम्॥

—त्रिशलाका पर्व १०/सर्ग ४

मिंढियगामे चमरो वंदण पियपुच्छणं कुणइ।

—आव० निगा ५२३

मलयटीका—तथा मिण्ढिकग्रामे चमरो वंदनं प्रियपृच्छनं करोति।

जब भगवान् जृंभक ग्राम से विहार कर मेंढक ग्राम पधारे तब चमरेन्द्र ने आकर वंदना की। सुख विहार पूछकर अपने स्थान चला गया।

.१३ विभिन्न देवों का आगमन—ग्यारहवें चतुर्मास के पूर्व—

(क) महिमानं प्रभोश्चक्रुः कौशाम्बीं च ययौ प्रभुः॥३३८॥
तत्रार्केन्दू सविमानौ जिनेन्द्रं प्रतिमास्थितम्।
भक्त्याऽभ्येत्य ववन्दाते सुयात्राप्रश्नपूर्वकम्॥३३९॥

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमाच्च विहरन् स्वामी ययौ वाराणसीं पुरीम् ।
अभ्येत्य तत्र शक्रेण ववन्दे मुदितात्मना ॥३४०॥
ततो राजगृहे गत्वा स्थितं प्रतिमयाप्रभुम् ।
ईशानेन्द्रोऽनमद्भक्त्या सुयात्राप्रश्नपूर्वकम् ॥३४१॥
गतोऽथ मिथिलापुर्यां स्वामी जनकभूभुजा ।
धरणेन्द्रेण चाऽपूजि प्रियप्रश्नविधायिना ॥३४२॥

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ४ श्लो ३३८ से ३४२

(ख) कोशाम्ब्यां चंद्रसूरावतरणं, वाराणस्यां शक्रःप्रियं पृच्छति, राजगृहे ईशानः—ईशानकल्पेन्द्रः, मिथिलायां जनको राजाधरणश्च—नागकुमारेन्द्रः पूजां कृतवान् ।

—आव० निगा ५१६/मलय टीका

जब भगवान् महावीर का कौशाम्बी पदार्पण हुआ, तब भगवान के दर्शनार्थ चंद्र सूर्य मूल विमान सहित आये। इस प्रकार वाराणसी में शकेन्द्र का राजगृह में ईशानेन्द्र का और मिथिला में नागकुमारेन्द्र का दर्शनार्थ आवागमन हुआ।

(ख) ग्यारहवें चतुर्मास—वैशाली में—

.१ वेशालिवास भूयाणंदो ।

—आव० निगा ५१७—पूर्वार्ध

मलयटीका— × × × तत्र भूतानन्दो—नागकुमारेन्द्रः प्रियं पृच्छति, ज्ञानं च व्यागृणोति, यथा भगवन् ! स्तोक काल मध्ये केवलज्ञानमुत्पत्स्यते ।

.२ भूतानन्दो नागराजस्तत्रैत्याऽवन्दत प्रभुम् ।
आसन्नं केवलज्ञानं समाख्याय जगाम च ॥

— त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ४/श्लो ३४५

वैशाली के ग्यारहवें चतुर्मास में जब भगवान् प्रतिमा में स्थित थे उस समय भूतानंद नामक नागकुमारेन्द्र ने आकर भगवान् को वंदना की और भगवान् को केवल ज्ञान नजदीक है ऐसा कहकर चला गया।

(ग) हरिनामक विद्युतकुमार के इन्द्र का आगमन—

.१ आलभियाए हरिविज्जू जिणस्स भत्तीइ वंदिउं एइ ।
भयवं पियपुच्छा जिय उवसग्गत्तिथेवमवसेसं ॥

—आव० निगा ५१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मलयटीका—आलभिकायां नगर्यां भगवतः प्रियपृच्छको हरिनामा-विद्युत्कुमारेन्द्र आगच्छति, वदति च —जिता भगवन् ! सर्वे उपसर्गाः, स्तोकमवशेषं तिष्ठति।

(घ) .२ ततश्च विहरन् स्वामी पुरीमालभिकां ययौ।
तस्थौ प्रतिमया तत्राचलेऽव्ययस्य इव सुस्थिरः॥
तत्र विद्युत्कुमारेन्द्रो नाम्ना हरिरिति प्रभुम्।
एत्य प्रदक्षिणी कृत्य प्रणम्यैवमवोचत॥
उपसर्गास्त्वया नाथ! ते सोढा यैः श्रुतैरपि।
अस्मादृशा विदीर्यन्ते वज्राद्प्यतिरिच्यसे॥
स्तोकेनाप्युपसर्गेण घातिकर्मचतुष्टयम्।
हनिष्यस्य चिरादेव केवलं चार्जयिष्यसि॥
इत्युदित्वा भगवन्तं नमस्कृत्य च भक्तितः।
हरिर्विद्युत्कुमारेन्द्रो ययौ निजनिकेतनम्॥

त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ४ श्लो ३२२ से ३२६

जब भगवान् आलभिका नगरी पधारे उस समय हरि नामक विद्युतकुमार के इन्द्र का आगमन हुआ। भगवान् को वंदन-नमस्कार कर बोला—हे नाथ! आपने जिन उपसर्गों को सहन किया—उनको हमारे जैसा व्यक्ति सुने तो हृदय विदीर्ण हो जाता है। आप वज्र से भी अधिक कठिन है। हे भगवान! अब आपको थोड़े बहुत उपसर्ग सहन कर चार धन घातितिक कर्मों का क्षय कर थोड़े दिनों में केवलज्ञान-केवलदर्शन होगा। ऐसा कहकर भगवान् को भक्ति पूर्वक नमस्कार कर अपने स्थान चला गया।

(घ) हरिसह सेयवियाए × × ×।

—आव० निगा ५१५/पूर्वार्ध

टीका—ततो भगवान् श्वेतम्ब्यांनगर्यांगतः तत्र हरिस्सहनामा-विद्युत्कुमारराजः प्रियपृच्छकआगतः।

भगवानपि निर्गत्य नगरीं श्वेतवीं ययौ।
विद्युदिन्द्रो हरिसहस्तत्रैत्याऽवन्दत प्रभुम्॥
आख्याय सोऽपि हरिवज्जगाम निजमाश्रयम्॥

—त्रिशलाका०/पर्व १०/सर्ग ४/श्लो ३२७, २८ पूर्वार्ध

जब भगवान् आलभिका नगरी से विहार कर श्वेताम्बिका का नगरी पधारे उस समय हरिसह नामक विद्युत्कुमारेन्द्र का आगमन हुआ। भगवान् को वंदनाकर वापस अपने स्थान चला गया।

३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(च) श्रावस्ती में शक्रेन्द्र का आगमन—

ततः श्रावस्तीं गतो भगवान्, तत्र स्कन्दप्रतिमांलोकेन पूज्यमानां शक्रोऽवलोक्यतांप्रतिमामनुप्रविश्य भगवंतं वंदितवान्।

—आव० निगा ५१५—मलय टीका

शक्रेणाधिष्ठिता स्कंदप्रतिमा प्रतिमास्थितम्।
भगवंतं प्रत्यचाली यंत्रपांचालिकेव सा ।।

—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग ४/श्लो ३३४

जब भगवान् श्वेताम्बिका नगरी से विहार कर श्रावस्ती नगरी पधारे उस समय शकेन्द्र ने देखा कि लोग स्कंद प्रतिमा की पूजा कर रहे हैं तब वह आया। और प्रतिमा में प्रवेश कर भगवान् को वंदना की।

(छ) केवलज्ञान-केवलदर्शन की उत्पत्ति के अवसर पर—

जण्णं दिवसं समणस्स भगवओ महावीरस्स णिव्वाणे कसिणे पडिपुण्णे अव्वाहए णिरावरणे अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे तण्णं दिवसं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिदेवेहिय देवीहिय ओवयं तेहिय उप्पयं तेहिय एगे महं दिव्वे देवुज्जोए देव-सण्णिवाते देव-कहकहे उप्पिंजलगभूए यावि होत्था।

—आया० श्र २/अ १५/सू ४०/पृ० २४१

जिस दिन श्रमण भगवान् महावीर को जृम्भिक ग्राममें केवल ज्ञान-केवल दर्शन समुत्पन्न हुआ—उस समय-दिन अर्थात् कार्तिक कृष्णा अमावस्या को भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी व वैमानिक देवों-देवियों का आगमन हुआ।

(छ) ज्योतिषी देव का इन्द्र-चन्द्रदेव का—

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे परिसा निग्गया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदे जोइसिन्दे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणिय साहस्सीहिं जाव विहरइ। इमंचणं केवलकप्पं जम्बुद्दीवंदीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे २ पासइ पासइत्ता समणं भगवं महावीरं जहा सूरियाभे अभिओगे देवे सद्दावेत्ता जाव सुरिन्दाभिगमणजोग्गं करेत्ता तमाणत्तिय पच्चप्पिणन्ति। सूसरा घंटा, जाव विउव्वणा। नवर जाणविमाणं जोयण सहस्सवित्थिण्णं अद्धतेवट्ठिजोयणसमूसियं महिन्दिज्झओ पणुवीसं जोयणमूसिओ, सेसं जहा सूरियाभस्स जाव आगओ। नट्टविही तहेव पडिगओ।

—निर० व ३/अ १/पृ० ३४, ३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। उसमें गुणशिलक नाम का चैत्य था। उस नगर का राजा श्रेणिक था। उस काल उस समय में भगवान् महावीर पधारे। जन-समुदाय रूप परिषद् धर्म को सुनने के लिए निकली।

उस काल उस समय में ज्योतिषियों के इन्द्र, ज्योतिषियों के राजाचंद्र चंद्रावतंसक विमान में सुधर्म सभा में चंद्र सिंहासन पर बैठे हुए चार हजार सामानिकों के साथ यावत् विराजे हुए हैं।

ज्योतिषियों के इन्द्र चंद्रमा ने इस जंबूद्वीप नामक संपूर्ण मध्य जंबूद्वीप से विशाल अवधि ज्ञान से अवलोकन करते हुए भगवान् महावीर को मध्य जंबूद्वीप में देखा। और उनका दर्शन करने के लिए जाने की इच्छा की। और उन्होंने सुर्याभ देव के समान ही आभियोग्य देवों को बुलाये और उनसे कहा—हे देवानुप्रियो! तुम मध्य जंबूद्वीप में भगवान् के समीप जाओ और वहाँ जाकर संवर्तक वात आदि की विकुर्वणा करके कूड़ा-कचड़ा आदि साफ कर सुगंध द्रव्यों से सुगंधित कर यावत् योजन परिमित भूमंडल को सुरेन्द्र आदि देवों के जाने-आने बैठने आदि आदि के योग्य बनाकर खबर दो।

वे आभियोग्य देव उपरोक्त आज्ञानुसार भूमंडल तैयार कर खबर देते हैं। फिर चंद्र देव ने पदाति सेन नामक देव को कहा कि जाओ सुस्वरा नाम की घंटा को बजाकर सब देवी-देवों को भगवान् के पास वंदनार्थ चलने के लिए सूचित करो। फिर उस देव ने वैसा ही किया।

सुर्याभ देव के वर्णन से विशेष केवल इतना ही है कि इसकी यान विमान एक हजार योजन विस्तीर्ण था और साढ़े तीरसठ योजन ऊँचा था। तथा महेन्द्रध्वज पच्चीस योजन ऊँचा था और इसके अतिरिक्त सभी वर्णन सुर्याभ-देव के समान समझना चाहिए।

जिस प्रकार सूर्याभदेव भगवान् के समीप आये, नाट्यविधि का और वापस लौट गये वैसे ही चंद्र देव के विषय में जानना चाहिए।

(ज) ज्योतिषीदेव का इन्द्र-सूर्य देव का

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। समोसरणं। जहाचंदो तहा सूरो वि आगओ जाव नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगओ। पुव्वभवपुच्छा। सावत्थी नयरी। सुपइट्ठे नामं गाहावई होत्था अड्ढे जहेव अंगई जाव विहरइ।

—निर० व ३/अ २/पृ ३६, ३७

उस काल उस समय में राजगृह नामकी नगरी थी। उस नगरी में गुणशिलक नाम का चैत्य था। उस नगरी में श्रेणिक नाम के राजा थे।

वहाँ श्रमण भगवान् महावीर पधारे।

जिस प्रकार चंद्रमा आये, उसी प्रकार सूर्य भी आये। और यावत् नाट्य-विधि दिखाकर चले गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(झ) ज्योतिषी देव—शुक्र महाग्रह का—

रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसढे। परिसानिग्गया। तेणं कालेणं तेणं समएणं सुक्के महग्गहे सुक्कवडिंसए विमाणे सुक्कंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणिय साहस्सीहिं जहेव चंदो तहेव आगओ नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगओ।

—निर० व ३/अ ३/ पृ ३७

उस काल उस समय में राजगृह नामका नगर था। गुणशिलक नामका चैत्य था। उस नगरी में श्रेणिक नाम के राजा थे। वहाँ भगवान् महावीर पधारे।

उस काल उस समय में शुक्र महाग्रह शुक्रावतंसक विमान में शुक्र सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवों के साथ बैठे हुए थे।

वह शुक्र महाग्रह चंद्रग्रह के समान भगवान के पास आये। और नाट्य-विधि दिखा-कर वैसे ही चले गये।

(ञ) सौधर्मदेवलोक से—बहुपुत्रिका देवी

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसढे। परिसा निग्गया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं बहुपुत्तिया देवी सोहम्मे कप्पे बहुपुत्तिए विमाणे सभाए सुहम्माए सुहम्माए बहुपुत्तियंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं। जहा सुरियाभे जाव भुञ्जमाणी विहरइ, इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी २ पासइ पासइत्ता समणं भगवं महावीरं जहा सुरियाभो जाव नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा संनिसण्णा। आभिओगा जहासुरियाभस्स, सुसरा घंटा, अभियोगियं देवं सद्दावेइ। जाणविमाणं जोयणसहस्सविच्छिण्णं। जाणविमाणवण्णओ। जाव उत्तरिल्लेणं निज्जाणमग्गेणं जोयणसाहस्सिएहिं विग्गहेहिं आगया जहा सुरियाभे। धम्मकहा सम्मत्ता।

तएणं सा बहुपुत्तिया देवी दाहिणं भुयं पसारेइ २ देवकुमाराणं अट्ठसयं, देवकुमारियाणं य वामाओ भुयाओ अट्ठसयं, तयाणंतरं य बहवे दारगा य दारियाओ य डिम्भए य डिम्भयाओ य विउव्वइ नट्टविहिं, जहा सुरियाभो, उवदंसित्ता पडिगए।

—निर व ३/अ४/पृ ४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस नगर में गुणशिलक चैत्य था। उस नगर का राजा श्रेणिक था। उस नगर में महावीर स्वामी पधारे। परिषद् उनके दर्शनार्थ निकली।

उस काल उस समय में बहुपुत्रिका देवी सौधर्म कल्प के बहुपुत्रिक विमान में सुधर्म सभा में बहुपुत्रिक सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवियों तथा चार हजार महत्तरिकाओं—तुल्य विभव वाली कुमारियोंसे परिवृत्त सुर्याभदेवके समान गीतवादित्रादि नानाविध दिव्य भोगों को भोगती हुई विचर रही है और वह इस संपूर्ण जंबूद्वीप को विशाल अवधि ज्ञान से उपयोगपूर्वक देखती हुई राजगृह में समवसृत भगवान् महावीर स्वामी को देखती है। और उनको देखकर सुर्याभदेव के समान यावत् नमस्कार करके अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठी। सुर्याभदेव के समान आभियोगिक देव को बुलाकर उसने सुस्वरा घंटा बजाने की आज्ञा दी। तदनन्तर सुस्वरा घंटा बजवाकर भगवान् महावीर के दर्शन करने को जाने के लिए सभी देवों को सूचित किया। उनका यान विमान हजार योजन विस्तीर्ण था, साढ़े बासठ योजन ऊँचा था। उसमें लगा हुआ महेन्द्रध्वज पच्चीस योजन ऊँचा था।

अंत में वह बहुपुत्रिका देवी यावत् उत्तर दिशा के मार्ग से सुर्याभदेव के समान हजार योजन का वैक्रियिक शरीर बनाकर उतरी।

बाद में भगवान् के समीप आयी। और धर्मकथासुनी। उसके बाद वह बहुपुत्रिका देवी अपनी दाहिनी भुजा को फैलाती है। और उससे एक सौ आठ देवकुमारों को निकालती है। फिर बायीं भुजा को फैलाती है और उससे एक सौ आठ देव कुमारियों के निकालती है।

उसके बाद बहुत से दारक-दारिका बड़ी उम्रवाले बच्चे बच्चियों को तथा डिम्भिक-डिम्भिका—अल्प उम्रवाले बच्चे-बच्चियों के अपनी वैक्रियिक शक्ति से बनाती है। और सुर्याभदेव के समान नाट्य विन्धि दिखाकर चली जाती है।

(ट) सौधर्म देवलोक से—पूर्णभद्रदेव का—

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसरिए। परिसा निग्गया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुणभद्दे देवे सोहम्मे कप्पे पुण्णभद्दे विमाणे सभाए सुहम्माए। पुण्णभद्दंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणिय-साहस्सीहिं, जहा सूरियाभो जाव बत्तीसइविहं नट्टविहिं उवदंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेवदिसिं पडिगए। —निर० व ३/अ ५

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहाँ गुणशीलक नामक चैत्य था। उस नगर का राजा श्रेणिक था। उसकाल में श्रमण भगवान् महावीर उस नगरी में में पधारे। भगवान् के दर्शनार्थ परिषद् निकली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में पूर्णभद्रदेव सौधर्मकल्प के पूर्णभद्र विमान में सुधर्म सभा के अंदर पूर्णभद्र सिंहासन पर चार हजार सामायिक देवों के साथ बैठे हुए थे।

वह पूर्णभद्र देव जिस दिशा से आया उसी दिशा में सूर्याभदेव के समान भगवान् को यावत् बत्तीस प्रकार की नाट्यविधि दिखाकर चले गये।

(ढ) सौधर्मदेवलोक से—मणिभद्र देवका—

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसरिए।

तेणं कालेणं तेणं समयेणं मणिभद्दे देवे सभाए सुहम्माए माणिभद्दंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जहा पुण्णभद्दा तहेव आगमण, नट्टविहि।

एवं दत्ते ७, सिवे ८, बले ९, अणाढिए १० सव्वे जहा पुण्णभद्दे देवे।

—निर० व० ३/ अ ६ से १०/पृ० ६०

उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। उस नगर में गुणसिलक चैत्य था। श्रेणिक नाम के राजा उसमें राज्य करते थे। भगवान् महावीर स्वामी राजगृहनगर में पधारे। परिषद् भगवान् के वंदनार्थ गयी।

उस काल उस समय में माणिभद्र देव सुधर्म सभामें माणिभद्र सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवों के साथ बैठे हुए थे।

इसी प्रकार दत्त ७, शिव ८, बल ६, अनादृत—इन सभी देवों का वर्णन पूर्णभद्र देव के समान जानना चाहिए।

(ड) सौधर्मदेवलोक से श्रीदेवी

तेणं कालेणं तेणं समएणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसढे, परिसा निग्गया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सिरिदेवी सोहम्मेकप्पे सिरिवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सिरिंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणिय-साहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं, जहा बहुपुत्तिया, जाव नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगया। नवरं दारियाओ नत्थि।

—निर० व ४/अ २ पृ० ६२

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। उस नगर में गुणशिलक नामक चैत्य था। उस नगरी के राजा श्रेणिक थे। वहाँ श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषद् उनके दर्शन के लिए निकली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में श्रीदेवी सौधर्मकल्प के श्री अवतंसक विमान में सुधर्म सभा में श्री सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवों के साथ तथा सपरिवार चार महत्तरिकाओं के साथ बैठी हुई थी।

(ढ) चमरेन्द्र का आवागमन—

.१ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था जाव परिसा पज्जुवासइ ॥ ७७ ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए, सभाए सुहम्माए, चमरंसि सीहासणंसि, चउसट्ठीए सामाणिय-साहस्सीहिं जाव नट्टविहिं उवदंसेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेवदिसिं पडिगए।

—भग० श ३/उ २/सू० ७७, ७८

उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। उस काल उस समय में चौसठ हजार सामानिक देवों से परिवृत्त (घिरे हुए) और चमर नामक सिंहासन पर बैठे हुए चमरेन्द्र ने भगवान् को देखकर यावत् नाट्य-विधि बतला कर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापस चला गया।

भगवान महावीर के निकट—

·३ चमरेन्द्र का आवागमन

क) तएणं से चमरे असुरिंदे असुरराया ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ममं ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु समणे भगवं महावीरे जंबूदीवे दीवे भारहे वासे सुंसुमारपुरे नयरे असोगसंडे उज्जाणे असोगवर पायवस्स अहे पुढविसि-लावट्टयंसि अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरन्ति, तं सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं णीसाए सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासाइत्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भु-ट्ठेत्ता, देवदूसं परिहेइ, परिहेत्ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव चोप्पाले पहरणको-से तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता फलिहरयणं परामुसइ, एगे अबीए फलि-हरयणमायाए महया अमरिसं वहमाणे चमरचंचाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव तिगिंछिकूडे उप्पयपव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता जावउत्तरवेउव्वियं रूवं विकुव्वइ, विकुव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जइणाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छेयाए सीहाए सिग्घाए उद्धयाए दिव्वाए देवगईए तिरियं असंखेज्जाणं दीव समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव सुंसुमारपुरे नगरे जेणेव असोयसंडे उज्जाणे जेणेव असोयवर-पायवे जेणेव पुढविसिलावट्टए जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ (करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता) नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामिणं भंते ! तुब्भं नीसाए सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चा-साइत्तए त्तिकट्टु । × × ×

—भग० श ३ उ २/सू ११२

उस असुरेन्द्र असुरराज चमर ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया। अवधिज्ञान के प्रयोग द्वारा चमरेन्द्र ने मुझे (श्री महावीर स्वामी को) देखा। मुझे देखकर चमरेन्द्र को इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि—"श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वीपों में से जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के सुंसमारपुर नाम के नगर के अशोक वन खंड नामक उद्यान में एक उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्टक पर तेले के तप को स्वीकार करके, एक रात्रिकी महाप्रतिमा अंगीकार करके स्थित हैं। मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का आश्रय लेकर देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करने के लिए जाऊँ। ऐसा विचार कर वह चमरेन्द्र अपनी शय्या से उठा, उठकर देवदूष्य (देव वस्त्र) पहना। पहनकर उपपात सभा से पूर्व दिशा की ओर गया। फिर सुधर्मा में चोप्पाल (चतुष्पाल—चारों तरफ पाल वाला, चौखण्डा) नामक शास्त्रागार की तरफ गया। वहाँ जाकर परिघ रत्न नामक शस्त्र किसी को साथ लिये बिना अकेला ही अत्यन्त कोप के साथ चमर चमरचंचा राजधानी के बीचोबीच होकर निकला। फिर तिगिच्छकूट नामक उत्पात पर्वत पर आया। वहाँ वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होकर संख्येय योजन पर्यंत उत्तर वैक्रिय रूप बनाया। फिर उत्कृष्ट देवगति द्वारा वह चमर, उस पृथ्वी शिलापट्टक की तरफ मेरे (श्री महावीर स्वामी) के पास आया। फिर तीन बार प्रदक्षिणा करके मुझे वंदना—नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला—हे भगवान् ! मैं आपका आश्रय लेकर स्वममेव अकेला ही देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करना चाहता हूँ।

शकेन्द्र के वज्र से भयभीत बना हुआ चमरेन्द्र का आवागमन—

(ख) तएणं से चमरे असुरिंदे असुरराया तं जलंतं जाव भयंकरं वज्जमभि-मुहं आवयमाणं पासइ, पासित्ता झियाइ पिहाइ, पिहाइ झियाइ, झियायित्ता पिहाइत्ता तहेव संभग्गमउडविडवे सालंबहत्थाभरणे उड्ढंपाए अहोसिरे कक्खा-गयसेयं पिव विणिम्मुयमाणे—विणिम्मुयमाणे ताए उक्किट्ठाए जाव तिरियम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जाणंदीव-समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे जेणेव जंबूदीवे जाव जेणेव असोगवरपायवे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भीए भयग्गरसरे 'भगवं सरणं' इति वुयमाणे ममं दोण्ह वि पायाणं अंतरंसि झत्ति वेगेणं समोवडिए।

—भग० श ३/उ२/सू० ११४

जब शक्रेन्द्र ने अपने वज्र को चमरेन्द्र के वध के लिए छोड़ा। इस प्रकार के जाज्वल्यमान यावत् भयंकर वज्र को चमरेन्द्र ने अपने सामने आता हुआ देखा। देखते ही ही वह विचार में पड़ गया कि 'यह क्या है।' तत्पश्चात् वह बार-बार स्पृहा करने लगा कि—ऐसा शस्त्र मेरे पास होता, तो कैसा अच्छा होता? ऐसा विचार कर जिसके मुकुट का छोगा (तुर्रा) भग्न हो गया है। ऐसा तथा आलंब वाले हाथ के आभूषण वाला वह चमरेन्द्र, ऊपर पैर और नीचे शिर करके, कांख (कक्षा) में आये हुए पसीने की तरह पसीना टपकाता हुआ वह उत्कृष्ट गति द्वारा यावत् तिरछे असंख्येय द्वीप-समुद्रों के बीचोबीच होता हुआ जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के संसुमारपुर नगर के अशोक वनखंड उद्यान में उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिलापट्ट पर जहाँ मैं (श्री भगवान् महावीर स्वामी) था, वहाँ आया। भयभीत बना हुआ, भय से कातर स्वर बोला—हे भगवन्! आप मेरे लिए शरण है। ऐसा कहकर वह चमरेन्द्र, मेरे दोनों पैरों के बीच में गिर पड़ा अर्थात् छिप गया।

·२ चमरेन्द्र का आवागमन ६४ हजार सामानिक देवों के साथ—

× × ×। तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया। समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो जाव पज्जुवासामोत्तिकट्टु चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव-सव्विड्ढीए जाव जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं (करेत्ता वंदेत्ता) नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु भंते! मए तुब्भं नीसाए सक्के देविंदे देवराया सयमेव अच्चासाइए। (तएणं तेणं परिकुविएणं समाणेणं ममं वहाए वज्जे निसट्ठे)। तं भद्दण्णं भवतु देवाणुप्पियाणं जस्सम्हि पभावेणं अकिट्ठे (अव्वहिए अपरिताविए इहमागए इह समोसढे इह संपत्ते इह अज्ज उवसंपज्जित्ता णं) विहरामि। तं खामेमिणं देवाणुप्पिया! खमंतु णं देवाणुप्पियाणं! खंतुमरिहंति:णं देवाणुप्पिया नाइ भुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता) उत्तरपुरित्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता, जाव बत्तीसइबद्धं नट्टविहिं उवदंसेइ, उवदंसेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए॥ १२९॥

—भग० श ३/उ २/सू १२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चमरेन्द्र ने कहा—हे देवानुप्रियो! अपने सब चलें और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें। ऐसा कहकर वह चमरेन्द्र चौसठ हजार सामानिक देवों के साथ यावत् सर्व ऋद्धि पूर्वक यावत् उस उत्तम अशोक, वृक्ष के नीचे, जहाँ मैं था वहाँ आया। मुझे तीन बार प्रदक्षिणा करके यावत् वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—हे भगवन्! आपका आश्रय लेकर मैं स्वयं अपने आप अकेला ही देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करने के लिए सौधर्म कल्प में गया था, यावत् आप देवानुप्रिय का भला हो कि जिनके प्रभाव से मैं क्लेश पाये बिना यावत् विचरता हूँ। हे देवानुप्रिय! उसके लिए आप से मैं क्षमा मांगता हूँ।" यावत् ऐसा कहकर वह ईशानकोण में चला गया, यावत् उसने बत्तीस प्रकार की नाटक विधि बतलाई।

फिर वह जिस दिशा से आया था—उसी दिशा में चला गया।

(ण) शक्रेन्द्र का आवागमन

वज्र को ग्रहण करने के लिए—आवागमन

× × × हा! हा! अहो! हतो अहमंसित्ति कट्टु ताए उक्किट्ठाए जाव दिव्वाए देवगईए वज्जस्स वीहिं अणुगच्छमाणे-अणुगच्छमाणे तिरियम-संखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जाव जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं चउरंगुलमसंपत्तं वज्जं पडिसाहरइ, अवियाइं मे गोयमा! मुट्ठिवाएणं केसग्गे वीइत्था॥ ११५॥

तएणं से सक्के देविंदे देवराया वज्जं पडिसाहरित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासि—एवं खलु भंते! अहं तुब्भं नीसाए चमरेणं असुरिंदेणं असुररण्णा सयमेव अच्चासाइए। तएणं ममं परिकुविएणं समाणेणं चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो वहाए वज्जे निसट्ठे। तएणं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए। चिंतए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—नो खलु पभू चमरे असुरिंदे असुरराया, नो खलु समत्थे चमरे असुरिंदे असुरराया, नो खलु विसए चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अप्पणो निस्साए उड्ढं उप्पइत्ता जाव सोहम्मो कप्पो, नण्णत्थं अरहंते वा, अरहंतचेइयाणि वा, अणगारे वा भाविअप्पाणो नीसाए उड्ढं उप्पयइ जाव सोहम्मो कप्पो, तं महादुक्खं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवं-ताणं अणगाराण य अच्चासायण्णाए त्ति कट्टु ओहिं पउंजामि, देवाणुप्पिए ओहिणा आभोएमि, आभोएत्ता हा! हा! अहो! हतो अहमंसि त्ति कट्टु ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव देवाणुप्पिए तेणेव उवागच्छामि, देवाणुप्पियाणं चउरंगुलमसंपत्तं वज्जं पडिसाहरामि वज्जपडिसाहरणट्ठयाए णं इहमागए इह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समोसढे इहसंपत्ते इहेव अज्ज उवसंपज्जित्ता णं विहरामि। तं खामेमिणं देवाणुप्पिया! खमंतु णं देवाणुप्पिया! खंतुमरिहंति णं देवाणुप्पिया! नाइ भुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु ममं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, वामेणं पादेणं तिक्खुत्तो भूमिं विदलेइ, विदलेत्ता चमरं असुरिंदं असुररायं एवं वदासि —मुक्को सिणं भो चमरा! असुरिंदा! असुरराया! समणस्स भगवओ महावीरस्स पभावेणं—नाहि ते दाणिं ममातो भयमत्थि त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

भग० श० ३/उ २/सू ११५-११६

भगवान् महावीर को देखकर शक्रेन्द्र के मुख से ये शब्द निकल पड़े कि—हा! हा! मैं मारा गया। ऐसा कहकर वह शक्रेन्द्र, अपने वज्र को पकड़ने के लिए उत्कृष्ट तीव्र गति से वज्र के पीछे चला। वह शक्रेन्द्र असंख्येय द्वीप-समुद्रों के बीचोबीच होता हुआ हुआ यावत् उस उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे जहाँ भगवान् महावीर थे उस तरफ आया और मेरे से सिर्फ चार अंगुल दूर रहे हुए वज्र को पकड़ लिया। हे गौतम! जिस समय शक्रेन्द्र ने वज्र को पकड़ा—उस समय उसने अपनी मुट्ठी को इतनी तेजी से बन्द किया कि वायु से मेरे केशाग्र हिलने लग गये। इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र ने वज्र को लेकर मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की और मुझे वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा कि—"हे भगवन्! आपका आश्रय लेकर असुरेन्द्र असुरराज चमर मुझे मेरी शोभा से भ्रष्ट करने के लिए आया। इससे कुपित होकर मैंने उसे मारने के लिए वज्र फेंका। इसके बाद मुझे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि असुरेन्द्र असुरराज चमर स्वयं अपनी शक्ति से इतना ऊपर नहीं आ सकता है। (इत्यादि कहकर शक्रेन्द्र ने पूर्वोक्त सारी बात कह सुनाई।)

फिर शक्रेन्द्र ने कहा कि हे भगवन्! फिर अवधिज्ञान के द्वारा मैंने आपको देखा। आपको देखते ही मेरे मुख से ये शब्द निकल पड़े कि—"हा! हा! मैं मारा गया। ऐसा विचार कर उत्कृष्ट दिव्य देवगति द्वारा जहाँ आप देवानुप्रिय विराजते हैं, वहाँ आया और आप से चार अंगुल दूर रहे हुए वज्र को पकड़ लिया। वज्र को लेने के लिए मैं यहाँ आया हूँ, समवसृत हुआ हूँ, सम्प्राप्त हुआ हूँ, उपसंपन होकर विचरण कर रहा हूँ। हे भगवन्! मैं अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता हूँ। आप क्षमा करें। आप क्षमा करने के योग्य है। मैं ऐसा अपराध फिर नहीं करूँगा।" ऐसा कहकर मुझे वंदना नमस्कार करके शक्रेन्द्र उत्तरपूर्व के दिशिभाग में। (ईशान कोण) में चला गया। वहाँ शक्रेन्द्र ने अपने बायें पैर से तीन बार भूमि को पीटा। फिर उसने असुरेन्द्र असुराज चमर को इस प्रकार कहा—"हे असुरेन्द्र असुरराज चमर! तू आज श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रभाव से बच गया है। अब तुझे मेरे से जरा भी भय नहीं है। ऐसा कहकर वह शक्रेन्द्र जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापस चला गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवागमन

·१४ लोकांतिक देवों का संबोधन हेतु—आगमन

वेसमण - कुंडल - धरा, देवालोगंतिया महिड्ढीया।
बोहिंति य तित्थयरं, पण्णरससु कम्मभूमिसु॥
बंभंमि य कप्पंमि य, बोद्धव्वा कण्हराइणो मज्झे।
लोगंतिया विमाणा, अट्ठसु वत्था असंखेज्जा॥
एए देवणिकाया, भगवं बोहिंति जिणवरं वीरं।
सव्व - जगजीवहियं, अरहं तित्थं पव्वत्तेहिं॥

—आया० श्रु २/अ १५/सू २६ में उद्धृत

महाऋद्धि के धारक कुबेर तथा कुंडलधारी लोकांतिक देव पंद्रह कर्मभूमियों में तीर्थंकर भगवान् को प्रतिबोध करते हैं।

अतः भगवान् महावीर का दीक्षाकाल निकट जानकर—लोकांतिक देव-जितकल्पीदेव भगवान् के पास आकर कहा—जगत में सर्वजीवों केहितके हित, सुख और निःश्रेयस करने वाले धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करो।

·१५ महाशुक्र विमानवासी अमायी सामानिक देवों का –

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं महासुक्के कप्पे महासामाणे विमाणे दो देवा महिड्ढिया जाव महेसक्खा एगविमाणंसि देवत्ताए उववण्णा। × × × तएणं से अमायिसम्मदिट्ठिउववण्णए देवे × × ×।

जाव च णं समणे भगवं महावीरे भगवओ गोयमस्स एयमट्ठं परिकहेइ तावं च णं से देवे तं देसं हव्वमागए। तएणं से देवे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो × × × वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी

—भग० श १६/उ ५ सू ५५, ५६/पृ० ७२२

उस काल उस समय में महाशुक्र कल्प के 'महासामान्य' नामक विमान में महर्द्धिक यावत् महासुख वाले दो देव, एक ही विमान में देवपने उत्पन्न हुए। उनमें अमायि सम्यग्दृष्टि देव (जब भगवान् महावीर इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में उल्लुकतीर नामक नगर के एक जंबूक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर विचरण करते हैं।

जिस समय श्रमण भगवान् महावीर ने गौतमस्वामी को शकेन्द्र के जाने की बात कह रहे थे—उस समय शीघ्र ही वह अमायि सम्यग्दृष्टिदेव वहाँ आया और श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा की और वंदन नमस्कार कर पूछा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) महाशुक्र देवलोक के महासर्ग विमान से दो देवों का—

तेणं कालेणं तेणं समएणं महासुक्काओ कप्पाओ, महासामाणाओ विमाणाओ दो देवा महिड्ढिया जाव महाणुभागा भगवओ महावीरस्स अंतियं पाउब्भूया। तएणं ते देवा समणं भगवं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं पुच्छंति

कतिणं भंते। देवाणुप्पियाणं अंतेवासी-सयाइं सिज्झिं हिंति जाव अंतं-करेहिंति ?

तएणं समणे भगवं महावीरे तेहिं देवेहिं मणसा पुट्ठे तेसिं देवाणं मणसाच्चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरेइ—एवं खलुदेवाणुप्पियाण। ममंसत्त अंतेवासी-सयाइं सिज्झिहिंति जाव अंतं करेहिंति।

तएणं ते देवा समणेणं भगवया महावीरेणं मणसा पुट्ठेणं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरिया समाणा हट्ठतुट्ठ (चित्त माणंदिया णंदियापीइमणा परम-सोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाण) हियया समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमं-सित्ता मणसा चेव सुस्सू समाणा नमं समाणा अभिमुहा (विणएणं पंजलियडा) पज्जुवासंति।

—भग० श ५/उ ४/सू ८३, ८४/सू२०२

उस काल उस समय में महाशुक्र नामक देवलोक से महासर्ग नामक मोटे विमान से मोटी ऋद्धिवाले यावत् मोटे भाग्य वाले दो देव श्रमण भगवान् महावीर के पास प्रादुर्भूत हुए। उन दोनों ने श्रमण भगवान् महावीर को मन से ही वंदन और नमन किया। तथा मन से ही ऐसा प्रश्न पूछा—

प्र० हे भगवन् ! आप देवानुप्रिय के कितने शिष्य सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अंत करेंगे।

उत्तर—उसके बाद उन देवों ने मन से ही प्रश्न पूछे। बाद में श्रमण भगवान् महावीर ने भी उन देवों को उन प्रश्नों का उत्तर मन से ही दिया।

हे देवानुप्रिय ! हमारे सात सौ शिष्य सिद्ध होंगे यावत् सर्व दुःखों का अंत करेंगे।

इस प्रकार मन से पूछे गये ऐसे श्रमण भगवान् महावीर ने उन देवों से उन प्रश्न का उत्तर मन सेही दिया।

इस कारण से वे देव हर्षित, तोषित, यावत् हृतहृदय वाले हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उन दोनों देवों ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन किया, नमस्कार किया और मनसे पर्युपासना की इच्छावाले—नमस्कार कर यावत् उन देवों के सम्मुख होकर पर्युपासना करने लगे।

भगवान् महावीर के समय के देव विशेष।

.१६ काली देवी

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। चेल्लणा देवी। सामी समोसढे। परिसा निग्गया जाव परिसा पज्जुवासइ ॥९॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं काली देवी चमरचंचाए रायहाणीए कालीवडेंसगभवणे कालंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं × × × अण्णेहि य बहूहिं कालिवडिंसय-भवणवासीहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य सद्धि संपरिवुडा महयाहय जाव विहरइ ॥१०॥

एत्थ समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ-चित्त-माणंदिया पीइमणा × × × हियया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता तित्थगराभिमुही सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचेत्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवेसेइ, ईसिं पच्चुन्नमइ, पच्चुन्नमित्ता कडग-तुडिय-थंभियाओ भुयाओ साहरइ-साहरित्ता करयलं जाव कट्टु एवं वयासी—

"नमोत्थुणं अरहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं। नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपाविउकामस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगया, पासउमे समणे भगवं महावीरे तत्थगए इहगयंत्ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा निसण्णा ॥११॥

तएणं तीसे कालीए देवीए इमेयारूवे (अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे) समुप्पज्जित्था—सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरे वंदित्तए नमंसित्तए सक्कारित्तए सम्माणित्तए कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं) पज्जुवासित्तए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया। समणे भगवं महावीरे विहरइ एवं जहा सूरियाभो तहेव आणत्तियं देइ जाव दिव्वं सुरवराभिगमणजोग्गं करेह (य कारवेह य करेत्ता य कारवेत्ता य खिप्पामेव एवमाणत्तियं) पच्चप्पिणह। तेवि तहेव करेत्ता जाव पच्चप्पिणंति, नवरं—जोयणसहस्सवित्थिण्णं जाणं। सेसं तहेव। तहेव नामगोयं साहेइ, तहेव नट्टविहिं उवदंसेइ जाव पडिगया ॥१२॥

भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—कालीए णं भंते! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभाए कहिं गए? कहिं अणुप्पविट्ठे?

गोयमा! सरीरं गए सरीरं अणुप्पविट्ठे/कुडागारसाला दिट्ठंतो ॥१३॥

—नाया० श्रु २/व १/अ १

उस काल उस समय में राजगृह नगर के बाहर गुणशील नाम का चैत्य था। उसमें श्रेणिक राजा रहता था। उसके चेलणा नाम की देवी थी।

एकदा महावीर स्वामी गुणशील नामक चैत्य में पधारे। उनको वंदन करने के लिए परिषद् निकली यावत् भगवान् की सेवा करती रही।

उस काल उस समय में काली नाम की देवी चमरचंचा राजधानी में कालावतंसक नामक भवन में काल नामक सिंहासन पर बैठी थी। उस समय चार हजार सामानिक देवियों, चार महत्तरिका देवी, परिवार सहित तीन परिषद्, सात अनिक, सात अनिक के अधिपति, सोलह हजार आत्मरक्षक देव तथा दूसरे भी कालावतंसक नामक भवन में बसने वाले बहुत असुरकुमार जाति के देव और देवियों के साथ परिवारित मोटा सुभट आदि सहित यावत् विचरती थी।

वहाँ श्रमण भगवान् महावीर को जंबूद्वीप नाम के द्वीप के भरतक्षेत्र में राजगृह नगर के गुणशील नामक चैत्य में यथाप्रति रूप (साधु के योग्य) अवग्रह (स्थान) याचकर—संयम और तप से आत्मा को भावित होते देखा। देखकर काली देवी हृष्ट, पुष्ट हुई, चित्त में आनंद को प्राप्त हुई। मन में प्रीति को प्राप्त हुई यावत् हृत-हृदय होती हुई सिंहासन के ऊपर खड़ी हुई। खड़ी होकर पादपीठ से नीचे उतरी। नीचे उतर कर पादुका को निकाली। निकालकर तीर्थंकर के सम्मुख सात-आठ पैर चली/चलकर वामजानु को ऊँचा रखा। ऊँचा रखकर दक्षिण जानु पृथ्वीतल में स्थापित कर तीन बार मस्तक को पृथ्वीतल में स्थापित किया। स्थापित कर उस मस्तक को कुछ ऊँचा किया। ऊँचाकर कटक और त्रुटित (बाजुबंध) से स्तम्भ रूप हुई दोनों भुजायें भेलीकी, भेलीकर करतल (दोनों हाथ के तल को) यावत् जोड़कर बोली—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरिहंत भगवंत यावत् सिद्धिगति को प्राप्त हुए को मेरा नमस्कार हो। श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धिगति को प्राप्त करने की अभिलाषा वालों को मेरा नमस्कार हो। मैं यहाँ पर हूँ वहाँ स्थित भगवान् को वंदन करती हूँ। वहाँ स्थित श्रमण भगवान् महावीर यहाँ स्थित मुझे देखे।

इस प्रकार वंदन-नमस्कार किया। वंदन, नमस्कार कर स्वयं के श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्वाभिमुख कर बैठी।

उसके बाद वह काली देवी को इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् उत्पन्न हुआ कि—मुझे श्रमण भगवान् महावीर को वंदना यावत् सेवा करनी श्रेयकारक है। ऐसा विचार किया। विचार कर आभियोगिक देवों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—

इस प्रकार निश्चय है देवानुप्रिय! श्रमण भगवान् महावीर (जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में राजगृह नगर के गुणशील चैत्य में ठहरे हुए हैं आदि)। जैसे सूर्याभदेव (स्वयं के आभियोगिक देवों को बुलाकर आज्ञा दी थी) वैसे ही आज्ञा दी कि 'यावत् दिव्य (मनोहर) और श्रेष्ठ देवों के गमन करने योग्य यान-विमान बनाओ। बनाकर यावत् हमारी आज्ञा वापस दो। यह सुनकर वे आभियोगिक देव भी उसी प्रकार कर यावत् उसे आज्ञा वापस सौंपी। विशेष इतना है कि—हजार योजन के विस्तार वाला यान (विमान) बनाया। शेष (बाकी का सर्व) उसी प्रकार जानना चाहिए।

उसी प्रकार (सूर्याभदेव की तरह भगवान् के पास आयी) स्वयं के नाम-गोत्र कहे। कहकर उसी प्रकार (सूर्याभ की तरह एक सौ आठ कुमार और कुमारिका हस्त से निकाल कर) नाटक की विधि बतायी। बताकर यावत् काली देवी वापस गयी।

हे भगवान्! ऐसा संबोधन कर भगवान् गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन किया, नमस्कार किया।—वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—

हे भगवन्! काली देवी की वह दिव्य (मनोहर) देवऋद्धि कहाँ गयी। उसके प्रत्युत्तर में भगवान् महावीर स्वामी कूटाकार शाला के दृष्टांत से उत्तर दिया।

·१७ राजी देवी

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ ॥४७॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं राई देवी चमरचंचाए रायहाणीए एवं जहा काली तहेव आगया, नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगया ॥४८॥

—नाया० श्रु० २/व १/अ २

उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। उस नगर के बाहर गुणशील नाम का चैत्य था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक समय श्री महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ परिषद् भगवान् को वंदन करने के लिए नगर में से बाहर निकली यावत् भगवान् की सेवा करने लगी।

उस काल उस समय राजी नाम की देवी चमरचंचा राजधानी से भगवान् को वंदनार्थ आयी। नाट्यविधि दिखाकर वापस अपने स्थान गयी।—

.१८ शुंभा--

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ ॥४॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं सुंभादेवी बलिचंचाए रायहाणीए सुंभवडेंसए भवणे सुंभंसि सीहासणंसि विहरइ। काली गमएणं जाव नट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया ॥५॥

—नाया० श्रु २/व २/अ १

उस काल उस समय में राजगृह नगर था। उसके बाहर गुणशील नामक चैत्य था। एक दिन श्री महावीर स्वामी पधारे। परिषद् भगवान् को वंदनार्थ गयी। भगवान् की पर्युपासना करने लगी।

उस काल उस समय में शुंभा नामकी देवी बलिचंचा नाम की राजधानी में शुभावतंसक नामक भवन में शुंभा नामक सिंहासन पर बैठी हुई थी। भगवान् महावीर को वंदनार्थ आयी थी। नाट्यविधि दिखाकर वापस चली गयी।

.१९ इला देवी

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए सामी समोसढे परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ ॥४॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं अलादेवी धरणाए रायहाणीए अलावडेंसए भवणे अलंसि सीहासणंसि एवं कालीगमएणं जाव नट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया ॥५॥

—नाया० श्रु २/व ३/अ १

उस काल उस समय में इला नाम की देवी धरणी नाम की राजधानी में इलावतंसक नामक भवन में इला नाम के सिंहासन पर बैठी थी। काली देवी की तरह भगवान् को वंदनार्थ आयी थी। नाट्यविधि दिखाकर वापस गयी।

.२० कमलादेवी—पिशाचकुमारेन्द्र की अग्रमहिषी—

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ ॥४॥

३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेणं कालेणं तेणं समएणं कमलादेवी कमलाए रायहाणीए कमल-वडेंसिए भवणे कमलंसि सीहासणंसिसेसं जहा कालीए तहेव ॥४॥

—नाया० श्रु २/व ५/अ १

उस काल उस समय में राजगृह नगर के गुणशील चैत्य में महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। परिषद् आकर सेवा करने लगी।

उस काल उस समय में कमलादेवी कमला नाम की राजधानी में कलावतंसक भवन में कमल नामक सिंहासन पर बैठी थी। कालीदेवी की तरह भगवान् महावीर को वंदनार्थ आयी।

.२१ सूरप्रभादेवी (सूर्य की देवी)

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ ॥४॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभा देवी सूरंसि विमाणंसि सूरप्पभंसि सीहासणंसि। सेसंजहा कालीए तहा ॥ × × × ॥५॥

—नाया० श्रु २/व ७/अ १

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर में भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ।

उस काल उस समय में सूरप्रभा देवी सूरप्रभ नामक सिंहासन पर बैठी थी। कालीदेवी की तरह भगवान् को वंदनार्थ आयी।

.२२ चंद्रप्रभा देवी (चंद्र की देवी)

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ ॥४॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदप्पभा देवी चंदप्पभंसि विमाणंसि चंदप्पभंसि सीहासणंसि। सेसंजहा कालीए। × × × ।५७।

—नाया० श्रु २/अ ८/अ १

उस काल उस समय में राजगृह नगर में भगवान महावीर का पदार्पण हुआ।

उस काल उस समय में चंद्रप्रभा नाम की देवी चंद्रप्रभ नामक सिंहासन पर बैठी थी। यह चंद्र देवेन्द्र की अग्रमहिषी थी। कालीदेवी की तरह भगवान् के समवसरण में आयी। भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार कर नाट्यविधि दिखाकर वापस गयी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.२३ कृष्ण देवी (ईशानेन्द्र की अग्रमहिषी)

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ ।।४।।

तेणं कालेणं तेणं समएणं कण्हादेवी ईसाणे कप्पे कण्हवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए कण्हंसि सीहासणंसि, सेस जहा कालीए।।५।।

—नाया० श्रु २/व १०/अ १

उस काल उस समय में राजगृह नाम की नगरी में भगवान महावीर का पदार्पण हुआ।

उस काल उस समय में पद्मावती देवी सौधर्मकल्प में पद्मावतंसक नामक विमान में सुधर्मा नाम की सभा में पद्म नाम के सिंहासन पर बैठी थी। शकेन्द्र की अग्रमहिषी थी। भगवान् के वंदनार्थ आयी। नाट्यविधि दिखा कर वापस गयी।

—नाया० श्रु २/व ६

.७ भगवान महावीर के समसामयिकी घटना

.१ परिषद् में श्रेणिक-चेल्लणा देवी को देखकर साधु-साध्वियों द्वारा निदान—

तएणं समणे भगवं महावीरे सेणियस्स रण्णो भिंभसारस्स चेल्लणादेवीए तीसे य महइमहालयाए × × × धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया, सेणियराया पडिगओ ।।११।।

तत्थेगइयाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य सेणियं रायं चेल्लणं च देविं पासित्ताणं इमे एयारूवे अज्झत्थिए जाव संकप्पे समुप्पज्जेज्जा ।।१२।।

अहोणं सेणिए राया महिड्ढिए जाव महासुक्खे जेणं ण्हाए, कयबलिकम्मे कयकोउय मंगल पायच्छित्ते सव्वालंकार विभूसिए चेल्लणादेवीए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ। न मे दिट्ठा देवा देवलोगंसि सक्खं खलु अयं देवे। जइ इमस्स सुचरियतवनियमबंभचेर गुत्ति वासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि तया वयमवि आगमिस्साए इमाइं ताइं उरालाइं एयारूवाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणो विहरामो। से तं साहु ।।१३।।

अहोणं चेल्लणा देवी महिड्ढिया जाव महासुक्खा जाणंण्हाया, कयबलिकम्मा, कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता, जाव सव्वालंकार विभूसिया सेणिएणं रण्णा सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ, न मे दिट्ठाओ देवीओ देवलोगंसि, सक्खं खलु इमा देवी। जइ इमस्स सुचरिय-तव-नियम-बंभचेर-गुत्ति-वासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि तया वयमवि आगमिस्साए इमाइं एयारूवाइं उरालाइं जाव विहरामो। से तं साहुणी ।१४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२ भगवान महावीर के समसामयिकी घटना—

परिषद् में श्रेणिक-चेल्लणा को देखकर—साधु-साध्वियों द्वारा निदान

भगवान ने मनोस्थिति को जाना—

अज्जोत्ति समणे भगवं महावीरे ते बहवे निग्गंथे य निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी—'सेणियं रायं चेल्लणादेविं पासित्ता तुम्हाणं मणंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—अहो णं सेणिए राया महिड्ढिए जाव सेत्तं साहु। अहो णं चेल्लणा देवी महिड्ढिया जाव सेत्तं साहुणी ॥१५॥

एवं खलु समणाउसो मए धम्मे पन्नत्ते। इणमेव निग्गंथे पावयणे सच्चे, अणुत्तरे, पडिपुण्णे, केवले, संसुद्धे, णेयाउए, सल्लकत्तणे, सिद्धिमग्गे, मुत्तिमग्गे, निव्वाणमग्गे, अवितहमविसंदिद्धे, सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे। इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिनिव्वायंति, सव्वदुक्खाण-मंत करेंति ॥१६॥

जस्सणं धम्मस्सनिग्गंथेसिक्खाए उवट्ठिए विहरमाणे पुरादिगिंछाए पुरापिवासए पुरावातातवेहिं पुरापुट्ठे विरूवरूवेहिं परीसहोवसग्गेहिं उदिण्ण-कामजाए विहरिज्जा, से य परकम्मेज्जा। × × ×।१७॥

तएणं सेबहवे निग्गंथा य निग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता तस्स ठाणस्स आलोयंति पडिक्कमंति जाव अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जंति ॥५९॥

—दसासु० द० १०

चेल्लणा देवी के साथ श्रेणिक राजा भगवान् के समीप में आने के बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रेणिक राजा भंभसार और चेल्लणा देवी को चार प्रकार की महापरिषद् में अर्थात् ऋषिपरिषद् यतिपरिषद्-मनुष्य-परिषद्, देवपरिषद्, जिनमें हजारों श्रोतागण सुनने के लिए एकत्रित हुए हैं—ऐसी परिषद् के मध्य में विराजमान होकर "और जिस प्रकार कर्मों से बद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं और क्लेश पाते हैं।" इत्यादि विचित्र प्रकार से श्रुत चारित्र लक्षण-धर्म कहा।

धर्म कथा सुनकर परिषद् अपने-अपने स्थान गयी और श्रेणिक राजा भी गये ॥११॥

उस परिषद् में श्रेणिक राजा को और चेल्लणा देवी को देख कर कई एक निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के मन में इस प्रकार आध्यात्मिक—मनोभाव अर्थात् अंतःकरण की स्फुरणा यावत् मन में संकल्प-विकल्प उत्पन्न हुए ॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब प्रथम निर्ग्रन्थों के विचारों का स्वरूप कहते हैं।

अहो! —आश्चर्य है कि श्रेणिक राजा महा-ऋद्धि-महादीप्ति-शाली और महासुखों का अनुभव करने वाला है। जिसने स्नान बलिकर्म कौतुक मंगल और प्रायश्चित्त किया है। समस्त भूषणों से अलंकृत होकर चेल्लणा देवी के साथ उत्तम मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगता हुआ विचरता है।

हमने देवलोक में देवों को नहीं देखा है किन्तु यही साक्षात् देव है।

यदि इस तप-नियम और ब्रह्मचर्य-गुप्ति की कोई फल सिद्धि है अर्थात् अनशन आदि तप, अभिग्रह लक्षण, नियम, मैथुन-निवृत्ति रूप ब्रह्मचर्य—इनके परिपालन में सुचरित रूप में आचरण करने में यदि कोई भी फल की प्राप्ति है तो हम भी भविष्यत् में इस प्रकार के उदार काम भोगों को भोगते हुए विचरें।

यह मुनियों का चिन्तन रूप निदान है।

अब चेल्लणा देवी को देखकर निर्ग्रन्थियों के मन में उत्पन्न हुए विचारों का वर्णन करते हैं।

महारानी चेल्लणा देवी को देखकर साध्वियाँ विचार करती है कि—आश्चर्य है कि यह चेल्लणा देवी महाऋद्धि, महादीप्तिवाली और महासुखवाली है। यह स्नान कर, बलि कर्म कर, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त कर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित होकर श्रेणिक राजा के साथ उत्तमोत्तम भोगों को भोगती हुई विचरण करती है।

हमने देवलोक में देवियाँ नहीं देखी है किन्तु यह साक्षात् देवी है।

यदि हमारे इस सुचरित तप-नियम और ब्रह्मचर्य का कोई कल्याणकारक विशेष फल हो तो हम भी आगामी काल में इस प्रकार के उत्तम भोगों को भोगती हुई विचरण करें।

यह साध्वियों का चिन्तन रूप निदान है।

अनंतर क्या हुआ जो कहते हैं—

हे आर्यो! इस प्रकार से श्रमण भगवान् महावीर उन बहुत से साधु और साध्वियों को संबोधन करके कहने लगे कि—श्रेणिक राजा और चेल्लणा देवी को देखकर तुमलोगों के मन में इस प्रकार की आध्यात्मिक संकल्प हुआ—

"आश्चर्य है—श्रेणिक राजा इतना महाऋद्धि और महासुख संपन्न है और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगता हुआ विचरता है तो यदि हमारे सुचरित तप-नियम और ब्रह्मचर्य पालन का सुफल है तो हमको भी भवान्तर में ऐसे भोग मिले।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"साध्वियों के मन में इस प्रकार का संकल्प हुआ है कि—"यह चेल्लणा देवी महाऋद्धिशाली है, महासुखवाली है और मनुष्य संबंधी कामभोगों को भोगती है। यदि हमारे सुचरित, तप, नियम और ब्रह्मचर्य पालन का सुफल हो तो हम भी भवान्तर में ऐसे भोगों को प्राप्त करे।"

हे आर्यो! तुम लोगों के मन में ऐसे विचार हुए, क्या यह सच है? उन्होंने उत्तर दिया कि—हे भदन्त! जैसे आप फरमाते हैं—वह ऐसा ही है।

अनंतर भगवान् ने जो कहा सो कहते हैं—

हे आयुष्यमान् श्रमणो! इस प्रकार मैंने श्रुतचारित्र रूप धर्म प्रतिपादन किया है। यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है अर्थात् यथार्थ है। सर्वोपरिवर्तमात्र है। सर्वार्थ संपन्न है। अद्वितीय है। समस्त दोषों से रहित है। न्याययुक्त है। अथवा मोक्ष की ओर ले जाने में समर्थ है।

माया-निदान-मिथ्यादर्शन रूप तीन शल्य को काटने वाला है। सिद्धि का मार्ग है। सकल कर्मों का क्षयलक्षण मुक्ति का मार्ग है। मोक्ष का मार्ग है। सकल दुःख की निवृत्ति का मार्ग है।

यथार्थ है। संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रूप तीन दोषों से रहित है। शारीरिक मानसिक आदि असाता के विनाश का कारण है। इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में रहे हुए जीव कृतकृत्य होकर सिद्ध हो जाते हैं।

विमल केवल आलोक से सकल लोकालोक को जानते हैं। कर्म बंधन से मुक्त हो जाते हैं। समस्त शारीरिक सब दुःखों का नाश करते हैं।

इस विषय में और भी कहते हैं—

जिस धर्म को ग्रहण आसेवन रूप शिक्षा के लिए उपस्थित हुआ निर्ग्रन्थ-साधु भूख, प्यास, शीत और उष्ण आदि नाना प्रकार के परीषहों को ग्रहण करता है, उसके चित्त में यदि मोह कर्म के उदय से काम विकार उत्पन्न हो जाय तो भी साधु संयम मार्ग में पराक्रम करे।

पराक्रम करता हुआ वह साधु देखता है कि ये उत्तम माता-पिता के वंश में उत्पन्न हुए भोग पुत्र—जिनको ऋषभदेव भगवान् ने लोगों में गुरुपने स्थापित किये—उनमें से ऐश्वर्य संपन्न किसी एक को दास-दासी ठाटबाट पूर्वक आते-जाते देखकर साधु निदान कर्म करता है।

अब भगवान् के उपदेश की सफलता का वर्णन करते हैं।

निदान कर्म और उसके फल का निरूपण करने के बाद निदान कर्म के विचार करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से इस पूर्वोक्त अर्थ को सुनकर और हृदय में धारण कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन और नमस्कार करते है। फिर उसी समय उस निदान रूप पापस्थान की आलोचना करते हैं अर्थात् भगवान् के समीप तद्विषयक पाप का प्रकाशन करते हैं, और प्रतिक्रमण करते हैं, निदान कर्म से विमुख होते हैं अर्थात् निदान कर्म को वोसराते है, यथायोग्य तप रूप प्रायश्चित को स्वीकार करते हैं।

.३ नवमां निदान कर्म—

(क) एवं खलु समणाउसो मए धम्मे पण्णत्ते जाव से य परक्कममाणे दिव्व-माणुस्सएहिं कामभोगेहिं निव्वेयं गच्छेज्जा, मणुसगा खलु कामभोगा अधुवा असासया जाव विप्पजहणिज्जा दिव्वावि खलु कामभोगा अधुवा जाव पुणराग-मणिज्जा।

संति इमस्स तवनियम जाव वयमवि आगमेस्साणं जाइं इमाइं भवंति अंतकुलाणि वा पंतकुलाणि वा तुच्छकुलाणि वा दरिद्द-कुलाणि वा किवण-कुलाणि वा भिक्खाग-कुलाणि वा एसिं णं अण्णतरंसि कुलंसि पुमत्ताए एस मे आया परियाए सुणीहड भविष्यति। से तं साहू।

—दशासु० द १०

हे आयुष्मन्! श्रमण! इस प्रकार मैंने धर्म प्रतिपादन किया है। वह निर्ग्रन्थ धर्म में पराक्रम करता हुआ देव और मनुष्य संबंधी काम-भोगों के विषय में वैराग्य प्राप्त करता है। मनुष्यों के कामभोग अनिश्चित और अनित्य है, अतः किसी न किसी समय अवश्य छोड़ने होंगे। देवों के काम-भोग भी इसी तरह अनिश्चित और बार-बार आने वाले होते हैं। यदि इस तप-नियम का कुछ फल विशेष है तो आगामी काल में जो ये नीच, अधम, तुच्छ, दरिद्र, कृपण और भिक्षुक कुल है इनमें से किसी एक कुल में पुरुष रूप में यह हमारी आत्मा उत्पन्न हो जाय—जिससे यह दीक्षा के लिए सुख पूर्वक निकल सकेगी। यही ठीक है।

(ख) एवं खलु समणाउसो! निग्गंथो वा (निग्गंथी वा) णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइय अप्पडिकंते सव्वं तं चेव। से णं मुंडे भवित्ता आगा-राओ अणगारियं पव्वइज्जा? हंता, पव्वइज्जा।

से णं तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झेज्जा जाव सव्व दुक्खाणं अंतं करेज्जा णो तिणट्ठे समट्ठे।

—दसासु० द १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्मन् ! श्रमण ! इस प्रकार निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी निदान कर्म करके उसका उसी स्थान पर बिना आलोचना किये और उससे बिना पीछे हटे—शेष वर्णन पूर्ववत् ही है। क्या वह मुण्डित होकर और घर से निकलकर दीक्षा-धारण कर सकता है ? किन्तु वह उसी जन्म में भव ग्रहण (बार बार जन्म-ग्रहण) को सिद्ध कर सके और सब दुःखों का अंत कर सके—यह बात संभव नहीं है।

(ग) से णं भवति से जे अणगारा भगवंतो इरिया-समिया भासासमिया जाव बंभयारी तेणं विहारेणं विहरमाणे बहूइं वासाइं परियागं पाउणइ २त्ता आबाहंसि वा उप्पन्नंसि वा जाव भत्ताइं पच्चक्खाएज्जा ? हंता पच्चक्खाएज्जा। बहूइं भत्ताइं अणसणाइं छेदिज्जा ? हंता छेदिज्जा। आलोइय पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति।

एवं खलु समणाउसो तस्स निदाणस्स इमेयारूवे पावफल-विवागे जं णो संचाएति तेणेव भवग्गहणे णं सिज्झेज्जा जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेज्जा।

दसासु० द १०

फिर वह उनके समान हो जाता है जो अनगार, भगवंत ईर्यासमिति वाले, भाषा समिति वाले, ब्रह्मचारी होते हैं और वह इस विहार से विचरण करता हुआ बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्यायका पालन करता है और पालन कर व्याधिकेउत्पन्न होने पर या न होनेपर यावत् बहुत भक्तों के अनशन व्रत को धारण करता है। फिर अनशन व्रत का पालन कर अपने पाप की आलोचना कर पाप से पीछे हट के समाधि को प्राप्त कर कालमास में काल करके किसी एक देवलोक में देवरूप हो जाता है

हे आयुष्यमन् ! श्रमण ! इस प्रकार उस निदान कर्म का पापरूप यह फलविपाक होता है कि जिससे उसके करने वाला उसी जन्म में सिद्ध और सर्व दुःखों के अन्त करने में समर्थ नहीं हो सकता।

·४ निदान रहित संयम का फल

एवं खलु समणाउसो मए धम्मे पण्णत्ते इणमेव निग्गंथ पावयणे जाव से य परक्कमेज्जा सव्व-काम-विरत्ते, सव्व-राग-विरत्ते, सव्व-संगातीते, सव्वहा सव्व-सिणेहातिक्कंते, सव्व-चरित्त-परिवुड्ढे।

दसासु० द १०

हे आयुष्मान् ! श्रमण ! इस प्रकार मैंने धर्म प्रतिपादन किया है। यह निर्ग्रन्थ प्रवचन यावत् सर्व दुःखों का अन्त करने वाला होता है। वह संयम-अनुष्ठान में पराक्रम करता हुआ सब रागों से विरक्त होता है, सब कामों से विरक्त होता है। सब तरह के संग से रहित होता है और सब प्रकार के स्नेह से रहित और सब प्रकार के चरित्र में परिवृद्ध (दृढ़) होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्सण भगवंतस्स अनुत्तरेणं णाणेणं अणुत्तरेणं दंसणेणं अणुत्तरेणं परि-निव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवल-वर- णाण दंसणे समुप्पज्जेज्जा।

दसासु० द १०

उस भगवान् को अनुत्तर ज्ञान से, अनुत्तर दर्शन से और अनुत्तर शांति मार्ग से अपनी आत्मा की भावना करते हुए अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, संपूर्ण, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान और केवल दर्शन की उत्पत्ति हो जाती है।

ततेणं से भगवं अरहा भवति, जिणे, केवली, सव्वण्णू, सव्वदंसी, सदेव-मणुयासुराए जाव बहूइं वासाइं केवली परियागं पाउणइपाउणइत्ता अप्पणो आउसेसं आभोएइ आभोएइत्ता भोत्तं पच्चक्खाएइ२त्ता बहूइं भत्ताइं अणसणाइं छेदेइ२त्ता तओ पच्छा चरमेहिं ऊसास—नीसासेहिं सिज्झति जावसव्वदुक्खा णमंतं करेति।

दसासु० द १०

तत्पश्चात् वह भगवान्, अर्हन्, जिन, केवली, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होता है। फिर वह देव, मनुष्य और असुरों की परिषद् में उपदेश आदि करता हैं।

इस प्रकार बहुत वर्षों तक केवली-पर्याय का पालन करके अपनी शेष आयु को अव-लोकन कर भक्त का प्रत्याख्यान करता है और प्रत्याख्यान करके बहुत भक्तों के अनशन व्रत का छेदन कर अन्तिम उच्छ्वास और निश्वासों द्वारा सिद्ध होता है और सब दुःखों का अंत कर देता है।

एवं खलु समणाउसो! तस्स अणिदाणस्स इमेयारूवे कल्लाण-फलविवागे जं तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्व-दुक्खाणं अंतं करेति।

दसासु० द १०

हे आयुष्मन्त! श्रमणो! उस निदान रहित क्रिया का यह कल्याण रूप फल-विपाक होता है कि जिससे उसी जन्म में भवग्रहण से सिद्ध हो जाता है और सब दुःखों का अंत कर देता है।

भगवान् के निदान व अनिदान रूप उपदेश को सुनकर बहुत से साधु और साध्वियों की आत्म शुद्धि का विवेचन—

ततेणं बहवे निग्गंथा य निग्गंथीयो य समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म समणं भगवं महावीरं वंदंति नमसंति वंदित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमंसित्ता तस्स ठाणस्स आलोयंति पडिक्कमंति जाव अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जंति

दसासु० द १०

तत्पश्चात् बहुत से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के इस अर्थ को सुनकर और हृदय में विचार कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करते हैं, उनको नमस्कार करते हैं। फिर वन्दना और नमस्कार कर उसी समय उसकी आलोचना करते हैं, और पाप-कर्म से पीछे हट जाते हैं। यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तपकर्म में लग जाते हैं।

४. पुरुष के कष्टों को देखकर स्त्री-जन्म को अच्छा समझकर स्त्री बनने का निदान किया—

दुक्खं खलु पुमत्ताए, जे इमे उग्गपुत्ता महामाउया भोगपुत्ता महामाउया एतेसिं णं अण्णतरेसुउच्चावएसु महा-समर-संगामेसु उच्चावयाइं सत्थाइं उरसि चेव पडिसं वेदेति।

तं दुक्खं खलु पुमत्ताए। इत्थि-तणयं तं साहु। जइ इमस्स तव-नियम-बंभचेर-वासस्स फलवित्तिविसेसे अत्थि वयमवि आगमेस्साणं इमेतारूवाइं उरालाइं इत्थि-भोगाइं भुंजिस्सामो सेतं साहु।

—दसासु० द १०

संसार में पुरुषत्व, निश्चय ही कष्टकर है। जो ये उग्रपुत्र महामातृक और भोगपुत्र महामातृक है उनको किसी न किसी बड़े या छोटे महायुद्ध में छोटे या बड़े शस्त्र से छाती में विद्ध होना पड़ता है। अतः पुरुष होना महाकष्ट है और स्त्री होना अत्युत्तम।

यदि इस तप-नियम और ब्रह्मचर्यवान् का कुछ विशेष फल है तो हम भी आगामी काल में यावत् इस प्रकार के प्रधान स्त्रियों के काम-भोगों को भोगते हुए विचरण करेंगे।

यह हमारा विचार श्रेष्ठ है।

निदान कर्म करने वाले भिक्षु के स्त्री बनने का अधिकार—

एवं खलु समणाउसो णिग्गंथे णिदाणंकिच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइय अप्पडिक्कंते जाव अपडिवज्जित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति।

से णं तत्थ देवे भवति महड्ढिए जाव विहरति। से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं जाव अणंतरं चयंचइत्ता अण्णतरंसि कुलंसि दारियत्ताए पच्चायाति।

—दसासु० द १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्मान् श्रमण ! इस प्रकार निर्ग्रन्थ निदान कर्म करके और उस समय बिना गुरु से उसके विषय में आलोचना किये हुए बिना उससे पीछे हटे और बिना अपने दोष को स्वीकार किये हुए या बिना प्रायश्चित्त धारण किये मृत्यु के समय काल करके किसी एक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होता है। वह वहाँ देवों के बीच में ऐश्वर्य शाली देव होकर विचरता है।

तदनन्तर वह आयु और देवभव के क्षय होने के कारण बिना अंतर से देव शरीर को छोड़कर किसी एक कुल में कन्या रूप से उत्पन्न होता है।

.४—५ निदान-कुमारों की ऋद्धि को देखकर साधु के निदान करने के विषय का विवेचन—

तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंच अवुत्ता चेव अब्भुट्ठइ—भण देवाणुप्पिया किं करेमो ? किं उवणेमो ? किं आहरेमो ? किं आचिट्ठामो ? किं मेहियइच्छियं ? किं ते आसगस्स सदति ? जं पासित्ता णिग्गंथे णिदाणं करेति।

—दसासु० द १०/सू १६ से

उग्रकुल और भोगपुत्रों को देखकर भिक्षुक भी निदान कर्म कर बैठता है।

अस्तु उसके एक दास को बुलाने पर चार या पाँच अपने आप बिना बुलाये ही उपस्थित हो जाते हैं और कहने लगते हैं—हे देवानुप्रिय ! कहिये हम क्या करें ? क्या भोजन आपको करावे ? कौन सी वस्तु लावें। शीघ्र कहिए, हम क्या करें ? आपके हृदय में क्या इच्छा है ? आपके मुख को कौन सी वस्तु स्वादिष्ट लगती है, जिसको देखकर निर्ग्रन्थ निदान कर्म करता है।

जइ इमस्स तव नियम-संजय-बंभचेर-वासस्स तं चेवं जाव साहु। एवं खलु समणाउसो निग्गंथे णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइय अप्पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णतरे देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। महड्ढिएसु जाव चिरट्ठितिएसु।

ततो देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतर चयं चइत्ता जे इमे उग्ग-पुत्ता महामाउया भोगपुत्ता महा-माउया तेसिं णं अन्नतरंसि कुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाति।

—दसासु० द १०

जब निर्ग्रन्थ उक्त उग्र और भोग पुत्रों को देखकर अपने चित्त में संकल्प करता है यदि इस तप, नियम और ब्रह्मचर्य का पूर्वोक्त फल है यावत् ठीक है। हे चिरंजीवी श्रमणो !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार निर्ग्रन्थ निदान कर्म करके उस स्थान का बिना आलोचन किये उससे बिना पीछे हटे मृत्यु के समय काल करके किसी एक देवलोक में देवत्व से उत्पन्न हो जाता है। महर्द्धिक यावत् चिरस्थिति वाले देवलोक में महर्द्धिक और चिरस्थिति वाला देव हो जाता है। वह फिर उस देवलोक से आयु, भव और स्थिति के क्षय होने के कारण बिना किसी अन्तर के देव शरीर को त्याग कर जो ये महामातृक उग्र और भोगकुलों के पुत्र हैं उनमें से किसी एक कुल में पुत्ररूप से उत्पन्न होता है।

से णं तत्थ दारए भवति सुकुमाल-पाणि-पाए जाव सरूवे। ततेणं से दारए उम्मुक्क-बालभावे विण्णाय-परिण्णायमित्ते जोवणगमणुप्पत्ते सयमेव पेइयपडिवज्जति। तस्स णं अतिजायमाणस्स वा पुरओ जाव महं दासीदासं जाव किं ते आसगस्स सदति।

—दसासु० द १०

अब वह उक्त कुलों से किसी एक कुल में बालक रूप से उत्पन्न होता है तो उसकी आकृति अत्यन्त सुन्दर होती है और हाथ और पैर अत्यन्त सुकुमार होते हैं।

तदनन्तर वह बालभाव को छोड़कर विज्ञभाव और यौवन को प्राप्त कर अपने आप ही पैतृक संपत्ति का अधिकारी बन जाता है। फिर वह घर में प्रवेश करते हुए (और घर से बाहर निकलते हुए) अनेक दास और दासियों से घिरा रहता है और वे दास और दासियाँ पूछते हैं कि श्रीमान् को कौन-सा पदार्थ अच्छा लगता है।

कुमार के धर्म सुनने की अयोग्यता का वर्णन और निदान कर्म के अशुभ फल-विपाक का विवेचन

तस्सणं तहप्पगारस्स पुरिसजातस्स तहारूवे समणे वा माहणे वा उभओ कालं केवलि-पन्नत्तं धम्ममातिक्खेज्जा? हंता? आइक्खेज्जा, से णं पडिसुणेज्जा णो इणट्ठे समट्ठे। अभविए णं से तस्स धम्मस्स सवणाए। से य भवइ महिच्छे महारंभे महापरिग्गहे अहम्मिए जाव दाहिणगामी नेरइय आगमिस्साणं दुल्लह-बोहिए यावि भवति।

तं एवं खलु समणाउसो! तस्स णिदाणस्स इमेतारूवे फलविवागे जं णो संचाएति केवलिपन्नत्तं धम्मं पडिसुणित्तए।

—दसासु० द १०

प्र०—क्या इस प्रकार निदान कर्मवाला भोगी पुरुष तथा रूप श्रमण या माहण से दोनों समय केवलिप्रतिपादित धर्म सुन सकता है।

उत्तर—हाँ! श्रमण या माहण उसको धर्म तो सुना सकते हैं। किन्तु वह निदानकर्म के कारण धर्म सुन नहीं सकेगा। क्योंकि वह उस धर्म के सुनने के योग्य नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह उत्कट इच्छा वाला, बड़े-२ कामों का आरंभ करनेवाला, अधार्मिक, दक्षिण पथगामी नारकी और दूसरे जन्म में दुर्लभ-बोधि होता है।

हे चिरजीवी श्रमणो ! इस प्रकार उस निदान कर्म का इस प्रकार प परुप फल होता है कि जिससे आत्मा में केवलि-प्रतिपादित धर्म सुनने की शक्ति नहीं रहती।

नोट—अतः निदान कर्म सर्वथा हेय रुप है। इसके तीन भेद होते हैं—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। यहाँ उत्कृष्ट निदान कर्म करने वाला जीव ही धर्म-श्रवण करने योग्य नहीं बताया गया है, शेष नहीं। मध्यम और जघन्य रस वाले जीव निदान कर्म के उदय होने के पश्चात् धर्म श्रवण या सम्यक्त्वादि की प्राप्ति कर सकते हैं।

इसमें कृष्ण वासुदेव या द्रौपदी आदि के अनेक शास्त्रीय प्रमाण विद्यमान है।

निर्ग्रन्थी के किसी सुन्दर युवती को देखकर निदान कर्म करने का वर्णन—

द्वितीय निदान—

एवं खलु समणाउसो मए धम्मे पण्णत्ते, इणमेव निग्गंथे पावयणे जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति। जस्स णं धम्मस्स निग्गंथी सिक्खाए उवट्ठिया विहरमाणी पुरा दिगिंच्छाए उदिण्ण-काम-जाया विहरेज्जा, सा य परक्कमेज्जा, सा य परक्कममाणी पासेज्जा से जा इमा इत्थिया भवति एगा एगजाया एगाभरण-पिहिणा तेल्ल-पेला इवा सुसंगोविता चेला-पेला इवा सुसंपरिग्गहिया रयण-करंडग-समाणी, तीसे णं अतिजायमाणीए वा निज्जायमाणीए वा पुरतो महं दासी-दास चेव जाव किंभे आसगस्स सदति जं पासित्ता निग्गंथी, णिदाणं करेंति।

दसासु० द १०

हे आयुष्मान् ! श्रमण ! इस प्रकार मैंने धर्म प्रतिपादन किया है। यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य है और सब दुःखों को विनाश करता है। जिस धर्म की शिक्षा के लिए उप-स्थित निर्ग्रन्थी विचरती हुई पूर्व बुभुक्षा के कारण से उदीर्ण काया (काम भोगों की उत्कृष्ट इच्छा होने से) होकर भी संयम मार्ग में पराक्रम करती है। और फिर पराक्रम करती हुई स्त्री गुणों से युक्त किसी स्त्री को देखती है। जो अपने पति की एक ही पत्नी है, जिसने एक ही जाति के वस्त्र और आभूषण पहने हुए हैं। जो तेल की पेटी के समान अच्छी प्रकार से रक्षित है और वस्त्र की पेटी की तरह भली-भांति ग्रहण की गई है, जो रत्नों की पिटारी के समान आदरणीय और प्यारी है तथा जो घर के भीतर और घर से बाहर जाते हुए अनेक दास और दासियों से घिरी रहती है और जिसकी दास लोग हर समय प्रार्थना करते रहते हैं कि आपको कौनसा पदार्थ अच्छा लगता है—उसको देखकर निर्ग्रन्थी निदान करती है।

निर्ग्रंथी का निदान कर्म करके फिर देवलोक जाने के अनन्तर मानुष-लोक में कुमारी बनना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतिइमस्स सुचरियस्स तव-नियम-संजय-बंभचेर जाव भुंजमाणी विह-रामि से तं साहुणी।

—दसासु० द १०

इस पवित्र आचार, तप, नियम और ब्रह्मचर्य का कोई फल विशेष है तो मैं भी इसी प्रकार के सुखों का अनुभव करूँगी। यही आशा ठीक है।

निर्ग्रन्थी के द्वारा कृत निदान कर्म का फल—

एवं खलु समणाउसो। निग्गंथी णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणा-लोइय अप्पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उव-वत्तारो भवति। महड्ढिएसु जावसाणं तत्थ देवे भवति। जाव भुंजमाणी विहरति।

तस्सणं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता जे इमे भवंति उग्गपुत्ता महामाउया भोगपुत्ता महामाउया एतेसिणं अण्णत्तरंसि कुलंसि दारियत्ताए पच्चायाति।

सा णं तत्थ दारिया भवति सुकुमाला जाव सरूवा।

दसासु० द० १०

हे आयुष्मन्! श्रमण! इस प्रकार निर्ग्रन्थी निदान करके और उसका बिना गुरु से आलोचन किये तथा बिना उससे पीछे हटे मृत्यु के समय काल करके देवलोकों में से किसी एक में देवरूप से उत्पन्न हो जाती है। वह ऐश्वर्य शाली देवों में देव हो जाती है। वहाँ सम्पूर्ण दैविक सुखों का अनुभव करती हुई विचरती है। फिर वह देवलोक से आयु, भव और स्थिति के क्षय होने के कारण बिना अन्तर के देव शरीर को छोड़कर, जो ये उग्र और भोगकुलों में महामातृक और भोगों के अनुरागी पुत्र हैं उनमें से किसी एक कुल में कन्या रूप से उत्पन्न हो जाती है। वहाँ वह सुकुमारी और रूपवती बालिका होती है।

निदान कृत कुमारी की यौवनावस्था और उसके विवाह का वर्णन—

ततेणं तं दारियं अम्मापियरो आमुक्कबाल-भावं विण्णाय-परिणयमित्तं जोवणगमणुप्पत्तं पडिरूवेणं सुक्केणं पडिरूवस्स भत्तारस्स भारियत्ताए दलयंति। सा णंतस्स भारिया भवति एगा एगजाया इट्ठा कंता जाव रयण-करंडग-समाणा।

तीसे जाव अतिजायमाणीए व निज्जायमाणीए वा पुरतो महं दासी-दास जावकिं ते आस गस्स सदति।

—दसासु० द १०

इसके अनन्तर जब कन्या बालभाव को छोड़कर विज्ञान में परिपक्व हो जाती है और युवावस्था में पदार्पण करती है तो उसके माता-पिता तदुचित दहेज के साथ उसको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके समान भर्ता को दे देते हैं। वह उसकी भार्या हो जाती है। वह अपने पति की एक मात्र पत्नी होती है अर्थात् घर में उसकी सपत्नी नहीं होती वह अपने पति की प्रेयसी और वल्लभा होती है।

वह रत्नों की पेटी के समान मनोहर तथा प्यारी होती है।

जिस समय वह घर के भीतर और घर से बाहर जाती है तो उसके साथ अनेक दास और दासियाँ होते हैं और वे प्रार्थना में रहते हैं कि आपको कौनसा पदार्थ रूचिकर है।

धर्म के श्रवण करने की अयोग्यता और उसका फल

तीसेणं तहप्पगाराए इत्थियाए तहारूवे समणे माहणे वा उभयकालं केवलि-पण्णत्तं धम्मं आइक्खेज्जा, सा णं भंते ? पडिसुणेज्जा णो इणट्ठे समट्ठे, अभवियाणं सा तस्स धम्मस्स सवणयाए, साय भवति महिच्छा, महारंभा, महापरिग्गहा अहम्मिया जाव दाहिणगामिए णेरइए आगमिस्सए दुल्लभ-बोहियावि भवति।

एवं साधु समणाउसो ! तस्स निदाणस्स इमेयारूवे पाव-कम्म-फल-विवागं जं णो संचाएति केवलिपण्णत्तं पडिसुणित्तए।

—दसासु० द १०

उस इस प्रकार की स्त्री को क्या तथा रूप श्रमण तथा श्रावक केवलिके प्रतिपादित धर्म को कहे ? हाँ ! कहे किन्तु वह उसको सुने—यह बात संभव नहीं वह उस धर्म को सुनने के अयोग्य है ? क्योंकि वह तो उत्कट इच्छा वाली, बड़े-२ कार्य आरंभ करने वाली बड़े परिग्रह वाली, अधार्मिक, दक्षिणगामी नारकी और भविष्य में दुर्लभ-बोधि कर्म के उपार्जन करने वाली हो जाती है।

हे आयुष्मन् ! श्रमण ! इस प्रकार निदान कर्म का यह पाप रूप फल विपाक होता है कि उसके करने वाली स्त्री में केवलिभाषित धर्म सुनने की भी शक्ति नहीं रहती।

तीसरा निदान—

साधु ने किसी सुखी स्त्री को देखकर निदान कर्म का संकल्प किया।

एवं खलु समणाउसो। मय धम्मे पण्णत्ते, इणमेव निग्गंथे पावयणे जाव अंतं करेंति। जस्सणं धम्मस्स सिक्खाए निग्गंथे उवट्ठिते विहरमाणे पुरादि-गिच्छाए जाव से य परक्कममाणे पासिज्जा इमा इत्थिया भवति एगा एगजाया जावकिते आसगस्स सदति। जं सपासित्ता निग्गंथं णिदाणं करेति।

दसासु० द १०

हे आयुष्मन् ! श्रमण ! इस प्रकार मैंने धर्म प्रतिपादन किया है। वह निर्ग्रन्थ प्रवचन सब दुःखों का विनाश करने वाला है। जिस धर्म की शिक्षा के लिये उपस्थित होकर विचरता हुआ निर्ग्रन्थ चिन्ता से पूर्व भूख आदि परिषहों को सहन करता हुआ और पराक्रम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता हुआ देखता है कि यह स्त्री अकेली ही अपने घर का ऐश्वर्य लूट रही है, इसकी कोई सपत्नी (सौकन) नहीं है। इसके दास और दासियाँ हमेशा इसकी प्रार्थना करते हैं कि आपके मुख को कौन सा पदार्थ रुचिकर है। उसको देखकर निर्ग्रन्थ निदान कर्म करता है।

निदान का फल—

धर्म सुनने की अयोग्यता और उसके फल का विवेचन—

तस्सणं तहाप्पगारस्स पुरिसजातस्स तहारूवे समणेवा माहणेवा जाव पडिसुणिज्जा ? हंता ! पडिसुणिज्जा ? से णं सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा णो तिणट्ठे समट्ठे। अभविएणं से णं तस्स सद्दहणत्ताए।

से य भवति महिच्छे जाव दाहिणगामी णेरइए आगमेस्साणं दुलभ-बोहिए यावि भवति।

एवं खलु समणाउसो तस्स णिदाणस्स इमेतारूवे पावए फलविवागे जं णो संचाएति केवलि-पण्णत्तं धम्मं सद्दहित्तए वा पत्तियतएवा रोइत्तए वा।

—दसासु० द १०

यदि इस प्रकार के पुरुष को कोई तथारूप श्रमण या माहण धर्मकथा सुनाये तो वह सुन लेगा—किन्तु यह संभव नहीं है कि वह उसमें श्रद्धा, विश्वास और रूचि करे, क्योंकि निदान कर्म के प्रभाव से वह श्रद्धा करने के अयोग्य हो जाता है। वह तो बड़ी-बड़ी इच्छाओं वाला हो जाता है और परिणाम में दक्षिणगामी नारकी तथा जन्मान्तर में दुर्लभ बोधि होता है।

हे आयुष्मन् ! श्रमण ! उस निदान कर्म का इस प्रकार पापरूप फलविपाक होता है कि जिससे वह केवली भगवान् के कहे हुए धर्म में श्रद्धा विश्वास और रुचि की शक्ति भी नहीं रखता।

छट्ठा निदान कर्म—

एवं खलु समणाउसो मए धम्मे पण्णत्ते तं चेव। से य परक्कमेज्जा, परक्कममाणे माणुस्सएसु कामभोगेसु निव्वेदं गच्छेज्जा, माणुस्सगा खलु कामभोगा अधुवा अणितिया।

तहेय जाव संतिउड्ढं देवा देवलोगंसि ते णं तत्थ णो अण्णेसिं देवाणं अण्णंदेवि अभिजुंजिय परियारेति।

अप्पणो चेव अप्पाणं विउव्वित्ता परियारेति। अप्पणिज्जियावि देवीए अभिजुंजिय परियारेति।

जइ इमस्स तव-नियम-तं चेव सव्वं जाव सेणं सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा—णोतिणट्ठे समट्ठे।

—दसासु० द १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्यमान् ! श्रमण ! इस प्रकार मैंने धर्म प्रतिपादन किया है। यही निर्ग्रन्थ वचनयावत् सत्य और सब दुःखों का नाश करने वाला है। जिस धर्म की शिक्षा के लिए उपस्थित होकर विचरता हुआ निर्ग्रन्थ (अथवा निर्ग्रन्थी) बुभुक्षा आदि यावत् काम-भोगों के उदय होते हुए भी संयममार्ग में पराक्रम करे। और पराक्रम करता हुआ मनुष्य संबंधी काम-भोगों में विरक्त होता है क्योंकि मनुष्य के काम-भोग अनियत और विनाशी है। ऊपर देवलोकों में जो देवता है वे अन्य देवों की देवियों के साथ मैथुनोपभोग नहीं करते। किन्तु अपनी ही आत्मा से देव और देवियों के भिन्न स्वरूप धारण कर काम क्रीड़ा करते हैं अथवा अपनी देवियों को वश में करके उनको काम-भोगों में प्रवृत्त कराते हैं।

यदि इस तप-नियम का इत्यादि सब पूर्ववत् ही है वह व्यक्ति केवलि भाषित धर्म पर श्रद्धा करे, विश्वास करे और उसमें रूचि करे, यह संभव नहीं है अर्थात् वह धर्म पर श्रद्धा आदि नहीं कर सकता।

निदान का फल—

धर्म सुनने की अयोग्यता और उसके फल का विवेचन—

तस्सणं तहाप्पगारस्स पुरिसजातस्स तहारूवे समणेवा माहणेवा जाव पडिसुणिज्जा ? हंता ! पडिसुणिज्जा ? से णं सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा णो तिणट्ठे समट्ठे। अभविएणं, से णं तस्स सद्दहणत्ताए।

से य भवति महिच्छे जाव दाहिणगामी णेरइए आगमेस्साणं दुल्लभ बोहिए यावि भवति।

एवं खलु समणाउसो तस्स णिदाणस्स इमेतारूवे पावए फलविवागे जं णो संचाएति केवलि पण्णत्तं धम्मं सद्दहित्तए पत्तियत्तए वा रोइतएवा।

—दसासु० द १०

यदि इस प्रकार केपुरुष को कोई तथा रूप श्रमण या माहण धर्म कथा सुनायें तो वह सुन लेगा—किन्तु यह संभव नहीं है कि वह उसमें श्रद्धा, विश्वास और रूचि करे, क्योंकि निदान कर्म के प्रभाव से वह श्रद्धा करने के अयोग्य हो जाता है। वह तो बड़ी-बड़ी इच्छाओं वाला हो जाता है और परिणाम में दक्षिणगामी नारकी तथा जन्मान्तर में दुर्लभ बोधिक होता है।

हे आयुष्यमन् ! श्रमण। उस निदान कर्म का इस प्रकार पापरूप फलविपाक होता है कि जिससे वह केवली भगवान् के कहे हुए धर्म में श्रद्धा, विश्वास और रुचि की शक्ति भी नहीं रखता।

अन्यतीर्थियों और निदान कर्म का फल—

अण्णतइ रुइ —मादाए से य भवति। से जे इमे आरणिया आवसहिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गामांतिया कण्हुइ रहस्सि-णो बहु संजया णोबहु विरया सव्व-पाणया भूय-जीव सत्तेसु अप्पणा सच्चामोसाइं एवं विपडिवदंति अहं ण हंतव्वो अण्णे हंतव्वा अहं ण अज्झावेतव्वो अण्णे अज्झावेतव्वा अहं ण परियावेयव्वो अण्णे परियावेयव्वा अहं ण परिवेतव्वो अण्णे परिवेतव्वा अहं ण उवद्दवेयव्वो अण्णे उवद्दवेयव्वा।

एवामेव इत्थिकामेहिं मुच्छिया गढिया गिद्धा अज्झोववण्णा जाव काल-मासे कालं किच्चा अण्णतराइं असुराइं किब्बिसियाइं ठाणाइं उववत्तारो भवति।

ततो विमुच्चमाणा भुज्जो एल-मूयत्ताए पच्चायंति। एवं खलु समणाउसो तस्स निदाणस्स जाव णो संचाएति केवलि-पण्णत्तं धम्मं सद्दहित्तए वा।

—दसासु० द १०

उसकी जैन दर्शन से अन्य दर्शनों में रुचि होती है, उस रुचि मात्रा से वह इस प्रकार का हो जाता है जैसे—ये अरण्यवासी तापस, पर्ण कुटियों में रहने वाले तापस, ग्राम के समीप रहने वाले तापस और गुप्त कार्य करने वाले तापस जो बहुसंयत नहीं है। जो बहुत विरत नहीं है और जिन्होंने सब प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों की हिंसासे सर्वथा निवृत्ति नहीं की है और अपने आप सत्य और मिथ्या से मिश्रित भाषा का प्रयोग करते हैं और अपने दोषों का दूसरों पर आरोपण करते हैं जैसे—मुझे मत मारो, दूसरों को मारो, मुझे आदेश मत करो, दूसरों को आदेश करो, मुझको पीड़ित मत करो, दूसरों को पीड़ित करो, मुझको मत पकड़ो, दूसरों को पकड़ो, मुझको मत दुखाओ, दूसरों को दुःखाओ।

इसी प्रकार हिंसा, मृषावाद और अदत्तानान में लगे रहते हैं और इनके साथ-साथ स्त्री संबंधी कामभोगों में मूर्च्छित रहते हैं, बंधे रहते हैं, लोलुप और अत्यन्त आसक्त रहते हैं—वे मृत्यु के समय काल करके किसी एक असुरकुमार याकिल्विष देवों के स्थानों में उत्पन्न हो जाते हैं। फिर वे उन स्थानों से छूटकर पुनः पुनः भेड़ के समान मूक (अस्पष्टवादी या गूंगा) बनकर मर्त्यलोक में उत्पन्न होते हैं।

हे आयुष्यमन् ! श्रमण ! उस निदान कर्म का पाप रूप यह फल हुआ कि उसके करने वाला केवली भगवान् के प्रतिपादित धर्म में भी श्रद्धा, विश्वास और रुचि नहीं कर सकता अर्थात् उसमें सम्यग् धर्म पर श्रद्धा करने की शक्ति भी नहीं रहती है।

सातवाँ निदान—

एवं खलु समणाउसो मएधम्मे पण्णत्ते। जाव माणुसगा खलु कामभोगा अधुवा, तहेव। संति उड्ढं देवा देवलोयंसि। णो अण्णेसिं देवाणं अण्णे देवे अण्णं देविं अभिजुंजिय परियारेंति। णो अप्पणो चेव अप्पाणं वेउव्विय परिया-रेंति, अप्पणिज्जिआओ देवीओ अभिजुंजिय परियारेंति संति इमस्स तवनि-यस्स, तं सव्वं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव एवं खलु समणाउसो ! निग्गंथो व निग्गंथी वा णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइय अप्पडिक्कंते तं जाव विहरति। दसासु द १०

हे आयुष्मन् ! श्रमण ! इस प्रकार मैंने धर्म प्रतिपादन किया है। यावत् मनुष्यों के कामभोग अनियत हैं, शेष पूर्ववत् ही हैं। ऊर्ध्व देवलोक में जो देव हैं वे अन्य देवों की देवियों से काम-उपभोग नहीं करते, अपनी ही आत्मा से विकुर्वणा (प्रकट) की हुई देवियों से मैथुन क्रिया नहीं करते किन्तु अपने ही देवियों को वश में करके उनको मैथुन में प्रवृत्त कराते हैं।

यदि इस तप-नियम का कोई फल है तो मैं भी देवलोक में अपनी ही देवी से काम-क्रीड़ा करने वाला बनूं। वह इस अपनी भावना के अनुसार देव बन जाता है और वहाँ बड़े ऐश्वर्य और सुखवाला देव हो जाता है। इत्यादि सब पूर्ववत् ही जान लेना चाहिए।

हे आयुष्मन् ! श्रमण ! निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी इस प्रकार निदान कर्म करके बिना उसी स्थान पर उसकी आलोचना किये और उससे बिना पीछे हटे कालमास में काल करके, देवरूप से विचरता है।

से तत्थणं अण्णेसिं देवाणं अण्णं देविं अभिजुंजिय परियारेति, णो अप्पणा चेव अप्पाणं वेउव्विय परियारेति, अप्पणिज्जाओ देवीओ अभिजुंजिय परियारेति, से णं ततो आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं तहेव वत्तव्वं। णवरं हंता सद्द-हेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा।

से णं सील-व्वत-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं पडिवज्जेज्जा णो तिणट्ठे समट्ठे, से णं दंसणसावए भवति।

—दसासु० द १०

टीका—सम्यक्त्वं तदाश्रित्य श्रावको निगद्यते।

वह वहाँ अन्य देवों की देवियों के साथ मैथुन क्रीड़ा नहीं करता, अपनी आत्मा से स्त्री-पुरुष के रूप विकुर्वणाकर अपनी कामतृष्णा को नहीं बुझाता है, किन्तु अपनी ही देवी के साथ मैथुन कर सन्तुष्ट रहता है।

तदनन्तर वह आयु, भव और स्थिति के क्षय होने से देवलोक में उत्पन्न होता है है इत्यादि सब वर्णन पूर्वोक्त निदान कर्मों के समान ही है, विशेषता केवल इतनी ही है कि वह केवलिभाषित धर्म में श्रद्धा, विश्वास और रूचि करने लग जाता है, किन्तु यह संभव नहीं है कि वह शील, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवासादि व्रतों को ग्रहण करे। वह दर्शन-श्रावक हो जाता है।

सम्यक्त्व के आश्रित होने के कारण उसको दर्शन श्रावक कहा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावक के धर्म का विवेचन—

अभिगत-जीवाजीवे जाव अट्ठि-मिञ्जा-पेमाणु-रागरत्ते अयमाउसो निग्गंथ-पावयणे अट्ठे एस परमट्ठे सेसे अणट्ठे। सेणं एतारूवेणं विहारेणं विहरमाणे बहूइं वासाइं समणोवासग-परियागं पाउणइ बहूइं वासाइं पाउणित्ता काल-मासे कालं किच्चा अण्णत्तरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवति।

एवं खलु समणाउसो तस्स णिदाणस्स इमेयारूवे पावए फल-विवागे जं णो संचाएति सील-व्वयं गुण-व्वयं-पोसहोववासाइं पडिवज्जित्तए।

दसासु० द १०

वह जीव और अजीव को जानता है और श्रावक के गुणों से संपन्न होता है, उसकी हड्डी और मज्जा में धर्म का अनुराग कूट-कूट कर भरा रहता है। हे आयुष्मन्! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन ही सत्य और परमार्थ है। शेष सब अनर्थ है।

इस प्रकार के विहार से विचरता हुआ बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक की पर्यायों का पालन करता है और फिर उस पर्याय का पालन कर मृत्यु के समय काल करके किसी एक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होता है।

हे आयुष्ममन्! श्रमण! इस प्रकार उस निदान कर्म का पाप रूप फलविपाक होता है, जिससे कर्म के करने वाले व्यक्ति में शील व्रत, गुणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवासादि ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न नहीं होती।

टीका—एवंविधगुणविशिष्टः स बहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकपर्यायं परि-पालयत्ति। केवलेनापि सम्यक्त्वेनश्रावक उच्यत इत्याकूतम्। अतएव-भरतोऽपि दर्शन-श्रावक उच्यते। अस्यामेव क्रियायां प्रधानतरप्वात्।

इस प्रकार श्रावक के गुणों से युक्त है। वह बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करता है। केवल सम्यक्त्व के कारण उसको दर्शन श्रावक कहा जाता है। भरत को भी दर्शन श्रावक कहा जाता है।

आठवां निदान—

एवं खलु समणाउसो मए धम्मे पन्नत्ते तं चेव सव्वं जाव। से य परक्कम-माणे दिव्वमाणुस्सएहिं कामभोगेहिं निव्वेदं गच्छेज्जा माणुस्सगा कामभोगा अधुवा जाव विप्पजह-णिज्जा दिव्वावि खलु कामभोगा अधुवा अणितिया असा-सया चलाचलणधम्मा पुणरागमणिज्जा पच्छापुव्वं च णं अवस्सं विप्पजहणिज्जा।

संति इमस्स तवनियमस्स जाव आगमेस्साणं जे इमे भवंति उग्गमेत्ता महामाउया जाव पुमत्ताए पच्चायंति तत्थणं समणोवासए भविस्सामि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिगय-जीवाजीवे जाव उवलद्ध-पुण्ण-पावे फासुयएसणिज्जं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभेमाणे विहरिस्सामि। सेतं साहु।

दसासु द १०

हे आयुष्यमन् श्रमण ! इस प्रकार मैंने धर्म प्रतिपादन किया है, यही निर्ग्रन्थ-प्रवचन यावत् सत्य और सब दुःखों का नाश करने वाला है। इस धर्म में पराक्रम करते हुए निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी को देव और मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों की ओर वैराग्य उत्पन्न हो जाय, क्योंकि मनुष्यों के कामभोग अनित्य है। इसी प्रकार देवों के काम-भोग भी अनिश्चित, अनियत और विनाशशील है और चलाचल धर्म वाले अर्थात् अस्थिर तथा अनुक्रम से आते और जाते रहते है। मृत्यु के पश्चात् अथवा बुढ़ापे से पूर्व ही अवश्य ही त्याज्य है।

यदि इस और नियम की कुछ फल विशेष है तो आगामी में ये जो महामातृक उग्र आदि कुलों में पुरुष रूप से उत्पन्न होते हैं उनमें से किसी एक कुल में मैं भी उत्पन्न हो जाऊँ और श्रमणोपासक बनूं। फिर मैं यावत् जीव, पुण्य, पाप को भली प्रकार जानता हुआ यावत् अचित्त और निर्दोष अन्न, पानी, खादिम और स्वादिम पदार्थ मुनियों को देता हुआ विचरण करूँ। यह मेरा विचार ठीक है।

एवं खलु समणाउसो निग्गंथो वा निग्गंथी वा णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइय जाव देवलोएसु देवत्ताए उववज्जन्ति जाव किं ते आसगस्स सदति।

दसासु० द १०

हे आयुष्यमन् ! श्रमण ! इस प्रकार निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थियाँ निदान कर्म करके उसका उस स्थान पर बिना आलोचन किये—यावत् देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हो जाते हैं। इसके अनन्तर वे देवलोक से आयु आदि क्षय होने के कारण यावत् उग्रकुल में कुमार रूप से उत्पन्न हो जाते हैं।

फिर पहले दूसरे आदि निदान कर्म करने वालों के समान आपके मुख को कौनसा पदार्थ अच्छा लगता है। इत्यादि।

तस्स णं तहप्पगारस्स पुरिसजातस्स चि जाव पडि

सुणिज्जा से णं सद्दहेज्जा जाव ? हंता ! सद्दहेज्जा। से णं सीलव्वय जाव पोसहो ववासाइं पडिवज्जेज्जा ? हंता ! पडिवज्जेज्जा।

से णं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वएज्जाणो तिणट्ठे समट्ठे।

दसासु० द १०

वह जीव और अजीव को जानने वाला श्रमणोपासक होता है। यावत् श्रमण और निर्ग्रन्थों को आहार और जल आदि देता हुआ विचरता है। फिर वह इस प्रकार के विहार से विचरता हुआ बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक की पर्याय को पालन करता है और पालनकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत से भक्तों (भोजन) का प्रत्याख्यान कर देता है, रोगादि के उत्पन्न होने अथवा न होने पर बहुत से भक्तों के अनशन व्रत को छेदकर और उसकी अच्छी आलोचना कर पाप से पीछे हट जाता है और समाधि प्राप्त करता है। समाधि प्राप्त कर काल मास में में काल करके किसी एक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हो जाता है।

इस प्रकार हे आयुष्यमन् ! श्रमण ! उस निदान का इस प्रकार पापरूप फल हुआ, जिससे उसका करने वाला सब प्रकार से मुंडित होकर घर से निकल कर अनगार वृत्ति को ग्रहण करने के लिये समर्थ नहीं हो सकता अर्थात् निदान कर्म के प्रभाव से वह साधुवृत्ति नहीं ले सकता।

जाव तेणं तं दारियं जाव भारियत्ताए दलयंति। सा णं तस्स भारिया भवति एगा एगजाया जाव तहेव सव्वं भाणियव्वं। तीसेणं अतिजागमाणीए वा निज्जायमाणीए वा जाव किं ते आसगस्स सदति।

—दसासु० द १०

उस कन्या को उसके माता-पिता और भाई-बन्धु तदुचित दहेज के साथ किसी सम कुल और वित्त वाले कुल युवक को भार्या रूप से दे देते हैं। वह उसकी एक और पत्नी—रहित पत्नी हो जाती है। वह अपने पति की प्रेयसी और वल्लभा होती है। वह रत्नों की पेटी के समान मनोहर और प्यारी होती है। जिस समय वह घर के भीतर और घर के बाहर जाती है तो उसके साथ अनेक दास और दासियाँ होते हैं और वे प्रार्थना में रहते हैं कि आपको कौनसा पदार्थ रूचिकर है।

स्त्री को धर्म सुनने की अयोग्यता और उसका फल

तीसेणं तहाप्पगाराए इत्थिकयाए तहारूवे समणे वा माहणे वा धम्मं आइक्खेज्जा ? हंता ! आइक्खेज्जा। जाव सा णं पडिसुणेज्जा णोइणट्ठे समट्ठे। अभविया णं सा तस्स धम्मस्स सवणताए।

सा च भवति महिच्छा जाव दाहिणगामिए णेरइए आगमेस्साणं दुल्लभ-बोहियावि।

तं खलु समणाउसो तस्स णिदाणस्स इमेतारूवे पावए फल-विवागे भवति जं नो संचाएति केवलिपण्णत्तं धम्मं पडिसुणित्तए।

—दसासु द० १०

उस इस प्रकार की स्त्री को क्या तथारूप श्रमण अथवा श्रावक केवली के प्रतिपादित धर्म को कहे ? हाँ ! कहे किन्तु वह उसको सुने यह बात संभव नहीं। वह उस धर्म को सुनने के अयोग्य है, क्योंकि वह तो उत्कृट इच्छावाली, बड़े-बड़े कार्य आरम्भ करने वाली बड़े परिग्रह वाली, अधार्मिक दक्षिणगामी नारकी और भविष्य में दुर्लभ-बोधि कर्म के उपार्जन करने हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे आयुष्मन् ! श्रमण ! इस प्रकार निदान कार्य का यह पाप रूप फलविपाक होता है कि उसके करनेवाली स्त्री में केवल-भाषित धर्म सुनने की शक्ति नहीं रहती।

चतुर्थ निदान—

निर्ग्रन्थी का कुमारों को देखकर निदान कर्म का संकल्प करना—

एवं खलु समणाउसो मए धम्मे पण्णत्ते इणमेव णिग्गंथे पावयणे सच्चे सेसं तं चेव जावं अंतं करेंति।

जस्स णं धम्मस्स निग्गंथी सिक्खाए उवट्ठिया विहरमाणी पुरा दिगिंच्छाए पुरा जाव उदिण्णकामजाया विहरेज्जा सा य परक्कमेज्जा साय परक्कममाणी पासेज्जा जे इमे उग्गपुत्ता महामाउया भोगपुत्ता महामाउया तेसिणं अण्णयरस्स अइजायमाणस्स वा जावकिंते आसगस्स सदति जं पासित्ता णिग्गंथी णिदाणं करेति।

—दसासु० द १०

हे आयुष्मन् ! श्रमण ! इस प्रकार निश्चय से मैंने धर्म प्रतिपादन किया है। यही निर्ग्रन्थ प्रवचन यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

जिस धर्म की शिक्षा के लिए उपस्थित होकर विचरती हुई निर्ग्रन्थी पूर्व बुभुक्षा से उदीर्ण काया होकर विचरे और फिर संयम में पराक्रम करे तथा पराक्रम करती हुई देखे कि जो ये उग्र और भोग कुलों के महामातृक पुत्र है उनमें से किसी एक के घर के भीतर (अथवा घर से बाहर) जाते हुए सेवक प्रार्थना करते हैं कि आपके मुख को क्या अच्छा लगता है उसको देखकर निर्ग्रन्थी निदान कर्म करती है।

स्त्री को देखकर अन्य लोगों की कामना और स्त्री के कष्टों का विवेचन—

दुक्खं खलु इत्थि-तणए, दुस्संचराइं गामंतरणहं जाव सन्निवेसंतराइं।

से जहानामए अंब-पेसियाति वा माउलुंगपेसियाइ वा अंबाडग पेसियाति वा उच्छु-खंडियाति वा संबलि—फालियाति वा बहुजणस्स आसायणिज्जा पत्थणिज्जा पीहणिज्जा अभिलसणिज्जा एवामेव इत्थियावि बहुजणस्स आसायणिज्जा जाव अभिलसणिज्जा, तं दुक्खं खलु इत्थितणए पुमत्ताए णंसाहू।

—दसासु० द १०

संसार में स्त्री होना अत्यन्त कष्टप्रद है क्योंकि स्त्रियों का एक गाँव से दूसरे गाँव और एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव में आना-जाना अत्यन्त कठिन है। जैसे आम की फांक, मातुलिङ्ग (बिजौरे) की फांक, आम्रातक (बहुबीज फल) की फांक, मांस की फांक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गन्ने की पोरी और शाल्मलीक की कली बहुत से पुरुषों को आस्वादनीय, प्रार्थनीय, स्पृहणीय और अभिलषणीय होती है इसी प्रकार स्त्रियाँ भी बहुत से पुरुषों को आस्वादनीय और अभिलषणीय होती है, अतः स्त्रीत्व निश्चय से कष्ट रूप है और पुरुषत्व साधु है।

पुरुष के सुखों के अनुभव करने करने की इच्छा—

जइ इमस्स तव-नियमस्स जाव अत्थि वयमवि णं आगमेस्साणं इमेयारूवाइं ओरालाइं पुरिस-भोगाइं भुंजमाणा विहरिस्सामो। सेतं साहू।

—दसासु० द १०

यदि इस तप-नियम का कोई फल विशेष है तो हम भी भविष्य में इसी प्रकार के उत्तम पुरुष-भोगों को भोगते हुए विचरेंगी। यही ठीक है।

पुरुष बनकर सुख भोगने और धर्म के सुनने की अयोग्यता का वर्णन :—

एवं खलु समणा उसो णिग्गंथी णिद्दाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइय अप्पडिक्कंता जाव मपडिवज्जित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति।

साणं तत्थ देवे भवति महड्ढिए जाव महासुक्खे। साणं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं अणं तरं चयं चइत्ता जे इमे भवति उग्गपुत्ता तहेव दारए जावकिं ते आसग्गस्स सदति तस्सणं तहप्पगारस्स पुरिस जातस्स जाव।

अभविएणं से तस्स धम्मस्स सवणताए। सेजं भवति महिच्छे जाव दाहिणगामिए जाव दुल्लभबोहिए यावि भवति।

एवं खलु जाव पडिसुणत्तए।

—दसासु० द १०

हे आयुष्मन्! श्रमण! इस प्रकार निर्ग्रन्थी निदान कर्म करके और उसका गुरु से उस समय बिना आलोचना किये, बिना उससे पीछे हटे तथा बिना प्रायश्चित ग्रहण किये मृत्यु के समय काल करके किसी एक देव लोक में देव रूप से उत्पन्न हो जाती है। और वहाँ बड़े ऐश्वर्य और सुखवाला देव हो जाता है।

फिर उस देवलोक से आयु-क्षय होने के कारण बिना किसी अंतर के देव-शरीर को छोड़कर जो ये उग्रपुत्र हैं उनके कुल में बालक रूप से उत्पन्न होता है। सेवक उससे प्रार्थना करते हैं कि आपको कौनसा पदार्थ रुचि कर है। इस प्रकार का पुरुष केवलि-भासित धर्म से सुनने के अयोग्य होता है। किन्तु वह बड़ी इच्छाओं वाला और दक्षिण-गामी नैरयिक होता है और दुर्लभ बोधि कर्म की उपार्जना करता है।

इस प्रकार हे आयुष्मन्! श्रमण! वह केवलिप्रतिपादित धर्म को सुन नहीं सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचम निदान—

मनुष्य के भोगों की अनित्यता का वर्णन—

एवं खलु समणाउसो मए धम्मे पण्णत्ते इणमेव निग्गंथे—पावयणे तहेव। जस्सणं धम्मस्स निग्गंथे वा (निग्गंथीवा) सिक्खाए उवट्ठिए विहरमाणे पुरादिगिंच्छाए जाव उदिण्ण कामभोगे विहरेज्जा, से य परकम्मेज्जा से य परकम्ममाणे माणुस्सेहिं कामभोगेहिं निव्वेयं गच्छेज्जा माणुस्सगा खलु काम-भोगा अधुवा अणितिया असासया सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मा उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणिय-समुब्भवा दुरुव स-निस्सासा दुरंत-मुत्त-पुरीस-पुण्णावंतासवा पित्तासवा खेलासवा पच्छा पुरं च णं अवस्सं विप्प-जहणिज्जा।

—दसासु० द १०

हे आयुष्मन्! श्रमण! इस प्रकार मैंने धर्म प्रतिपादन किया है, यही निर्ग्रन्थ-प्रवचन यावत् सत्य और सब दुःखों का नाश करने वाला है। जिस धर्म की शिक्षा के लिये उपस्थित होकर विचरता हुआ निर्ग्रन्थ (अथवा निर्ग्रन्थी) बुभुक्षा आदि यावत् काम-भोगों के उदय होते हुए भी संयममार्ग में पराक्रम करे और पराक्रम करते हुए भी मनुष्य सबन्धी कामभोगों में वैराग्य को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि वे अनियत हैं, अनित्य हैं और क्षणिक हैं, इनका सड़ना-गलना और विनाश होना धर्म है, इन भोगों का आधार भूत मनुष्य शरीर विष्टा, मूत्र, श्लेष्म, मल, नासिका का मल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से बना हुआ है। यह कुत्सित उच्छ्वास और निश्वासों से युक्त होता है, दुर्गंध युक्त मूत्र और पुरीष पूर्ण है। यह वमन का द्वार है, इससे पित्त और श्लेष्म सदैव निकलते रहते हैं। यह मृत्यु के अनन्तर या बुढ़ापे से पूर्व अवश्य छोड़ना पड़ेगा।

देवलोक के काम-भोगों का वर्णन :—

संति उड्ढं देवा देवलोगंसि तेणं तत्थ अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुं-जिय (इ) रत्ता परियारेंत अप्पाणो चेव अप्पणं वेउव्विय (इ) रत्ता परियारेंति अप्पणिज्जिगाओ देवीओ अभिजुंजय (इ) रत्ता परियारेंत।

संतिजइ इमस्स तव-नियमस्स जावतं सेव सव्वं भाणियव्वं जाव वयमवि आगमेस्साणं इमाइं एयारूवाइं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरामो। से तं साहू।

—दसासु० द १०

ऊर्ध्व देवलोकों में जो देव हैं। उनमें से एक तो अन्य देवों की देवियों को वश में करके उनको उपभोग में प्रवृत्त कराते हैं, दूसरे अपनी ही आत्मा से वैक्रिय रूप बनाकर उनको उपभोग में प्रवृत्त कराते हैं। तीसरे अपनी ही देवियों को भोगते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि इस तप-नियम का कुछ विशेष फल है तो हम भी आगामी काल में इस प्रकार के देव सम्बन्धी भोगों को भोगते हुए विचरें।

यह हमारा विचार सर्वोत्तम है।

शेष सब वर्णन पूर्ववत् ही जानना चाहिए।

देवलोकों के सुखों का वर्णन, फिर च्यवनकर मनुष्य बनने का अधिकार—

एवं खलु समणाउसो निग्गंथो वा (निग्गंथी वा) णियाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइय अप्पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति। तं जहा—महड्ढिएसु महज्जुइएसु जाव पभासमाणे अण्णेसिं देवाणं अण्णं देविं तं चेव जाव परियारेति।

सेणं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं तं चेव जाव पुमत्ताए पच्चायाति किं ते आसगस्सं सदति।

—दसासु० द १०

हे आयुष्यमन्! श्रमण! इउ प्रकार निदान कर्म करके निर्ग्रंथ या निर्ग्रन्थी बिना उसी समय उसकी आलोचना किये और बिना उससे पीछे हटे मृत्यु के समय काल करके देवलोकों में से किसी एक में देव रूप से उत्पन्न होता है। वह वहाँ महाऐश्वर्यशाली और महाद्युति वाले देवों में प्रकाशित होता हुआ अन्य देवों की देवियों से पूर्वोक्त तीनों प्रकार से मैथुन उपभोग करता हुआ विचरता है। फिर उस देवलोक से आयु क्षय होने के कारण पूर्ववत् पुरुष रूप से उत्पन्न होता है और दास-दासियों से प्रार्थना करती है कि आप के मुख को क्या अच्छा लगता है।

'७.२ निह्नववाद :—

१. बहुरत—भगवान् महावीर के कैवल्य ज्ञान प्राप्ति के चौदह वर्ष पश्चात् श्रावस्ती नगरी में बहुरतवाद की उत्पत्ति हुई।[१] इसके प्ररूपक आचार्य जमाली थे।

जमाली कुंडपुर नगर के रहने वाले थे। उनकी माता का नाम सुदर्शना था। वह महावीर की बड़ी बहिन थी। जमाली का विवाह भगवान् की पुत्री प्रियदर्शना के साथ हुआ।[१]

जमाली पाँच सौ पुरुषों के साथ भगवान् के पास दीक्षित हुए। उनके साथ-साथ उनकी पत्नी प्रियदर्शना भी हजार स्त्रियों के साथ दीक्षित हुई। जमाली ने ग्यारह अंग पढे। वे अनेक प्रकार की तपस्याओं से अपनी आत्मा को भावित कर विहार करने लगे।

---

१ कुछ आचार्य यह भी मानते हैं कि ज्येष्ठा, सुदर्शना, अनवद्यांगी—ये सभी नाम जमाली की पत्नी के हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार वे भगवान् के पास आये और उनके अलग विहार करने की आज्ञा माँगी। भगवान् मौन रहे। वे भगवान् को वंदना कर अपने पाँच सौ निर्ग्रन्थों को साथ ले अलग विहार करने लगे।

विहार करते करते वे एक बार श्रावस्ती नगरी में पहुँचे। वहाँ तिन्दुक उद्यान के कोष्ठक चैत्य में ठहरे। तपस्या चालू थी। पारणा में वे अँत-प्रान्त आहार का सेवन करते। उनका शरीर रोगाक्रांत हो गया। पित्तज्वर से उनका शरीर जलने लगा। वे बैठे रहने में असमर्थ थे। एक दिन घोरतम वेदना से पीड़ित होकर उन्होंने अपने श्रमण निर्ग्रंथों को बुला कर कहा—श्रमणो! बिछौना करो। वे बिछौना करने लगे। पित्तज्वर की वेदना बढ़ने लगी। उन्हें एक-एक पल भारी लग रहा था। उन्होंने पूछा—बिछौना कर लिया या किया जा रहा है।[1] श्रमणों ने कहा—देवानु प्रिय! बिछौना किया नहीं, किया जा रहा है। यह सुन उनके मन में विचिकित्सा उत्पन्न हुई—भगवान् क्रियमाण को कृत कहते हैं, यह सिद्धांत मिथ्या है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि बिछौना किया जा रहा है, उसे कृत कैसे माना जा सकता है। उन्होंने तत्कालिक घटना से प्र प्त अनुभव के आधार पर यह निश्चय किया—"क्रियमाण को कृत नहीं कहा जा सकता। जो संपन्न हो चुका है उसे ही कृत कहा जा सकता। कार्य की निष्पत्ति अंतिम क्षण में ही होती है, पहले-दूसरे आदि क्षणों में नहीं।

१. यहाँ आचार्य मलयगिरि ने घटनाक्रम और सिद्धान्त पक्ष का निरूपण किया है, यह भगवती सूत्र के निरूपण से भिन्न है। उनके अनुसार जमाली ने अपने श्रमणों से पूछा—"बिछौना किया या नहीं"? श्रमणों ने उत्तर दिया—'कर दिया'। जमाली उठा और उसने देखा कि बिछौना अभी पूरा नहीं किया गया है। यह देख वह क्रुद्ध हो उठा। उसने सोचा—क्रियमाण को कृत कहना मिथ्या है। अर्द्धसंस्तृत संस्तारक (बिछौना) असंस्तृत ही है। उसे संस्तृत नहीं माना जा सकता।—

आव० मलयवृत्ति, पत्र ४०२

२. जीव प्रादेशिक—भगवान् महावीर के कैवल्य प्राप्ति के सोलह वर्ष पश्चात् ऋषभपुर में जीव प्रादेशिक वादकी उत्पत्ति हुई।

सोलसवासाणि तया जिनेश उप्पाडियस्स नाणस्स
जीवपएसिअदिट्ठी उसभपुरग्गो समुप्पन्ना —आव०भाष्यगा १८७

एक बार ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आचार्य वसु राजगृह नगर में आए और गुणशील चैत्य में ठहरे। वे चौदह पुर्वी थे। उनके शिष्य का नाम तिष्यगुप्त था। वह उनसे आत्मप्रवादपूर्व पढ़ रहा था। उसमें भगवान् महावीर और गौतम का संवाद आया

गौतम ने पूछा—भगवन्! क्या जीव के एक प्रदेश को जीव कहा जा सकता है।

भगवान्—नहीं।

---

[1] यह राजगृह का प्राचीन नाम था —आव० नि दीपिका पत्र १४३,
ऋषभपुरे राजगृहस्या—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम— भगवन् ! क्या दो, तीन यावत् संख्यात प्रदेश को जीव कहा जा सकता है।

भगवान्—नहीं। अखंड चेतन द्रव्य में एक प्रदेश न्यून को भी जीव नहीं कहा जा सकता है।

यह सुन तिष्यगुप्त का मन शंकित हो गया। उसने कहा—अंतिम प्रदेश के बिना शेष प्रदेश जीव नहीं है, इसलिए अंतिम प्रदेश ही जीव है। गुरू ने उसे समझाया परन्तु उसने अपना आग्रह नहीं छोड़ा, तब उसे संघर्ष से अलग कर दिया।

अबतिष्यगुप्त अपनी बात का प्रचार करते हुए अनेक गाँवों-नगरों में गये। अनेक व्यक्तियों को अपनी बात समझाई।

एक बार वे आलंमकल्पा नगरी में आये और अंबसाल वन में ठहरे। उस नगरी में मित्रश्री नामक श्रवणोपासक रहता था। वह तथा दूसरे श्रावक धर्मोपदेश सुनने आये। तिष्यगुप्त ने अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया। मित्रश्री ने जान लिया कि ये मिथ्या प्ररूपण कर रहे हैं। फिर भी वह प्रतिदिन प्रवचन सुनने आता रहा। एक दिन उसके घर में जीमनवार था। उसने तिष्यगुप्त को घर आने का निमंत्रण दिया। तिष्यगुप्त भिक्षा के लिए गये, तब मित्रश्री ने अनेक प्रकार के खाद्य उनके सामने प्रस्तुत किये और प्रत्येक पदार्थ का एक-एक छोटा टुकड़ा उन्हें देने लगा। इसी प्रकार चावल का एक-एक दाना, घास का एक-एक तिनका और यंत्र का एक-एक तार उन्हें दिया। तिष्यगुप्त ने मन ही मन सोचा कि यह अन्य सामग्री मुझे बाद में देगा। किन्तु इतना देने पर मित्रश्री तिष्यगुप्त के चरणों में वंदन कर बोला—अहो मैं धन्य हूँ, कृतपुण्य हूँ कि आप जैसे मुनीजनों का मेरे घर पदार्पण हुआ है। इतना सुनते ही तिष्यगुप्त को क्रोध आ गया और वे बोले—तुमने मेरा तिरस्कार किया है। मित्रश्री बोला—नहीं, मैं भला आपका तिरस्कार क्यों करता। मैंने आपके सिद्धान्त के अनुसार ही आपको भिक्षा दी है। भगवान् महावीर के सिद्धांत के अनुसार नहीं। आप अंतिम प्रदेश को ही वास्तविक मानते हैं, दूसरे प्रदेशों को नहीं। अतः मैंने प्रत्येक पदार्थ का अंतिम भाग मैंने आपको दिया है, शेष नहीं।

तिष्यगुप्त समझ गये। उन्होंने कहा—आर्य ! इस विषय में मैं तुम्हारा अनुशासन चाहता हूँ। मित्रश्री ने उन्हें समझाकर सूत्र विधि से भिक्षा दी।

तिष्यगुप्त सिद्धांत के मर्म को समझकर, पुनः भगवान् के शासन में सम्मिलित हो गये।

जीव के असंख्य प्रदेश हैं। किन्तु जीव प्रादेशिक मतानुसारी जीव के चरम प्रदेश को ही जीव मानते हैं, शेष प्रदेशों को नहीं।

३. अव्यक्तिक—भगवान् महावीर के निर्वाण के २१४ वर्ष पश्चात् श्वेताम्बिकी नगरी में अव्यक्तवाद की उत्पत्ति हुई।[१] इसके प्रवर्तक आचार्य आषाढ के शिष्य थे।

श्वेताम्बिकी नगरी के पोलास उद्यान में आचार्य आषाढ़ ठहरे हुए थे। वे अपने शिष्यों को योगाभ्यास कराते थे। उस क्षणमें एक मात्र वे ही वाचनाचार्य थे।

---

[१] चउदस दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
अव्वत्तगाण दिट्ठी सेअविआए समुप्पन्ना॥ —आव० भा गा १२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार आचार्य आषाढ़ को हृदय शूल उत्पन्न हुआ और वे उसी रोग से मर गये। मरकर वे सौधर्म काल के नलिणीगुल्म विमान में उत्पन्न हुए। उन्होंने अवधि ज्ञान से अपने मृत शरीर को देखा और देखा कि उनके शिष्य आगाढ़ योग में लीन है तथा उन्हें आचार्य आषाढ़ की मृत्यु की जानकारी भी नहीं है। तब देव रूप में आचार्य आषाढ़ नीचे आये और पुनः उन्होंने अपने मृत शरीर में प्रवेश कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने शिष्यों को जागृत कर कहा—वैरात्रिक करो।' शिष्यों ने वैसा ही किया। जब उनकी योगसाधना का क्रम पूरा हुआ तब आचार्य आषाढ़ देव रूप में प्रकट होकर बोले— श्रमणो! मुझे क्षमा करें। मैंने असंयती होते हुए भी संयतात्माओं से वंदना करवाई है। अपनी मृत्यु की सारी बात बता वे अपने स्थान पर चले गये।

श्रमणों को संदेह हो गया कि कौन जाने कौन साधु है और कौन देव। निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। सभी चीजें अव्यक्त है। उनका मन संदेह में डोलने लगा। अन्य स्थविरों ने उन्हें समझाया, पर वे नहीं समझे। उन्हें संघ से अलग कर दिया।

४. समुच्छेदिक—भगवान् महावीर के निर्वाण के २२० वर्ष पश्चात् मिथिलापुरी में समुच्छेदवाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवर्तक आचार्य अश्वमित्र थे।[१]

एक बार मिथिला नगरी में लक्ष्मीगृह चैत्य में आचार्य महागिरि ठहरे हुए थे। उनके शिष्य का नाम कौण्डिन्यऔर प्रशिष्य का नाम अश्वमित्र था। वह दसवें अनुप्रवाद (विद्यानुप्रवाद) पूर्व के नैपुणिक वस्तु (अध्याय) का अध्ययन कर रहा था। उसमें छिन्नछेदनय के अनुसार एक आलापक यह था कि पहले समय में उत्पन्न सभी नारक विच्छिन्न हो जायेंगे। दूसरे-तीसरे समय में उत्पन्न नैरयिक भी विच्छिन्न हो जायेंगे। इसी प्रकार सभी जीव विच्छिन्न हो जायेंगे। इस पर्यायवाद के प्रकरण को सुनकर अश्वमित्र का मन शंका युक्त हो गया। उसने सोचा यदि वर्तमान संदर्भ में उत्पन्न सभी जीव विच्छिन्न हो जायेंगे तो सुकृत और दुष्कृत कर्मों का वेदन कौन करेगा? क्योंकि उत्पन्न होने के अंतर ही सबकी मृत्यु हो जाती है।

गुरू ने कहा—वत्स! ऋजुसूत्र नय के अभिप्राय से ऐसा कहा गया है, सभी नयों की अपेक्षा से नहीं। निर्ग्रन्थ प्रवचन सर्वनयसापेक्ष होता है। अतः शंका मत कर। वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं। एक पर्याय के विनाश से वस्तु का सर्वथा नाश नहीं होता, आदि-आदि। आचार्य के बहुत समझाने पर भी वह नहीं समझा। तब आचार्य ने उसे संघ से अलग कर दिया।

५. द्वैक्रिय—भगवान् महावीर के २२८ वर्ष पश्चात् उल्लुकातीर नगर में द्विक्रियावाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवर्तक आचार्य गंग थे।

---

[१] वीसा दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
सामुच्छेदयदिट्ठी मिहिलपुरीए समुप्पन्ना —आव० भा० गा १३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठावीसा दो वाससया तइया सिद्धिंगयस्स वीरस्स ॥
दो किरियाणं दिट्ठी उल्लुगतीरे समुप्पन्ना ॥

—आव० भाष्य गा १३३

प्राचीनकाल में उल्लुका नदी के एक किनारे खेड़ा था। और दूसरे किनारे उल्लुकातीर नाम का नगर था। वहाँ आचार्य महागिरि के शिष्य आचार्य धनगुप्त रहते थे। उनके शिष्य का नाम गंग था। वे भी आचार्य थे। वे उल्लुका नदी के इस ओर खेड़े में वास करते थे। एक बार वे शरद् ऋतु में अपने आचार्य को वंदना करने निकले। मार्ग में उल्लुका नदी थी। वे नदी में उतरे। वे गंजे थे। ऊपर सूरज तप रहा था। नीचे पानी की ठंडक थी। उन्हें नदी पार करते समय सिर में सूर्य की गर्मी और पैरों को नदी की ठंडक का अनुभव हो रहा था। उन्होंने सोचा—आगमों में ऐसा कहा गया है कि एक समय में एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो का नहीं। किन्तु मुझे प्रत्यक्षतः एक साथ दो क्रियाओं का वेदन हो रहा है। वे अपने आचार्य के पास पहुँचे। और अपना अनुभव उन्हें सुनाया। गुरू ने कहा—वत्स! वास्तव में एक समय में एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो नहीं। मन का क्रम बहुत सूक्ष्म है, अतः हमें उसकी पृथक्ता का पता नहीं लगता। गुरू के समझाने पर भी वे नहीं समझे। तब उन्हें संघ से अलग कर दिया।

.६ त्रैराशिक भगवान् महावीर के निर्वाण के ५४४ वर्ष पश्चात् अंतरंजिका नगरी में त्रैराशिक मत का प्रवर्तन हुआ। इसके प्रवर्तक आचार्य रोहगुप्त थे (षडूलुक)

प्राचीन समय में अंतरंजिका नाम की नगरी थी। वहाँ के राजा का नाम बलश्री था। वहाँ भूतागृह नाम का एकचैत्य था। एक बार आचार्य श्री गुप्त वहाँ ठहरे हुए थे। उनके संसारपक्षीय भानेजरोहगुप्त उनका शिष्य था। एक बार वह दूसरे संघ से आचार्य को वंदना करने आ रहा था। वहाँ एक परिव्राजक रहता था। उसका नाम था पोट्टशाल वह अपने पेट को लोहे की पट्टी से बांधकर, जंबू वृक्ष की एक टहनी को हाथ में ले घूमता था! किसी के पूछने पर वह कहता—ज्ञान के भार से मेरा पेट फट न जाए—इसलिए मैं अपने पेट को पट्टियों से बाँधे रहता हूँ तथा इस समुचे जंबूद्वीप में प्रतिवाद करने वाला कोई नहीं, अतः जंबू-वृक्ष की शाखा को हाथ में ले घूमता हूँ वह सभी धार्मिकों को बाद के लिए चुनौती दे रहा था। सारे गाँव में चुनौती का पटह फेरा। रोह गुप्त ने उसकी चुनौती स्वीकार कर आचार्य को सारी बात सुनाई। आचार्य ने कहा—वत्स! तुमने ठीक नहीं किया। वह परिव्राजक अनेक विद्याओं का ज्ञाता था ज्ञाता है। इस दृष्टि से वह तुमसे बलवान् है। वह ज्ञात विद्याओं में पारंगत है।

पंच सया चौयाला तइया सिद्धि गयस्स वीरस्स।
पुरिमंतरंजियाए तेरासियदिट्ठी उप्पन्ना॥

आव० भाष्य गा १३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१ वृश्चिकविद्या २ मूषकविद्या ३ वराहीविद्या ४ सर्पविद्या ५ मुर्गीविद्या ६ काकविद्या ७ पोताकीविद्या

रोहगुप्त ने यह सुना ! वह अवाक् रह गया। कुछ क्षणों के बाद वह बोला—गुरुदेव। अब क्या किया जाये ! क्या मैं नहीं भाग जाऊँ। आचार्य ने कहा—वत्स ! भय मत खा। मैं तुझे इन विद्याओं की प्रतिपक्षी सात विद्याएँ सिखा देता हूँ। तू आवश्यकता वश उनका प्रयोग करना। रोहगुप्त अत्यन्त प्रसन्न हो गया। आचार्य ने उसे सात विद्याएँ सिखाई।

१—मायुरी	५—सिंही
२—साकुनी	६—उलुकी
३—विडाली	७—उलावकी
४—व्याघ्री	

आचार्य ने रजोहरण को मंत्रितकर रोहगुप्त को देते हुए कहा—वत्स ! इन सात विद्याओं से तु उस परिव्राजक को पराजित कर सकेगा। यदि इन विद्याओं के अतिरिक्त किसी दूसरी विद्या की आवश्यकता पड़े तो तू इस रजोहरण को घुमाना। तू अजेय होगा, तुझे तब कोई पराजित नहीं कर सकेगा। इन्द्र भी तुझे जीतने में समर्थ नहीं हो सकेगा।

रोहगुप्त गुरुका आशीर्वाद से राजसभा में गया। राजा बलश्री के समक्ष वाद करने का निश्चय कर परिव्राजक पोट्टशाल से बुला भेजा। दोनों वाद के लिए प्रस्तुत हुए। परिव्राजक ने अपने पक्ष की स्थापना करते हुए कहा राशि दो है—जीवराशि और अजीव राशि। रोहगुप्त ने जीव, अजीव और नोजीव इन तीन राशियों की स्थापना करते हुए कहा—परिव्राजक का कथन मिथ्या है। विश्व में प्रत्यक्षतः तीन राशियाँ उपलब्ध होती है। नारक, तिर्यंच, मनुष्य आदि जीव है। घट, पट आदि अजीव है और छुंछुंदर की कटी हुई पूंछ नोजीव है आदि-आदि। इस प्रकार अनेक युक्तियों के द्वारा रोहगुप्त ने परिव्राजक को निरुत्तर कर दिया।

× × ×

रोहगुप्त ने अपनी मति से तत्त्वों का निरुपण किया और वैशेषिक मत की प्ररुपणा की। उनके अनेक शिष्यों ने अपनी मेधा शक्ति से उन तत्त्वों को आगे बढ़ाकर उसको प्रसिद्ध किया।

७. अबद्धिक—

पंचा संया चूलसीआ तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
अबद्धिगाण दिट्ठी दसपुरनगरे समुप्पन्ना॥

आव० भाष्य गा० १४१

भगवान् महावीर के निर्वाण के ५८४ वर्ष पश्चात् दशपुर नगर में अबद्धिक मत का प्रारंभ हुआ। इसके प्रवर्तक थे—आचार्य गोष्टामाहिल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस समय दशपुर नाम का नगर था। वहाँ राजकुल से सम्मानित ब्राह्मणपुत्र आर्यरक्षित रहता था। उसने-अपने पिता से पढ़ना प्रारम्भ किया। पिता का सारा ज्ञान जब पढ़चुका तब विशेष अध्ययन के लिये पाटलिपुत्र नगर में गया और वहाँ चारों वेद उसके अंग और उपांग और अन्य अनेक विद्याओं को सीखकर लौटा। माता के द्वारा प्रेरित होकर उसने जैनाचार्य तोसलिपुत्र से भागवती दीक्षा ग्रहण कर दृष्टिवाद का अध्ययन प्रारम्भ किया। और तदनन्तर आर्य वज्र के पास नौ पूर्वों का अध्ययन संपन्न कर दसवे पूर्व के चौबीस यविक ग्रहण किये।

आचार्य आर्यरक्षितके तीन प्रमुख शिष्य थे—दुर्बलिका पुष्पामित्र, फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल। उन्होंने अंतिम समय में दुर्बलिकापुष्यमित्र को गण कर भार सौंपा।

एक बार आचार्य दुर्बलिका पुष्पमित्र अर्थ की वाचना दे रहे थे। उसके जाने के बाद विध्य उस वाचना का अनुसरण कर रहा था। गोष्ठामाहिल उसे सुन रहा था। उस समय आठवें कर्मप्रवाद पूर्व के अंतर्गत कर्म का विवेचन चल रहा था। उसमें एक प्रश्न यह था कि जीव के साथ कर्मों का बंध किस प्रकार होता है उसके समाधान में कहा गया था कि कर्म का बंध तीन प्रकार से होता है।

१- स्पृष्ट—कुछ कर्म जीव प्रदेशों के साथ स्पर्श मात्रा करते है और कालान्तर में स्थिति का परिपाक होनेपर उनसे विलय हो जाते हैं। जैसे सूखी भींत पर फेंकी गई रेत भींत के स्पर्श मात्र कर नीचे गिर जाती है।

२-स्पृष्ट बद्ध—कुछ कर्म जीव प्रदेशों का स्पर्श कर बद्ध होते है और वे भी कालान्तर में विलय हो जाते हैं जैसे—गीली भींत पर फेंकी गई रेत, कुछ चिपक जाती है और कुछ नीचे गिर जाती है।

३-स्पृष्ट-बद्ध निकाचित—कुछ कर्म जीव प्रदेशों के साथ गाढ़ रूप में बंध प्राप्त करते है। वे भी कालान्तर में विलय हो जाते हैं।

यह प्रतिपादन सुनकर गोष्ठामाहिल का मत विचिकित्सा से भर गया। उसने कहा—कर्म को जीव के साथ बद्ध मानने से मोक्षका अभाव हो जायेगा। कोई भी प्राणी मोक्ष नहीं जा सकेगा। अतः सही सिद्धान्त यही है कि कर्म जीव के साथ स्पृष्ट होते हैं, बद्ध नहीं। क्योंकि कलान्तर में वे वियुक्त होते हैं। जो वियुक्त होता है, वह एकात्मक से बद्ध नहीं हो सकता। उसने अपनी शंका विंध्य के समक्ष रखी। विंध्य ने बताया कि आचार्य ने इसी प्रकार का अर्थ बताया है।

गोष्ठामाहिल के गले यह बात नहीं उतरी। वह मौन रहा।

लोगो ने गोष्ठामाहिल को समझाया, पर वह नहीं माना। अंत में पुष्यमित्र उसके साथ आकर बोले—आर्य—तुम इस सिद्धान्त पर पुनर्विचार करो, अन्यथा तुम संघ में नहीं रह सकोगे। गोष्ठामाहिल ने उनके वचनों का भी आदर नहीं किया। उसका आग्रह पूर्ववत् रहा। तब संघ ने उसे बहिष्कृत कर डाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अबद्धिक मतवादी मानते हैं कि कर्म आत्मा का स्पर्श करते हैं, उसके साथ एकीभूत नहीं होते।

सात निन्हिवों में जमाली, रोहगुप्त और गोष्ठामाहिल—ये तीन अंत तक अलग रहे, भगवान् के शासन में पुनः सम्मिलित नहीं हुए, शेष चार पुनः शासन (तिष्यगुप्त, आचार्य आषाढ़, अश्वमित्र, गंग) में आ गये।

चार्ट सात निह्नवोंका

संख्या	प्रवर्तक आचार्य	नगरी	प्रवर्तितमत	समय
१	जमाली	श्रावस्ती	बहुरतवाद	भगवान महावीर के कैवल्य प्राप्ति के १४ वर्षबाद
२	तिष्यगुप्त	ऋषभपुर	जीव प्रादेशिक वाद	भगवान् महावीर कैवल्य प्राप्ति के १६ वर्ष बाद
३	आचार्य आषाढ़	श्वेताम्बिका	अव्यक्तवाद	निर्वाण के २१४ वर्षबाद
४	अश्वमित्र	मिथला	समुच्छेदवाद	निर्वाण के २२० वर्षबाद
५	गंग	उल्लुकातीर नगर	द्विक्रिय	निर्वाण के २२८ वर्षबाद
६	रोहगुप्त(षडुलुक)	अंतरंजिका	त्रैराशिक	निर्वाण के ५४४ वर्षबाद
७	गोष्ठामाहिल	दशपुर	अबद्धिक	निर्वाण के ५८४ वर्षबाद

२ भगवान महावीर और निह्नववाद

(क) (प्रवचननिह्नव)

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तित्थंसि सत्त पवयणणिण्हगा पण्णत्ता, तंजहा, बहुरता, जीवपएसिया, अवत्तिया, सामुच्छेइया, दोकिरिया, तेरासिया, अबद्धिया।

एएसि णं सत्तण्हं पवयणणिण्हगाणं सत्त धम्मायरिया हुत्था, तंजहा जमाली, तीसगुत्ते, आसाढ़े, आसमित्ते, गंगे, छलुए, गोट्ठामाहिल्ले।

एतेसि णं सत्तण्हं पवयणणिण्हगाणं सत्तउप्पत्तिणगरा हुत्था, तंजहा संगहणी गाहा—

सावत्थी उसभपुरं, सेयवियामिहिलउल्लगातीरं।
पुरिमंतरंजि दसपुरं, णिण्हगउप्पत्तिणगराइं॥

ठाण० स्था ७/सू १४० से ४२

श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में प्रवचन-निह्नव सात हुए हैं—

१—बहुरत

२—जीवप्रादेशिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३—अव्यक्तिक
४—सामुच्छेदिक
५—द्वैक्रिय
६—त्रैराशिक
७—अबद्धिक

इन सात प्रवचन-निह्नवों के सात धर्माचार्य थे—

१—जमाली
२—तिष्यगुप्त
३—आषाढ़
४—अश्वमित्र
५—गंग
६—षडुलुक
७—गोष्ठामाहिल

इन सात प्रवचन निह्नवों के उत्पत्ति-नगर सात है—

१—श्रावस्ती
२—ऋषभपुर
३—श्वेतविका
४—मिथिला
५—उल्लुकातीर
६—अंतरंजिका
७—दशपुर

नोट—आमूलचूल विचार परिवर्तन होने पर कुछ साधुओं ने अन्य धर्म को स्वीकार किया, उनका यहाँ उल्लेख नहीं है। यहाँ उन साधुओं का उल्लेख है जिनका किसी एक विषय में, चालू परंपरा के साथ, मत-भेद हो गया और वे वर्तमान शासन से पृथक् हो गए किन्तु किसी अन्य धर्म को स्वीकार नहीं किया। इसलिए उन्हें अन्य धर्मी नहीं कहा गया, किन्तु जैन शासन के निह्नव (किसी एक विषय का अपलाप करने वाले) कहा गया है। इस प्रकार के निह्नव सात हुए है।

इनमें से दो भगवान् महावीर से कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति के बाद हुए है और शेष पाँच निर्वाण के बाद।[1] इनका अस्तित्व काल भगवान् महावीर के कैवल्य प्राप्ति के चौदह वर्ष के निर्वाण बाद ५८४ वर्ष तक का है।[2]

---

१ णाणुप्पतीय दुवे, उप्पण्णा णिव्वुए सेसा। आव० निगा ७८४

२ चोद्दस सोलहसवासा, चोद्दस वीसुत्तरा य दोण्णिसया।
अट्ठावीसा य दुवे, पंचेवसयाउ चोयाला॥
पंचसया चुलसीया आव० निगा ५८३, ५८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह विषय आगम-संकलन काल में कल्पसूत्र के प्रस्तुत सूत्र में संक्रांत हुआ है। उनका विवरण इस प्रकार है—

चउदस नामाणि तया जिणेण उप्पाडियस्स नाणस्सा।
तो बहुरयाणदिट्ठी सावत्थीए समुप्पण्णा॥

आव० निगा भाष्य गा १२५

अन्येतु व्याचक्षते—ज्येष्ठा, सुदर्शना, चनवद्यांगीति जमालीगृहिणी नामानि।

आव० मलयगिरि वृत्ति पत्र ४०५

२ कूणिक और चेटकका युद्ध

हते च वरुणेऽभूवंश्चेटकस्य चमूंभटाः।
युद्धाय द्विगुणोत्साहाः काणंस्पृष्टवराहवत् ॥२७९॥
गणराजस नाथैस्तैश्चेटकस्य चमूभटैः।
आकुट्टि कूणिकचमूर्दशद्भिधरं रुषा ॥२८०॥
कुट्यमानं बलं दृष्ट्वा स्वकीयमथ कूणिकः।
लोष्टाहतः सिंह इव क्रोधोद्धतमधावत ॥२८१॥
सरसीव रणे क्रीडन् कूणिको वीरकुञ्जरः।
दिशो दिशि पर बलं पद्म खंडमिवाक्षिपत् ॥२८२॥
कूणिकं दुर्जयं ज्ञात्वाचेटकोऽथात्यमर्षणः।
तं दिव्यं मार्गणं शौर्यधनो धनुषि सन्दधे ॥२८३॥
इतश्च वज्रकवचं कूणिकस्य पुरो हरिः।
व्यधत्तः चमरेन्द्रस्तु पृष्ठे सन्नाहमायसम् ॥२८४॥
चापमाकर्णमाकृष्य वैशालीपतिनाऽप्यथ।
स मुक्तः सायको वज्रवर्यणा स्खलितोऽन्तरा ॥२८५॥
अमोघस्यापिबाणस्य तस्य मोघत्वदर्शनात्।
चमूभटा श्चेटकस्य पुण्यक्षयममंसत ॥२८६॥
द्वितीयं नाऽमुच द्बाणं सत्यसन्धस्तु चेटकः।
अपसृत्य द्वितीयस्मिन् दिनेतद्वदयुध्यत ॥२८७॥
तथैव मोघ बाणोऽभूद् द्वितीयेऽयह्यपि चेटकः।
एवं दिने दिने युद्धमतिघोरम भूत्तयोः ॥२८८॥
लक्षा शीत्याऽधिका कोटिर्भटानां पक्षयोर्द्वयोः।
विपेदे या सोदपादि तिर्यक्षु नरकेषुच ॥२८९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नंष्ट्वा स्वस्वपुरं यात्सु गणराजेषु चेटकः।
प्रणश्य प्राविशत् पुर्यांकूणिकोऽपि रुरोधताम् ॥२९०॥
—त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२

वरुण की मरण प्राप्ति की सूचना मिलने से कूणिक राजा के सुभट को लकड़ी का स्पर्श होने से बराह की तरह युद्ध करने का द्विगुण उत्साह धराने लगे। उनके ऊपर से गणराज्य से सनाथ हुए चेटक की सेना के सुभट क्रोध से होठ डसकर कूणिक की सेना को बहुत कुटी।

स्वयं की सैन्य को इस प्रकार कुटती हुई देख कर कूणिक राजा पत्थर से हनित सिंह की तरह क्रोध से उद्धत होकर स्वयं दौड़कर आया। वीर कुंजर कूणिक सरोवर की तरह रणभूमि में कीड़ा कर शत्रु के सैन्य को कमलखंड की तरह दसों दिशाओं में भगा दिया। इस कारण कूणिक को दुर्जय जानकर अति क्रोध को प्राप्त हुआ चेटक-जो कि शौर्य रूप धनवाला था। उसने धनुष्य के ऊपर पहला दिव्य बाण चढ़ाया। उस समय शक्रेन्द्र कूणिक के आगे वज्र कवच रखा। और चमरेन्द्र उसके पृष्ठ में लोह कवच रखा।

बाद में वैशाली नगरी के पति-चेटक धनुष को कान तक खींचकर दिव्य बाण को छोड़ा। परन्तु वह वज्र कवच से स्खलित हो गया। उस अमोघ बाण को निष्फल हुआ देखकर चेटक राजा के सुभट उसके पुण्य का क्षय मानने लगे। सत्य प्रतिज्ञावाला चेटक दूसरा बाण छोड़ा तो वह भी निष्फल हुआ। फलस्वरूप वह वापस फिरा।

दूसरे दिन भी उसी प्रमाण से युद्ध हुआ। और चेटक उसी प्रकार बाण छोड़ा। परन्तु वह सफल नहीं हुआ।

इस प्रकार उनका दिन-दिन में अति घोर युद्ध हुआ। और दोनों पक्ष के मिलकर एक कोटि और अस्सी लाख सुभट मृत्यु को प्राप्त हुए। वे सब नरक और तिर्यंच में उत्पन्न हुए।

तत्पश्चात् गणराजा भाग कर स्वयं-स्वयं के नगर में चले गये।

फलस्वरूप चेटकराजा भी भागकर स्वयं की नगरी में प्रवेश कर गया।

फलस्वरूप कूणिक आकर विशालानगरी को रूंध लिया।

कूणिक—

हल्ल-विहल्ल कुमार का युद्ध

सचेनक हस्ति की मृत्यु

तदा सेच नकारूढौ चंपेशस्याखिलं बलम्।
वीरौ हल्लविहल्लौ तौ रात्रावभिबभूवतुः ॥२९१॥
न प्रहर्तुं नवा तुंधं स हस्ती स्वप्नहस्तिवत्।
केनाप्यशाकि चंपेशशिबिरे सौप्तिकागतः ॥२९२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मारयित्वा मारयित्वा निशि हल्लविहल्लयोः ।
क्षेमेण गच्छतोर्मंत्रीमंडली स्माऽऽह कूणिकः ॥१९३॥
आश्चर्यं विद्रुतमस्माकं प्रायेण सकलं बलम् ।
तद् ब्रूत क इहोपायो जये हल्लविहल्लयोः ॥२९४॥
मंत्रिणोऽप्यूचिरे तौ हि जेतुं शक्यौ न केनचित् ।
अधिरूढौ हि यावत्तं हस्तिनं नरहस्तिनौ ॥२९५॥
तस्मात्तस्यैव करिणो वधाय प्रयतामहे ।
खादिरांगारसंपूर्णा कार्यतांपथि खातिका ॥२९६॥
छादयित्वा च वारीव दुर्लक्ष्या साकरिष्यते ।
तस्यां सेचनको वेशादभिधावन् पतिष्यति ॥२९७॥
चंपेशोऽकारयदथ खादिरांगारपूरिताम् ।
खातिकामुपरिच्छन्नां तदागमनवर्त्मनि ॥२९८॥
अथ हल्लविहल्लावप्यवस्कन्दकृते निशि ।
निरीयतुः सेचनकाधिरूढौ जितकाशिनौ ॥२९९॥
अंगारखातिकोपान्तमेत्य सेचनकोऽपि हि ।
तां विभंगेन विज्ञाय तस्थौ यतममानयन् ॥३००॥
ततो हल्लविहल्लाभ्यमिति निर्भर्त्सितः करी ।
पशुरस्यकृतज्ञोऽसि कातरो यदभू रणात् ॥३०१॥

त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२

बाद में प्रत्येक दिन की रात्रि में सेचनक हाथीपर चढ़कर हल्ल-विहल्ल कूणिक के सैन्य में आने लगे। और बहुत सैन्य का विनाश करने लगे। क्योंकि यह सेचनक हाथी स्वप्न हस्तिकी तरह किसी से भी मारा या पकड़ा नहीं जा सकता था।

बहुत सारी सैन्य का विनाश कर हल्ल-विहल्ल कुशल क्षेम वापस चले जाते थे।

इस कारण रात्रि में सब सो जाते थे। सब एक दिन कूणिक मंत्रियों को कहा— यह हल्ल-विहल्ल प्रायः अपनी सब सैन्य को विलुप्त कर दिया। इस कारण उनको जीतने का क्या उपाय है।

मंत्रियों ने कहा—जहाँ तक यह नरहस्ति हल्ल-विहल्ल सेचनक हाथी पर बैठकर आता है वहाँ तक वे किसी से भी जीते नहीं जा सकते हैं। अतः अपने को उस हस्ति का वध करना जरूरी है।

इस कारण उसके आने के मार्ग में एक खाई करके उसमें खेर के अंगार संपूर्ण रूप से भरना चाहिए। और उस पर आच्छादन करके उसे पुल की तरह खबर न पड़े वैसा करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद में सेचनक हाथी वेग से दौड़ता हुआ आयेगा फलस्वरूप उसमें पड़ जायेगा। और मरण को प्राप्त होगा। कूणिक तुरन्त ही खेर के अंगारों से पूर्ण ऐसी एक खाई उसके आने के मार्ग में करायी। और उस पर आच्छादन कर लिया।

अब हल्ल-विहल्ल स्वयं की विजय से गर्वित होकर सेचनक हाथी पर बैठकर उस रात्रि में थी कूणिक के सैन्य पर घसारा करने के लिए विशाला में से निकले।

मार्ग में पहले अंगार वाली खाई आई। फलस्वरूप तुरन्त ही सेचनक उसकी रचना को विभंग ज्ञान से जान लिया। इस कारण वह कांठे पर खड़ा रहा।

चलाने का हल्ल-विहल्ल ने बहुत प्रयास किया फिर भी चला नहीं। फलस्वरूप हल्ल-विहल्ल उस हाथी का तिरस्कारकर कहा—कि-अरे सेचनक! तू अब खरेखर पशु हुआ। इस कारण इस समय रण में जाने के लिए कायर होकर खड़ा रहा है।

त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२

विदेशगमनं बन्धुत्यागश्च त्वत्कृते कृतः।
अस्मिन् दुर्व्यसने क्षिप्तस्त्वकृते ह्यार्यचेटकः ॥३०२॥
वरं श्वा पोषितः श्रेयान् भक्तः स्वामिनियः सदा।
न तु त्वं प्राणवाल्लभ्या योऽस्मत्कार्यमुपक्षसे ॥३०३॥
इति निर्भर्त्सितो हस्ति कुमारौ निजपृष्ठतः।
वेगादुत्तारयामास भक्तंमन्यो बलादपि ॥३०४॥
स्वयं तु तस्मिन्नंगारगर्ते झम्पां ददौ करी।
सद्यो विपद्य खाद्यायामुत्पेदे नरकावनौ।

त्रिशलाका पर्व १०/सर्ग १२

तुम्हारे लिये मैंने विदेशगमन और बन्धु का त्याग किया। उसी प्रकार तुम्हारे लिए आर्य चेटक को ऐसे दुर्व्यसनों में फेंका। जो स्वयं के स्वामी पर सदा भक्त रहते हैं। ऐसे प्राणियों का पोषण करना श्रेष्ठ है। परन्तु तुम्हारे जैसे को पोषण करना योग्य नहीं है कि जो स्वयं के प्राण को वल्लभ करके स्वामी के कार्य की उपेक्षा करता है।

ऐसे तिरस्कृत वचनों को सुनकर स्वयं भी आत्मा से भ्रष्ट मानता हुआ सेचनक हस्ति बलात्कार से हल्ल विहल्ल को स्वयं की पृष्ट पर से नीचे उतारकर फेंक दिया और अंगार की खाई में पड़कर झंपापात किया। तत्काल मृत्यु प्राप्तकर वह गजेन्द्र प्रथम नारकी में उत्पन्न हुआ।

कुणिक—

हल्ल-विहल्ल का चारित्र ग्रहण

कुमारौ दध्यतुर्धिग्धिगावाभ्यां किमनुष्ठितम्।
पशुत्वमावयोर्व्यक्तं न तु सेचनकः पशुः ॥३०६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्यपादा यस्य कृते क्षिप्ता दुर्व्यसने चिरम् ।
तं स्वयं निधनं नीत्वा जीवावोऽद्यापि दुर्धियौ ।।३०५।।

आर्यसैन्यस्य महतो नाशप्रतिभुवाविव ।
अकुर्वहि वृथा नाशं नीतो बन्धुरबन्धुताम् ।
तन्नाऽद्य जीवितुं युक्तं जीवावश्चेदतः परम् ।
शिष्यीभूयार्हतो वीरस्वामिनः खलु नान्यथा ।
तदाशासनदेव्या तौ भावश्रमण तां गतौ ।
नीतौ श्रीवीरपादान्ते परिवव्रजतुर्दु तम् ।
तदाच प्रव्रजितयोरपि हल्ल-विहल्लयोः ।
अशोकचन्द्रो वैशालीमादातुमशकन्नहि ।

त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२

उसे देखकर दोनों कुमारों ने चिन्तन किया कि अपने दोनों को धिक्कार है । अपने ने यह क्या कार्य किया । इनमें तो अपने ही दोनों खरेखर पशु ठहरे । सेचनक पशु नहीं है । क्योंकि पूज्य मातामह चेटक को ऐसे संकट में फेंका । मोटा विनाश हुआ । परन्तु अपने दोनों दुष्ट बुद्धि वाले जीव थे । फलस्वरूप अपने आर्य बन्धु के मोटे सैन्य को विनाश करने में जमीन रूप हुए । और उसका वृथा नाश कराया । इसी प्रकार बन्धु को अबन्धु-पन में लाया । इसलिये अब अपने को यदि जीना है तो अब से ही श्री वीर प्रभु का शिष्य होकर ही जिना चाहिए । अन्यथा जीना उचित नहीं है ।

अवसर देखकर इस समय शासनदेवी भावयति हुए उन दोनों को श्री वीर प्रभु के पास ले गयी ।

फलस्वरूप तत्काल उन्होंने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की ।

कूणिक की कठोर प्रतिज्ञा

तदाच प्रव्रजितयोरपि हल्ल-विहल्लयोः ।
अशोकचन्द्रो वैशालीमातुमशकन्नहि ।।३११।।

एवं सति च चंपेशः प्रतिज्ञामकृतेदृशीम् ।।३१२।।
प्रतिज्ञया पौरुषं हि दोष्मतां भृशमेधते ।
न खनामि पुरीमेतां खरयुक्तहलेन चेत् ।
तदाऽहं भृगुपा तेनाग्नि प्रवेशेन वाम्रिये ।।३१३।।

कृतसन्धोऽपि वैशालीं पुरीं भक्तुमनीश्वरः ।
खेदमासादयामास कूणिकः क्रमयोगतः ।।३१४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदाखाशोकखन्द्रस्य खिन्नस्य गगनस्थिता।
देव्याखयदीदृशं रुस्टा श्रमणे कूलवालके।
गनियं चे मागधियं शमने कुलवालके।
लभिज्ज कूणि एला'ए तो वेशालिं गहिस्सिदि ॥३१६
आकाशदेवतावाचमिमामाकर्ण्य कूणिकः।
बभाण सद्यः सञ्जातजयप्रत्याशयोच्छ्वसन्।
बारका नां हि भाषा या भाषा या योषितामपि॥
औत्पातिकी च भाषा या सा वै भवति नाऽन्यथा।
तत्क्वास्ति श्रमणः कूलवालकः प्राप्स्यते कथम्।
पण्यांगना मागधिकाभिधाना विद्यते क्व वा ॥३१९॥

त्रिशलाका० पर्व १०/सर्ग १२

फिर भी कूणिक विशाला को कब्ज करने संबंधी प्रतिज्ञा ली। "पराक्रमी पुरुषों को प्रतिज्ञा करने से पुरुषार्थ वृद्धि को प्राप्त होता है। वह प्रतिज्ञा इस प्रकार थी-यदि मैं इस विशाला नगरी को गधे से जोड़े हुए हल से न खोदु तो हमको भृगुपात या अग्निप्रवेश करके मर जाना है।

— उसने ऐसी प्रतिज्ञा की थी फिर वह विशाला पुरी का भंग न कर सका। इस कारण उसको बहुत खेद हुआ।

इसी अवसर पर कर्मयोग से कुल बालक पर रुष्टमान हुई देवी आकाश में रहकर कहा कि हे कूणिक! जो मागधिका वेश्या कुल बालक मुनि को मोहितकर वश करे तो तुम विशाला नगरी को ग्रहण कर सकते हो।"

ऐसी आकाशवाणी सुनकर तत्काल उसको जयकी प्रत्याशा उत्पन्न हुई। ऐसा कूणिक सज्ज होकरबोला—"बालकों की भाषा, स्त्रियों की भाषा और औत्पात्तिकी भाषा प्रायः अन्यथा नहीं होती है। तो यह कुलबालक मुनि कहाँ है। और किस प्रकार मिल सकता है। और मागधिका वेश्या कहाँ है।"

रथमूसल संग्राम का एक प्रसंग—

बहुजणेणं भंते! अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति, जावपरुवेइ—एवं खलु बहवे मणुस्सा अन्नयरेसु उच्चावएसु संगामेसु अभिमुहाचेवपहया समाणा कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु उववत्तारो भवंति

सेकहमेयं भंते! एवं?

गोयमा! जण्णं से बहुजणे अन्नमन्नस्स एवं आइक्खति—जाव उववत्तारो भवंतिः जेतेएवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.१ रथमुसल संग्राम

कालकुमार—

'१ तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपा नयरी होत्था। × × × तत्थणं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था × × ×। तीसेणं कालीए देवीए पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था।×××।

तएणं से काले कुमारे अन्नया कयाइ तिहिं दन्तिसहस्सेहिं, तिहिं रहसहस्सेहिं, तिहिं आससहस्सेहिं, तिहिं मणुयकोडीहिं, गरुलवूहे एक्कारसमेणं खंडेणं कूणिएणं रन्ना सद्धिं रहमुसलं संगामं ओयाए।

×× × 'काली' इ समणे भगवं कालिं देविं एवं वयासी 'एवं खलु, काली, तव पुत्ते काले कुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं जाव कूणिएणं रन्ना सद्धिं रहमुसलं संगामं संगामेमाणे हयमहियपवरवीरघाइयणिवडियचिन्धज्झयपडागे निरालोयाओ दिसाओ करेमाणे चेडगस्स रन्नो सपक्खं सपडिदिसिं रहेणं पडिरहं हव्वमागए। तएणं से चेडए राया कालं कुमारं एज्जमाणं पासइ। पासइत्ता आसुरुते जाव मिसिमिसेमाणे धणुं परामुसइ। परामुसइत्ता उसुं परामुसइत्ता वइसाहं ठाणं ठाइ ठाइत्ता आययकण्णाययं उसुं करेइ। करेइत्ता कालं कुमारं एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोवेइ।

भन्तेत्ति भगवं गोयमे जाव वन्दइ नमंसइ नमंसइत्ता एवं वयासी—काले णं भन्ते! कुमारे तिहिं दन्ति सहस्सेहिं जाव रहमूसलं संगामं संगामेमाणे चेडएणं रन्ना एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोविए समाणे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए, कहिं उववन्ने।

रथमुसल संग्राम

गोयमाइ समणे भगवं गोयमं एवं वयासी—एवं खलु गोयमा! काले कुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं जीवियाओ ववरोविए समाणे कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए हेमाभे नरगे दससागरोवमठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने।

निर० व १/सू० ५ से ८

उस काल उस समय में इसी मध्य जम्बूद्वीप में भरत नामक क्षेत्र है। उसके मध्य भाग में चम्पा नाम की नगरी थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा का पुत्र कोणिक राजा राज्य करते थे।

उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा की पट्टरानी कोणिक राजा की लघुमाता काली नाम की देवी सुकुमाल कर-चरण वाली यावत् सुरूपा थी। उस काली महारानी के कोमल कर चरण वाला और सुन्दर रूप वाला 'काल' नाम का कुमार था।

कूणिक के साथ काल कुमार अपनी सेना को लेकर रथमुसल संग्राम में उपस्थित हुए अर्थात् संग्राम के निश्चित हो जाने के पश्चात् वह काल कुमार नियत समय पर तीन हजार हाथी-घोड़े, रथ आदि, एवं तीन करोड़ पैदल सेना को लेकर गरूड़व्यूह में ग्यारवें अंश के भागी राजा कूणिक के साथ 'रथमुसल' संग्राम में उपस्थित हुआ।

काली देवी के प्रश्न करने पर—

काली देवी को श्रमण भगवान् महावीर ने कहा—तेरा पुत्र काल कुमार तीन-तीन हजार हाथी-घोड़े, रथ और युद्ध की समस्त सामग्री सहित रथमुसल संग्राम में कूणिक राजा के साथ गया था। वहाँ रथमुसल संग्राम में युद्ध करता हुआ वह अपनी सेना और सारी रण सामग्री के नष्ट हो जाने पर, बड़े २ वीरों के मारे जाने और घायल होने पर तथा ध्वजा-पताका आदि चिह्नों के धराशायी हो जाने से अकेला ही अपने पराक्रम से सभी दिशाओं को निस्तेज करता हुआ रथ पर बैठकर चेटक राजा के रथ के सामने महावेग से आया।

तदनन्तर चेटक राजा कालकुमार को अपने सम्मुख आया हुआ देख कर तत्क्षण क्रुद्ध हो उठे, रुष्ट हुए और आन्तरिक कोपके कारण उनके होठ फड़-फड़ाने लगे। उन्होंने रौद्र रूप धारण किया एवं क्रोध की ज्वाला से जलने लगे। ललाट पर आवेश से तीन शल्य चढाते हुए धनुष को सज्जा किया और उस पर बाण चढ़ा कर युद्ध स्थल में खड़े हो गये और बाण को कान तक खींचा, अन्त में चेटक ने कूट, अर्थात् बहुत बड़ा पत्थर का बनाया हुआ 'महाशस्त्र विशेष' जिसके एक बार के प्रहार से प्राण निकल जाय, उसी प्रकार बाण के प्रबल प्रहार से काल कुमार के प्राण ले लिये।

इसलिए हे काली! तुम काल कुमार को जीवित नहीं देखेगी।

काली रानी के चले जाने के बाद गौतम-स्वामी भगवान् से प्रश्न किया—हे भदन्त! काल कुमार तीन-तीन हजार हाथी, घोड़े, रथ और अपने सम्पूर्ण सैन्यवर्ग के साथ रथमुसल संग्राम में युद्ध करता हुआ चेटक राजा के वज्र स्वरूप एक ही बाण से मारा गया। वह मृत्यु के समय काल प्राप्त होकर कहाँ गया और कहाँ उत्पन्न हुआ।

प्रत्युत्तर में भगवान ने कहा—हे गौतम! वह क्रूरकर्म करने वाला काल कुमार अपनी सेना सहित लड़ता हुआ यहाँ से मर कर पंकप्रभा नामक चौथे नरक के अन्दर हेमाभ नाम के नरकावास में दस सागरोपम स्थिति वाला नैरयिक हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट :—'रथमुसल'—मुशल युक्त रथ को 'रथमुशल' कहते हैं। अर्थात् रथ से निकलकर मुसल बहुत वेग से दौड़ कर शत्रुपक्ष का विनाश (संहार) करता है—उस संग्राम को 'रथमुसल कहते हैं'।

चमरेन्द्र ने रथमुसल संग्राम को विकुर्वित किया।

·२ नायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया—रहमुसले संगामे रहमुसलेणं भंते! संगामे वट्टमाणे के जइत्था? के पराजइत्था? गोयमा! वज्जी, विदेहपुत्ते, चमरे असुरिंदे असुरकुमारराजा जइत्था, नव मल्लई, नव लेच्छई पराजइत्था ॥१८२॥

तएणं से कूणिए राया रहमुसलं संगाम उवट्ठियं, सेसं जहा महासिलाकंटए णवरं भूयाणंदे हत्थिराया जाव रहमुसलं संगाम आयावाए। पुरओ य से सक्के, देविंदेदेवराया एवं तहेव जाव चिट्ठंति, मग्गाओय से चमरे असुरे असुरिंदे असुरकुमार राया एगं महं आयसं किढिणपडिरुवगं विउव्वित्ता णं चिट्ठइ। एवं खलु तओ इंदा संगामं संगामेंति तं जहा देविंदेय मणुइंदेय, असुरिंदे य। एगं हत्थिणावि णं पभू कूणिए राया जइत्तए, तहेव जाव दिसोदिसिं पडिसेहित्था।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—रहमुसले संगामे?

गोयमा! रहमुसलेणं संगामे वट्टमाणे एगे रहे अणासए, असारहिए, अणारोहए, समुसले महया जणक्खयं, जणवहं, जणप्पमद्दं, जणसंवट्टकप्पं रुहिरकद्दमं करेमाणे सव्वओ समंता परिधावित्था, से तेणट्ठेण × × × रहमुसले संगामे।

रहमुसलेणं भंते! संगामे वट्टमाणे कति जणसय साहस्सीओ वहियाओ? गोयमा! छण्णउतिं जणसयसाहस्सीओ वहियाओ।

तेणं भंते! मणुयानिस्सीला × × × उववन्ना।

गोयमा! तत्थ णं दससाहस्सीओ एगाएमच्छियाए कुच्छिंसि उववन्नाओ। एगे देवलोगेसु उववन्ने। एगेसुकुले पच्चायाए। अवसेसा उस्सण्णं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववन्ना॥

—भग० श० ७।उ ९ सू० १८२ से १९०

अरिहंत ने जाना है, अरिहंत ने प्रत्यक्ष किया है, अरिहंत ने विशेष प्रकार जाना है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि रथमुसल संग्राम है। हे भगवन् ! जब रथमुसल नाम संग्राम हुआ था तब कौन विजय हुआ। और कौन पराजय हुआ। हे गौतम ! वज्जी (इन्द्र), विदेह पुत्र (कूणिक) और असुरेन्द्र असुर कुमार राजा चमर जीता। नवमल्लकी और नवलेच्छकी राजा पराजय हुए।

उसके बाद वह कुणिक राजा रथमुसल संग्राम उपस्थित हुआ जान कर (स्वयं के कौटुम्बिक पुरुषों को आह्वान करता है। शेष का सर्ववृतान्त-महाशिला कंटक संग्राम की तरह जानना चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि यहाँ भूतानंद नामक प्रधान हस्ति था यावत् कूणिक राजा रथमुसल संग्राम में गया।

उसके आगे देवेन्द्र देवराज शक है इस प्रकार पूर्व की तरह रहते हैं। पीछे असुरेन्द्र असुर कुमार का राजा चमर एक मोटा लोढा का किठीन (बाँस का बनाया हुआ तापस का पात्र) जैसा कवच विकुर्वित कर रहा।

इस प्रकार तीन इन्द्र युद्ध करते हैं—जैसे—देवेन्द्र, मनुजेन्द्र और असुरेन्द्र।

अस्तु कूणिक एक हाथी से भी शत्रुओं को पराजित करने में समर्थवान् है यावत् उसने पूर्व कहे प्रमाण शत्रुओं को चारों दिशाओं में भगा दिया।

हे भगवन् ! किस कारण से उसे रथमुसल संग्राम कहा जाता है।

हे गौतम ! जिस समय रथमुसल संग्राम हुआ था उस समय अश्वरहित, सारथि रहित, योद्धाओं से रहित और मुसल सहित एक रथ घने जन-संहार को, जनवध को, जनप्रमर्दको जनप्रलय को—वह लोहि के कीचड़ को करता हुआ चारों तरफ चारों बाजु में दौड़ता है उस कारण से उसे रथमुसल संग्राम कहा जाता है।

रथमुसल संग्राम में छिन्नवे लाख मनुष्य मारे गये।

हे भगवन् ! शील रहित वे मनुष्य यावत् कहाँ उत्पन्न हुए।

हे गौतम ! उनमें दस हजार मनुष्य एक मच्छली के उदर में उत्पन्न हुए। एक देव लोक में, एक उत्तम कुल में उत्पन्न हुए।

और अवशेष मनुष्य ज्यादा तर नारकी तथा तिर्यंचयोनि में उत्पन्न हुए।

नोट—देवेन्द्र-शक्रेन्द्र-कूणिक राजा का पूर्व संगतिक—पूर्वभव सम्बन्धी मित्र था और असुरेन्द्र चमर—कूणिक राजा का पर्याय संगी तक—तापस की अवस्था में मित्र था। इस कारण शक्रेन्द्र और असुरेन्द्र ने कूणिक राजा को सहायता दी।

·१ महासिला-कंटक-संग्राम

नायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया—महासिला कंटए संगामे महासिलाकंटए णं भंते ! संगामे वट्टमाणे के जइत्था ? के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पराजइत्था ? गोयमा ! वज्जी, विदेहपुत्ते जइत्था, नवमल्लई, नवलेच्छई—कासी-कोसलगा अट्ठारसवि गणरायाओ पराजइत्था ॥१७३॥

तएणं से कोणिए राया महासिलाकंटगं संगामं उवट्ठियं जाणित्ता कोडुंबियपुरिसेसद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उदाइं हत्थिरायं पडिकप्पेह, हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणि सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह ॥१७४॥

तएणं से कूणिए राया × × × जेणेव उदाई हत्थिराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उदाइं हत्थिरायंदुरुढे ॥१७६॥

तएणं से कूणिए राया हारोत्थय सुकयरइयवच्छे जाय सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं-उद्धव्वमाणीहिं हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभडचडगरविंदपरिखित्ते जेणव महासिला कंटए संगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता महासिलाकंटगं संगामं ओयाए। पुरओ य से सक्के देविंदे देवराया एगं महं अभेज्जकवयं वइरपडिरूवगं विउव्वित्ता णं चिट्ठइ। एवं खलु दो इंदा संगामं संगामेंति, तंजहा—देविंदेय, मणुइंदेय। 'एगहत्थिणा विणं पभू कूणिए रायाजइत्तएगहत्थिणा विणं पभू कूणिए राया पराजिणित्तए ॥१७७॥

तएणं से कूणिए राया महासिलाकंटगं संगामं संगामेमाणे नवमल्लई, नवलेच्छई-कासी-कोसलगा अट्ठारसवि गणरायाणो हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंधद्धयपडागे किच्छपाणगए दिसोदिसिं पडिसेहित्था ॥१७८॥

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइमहासिलाकंटए संगामे ?

गोयमा ! महासिलाकटएणं संगामे वट्टमाणे जे तत्थ आसे वा हत्थी वा जोहेवा सारही वा तणेव वा कट्ठेण वा पत्तेण वा सक्कराए वा अभिहम्मति, सव्वे सेजाणइ महासिलाए अहं अभिहए। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ महासिलाकंटए संगामे ॥१७९॥

महासिला कंटए णं भंते ! संगामे वट्टमाणे कतिजणसयसाहस्सीओ वहियाओ ? ॥१८०॥

तेणं भंते ! मणुया निस्सीला (निग्गुणा निम्मेरा) निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा रुट्ठा परिकुव्विया समरवहिया अणुवसंता कालमासे कालं किच्चा कहिं गया ? कहिं उववण्णा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! उस्सण्णं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववण्णा ।।१८१।।

—भग० श ७ । उ ६ । सू १७३-१८१

अरिहंत ने जाना है, अरिहंत ने प्रत्यक्ष किया है, अरिहंत ने विशेष रूप से जाना है कि महाशिला नामक संग्राम है।

महाशिला संग्राम में वज्री (इन्द्र) और कूणिक पुत्र जीते और नवमल्लकी और लेच्छकी जो काशी और कोशल देश के अठारह गण राजा थे—पराजय को प्राप्त हुए।

तत्पश्चात्—महाशिला कंटक संग्राम विकुर्वित होने के पश्चात्—वह कूणिक राजा महाशिला कंटक नामक संग्राम उपस्थित हुआ जानकर स्वयं के कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है। बुलाकर उनको ऐसा कहा—कि हे देवानुप्रिय! शीघ्र उदायि नामक पट्टहस्ति को तैयार करो और घोड़ा, हाथी, रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंग सेना को तैयार करो। तैयार कर हमारी आज्ञा जल्दी वापस दो।

तत्पश्चात् वह कूणिक राजा के ऐसा कहने से वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट-तुष्ट होकर अंजलीकर—हे स्वामिन्! इस प्रकार 'जैसी आज्ञा'—ऐसा कहकर आज्ञा और विनय से वचन को स्वीकार करते हैं, वचन को स्वीकार कर कुशल आचार्यों के उपदेश से तीक्ष्ण मति कल्पना के विकल्पों से औपपातिक सूत्र के कथनानुसार यावत् भयंकर जिसके साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता ऐसे उदायि नामक मुख्य हस्ति को तैयार करता है।

थोड़े हाथी-घोड़े आदि से युक्त यावत् (चतुरंग सेना को तैयार करता है।) वह सेना को सज्जितकर जहाँ कूणिक राजा था—वहाँ आया। आकर करतल जोड़कर कूणिक राजा को उसने आज्ञा वापस दी।

उसके बाद कूणिक राजा जहाँ स्नानगृह था वहाँ आता है और वहाँ आकर स्नानगृह में प्रवेश करता है। वहाँ प्रवेशकर स्नान-बलिकर्म कर, और प्रायश्चित्तरूप कौतुक और मंगलकर सर्वालंकार से विभूषित होकर, सन्नद्ध बद्ध होकर, बख्तर को धारणकर बालेल धनुर्दण्ड ग्रहणकर, डोक में आभूषण पहनकर, उत्तमोत्तम चिह्न पर बाँधकर, आयुध और और प्रहरणों को धारणकर मस्तक में धारण कराते कोरटंक पुष्प की मालावाले छत्र सहित, जिनका अंगचार चामर के बाल से वींजित था। जिनके दर्शन से मंगल और जय शब्द होता है—ऐसा (कूणिक) औपपातिक सूत्र के कथनानुसार यावत् आकर उदायि नामक प्रधान हस्ति पर चढ़ा।

उसके बाद हार से उसका वक्षःस्थल ढंका होने से रति उत्पन्न करता हुआ—औपपातिक सूत्र के अनुसार बारम्बार वींजाता श्वेत चामर से यावत् घोड़ा, हाथी, रथ और उत्तम योद्धाओं से युक्त चतुरंग सेना के साथ परिवार युक्त, महान् सुभटों के विस्तीर्ण समूह से व्याप्त कूणिक राजा जहाँ महाशिला कंटक था—वहाँ आया।

वहाँ आकर महाशिला कंटक संग्राम में उतरा। उसके देवेन्द्र-शक्रेन्द्र एक मोटा वज्र के समान अभेद्य कवच विकुर्वित कर उभा रहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार दो इन्द्र संग्राम करते है—एक देवेन्द्र और दूसरा मनुजेन्द्र।

अब कूणिक राजा एक हाथी से भी शत्रुपक्ष को पराजय करने मे समर्थ है।

उसके बाद वह कूणिक राजा महाशिला कंटक संग्राम को करता हुआ नवमल्लकि और नवलेच्छकि जैसे काशी और कोशल के अठारह गणराजा थे। उन्हें महान् योद्धाओं ने हना, घायल किया और मारा। उनकी चिह्न युद्ध ध्वजा और पताकाओं को फाड़कर फेंक दिया।

और जिनके प्राण मुश्किल में है—ऐसे उन्हें (युद्ध में) चारों दिशाओं में भगा दिया।

गौतम—हे भगवान्! क्या कारण से ऐसा कहा जाता है कि वह महाशिला कंटक संग्राम है?

प्रत्युत्तर में भगवान् ने कहा—हे गौतम! जब महाशिला कंटक संग्राम हुआ था—जब उस संग्राम में जो घोड़े, हाथी, योद्धा और सारथि तृण, काष्ठ, पांदड़ा या कांकरे से हनन होते—तब ऐसा सब जानते थे कि मैं महाशिला हनित हुआ हूँ। इस कारण से हे गौतम! उसे महाशिला संग्राम कहा जाता है।

महाशिला कंटक संग्राम में चौरासी लाख मनुष्यों का हनन हुआ।

निःशील, यावत् प्रत्याख्यान और पौषधोपवास रहित, रोष से भरे हुए, गुस्से हुए, युद्ध में घायल हुए, अनुप शांत—ऐसे वे मनुष्य काल समय में मरण प्राप्त कर अधिकतर नारक और तिर्यंचों में उत्पन्न हुए।

नोट—चमरेन्द्र ने महाशिला कंटक संग्राम विकुर्वित किया।

'महाशिला कंटक' जो महाशिला के समान प्राणों का कंटक अर्थात् घातक है वह महाशिला-कंटक कहा जाता है। अथवा तिनके की नौंक से मारने पर भी हाथी, घोड़े आदि को महाशिला कंटक से मारने जैसी तीव्र वेदना होती है उस संग्राम को महाशिला कंटक' कहते हैं।

भगवती टीका—महाशिला कंटक संग्राम का संबंध इस प्रकार था।

चंपानगरी में कूणिक नामक राजा था। उसके हल्ल और विहल्ल नामक दो छोटे भाई थे। वे दोनों सर्वदा सेचनक गंधहस्ति के ऊपर बैठकर विलास करते थे। उसे देखकर कूणिक राजा की पत्नी पद्मावती ने उन दोनों भाइयों से उस हस्ति को लेने के लिए कहा—

तब कूणिक ने उनके पास से हस्ति को माँगा। फलस्वरूप वे दोनों भाई कूणिक के भय से भागकर हस्ति और परिवार सहित वैशाली नगरी में स्वयं के मामा चेटक राजा के पास गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् कूणिक ने दूत को चेटक के पास भेजा और कहलवाया कि दोनों भाइयों से उसे वापस सौंप दे। परन्तु चेटक राजा ने यह बात अस्वीकार की।

कूणिक ने कहलवाया कि यदि तुम दोनों भाइयों नहीं सौंपते हो तो युद्ध के करने के लिए तैयार हूँ।

चेटक राजा ने भी युद्ध करने में अपनी स्वीकृति दी।

फलस्वरूप कूणिक राजा ने स्वयं के कालकुमार आदि दस भाइयों को चेटक राजा के साथ युद्ध करने के लिए अपने पास बुलाया।

इधर में युद्ध की बात जानकर चेटक राजा ने भी अठारह गणराजाओं को एकत्रित किया।

फलस्वरूप युद्ध प्रारम्भ हुआ। चेटक राजा ने ऐसा नियम लिया था—एक दिन में एक बार एक बाण फेंकना, दूसरा नहीं। परन्तु उसका फेंका हुआ बाण कभी भी निष्फल नहीं जाता था।

कूणिक के सैन्य का दंडनायक काल नाम उसका भाई था। वह युद्ध करता हुआ चेटक राजा के पास गया। चेटक ने उसे एक बाण से मार गिराया। फलस्वरूप कूणिक का सैन्य भाग गया।

दोनों सैन्य स्वयं के स्थान में गयी।

दस दिनों में चेटक राजा ने कूणिक के कालादि दस भाइयों को मार गिराया।

फलस्वरूप ग्यारहवें दिवस में कूणिक ने चेटक को जीतने के लिए देव की आराधना करने के लिए अष्टम तप (तीन दिन का उपवास) किया। उसके कारण शकेन्द्र और चमरेन्द्र आये।

शकेन्द्र ने कहा कि चेटक परम श्रावक है इस कारण हम उसे नहीं मार सकते परन्तु तुम्हारी रक्षा करेंगे।

इस कारण शकेन्द्र कूणिक की रक्षा करने के लिए सारु वज्र के जैसा अभेद्य कवच किया और चमरेन्द्र ने दो संग्राम की विकुर्वणा की।

इस प्रकार महाशिला कंटक और रथ मुसल संग्राम जानना।

४ सूर्याभदेव द्वारा नाटक :—

[५४] तए णं से सूरिआभे देवे समणेणं भगवाया महावीरे एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए [पृ० ४७ पं० ३—] परमसोमणस्सिए समणं भगवंतं महावीरं वंदति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी—तुब्भे णं भंते ! सव्वं जाणह सव्वं पासह सव्वओ जाणह सव्वओ पासह, सव्वं कालं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाणइ सव्वं कालं पासइ, सव्वे भावे जाणइ सव्वे भावे पासइ। जाणंति णं देवाणुप्पिया! मम पुव्विं वा पच्छा वा ममएयरूवं दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं लद्धं पत्तं अभिसमण्णागयं ति, तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाणं भत्तिपुव्वगं गोयमातियाणं समणाणं निग्गंथाणं दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं बत्तीसतिबद्धं नट्टविहं उवदंसित्तए।

[५५] तए णं समणे भगवं महावीरे सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे सूरियाभस्स देवस्स एयमट्ठं णो आढाति णो परियाणति-तुसिणीए संचिट्ठति।

[५६] तए णं से सूरियाभे देवे समणं भगवन्तं महावीरं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—

'तुब्भे णं भंते! सव्वं जाणइ [पृ० ११९ पं० ५] जाव उवदंसित्तए त्ति कट्टु समणं भगवन्तं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ करित्ता वंदति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमति अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दण्डं निस्सिरति अहाबायरे० [पृ० ५६ पं० ३] अहासुहुमे०। दोच्चं पि विउव्वियसमुग्घाएणं जाव बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं विउव्वति। से जहा नाम ए आलिंगपुक्खरे इ वा जाव मणीणं फासो [कं० ३३-४०] तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे पिच्छाघरमण्डवं विउव्वति अणेगखंभसयसंनिविट्ठं-वण्णओ-अन्तो बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं उल्लोयं अक्खाडगं च मणिपेढियं च विउव्वति। तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं सीहासणं सपरिवारं जाव दामा चिट्ठन्ति [कं० ४१-४३]।

[५७] तए णं से सूरियाभे देवे समणस्स भगवतो महावीरस्स आलोए पणामं करेति करित्ता 'अणुजाणउ मे भगवं' ति कट्टु सीहासणवरगए तित्थयराभिमुहे संणिसण्णे। तए णं से सूरियाभे देवे तप्पढमयाए नानामणि-कणग— रयणविमलमहरिहनिउणओवियमिसिमिसिंतविरतियमहाभरणकडग—तुडियवरभूसणुज्जलं पीवरं पलम्बं दाहिणं भुयं पसारेति तओ णं सरिसयाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वणगुणोववेयाणं एगाभरण-वसणगहियणिज्जोआणं दुहतो संवेल्लियग्गणियत्थाणं उप्पीलियचित्तपट्टपरियर-सफेणकावत्तरइयसंगयपलंबवत्थंतचित्तचिल्लगनियंसणाणं एगावलिकण्ठरइय-सोभंतवच्छपरिहत्थभूसणाणं अट्ठसयं णट्टसज्जाणं देवकुमाराणं णिगच्छिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[५८] तयणंतरं च णं नानामणि० [पृ० १२३ पं० १] जाव पीवरं पलंबं वामं भुयं पसारेति तओ णं सरिसयाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं एगाभरण० दुहतो संवेल्लियग्ग० [पृ० ४१२ पं० १] आविद्धतिल-यामेलाणं पिणद्धगेवेज्जकंचुतीणं नानामणि—रयणभूसणविराइयंग-भंगाणंचंदाणणाणं चंदद्धसमनिलाडाणं चंदाहियसोमदंसणाणं उक्का इव उज्जोवेमाणीणं सिंगारा० हसिय—भणिय० [पृ० २९ पं० १] गहियाउज्जाणं अट्ठसयं नट्टसज्जाणं देवकुमारआण' णिग्गच्छइ ।

[५९] तए णं से सूरियाभे देवे अट्ठसयं संखाणं विउव्वति अट्ठसयं संखवायाणं विउव्वइ, 8 अ० सिंगाणं वि० अ० सिंगवायाणं वि०, अ० संखि-याणं वि० अ० संखियवायाणं वि०, अ० खरमुहीणं वि० अ० खरमुहिवायाणं वि०, अ० पेयाणं वि० अ० पेयावायगाणं वि०, अ० पीरिपीरियाणं वि० अ० पीरिपीरियावायगाणं वि०=एवमाइयाइं एगूणपण्णं आउज्जविहाणाइं विउव्वइ ।

[६०] तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य सद्दावेति । तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य सूरियाभेणं देवेणं सद्दाविया समाणा हट्ठ जाव—[पृ० ४७ पं० ३] जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहियं [पृ० ६७ पं० ८] जाव वद्धावित्ता एवं वयासी—'संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! जं अम्हेहिं कायव्वं' ।

[६१] तए णं से सूरियाभे देवे ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य एवं वयासी गच्छहणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेह करित्ता वंदह नमंसह वंदित्ता नमंसित्ता गोयमाइयाणं समणाणं निग्गंथाणं तं दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवजुतिं दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं बत्तीसइबद्धं णट्टविहिं उवदंसेह उवदंसित्ता खिप्पामेव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।
राय० सू० ५४-६१

भगवान् का उत्तर सुनकर सुर्याभदेव का चित्त आनन्दित हुआ और परम सौमनस्य युक्त हुआ। भगवान् का उत्तर सुनने के बाद यह सुर्याभदेव भगवान् को वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार विनती की—

हे भगवन् ! आप सब जानते हो और देखते हो, जहाँ-जहाँ जो है वह सब आप जानते हो और देखते हो । सर्व काल के बनाने वालों को जानते हो, देखते हो, सर्व भावों को आप जानते हो, देखते हो । हमारी दिव्य ऋद्धिसिद्धि को, मुझे प्राप्त हुई दिव्य द्युति को और दिव्य देवानुभाव को भी पहले और पीछे आप जानते हो और देखते हो—तो हे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवन् ! आप देवानुप्रिय की तरफ से हमारी भक्ति लिया हुआ मैं ऐसी इच्छा करता हूँ कि हमारी दिव्य ऋद्धिसिद्धि दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव और बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यकला इन गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को दिखाना चाहिए।

श्रमण भगवान् महावीर ने सुर्याभदेव की उपर्युक्त विनती को आदर नहीं किया, अनुमति नहीं दी और उस तरफ मौन रखा।

उसके बाद दूसरी बार, तीसरी बार भी सुर्याभदेव ऐसी ही विनती की और उसके उत्तर में भगवान् महावीर ने उसका आदर नहीं करते हुए मात्र मौन ही धारण कर रखा। अंत में वह सुर्याभदेव श्रमण भगवान् महावीर को तीन प्रदक्षिणा देकर, वंदन-नमस्कार कर उत्तर-पूर्व दिशा की ओर गया। ईशान कोण में जाकर उसने वैक्रिय समुद्घात किया। उसके द्वारा उसने संख्येय योजन तक लंबा दंड बाहर निकाला, जाड़े और मोटे पुद्गलों को छोड़ दिया और देखने योग्य ऐसे यथासूक्ष्म पुद्गलों को संचय किया। फिर दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात कर उसने नरघाना ऊपर के भाग जैसा सर्व प्रकार से सर्व बाजु से एक समान ऐसा एक भूभाग की रचना की। उनमें रूप, रस, गंध और स्पर्श से सुशोभित पहले वर्णवेला ऐसे अनेक मणिओं को जड़ दिया। सर्व बाजू से एक समान भूमंडल में बीचोबीच उसने एक प्रेक्षागृह की रचना की ! नाटकशाला को खड़ा किया। यह नाटकशाला, उसमें बंधा हुआ उल्लोच-चंदरवो, अखाड़ा और मणि की पेढली—इन सबका वर्णन आगे कहा गया है तथा मणि की—यह पेढली ऊपर सिंहासन, छत्र आदि का जो आगे वर्णन किया गया है—वह सब बराबर गोठवी दिया।

उसके बाद यह सुर्याभदेव श्रमण भगवान् महावीर को देखते हुए उनको प्रणाम किया और भगवान मुझे अनुज्ञा दो—ऐसा कहकर बांधी हुई नाटकशाला में तीर्थंकर के सामने उत्तम सिंहासन पर बैठता है।

उसके बाद बैठते हुए बेंत उसने अनेक प्रकार के मणिमय, कनकमय, रत्नमय, विमल और चकचकते कड़ा पोंची बेरखा आदि आभूषणों से दीप्त उज्ज्वल पुष्ट और लंबा ऐसा स्वयं का दाहिना हाथ प्रसारित किया।

इसके यह दाहिने हाथ में से सरीखे वय लावण्य रूप और यौवनवंत, सरीखे नाटकीय उपकरण और वस्त्राभूषणों से सज्जित, खंभा की दोनों बाजू में उत्तरीय वस्त्र से युक्त, डोक में कोटिओं और शरीर में कंचुक पहरे हुए, टीले और छोगे में लगे हुए, चित्र-विचित्र पट्टे वाले और फुदड़ी फरते जिसके अंत में फेण जैसा ऊँचा हो ऐसा अंत में—कोरे छोड़ी हुई झालर वाले रंग-बेरंगी नाटकीय परिधान पहनी हुई, छाती और कंठ में पड़े हुए एकावल हारों से शोभायमान और नाच करने की पूरी तैयारी वाले एक सौ आठ देवकुमार निकले।

इसी प्रकार सुर्याभदेव ने प्रसारित बायें हाथ में से चन्द्रमुखी, चंद्रार्ध समान ललाट पट्ट वाली, खरते हुए तारे के समान चमकती हुई आकृति वेश और सुन्दर शृंगार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से शोभती हंसती बोलती-चलती विविध विलास से ललित संलाप और योग्य उपचार कुशल, हाथ में बाजावाली, नाच करने की पूरी तैयारी वाली और बराबर ये देव कुमारों की जोड़ी रूप ऐसी एक सौ आठ देवकुमारियां निकली।

इसके बाद सूर्याभदेव १-शंख, २-रणशिंगा, ३-शंखलिओ, ४-खरमुखियो, ५-वेयाओ, ६-पीरपीरिकाओ, ७-पणवोनानी पडघमो, ८-पटहो—मोटी पडघमो, ९-ढक्काओ—डाकलिओ, १०-मोटी ढक्काओ—डाको, ११-भेरीओ, १२-झालर, १३-दुदुंभीओ, १४-सांकडमुखीओ, १५-मोटा सादल, १६-मृदंगों, १७-नंदी मृदंगों, १८-आलिंगो, १९-कुस्तुंबो, २०-गोमुखीओ, २१-नाना मादल, २२-तीन तार की वीणाओ, २३-वीणाओं, २४-भमरीवाली वीणाओं, २५-छह भमरीवाली वीणाओ, २६-सात तार की वीणाओं, २७-बव्वीसो, २८-सुघोषा घंटाओं, २९-नंदी घोषा घंटाओं, ३०-सो तार की मोटी वीणाओ, ३१-कांच की वीणाओं, ३२-चित्रवीणाओं, ३३-आमोदो, ३४-झांझो, ३५-नकुलो, ३६-तुणो, ३७-तुबड़ा वाली वीणाओ, ३८-मुकंदो, ३९-हुडुको, ४०-विचिक्कीओ, ४१-करटीओ, ४२-डिंडिमो, ४३-किणितो, ४४-कडबाओ, ४५-दर्दरो, ४६-दर्दरिकाओ, ४७-कुस्तुंबुरुओ, ४८-कलशीओ, ४९-कलशो, ५०-तालो, ५१-कासों के तालें, ५२-रिंगिरिसिको, ५३-अंगरिसिको, ५४-शिशुमारिकाओ, ५५-वांस के पावाओ, ५६-वालीओ, ५७-वेणुओ—वांसलीओ, ५८-परिल्लीओ, और ५९-बद्धको—इस प्रकार ओगणपचास जात के एक सो आठ-आठ बाजाओं बनाये और एक सौ आठ-आठवे हर बाजाओं के बजाने वाले बनाये।

बाद में सुर्याभदेव स्वयं के हाथ में से सर्जित उन देवकुमारों और देवकुमारियों को बुलाया। वे सब आकर—क्या आज्ञा है? इस प्रकार विनयपूर्वक जनाया।

सुर्याभदेव ने उनको कहा—हे देवानुप्रियो! तुम श्रमण भगवान् महावीर के पास जाओ और उनको तीन प्रदक्षिणा देकर वंदन-नमस्कार कर—ये गौतम आदि श्रमण निर्ग्रंथों को उस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाववाला बत्तीस प्रकार का नाटक करके बताओ!

[६२] तए णं ते बहवे देवकुमारा देवकुमारीयो य सूरियाभेण देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव [पृ० ४७ पं० ३] करयल० जाव [पृ० ६७ पं० ८] पडिसुणंति पडिसुणित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता समणं भगवंतं महावीरं जाव [पृ० १२९ पं० ३] नमंसित्ता जेणेव गोयमादिया समणा निग्गंथा तेणेव उवागच्छंति। तए णं ते बहवे देवकुमारा देवकुमारीयो य समामेव समोसरणं करेंति करित्ता समामेव अवणमंति अवणमित्ता समामेव उन्नमंति एवं सहितामेव ओनमंति एवं सहितामेव उन्नमंति सहियामेव उण्णमित्ता संगयामेव ओनमंति संगयामेव उन्नमंति उन्नमित्ता थिमियामेव ओणमंति थिमियामेव उन्नमंति समामेव पसरन्ति पसरित्ता समामेव आउज्जविहाणाइं गेण्हंति समामेव पवाएंसु पगाइंसु पणच्चिंसु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[६३] किं ते ? उरेणं मंदं सिरेण तारं कंठेण वितारं तिविहं तिसमय-रेयगरइयं गुंजाऽवंककुहरोवगूढं रत्तं तिठाणकरणसुद्धं।

सकुहरगुंजंतवंस-तंती-तल-ताल-लय-गहसुसंपउत्तं महुरं समं सललियं मणोहरं मिउरिभियपयसंचारं सुरइ सुणइ वरचारुरूवं दिव्वं णट्टसज्जं गेयं पगीया यि होत्था।

[६४] किं ते ? × उद्धुमंताणं संखाणं सिंगाणं संखियाणं खरमुहीणं पेयाणं पिरिपिरियाणं, आहम्मंताणं पणवाणं पडहाणं अप्फालिज्जमाणाणं भंभाणं होरंभाणं, तालिज्जंताणं भेरीणं झल्लरीणं दुंदुहीणं, आलवंताणं मुरयाणं मुइंगाणं नन्दीमुइंगाणं, उत्तालिज्जंताणं आलिंगाणं।

कुतुंबाणं गोमुहीणं मद्दलाणं, मुच्छिज्जंताणं वीणाणं विपंचीणं वल्लकीणं, कुट्टिज्जंताणं महंतीणं कच्छभीणं चित्तवीणाणं, सारिज्जंताणं बद्धीसाणं सुघोसाणं, नन्दिघोसाणं, फुट्टिज्जंतीणं भामरीणं छब्भामरीणं परिवायणीणं, छिप्पंतीणं तूणाणं तुंबवीणाणं, आमोडिज्जंताणं आमोताणं झंझाणं नउलाणं, अच्छिज्जंतीणं मुगुंदाणं हुडुक्कीणं चिचिक्कीणं, वाइज्जंताणं करडाणं डिंडिमाण किणियाणं कडम्बाणं, ताडिज्जंताणं दद्दरगाणं दद्दरगाणं कुतुंबाणं कलसियाणं मड्डयाणं, आताडिज्जंताणं तलाणं तालाणं कंसतालाणं, घट्टिज्जंता रिंगिरिसियाणं लत्तियाणं मगरियाणं सुंसुमारियाणं, फूमिज्जंताणं वंसाणं वेलूणं परिल्लीणं बद्धगाणं [कं० ५९]।

[६५] तए णं से दिव्वे गीए दिव्वे वाइए दिव्वे नट्टे एवं अब्भए सिंगारे उराले मणुण्णे मणहरे गीते मणहरे नट्टे मणहरे वातिए उप्पिंजल भूते कहकहभूते दिव्वे देवरमणे पवत्ते या वि होत्था। —राय० सू ६२ से ६५

सूर्याभदेव की आज्ञा होते ही उसे मस्तक पर चढ़ाकर हृष्टतुष्ट हुए—ये देवकुमार और देवकुमारिओं श्रमण भगवान महावीर की ओर जाकर उन्हें वंदन नमस्कार कर जिस तरफ गौतमादिक श्रमण निर्ग्रंथ थे—उस तरफ गये और एक साथ में ही एक हार में—एक कतार खड़े रहे। साथ में ही नीचे आये। तथा बाद में साथ में ही वे स्वयं के मस्तिष्क को ऊँचा कर टट्टार खड़े रहे।

इस प्रकार सहितरूप में और संगत रूप में नीचे नमन किया। तथा बाद में टट्टार खड़े रहे। बाद में साथ में ही टट्टार खड़े रहकर फैलाए गये और स्वयं-स्वयं के नाच गाने में उपकरण हाथ-पैर में बराबर गोठवी रख कर एक साथ में ही बजाने लगे, नाचने लगे और गाने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनका संगीत उरसे आरम्भ होता। उठने में मन्द-मन्द, मूर्धा में आते हुए तार स्वर वाला बाद में कंठ में आता हुआ विशेष तार स्वर वाला—इस प्रकार तीन प्रकार का था। तब उसका मधुर पड छन्द नाटकशाला आखाय प्रेक्षागृह वाला मण्डप में पड़ता था। जिस जात के राग का गान होता उसके अनुकूल ही उसका संगीत होता। गाने वालों के उर मूर्धा और कंठ—ये तीन स्थान और इन स्थानों के करण विशुद्ध थे। तथा गुंजते बांस का पाव और वीणा के स्वर साथ में मिलता। एक दूसरे की बागती हथेली के आवाज को अनुशरण करता, मुरज और कांसिओं के झणझणाट के साथ नाच नराओं के पैर के ठमकाना ताल के बराबर मिलता था। वीणा के लय में बराबर बन्धबेसता और प्रारम्भ से जो तान में पावों आदि बजते थे। उसके अनुरूप ऐसा इनका संगीत कोयल के टहुकाजवा मधुर था। तथा यह सर्वप्रकारसेसम, सललित-कान को कोमल, मनोहर, मृदुपद-संचारी, श्रोताओं को रतिकर, अन्त में भी ऐसा वह नाचने वालो का नाचसज्ज विशिष्ट प्रकार का उत्तमोत्तम संगीत था।

जब यह मधुर संगीत चलता था तब शंख, रणशिंगु, शंखली, खरमुखी पेया और पीरीपीरिका को बजाने वाले वे देव उनको धमन करते थे, पणव, पटह ऊपर आघात करते, भंभा मोटी डाकों को अफलावते, भेरी, क्षालर, दुंदुभी ऊपर ताडन करते, मुरज, मृदंग, नन्दीमृदंगों को आलाप लेते, आलिंग कुस्तुंब गोमुखी मादल ऊपर उत्ताडन करते, वीणा, विपंची-वल्लकीआको मूर्छावते, सो तार की मोटी वीणा काचवी, वीणा चित्र वीणा को कूटते। बद्धीस सुघोषा नन्दी घोषा का सारण करते, भ्रामरी, षड्भ्रामरी परिवादनी को स्फोटन करते, तूणतुंब वीणा को छबछबते, आमोद झांझ, कुंभ, नकुलोको आमोटन करते-परस्पर अफलावते, मृदङ्ग, हुडुकी, विचिक्कीओ को छेड़ते, करटी, डिंडिम, किणित, कडबाको बजाते हुए, दर्दरक, दर्दरिकाओ कुस्तुंबुरू, कलशीओ, मडुओ ऊपर अतिशय ताडन करते, और बंसी-वेणु, बाली, परिल्ली तथा बद्धकों को फूंकते थे।

इस प्रकार ये गीत, नृत्य और वाद्य-दिव्य-मनोज्ञ, मनोहर और श्रृंगार रस से तर-बोल बने थे। अद्भुत बने थे सबके चित्त में आक्षेपक नीवड़े थे, इन संगीतों को सुनने वाले और नृत्यों को देखने वाले सुख में से उछलते वाहवाह के कोलाहलसे—यह नाटकशाला गाज रही थी।

इस प्रकार इन देवों की दिव्य रमत प्रवृत्त होती थी।

सोत्थिय-सिरिवच्छ-नंदियावत्त-वद्धमाणग।

—राय० सु० ६६

इन रमत में मस्त बने हुए वे देव कुमार और देव कुमारिया श्रमण-भगवान् महावीर के सम्मुख स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दावर्त्त, वर्धमानक-भद्रासन, मत्स्य और दर्पण के दिव्य अभिनय कर यह मंगलरूप प्रथम नाटक दिखाया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(संगीत-नृत्य-वादित्र-अभिनय के साथ बतीस नाटक किये)

[८५] तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य चउव्विहं वाइत्तं वाएंति-तं जहा-ततं विततं घणं झुसिरं।

[८६] तएं णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य चउव्विहं गेयं गायंति तंजहा-उक्खित्तं पायंतं मंदायं रोइयावसाणं च।

[८७] तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य चउव्विहं णट्टविहिं उवदंसंति-तंजहा-अंचियं रिभियं आरभडं भसोलं च।

[८८] तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य चउव्विहं अभिणयं अभिणयेंति-तंजहा-दिट्ठंतियं=पाडिंतियं सामन्नोविणिवाइयं अंतोमज्झावसाणियं च।

—राय० सू० ८५ से ८८

(नाटक दिखाये—दिव्यदेवमाया समेटकर-वापस प्रस्थान)

[८९] तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य गोयमादियाणं समणाणं निग्गंथाणं दिव्वं देविड्ढिं दिव्व देवजुतिं दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं बत्तीसइबद्धं नाडयं उवदंसित्ता समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति करित्ता वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं [पृ० ६७ पं० ८] मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति वद्धावित्ता एवं आणत्तियं पच्चप्पिणंति।

देवमाया को समेटा—गौतम को संशय—शंकानिवारण

तए णं से सूरियाभे देवे तं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं पडिसाहरइ पडिसाहरेत्ता खणेणं जाते एगे एगभूए। तए णं से सूरियाभे देवे समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ वंदति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता नियगपरिवालसद्धिं संपरिवुडे तमेव दिव्वं जाणविमाणं दुरूहति दुरूहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेवदिसिं पडिगए।

—राय० सू० ८९

अब वे देवकुमार और देवकुमारिया गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को—ये बत्तीस प्रकार के दिव्य नाटक को दिखाकर तथा श्रमण भगवान् महावीर को तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें वंदन नमस्कार कर जिस तरफ स्वयं का अधिपति सुर्याभदेव था—उस तरफ गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और हाथ जोड़कर स्वयं के अधिपति को जय-विजय से बधावनाकर उनको जनाया कि आप के द्वारा की हुई आज्ञा प्रमाण हम श्रमण भगवान् महावीर के पास जाकर बत्तीस प्रकार के दिव्य नाटक दिखाकर आये है।

इसके बाद यह सुर्याभदेव स्वयं की दिव्य माया को संकेली लेकर एक क्षण में अकेला रहा—वह एकाकी बन गया।

तत्पश्चात् वह सुर्याभदेव श्रमण भगवान् महावीर को तीन प्रदक्षिणा देकर वंदन-नमस्कार कर स्वयं के पूर्वोक्त परिवार के साथ में यह दिव्य-यान विमान पर चढ़कर जहाँ से आया था वहाँ ही वापस चला गया।

[१३२] तेणं…… ……पज्जत्तीए

पज्जत्तीभावं गयस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुपज्जित्था-किं मे पुव्विं करणिज्जं ? किं मे पच्छा करणिज्जं ? किं मे पुव्विं सेयं ? किं मे पच्छा सेयं ? किं मे पुव्विं पि पच्छा वि हियाए सुहाए खमाए णिस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ ?।

[१३३] तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा देवा सूरियाभस्स देवस्स इमेयारूवमज्झत्थियं जाव [पृ० ५१ पं० १] समुप्पन्नं समभिजाणित्ता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छंति, सूरियाभं देवं करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धाविन्ति वद्धावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पियाणं सूरियाभे विमाणे सिद्धायतणंसि जिणपडिमाणं जिणुस्सेहपमाणमित्ताणं अट्ठसयं संनिखित्तं चिट्ठति, सभाए णं सुहम्माए माणवए चेइए खंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ संनिखि-त्ताओ चिट्ठंति, ताओ णं देवाणुप्पियाणं अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं करणिज्जं, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पच्छा करणिज्जं, तं एयं णं देवाणु-प्पियाणं पुव्विं सेयं, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पच्छा सेयं, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं पि पच्छा वि हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सति।

—राय० सू० १३२-१३३

उस काल उस समय ताजा जन्मा हुआ सुर्याभदेव आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासो-च्छ्वास और भाषा-मन की पर्याप्ति के द्वारा शरीर की सर्वांगपूर्णता रखी है। बाद में यह देव इस प्रकार के विचार में पड़ा कि यहाँ आकर हमारा प्रथम कर्त्तव्य क्या है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद निरंतर क्या करना है। तत्काल और भविष्य में सदा के लिए श्रेय रूप ऐसा क्या कार्य करना चाहिए।

सुर्याभदेव ऐसा विचार करता है। वहाँ तुरन्त ही उसकी सामानिक सभा के देव हाथ जोड़कर सेवा में उपस्थित हुए और जय हो, विजय हो—ऐसा बोलकर स्वामी स्वामी की बधावना करते हुए उसके पास आकर कहने लगे

हे देवानुप्रिय! अपने इस विमान में एक मोटा सिद्धायतन है। वहाँ जिनकी ऊँचाई में ऊँची ऐसी एक सौ आठ जिन प्रतिमा विराजित है। आपकी सुधर्म सभा में एक मोटा माणवक चैत्य वृक्ष खड़ा किया हुआ है। उसमें गोठवी रखे हुये वज्रमय गोल डब्बे में जिनकी अस्थियाँ स्थापना रूप में रखी हुई है।

ये अस्थियाँ आपको और हमको सर्व को अर्चनीय, वंदनीय और उपासनीय है।

[१३४] तए णं से सूरियाभे देवे तेसिं सामाणिय परिसोववन्नगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव [पृ० ४७ पं० ३-]-हयहियए सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेति सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेत्ता उववायसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं निग्गच्छइ, जेणेव हरए तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता हरयं अणुपयाहिणीकरेमाणे अणुपयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं अणुपविसइ अणुपविसित्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जलावगाहं जलमज्जणं करेइ करित्ता जलकिड्डं करेइ करित्ता जलाभिसेयं करेइ करित्ता आयंते चोक्खे परमसुईभूए हरयाओ पच्चोत्तरइ पच्चोत्तरित्ता जेणेव अभिसेयसभं तेणेव उवागच्छति तेणेव उवागच्छित्ता अभिसेयसभं अणुपयाहिणीकरेमाणे अणुपयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

[१३५] तए णं सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा देवा अभिओगिए देवे सद्दावेंति सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो! देवाणुप्पिया! सूरियाभस्स देवस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं इंदाभिसेयं उवट्ठवेह।

—राय० सू० १३४-१३५

सुर्याभदेव उक्त सूचना सुनकर देवशय्या में से तुरन्त बैठ गया। वहाँ से उपपात सभा के पूर्व द्वार से निकलकर पहले स्वच्छ जल से भरे हुए मोटा धरा की तरफ गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घरा को अनुप्रदक्षिणा करता हुआ वह उसमें पूर्व द्वार में बैठा। और वहाँ गोठ-वेल सोपान द्वारा उसमें उतरा। वहाँ उसने जलक्रीड़ा और जल निमज्जन सम्यग् प्रकार किया।

तत्पश्चात् वह अच्छा और परम शूचिभूत होकर घरा में से बाहर आया। और जहाँ अभिषेक सभा थी—वहाँ आया।

अभिषेक सभा को प्रदक्षिणा करता हुआ वह पूर्व द्वार में उसमें बैठा। और वहाँ गोठवेला मुख्य सिंहासन पर चढ़कर बैठा।

बाद में उसकी सामानिक सभा के देवसभ्य उसके कर्मकर रूप आभियोगिक देवों को बुलाया। और हुक्म दिया कि हे देवानुप्रियो! अपना स्वामी यह सुर्याभदेव के महाविपुल इन्द्राभिषेक की तैयारी करो।

तए णं ते आभिओगिआ देवा सामाणियपरिसोववन्नेहिं देवेहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव-हियया [पृ० ४७ पं०३-] करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं देवो! तह' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति पडिसुणित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं जाव दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणित्ता [कण्डिका १९] अट्ठसहस्सं सोवन्नियाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं रुप्पमयाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं मणिमयाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णरुप्पमयाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं सुवन्नमणिमयाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं रुप्पमणिमयाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णरुप्पमणिमयाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं भोमिज्जाणं कलसाणं एवं भिंगाराणं आयंसाणं थालाणं पाईणं सुपतिट्ठाणं वायकरगाणं रयणकरंडगाणं पुप्फचंगेरीणं जाव लोमहत्थचंगेरीणं पुप्फपडलगाणं जाव लोमहत्थपडलगाणं सीहासणाणं छत्ताणं चामराणं तेल्लसमुग्गाणं जाव अंजणसमुग्गाणं झयाणं अट्ठसहस्सं धूवकडुच्छुयाणं विउव्वंति, विउव्वित्ता ते साभाविए य वेउव्विए य कलसे य जाव कडुच्छुए य गिण्हंति गिण्हित्ता सूरियाभाओ विमाणाओ पडिनिक्खमंति पडिनिक्खमित्ता ताए उक्किट्ठाए चवलाए जाव [पृ० ५८ पं १] तिरियमसंखेज्जाणं जाव [पृ० ५८ पं० १] वीतिवयमाणे वीतिवयमाणे जेणेव खीरोदयसमुद्दे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता खीरोयगं गिण्हंति जाइं तत्थुप्पलाइं ताइं गेण्हंति जाव [पृ० २१ पं० १०] सयसहस्सपत्ताइं गिण्हंति गिण्हत्ता जेणेव पुक्खरोदए समुद्दे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता पुक्खरोदयं गेण्हंति गिण्हित्ता जाइं तत्थुप्पलाइं सयसहस्सपत्ताइं ताइं जाव गिण्हंति गिण्हित्ता जेणेव भरहेरवयाइं वासाइं जेणेव मागहवरदामपभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छंति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेणेव उवागच्छित्ता तित्थोदगं गेण्हंति गेण्हेत्ता तित्थमट्टियं गेण्हंति गेण्हित्ता जेणेव गंगा-सिंधु-रत्ता-रत्तवईओ महानईओ तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता सलिलोदगं गेण्हंति सलिलोदगं गेण्हित्ता उभओकूलमट्टियं गेण्हंति मट्टियं गेण्हित्ता जेणेव चुल्लहिमवंतसिहरीवासहर पव्वया तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता दगं गेण्हंति सव्वतूयरे सव्वपुप्फे सव्वगंधे सव्वमल्ले सव्वोस-हिसिद्धत्थए गिण्हंति गिण्हित्ता जेणेव पउमपुंडरीयदहे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता दहोदगं गेण्हंति गेण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव [पृ० २१ पं० १०] सयसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हंति गेण्हित्ता जेणेव हेमवएरवयाइं वासाइं जेणेव रोहिय-रोहियंसा सुवण्णकूल-रुप्पकूलाओ महाणईओ तेणेव उवागच्छंति, सलिलोदगं गेण्हंति गेण्हित्ता उभओकूलमट्टियं गिण्हंति गिण्हित्ता जेणेव सद्दावतिवियडावा तिपरियागा वट्टवेयड्ढ पव्वया तेणेव उवागच्छन्ति उवाग-च्छित्ता सव्वतूयरे तहेव [पृ०२४३ पं०६-] जेणेव महाहिमवंतरुप्पिवासहरपव्वया तेणेव उवागच्छन्ति तहेव जेणेव महापउममहापुंडरीयद्दहा तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छित्ता दहोदगं गिण्हन्ति तहेव जेणेव हरिवासरम्मगवासाइं जेणेव हरिकंत-नारिकंताओ महाणईओ तेणेव उवागच्छन्ति तहेव जेणेव गंधावइमाल-वन्तपरियाया वट्टवेयड्ढपव्वया तेणेव तहेव जेणेव णिसढणीलवंतवासधर-पव्वया तहेव जणेव तिगिच्छिकेसरिद्दहाओ तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता तहेव जेणेव महाविदेहे वासे जेणेव सीतासीतोदाओ महाणदीओ तेणेव तहेव जेणेव।

—राय० सू० १३५

उक्त आज्ञा सुनते ही वह आभियोगिक देव वहाँ से ईशान कोण में जाकर एक, दो वार वैक्रिय समुद्घात किया और उसके द्वारा अभिषेक की सामग्री के लिए एक हजार आठ-एक हजार आठ—ऐसे बहुत पदार्थ बनाकर लिया जैसे कि

सोने के, रूपे के, मणि के, सोनामणि के, रूपामणि के और सोना रूपामणि के कलश बनाये, भौमेय कलश-घड़ी निकाले, उसी प्रकार और उतनी ही संख्या में भृङ्गार, आरिसा, थाल, पात्रियो, छत्र, चामर, फूलकी और मोरपींछ आदि की चंगेरियो, तेल के हिंग लोक के और आंजन आदि के दवाओं और धूपघाणाओ—इन सर्व की एक हजार आठ-एक हजार आठ की संख्या में रचना की।

इन सर्व की स्वाभाविक और बनावटी सामग्री लेकर वे आभियोगिक देव तिर्यग्-लोक की ओर जाने के लिये वेगवाली गति से झपाटा बंध उपड़े।

इस तरफ असंख्य योजन जाते-जाते वे क्षीर-समुद्र के पास आ पहुँचे। उसमें से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षीरोदक और उसके प्रशस्त उत्पल आदि कमल लेकर वहाँ से वे पुष्करोदक समुद्र में जाकर पहुँचे। वहाँ का पवित्र जल और पुष्पादिक लेकर वे आभियोगिक देव भरत-ऐरभरत क्षेत्र में आये हुए मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थों की ओर उड़े। वहाँ पहुँचकर तीर्थ-जल और तीर्थ धूल लेकर वे गंगा-सिंधु-रक्ता-रूक्तवती, नदियों की ओर उतरे। वहाँ का शुचि जल और मिट्टी लेकर वे चुल्लहेमवंत आदि पर्वतों की ओर जाकर चढ़े।

वहाँ से जल, पुष्प और सर्व प्रकार की औषधि सरसव आदि लिया। वहाँ से वे पद्मपुंडरीक के धरा की ओर गये। वहाँ स्वच्छ जल आदि भरकर वहाँ से हिमवंत ऐकूवत, रोहिता, रोहितांश्य, सुवर्णकूला और रूप्यकला नदियों की ओर वे उपड़े।

तत्पश्चात् सद्दावति, वियडावती और वृत्त वैताढ्य की तरफ गये। बाद में वहाँ से महाहिमवंत, रुक्मि आदि पर्वत की ओर उड़े और वहाँ से गंधावती, मालवंत और वृत्तवैताढ्य तथा निषध-नीलवंत, तिगिच्छ, केसरिद्रह और महाविदेह की सीता-सीतोदा नदियों की ओर गये।

सुर्याभदेव-अभिषेकोत्सव :—

सव्वचक्कवट्टिविजया जेणेव सव्वमागहवरदामपभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता तित्थोदगं गेण्हंति गेण्हित्ता सव्वंतरणईओ जेणेव सव्ववक्खारपव्वया तेणेव उवागच्छंति सव्वतूयरे तहेव जेणेव मंदरे पव्वते जेणेव भद्दसालवणे तेणेव उवागच्छन्ति सव्वतूयरे सव्वपुप्फे सव्वमल्ले सव्वोसहि-सिद्धत्थए य गेण्हंति गेण्हित्ता जेणेव णंदणवणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता सव्वतूयरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं गिण्हंति गिण्हित्ता जेणेव सोमणसवणे तेणेव उवागच्छंति सव्वतूयरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं च दिव्वं च सुमणदामं गिण्हंति गिण्हित्ता जेणेव पंडगवणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता सव्वतूयरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए च सरसं च गोसीसचंदणं च दिव्वं च सुमणदामं दद्दरमलयसुगंधियगन्धे।

गिण्हन्ति गिण्हित्ता एगतो मिलायंति मिलाइत्ता ताए उक्किट्ठाए जाव [पृ० ५८ पं० १] जेणेव सोहम्मे कप्पे जेणेव सूरियाभे विमाणे जेणेव अभिसेय-सभा जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति वद्धावित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं इंदाभिसेयं उवट्ठवेंति।

तए णं तं सूरियाभं देवं चत्तारि सामणियसाहस्सीओ चत्तारि अग्गमहि-सीओ सपरिवारातो तिन्नि परिसाओ सत्त अणियाहिवइणो जाव अन्नेवि बहवे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरियाभविमाणवासिणो देवा य देवीओ य तेहिं साभावियएहिं य वेउव्वियएहिं य वरकमलपइट्ठाणेहिं य सुरभिवरवारिपडिपुन्नेहिं चंदणकयचच्चियएहिं आविद्ध-कंठेगुणेहिं पउमुप्पलपिहाणेहिं सुकुमालकोमलपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्सेणं सोवन्नियाणं कलसाणं जाव [पृ० २४१ पं० ९] अट्ठसहस्सेणं भोमिज्जाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतूयरेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं य सव्विड्ढीए जाव-वाइएणं महया महया इंदाभिसेएणं अभिसिंचंति ।

—राय० सू० १३५

वहाँ से चक्रवर्ती की सर्वविजय में जाकर और इस प्रकार वे वे सर्व स्थलों में जल, मिट्टी, पुष्पादिक लेकर छेक अन्तिम वे मन्दर पर्वत में जाकर पहुँचे । मंदर पर्वत के भद्रशाल, नंदन और सोमनस वनों में से सुन्दर गोशीर्ष चन्दन आदि सामग्री लेकर छेक अन्तिम वे मन्दर पर्वत पर जा पहुँचे । मन्दर पर्वत के भद्रशाल, नंदन और सोमनस वनों में से सुन्दर गोशीर्ष चंदन आदि सामग्री लेकर वे झपाटा बंध वापस आये और त्वरावाली चाल से वापस सूर्याभविमान में जहाँ सिंहासन के ऊपर स्वयं के स्वामी सूर्याभदेव बैठा था। वहाँ पहुँचे और पहले सामानिक सभा के सभ्य समक्ष इन्द्राभिषेक की सर्व सामग्री जो उन्होंने विविध स्थल से आयी थी उसे उपस्थित किया ।

अभिषेक की सर्व सामग्री आ पहुँची । बाद में सुर्याभदेव की सामानिकसभा के चार हजार देव सभ्य, उसकी चार पट्टराणियों, दूसरी तीन सभाओं के स्वयं-स्वयं के परिवार वाले देव, सात सेनाधिपति, सोलह हजार आत्मरक्षक देव और अन्य भी बहुतसे देव-देवियों—ए सर्व जहाँ, अभिषेक सभा में आकर उस-उस सामग्री के द्वारा मोटी धूमधाम से सुर्याभदेव का इंद्राभिषेक किया ।

[१३६] तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स महया महया इंदाभिसेए वट्टमाणे अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाणं नच्चोययं नातिमट्टियं पविरलफुसियरेणुविणासणं दिव्वं सुरभिगन्धोदगं वासं वासंति, अप्पेगतिया देवा हयरयं नट्ठरयं भट्ठरयं उवसंतरयं पसंतरयं करेंति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाणं आसियसंमज्जिओवलित्तं सुइसंमट्ठरत्थतरावणवीहियं करेंति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाणं मंचाइमंचकलियं करेंति, अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणं णाणाविहरागोसियं झयपडागाइपडागमंडियं करेंति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाण लाउल्लोइयमहियं [पृ० ७+टिप्पण] गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिण्ण-पंचंगुलितलं करेंति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाणं उवचियचंदणकलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं करेंति अप्पेगतिया देवा सूरियाभं विमाणं आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं करेंति, अप्पेगतिया देवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरियाभं विमाणं पंचवण्णसुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेंति, अप्पेगतिया देवा सुरियाभं विमाणं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामं करेंति, अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणंसुगं धगंधियं गंधवट्टिभूतं करेंति,अप्पेगतिया देवा हिरण्णवासं वासंति,सुवण्णवासं वासंति,रययवासं वासंति वइरवासं० पुप्फवासं० फलवासं० मल्लवासं० गंधवासं० चुण्णवासं० आभरणवासं वासंति, अप्पेगतिया देवा हिरण्णविहिं भाएंति, एवं सुवन्नविहिं भाएंति, रयणविहिं पुप्फविहिं फलविहिं मल्लविहिं चुण्णविहिं वत्थविहिं गंधविहिं० तत्थ अप्पेगतिया देवा आभरणविहिं भाएंति, अप्पेगतिया चउव्विहं वाइत्तं वाइंति-ततं विततं घणं [पृ० १४४ पं० ३] झुसिरं, अप्पेगइया देवा चउव्विहं गेयं गायंति, तं०-उक्खित्तायं पायत्तायं मंदायं [पृ० १४४ पं०=४] रोइतावसाणं, अप्पेगतिया देवा दुयं नट्टविहिं उवदंसिति अप्पेगतिया विलंबियणट्टविहिं उवदंसेंति, अप्पेगतिया देवा दुतविलंबियं णट्टविहिं उवदंसेंति, एवं अप्पेगतिया अंचियं नट्टविहिं उवदंसेंति, अप्पेगतिया देवा आरभडं भसोलं आरभडभसोलं उप्पायनिवायपवत्तं संकुचियपसारियं रियारियं भंतसंभंतणामं [कं० ८३-८७] दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति, अप्पेगतिया देवा चउव्विहं अभिणयं अभिणयंति, तंजहा-दिट्ठंतियं पाडंतियं सामंतोवणिवाइयं [कं० ८८] लोगअंतोमज्झावसाणियं, अप्पेगतिया देवा बुक्कारेंति, अप्पेगतिया देवा पीणेंति, अप्पेगतिया लासेंति अप्पेगतिया हक्कारेंति, अप्पेगतिया विणंति, तंडवेंति, अप्पेगइया वग्गंति अप्फोडेंति, अप्पेगतिया अप्फोडेंति वग्गंति, अप्पे० तिवइं छिदंति, अप्पेगतिया हयहेसियं करेंति, अप्पेगतिया हत्थिगुलगुलाइयं करेंति, अप्पेगतिया रहघणघणाइयं करेंति, अप्पेगतिया हयहेसिय-हत्थिगुलगुलाइय-रहघणघणाइयं करेंति, अप्पेगतिया उच्छलेंति, अप्पेगतिया पोच्छलेंति, अप्पेगतिया उक्किट्ठियं करेंति, अ० उच्छलेंति पोच्छलेंति, अप्पेगतिया तिन्नि वि, अप्पेगतिया उवयंति, अप्पेगतिया उप्पयंति, अप्पेगतिया परिवयंति, अप्पेगइया तिन्निवि, अप्पेगइया सीहनायंति, अप्पेगतिया दद्दरयं करेंति, अप्पेगतिया भूमिचवेडं दलयंति, अप्पे० तिन्नि वि, अप्पेगतिया गज्जंति, अप्पेगतिया विज्जुयायंति, अप्पेगइया वासं वासंति, अप्पेगतिया तिन्निवि करेंति, अप्पेगतिया जलंति, अप्पेगतिया तवंति, अप्पेगतिया पतवेंति, अप्पेगतिया तिन्नि वि, अप्पेगतिया हक्कारेंति, अप्पेगतिया थुक्कारेंति, अप्पेगतिया धक्कारेंति, अप्पेगतिया साइं साइं नामाइं साहेंति, अप्पेगतिया चत्तारि वि, अप्पेगइया देवा देवसन्निवायं करेंति, अप्पेगतिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवुज्जोयं करेंति, अप्पेगइया देवुक्कलियं करेंति, अप्पेगइया देवा कहकहगं करेंति, अप्पेगतिया देवा दुहदुहगं करेंति, अप्पेगतिया चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगइया देवसन्निवायं देवुज्जोयं देवुक्कलियं देवकहकहगं देवदुहदुहगं चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगतिया उप्पलहत्थगया जाव सयसहस्सपत्तहत्थगया, अप्पेगतिया कलसहत्थगया जाव धूवकडुच्छुयहत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव-हियया [पृ० ४७ पं० ३] सव्वतो समता आहावंति परिधावंति। तए णं तं सूरियाभं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ जाव [पृ० ४४ पं० २] सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अण्णे य बहवे सूरियाभरायहाणिवत्थव्वा देवा य देवीओ य महया महया इंदाभिसेगेणं अभिसिंचंति अभिसिंचित्ता पत्तेयं पत्तेयं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-जय जय नंदा! जय जय भद्दा! जय जय नंदा! भद्दं ते, अजियं जिणाहि, जियं च पालेहि, जियमज्झे वसाहि इंदो इव देवाणं चंदो इव ताराणं चमरो इव असुराणं धरणो इव नागाणं भरहो इव मणुयाणं बहूइं पलिओवमाइं बहूइं सागरोवमाइं बहूइं पलिओवमसागरोवमाइं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव [पृ० ४४ पं० २] आयरक्खदेवसाहस्सीणं सूरियाभस्स विमाणस्स अन्नेसिं च बहूणं सूरियाभविमाणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव [पृ० २०२ * टिप्पण] महया महया कारेमाणे पालेमाणे विहराहि त्ति कट्टु जय जय भद्दं पउंजंति।

राय० सू० १३६

जब यह महाविपुल इंद्राभिषेक चलता था तब कितनेक देव सुर्याभविमान में सुगंधित जल का छिटकाव किया। कितनों ने उस विमान की सर्व धूल को साफ किया। दूसरे कितनों ने यह विमान और उसके शेरी बाजार आदि भागोंको लिंपी गुंपी को साफ किया। मांचा ऊपर मांचा ढाल कर विमान को श्रृङ्गारित किया। योग्य स्थान में हारबंध ध्वजा-पताकायें रोपी, चंदरवा बांधे। सुगन्धित छाँटणे छाँटे। चन्दन के थापे मारे। द्वार-द्वार में चन्दन के पूर्ण कलश और तोरण टांगे। लम्बी-लम्बी सुगन्धित मालायें लटकायी। सुवासित पुष्प वेरे, सुगन्धमय धूप उवेरे। सोना, रूपा, वज्र, रत्न, मणि, फूल, फल, माला, चूर्ण, गन्ध, आभरण और वस्त्र आदि वर्षात बरसाये।

मंगल बाजे बजाये, ढोल धडुके, वीणा, रणझणी, सफेद मंगल गवाये। विविध प्रकारके अभिनय वाले नृत्य हुए, नाटक, भजवाये, सोना, रूपा, रत्न आदि वेंचाया।

इस प्रकार वे वे देव स्वयं के स्वामी के अभिषेक की खुशाली में उस विमान को अनेक प्रकार से सुशोभित किया।

तथा उस प्रसंग में हर्ष में आकर कोई देव बुचकारा करने लगे। कोई फूले नहीं समाते थे। कितनेक नाचने लगे। तांडव करने लगे। होकार करने लगे। बाहुयें अफलाने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हनहनाने मांडे, हस्ति की तरह चीस पाड़ने लगे। कितनेक उछलते हैं, सिंहनाद करते हैं, ऊँचे उड़ते हैं। नीचे पड़ते हैं। पैर पछाड़ते हैं, गाजते हैं, झबकते हैं। बरसते हैं। स्वयं-स्वयं का नाम कहकर सम्भलाते हैं। तेज से तपते हैं, कितनेक मोटे से थू थू करते हैं और कितनेक स्वयं के हाथ में धूपधाणे, कलश और कमल आदि रखकर इधर-उधर दोड़ादोड़ी करते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक देव स्वयं के स्वामी के अभिषेक की खुशाली मनाते हैं।

अभिषेक होने के बाद वे हर एक देव हाथ जोड़ कर बोले कि—

हे नन्द! तुम्हारी जय हो ओ। हे भद्र! तुम्हारी जय हो। जो अजित हैं उसे कौन जीत सकता है और जो जीतते हैं उसकी रक्षा तुम करो। जैसे देवों में इन्द्र, ताराओं में चन्द्र, असुरों में चमर, नागोंमें धरण और मनुष्यों में भरत की तरह तुम हमारे बीच में रहो।

तथा बहुत से पल्योपम, बहुत से सागरोपम, बहुत से पल्योपम और सागरोपम तक हमारे ऊपर और सारे सुर्याभविमान ऊपर आधिपत्य का भोग कर और हम सबको सुरक्षित रखते हुये तुम यहाँ आनन्द से विहरणकर।

ऐसा बोल कर वे सब देव-देवियाँ जय-जय नाद किया और इस प्रकार सुर्याभदेव का इन्द्राभिषेक पूरा हुआ।

[१३७] तए णं से सूरियाभे देवे महया महया इंदाभिसेगेणं अभिसित्ते समाणे अभिसेयसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं निग्गच्छति निग्गच्छित्ता जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता अलंकारियसभं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे २ अलंकारियसभं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छति सीहासणवरगते पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा अलंकारियभंडं उवट्ठवेंति, तए णं से सूरियाभे देवे तप्पढमयाए पम्हलसूमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेति लूहित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपति अणुलिंपित्ता नासानीसासवायवोज्झं चक्खुहरं वन्नफरिसजुत्तं हयलालापेलवातिरेगं धवलं कणगखचियन्तकम्मं आगासफालियसमप्पभं दिव्वं देवदूसजुयलं नियंसेति नियंसेत्ता हारं पिणद्धेति पिणद्धित्ता अद्धहारं पिणद्धेइ एगावलिं पिणद्धेति पिणद्धिता मुत्तावलिं पिणद्धेति पिणद्धित्ता रयणावलिं पिणद्धेइ पिणद्धित्ता एवं अंगयाइं केयूराइं कडगाइं तुडियाइं कडिसुत्तगं दसमुद्दाणंतगं वच्छसुत्तगं मुरविं कंठमुरविं पालंबं कुंडलाइं चूडामणिं मउडं पिणद्धेइ गंथिम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेढिम-पूरिम-संघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अप्पाणं अलंकिय-विभूसियं करेइ करित्ता दद्दरमलयसुगंधगंधिएहिं गा × याइं भुखंडेइ दिव्वं च सुमणदामं पिणद्धेइं।

—राय० सू० १३७

अभिषेक पूरा होने पर वह सुर्याभदेव वहाँ से पूर्व के द्वार से निकल कर अलंकार सभा को प्रदक्षिणा करता हुआ उसमें से उसी द्वार में बैठा और वहाँ पर मुख्य सिंहासन पर बैठा।

तत्पश्चात् उसके सामानिक सभ्यदेव उसके समक्ष वहाँ सारी अलंकार सामग्री उपस्थित की। सर्व प्रथम तो स्नान होने मै उसने सुकोमल अंगूलुछणा से स्वयं के अंगों के लूँछे। उसके ऊपर सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप किया। और इसके बाद एक ही फूँक में उड़न सके ऐसे घोड़े की लाल जैसा नरम, सुन्दर, वर्ण और स्पर्श वाला और जिसका अंत सोना से जड़ित है ऐसा स्फटिक जैसा उज्ज्वल, सफेद देवदूष्य युगल उसने पहना। बाद में हार, अर्धहार, एकावल, मोती की माला, रत्नावल, अंगद, केयूर, कड़ें, बेरखें, कणदोर, दसआंगलियें वेढ वींटीओं, छाती ऊपर दोरे, मादलिया, कंठी, झूमण, कान में कुंडल, कड़े, वेरखें, कणदोर, दस आंगलिये वेढ वींटिओं।

[१३८] तए णं से सूरियाभे देवे केसालंकारेणं मल्लालंकारेणं आभरणालं-कारेणं वत्थालंकारेण चउव्विहेण अलंकारेण अलंकियविभूसिए समाणे पडि-पुण्णलंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेति अब्भुट्ठित्ता अलंकारियसभाओ पुरत्थि-मिल्लेणं दारेणं पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव ववसायसभा तेणेव उवागच्छति ववसायसभं अणुपयाहिणीकरेमाणे अणुपयाहिणीकरेमाणे पुरत्थि-मिल्लेणं दारेणं अणुपविसति, जेणेव सीहासणवरगए जाव सन्निसन्ने। तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा देवा पोत्थयरयणं उ० णेंति, तते णं से सूरियाभे देवे पोत्थयरयणं गिण्हति गिण्हित्ता पोत्थयरयणं मुयइ मुइत्ता पोत्थयरयणं विहाडेइ विहाडित्ता पोत्थयरयणं वाएति पोत्थयरयणं वाएत्ता धम्मियं ववसायं ववसइ ववसइत्ता पोत्थयरयणं पडिनिक्खवइ सीहासणातो अब्भुट्ठेति अब्भुट्ठेत्ता ववसायसभातो पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं पडिनिक्खमित्ता जेणेव नंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता णंदापुक्खरिणिं पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता हत्थपादं पक्खालेति पक्खालित्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए एगं महं सेयं रययामयं विमलं सलिलपुण्णं मत्तगयमुहागितिकुंभसमाणं भिंगारं पगेण्हति पगेण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव [पृ० २१ पं० १०] सतसहस्स-

पत्ताइं ताइं गेण्हति गेण्हित्ता णंदातो पुक्खरिणीतो पच्चुत्तरति पच्चुत्तरित्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

—राय० सू० १३८

इस प्रकार अलंकृत हुआ वह सुर्यामदेव व्यवसाय सभा को प्रदक्षिणा करता हुआ उसमें आया और वहाँ सिंहासनारूढ़ हुआ। बाद में तो उसके सामानिक सभ्यो उसके समक्ष वहाँ के पुस्तक रत्न को छोड़ा। उसने उसको उघाड़कर वाचन किया। उसमें से धार्मिक व्यवसाय के लगती समजुती मेलवी ली।

यह क्रम पूरे होने के बाद वह, वहाँ से पूर्व द्वार में से निकल कर नन्दी पुष्करिणी गया। वहाँ गोठ वेला सोपान द्वारा पुष्करिणी में उतर कर उसने स्वयं के हाथ-पैर पखाले।

बाद में अच्छे परम शुचि भूत होकर हाथी की मुखाकृति की जैसी जल से भरी हुई एक मोटी सफेद रजतमय झारी और पुष्करिणी के कमल आदि लेकर वहाँ से वह सिद्धायतन तरफ जाने के लिये निकला।

सूर्याभदेव ने भगवान् महावीर के सम्मुख बतीस प्रकार के नाटक दिखाये।

इन बतीस प्रकार के नाटकों में वे देव और देवकुमारियाँ ढोलादि तत-पड़ोले, वीणा आदि वितत-तौंत वाले, झांझ आदि घन-नक्कर और शंखादि शुषिर—ये चार प्रकार के बाजे बजाते थे।

उत्क्षिप्त, पादवृद्ध, मंद और रोचित—इस प्रकार चार प्रकार का संगीत गया जाता था।

अंचित, रिभित, आरभट और भसोल—ये चार प्रकार के नृत्य किये थे।

दार्ष्टांतिक, प्रात्यंतिक, सामान्यतोपनिपातनिक और लोकमध्यावसानिक—ये चार प्रकार के अभिनय भजवी होता था।

छाती के ऊपर दोर, मादलियाँ, कंठी, झूमण, कान में कुंडल और मस्तक पर चूड़ामणि मुकुट आदि आभरण पहनकर स्वयं के देह को—यह सूर्यामदेव ने भलीभाँति सजाए।

तथा गुंथी हुई, वींटी हुई, भरी हुई और एक-दूसरे के नाल से जोड़ी हुई—ऐसी चार प्रकार की मालाओं से स्वयं की जात को कल्पवृक्ष की तरह सुशोभित करता हुआ उसने दिव्य पुष्पमाल भी पहनी।

[१३९] तए णं तं सूरियाभं देवं चत्तारि य सामाणियसाहस्सीओ जाव [पृ० ४४ पं २] सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अन्ने य बहवे सूरियाभ-विमाणवासिणो जाव देवीओ य अप्पेगतिया देवा उप्पलहत्थगा जाव सयसह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्सपत्तहत्थगा सूरियाभं देवं पिट्ठतो पिट्ठतो समणुगच्छंति। तए णं तं सूरियाभं देवे बहवे आभिओगिया देवा य देवीओ य अप्पेगतिया कलसहत्थगा जाव अप्पेगतिया धूवकडुच्छुयहत्थगता हट्ठतुट्ठ जाव [पृ० ४७ पं० ३] सूरियाभं देवं पिट्ठतो समणुगच्छंति। तए णं से सूरियाभे देवे चउहि समाणियसाहस्सीहिं जाव अन्नेहि य बहूहि य जाव देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव [पृ० ६९ पं० २]-णातियरवेणं जेणेव सिद्धायतणे तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता सिद्धायतणं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छंदए जेणेव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेति करित्ता लोमहत्थगं गिण्हति गिण्हित्ता जिणपडिमाणं लोमहत्थएणं पमज्जइ पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेइ ण्हाणित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपइ अणुलिंपइत्ता सुरभिगंधकासाइएणं गायाइं लूहेति लूहित्ता जिणपडिमाणं अहयाइं देवदूस-जुयलाइं नियंसेइ नियंसित्ता पुप्फारुहणं मल्लारुहणं गंधारुहणं चुण्णारुहणं वन्नारुहणं वत्थारुहणं आभरणारुहणं करेइ करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घा-रियमल्लदामकलावं करेइ मल्लदामकलावं करेत्ता कयग्गहगहियकरयलपब्भट्ठ-विप्पमुक्केणं दसद्धवन्नेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेति करित्ता जिणपडिमाणं पुरतो अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसातंदुलेहिं अट्ठट्ठ मंगले आलिहइ, तंजहा-सोत्थिय जाव [पृ० १९ पं० ४] दप्पणं। तयाणंतरं च णं चंदप्पभवइरवेरुलियविमलदंडं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवर-कुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुत्तमाणुविद्धं च धूववट्टिं विणिम्मुयंतं वेरुलियमयं कडुच्छुयं पग्गहिय पयत्तेणं धूवं दाऊण जिणवराणं अट्ठसयविसुद्धगन्थजुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं महावित्तेहिं संथुणइ संथुणित्ता सत्तट्ठ पयाइं पच्चोसक्कइ पच्चोसक्कित्ता वामं जाणुं अंचेइ अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवाडेइ निवाडित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ पच्चुण्ण-मित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-नमोऽत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं आदिगराणं तित्थगराणं सयंसंबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरीआणं पुरिसवरगंधहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोग-नाहाणं लोगहिआणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअ-ट्टच्छउमाणं जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोअगाणं सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवं अयलं अरुअं अणंतं अक्खयं-अव्वाबाहं अपुणरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं।

रायo सूo ११६

संपत्ताणं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता जेणेवo देवच्छंदए जेणेव सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ लोमहत्थगं परामुसइ सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभागं लोमहत्थेणं पमज्जति, दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ, सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचगुलितलं ॐ मंडलगं आलिहइ कयग्गाहगहिय-जाव [पृ० ६६ पं० ४] पुंजोवयारकलियं करेइ करेता धूवं दलयइ, जेणेव सिद्धायतणस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छति लोमहत्थगं परामुसइ दारचेडीओ य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएणं पमज्जइ दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ दलइत्ता पुप्फारुहणं मल्ला० जाव [पृ० २५५ पं० १-२] आभरणारुहणं करेइ करेत्ता आसत्तोसत्त० जाव [पृ० २५५ पं० २] धूवं दलयइ जेणेव दाहिणिल्ले दारे मुहमंडवे जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ लोमहत्थगं परामुसइ बहुमज्झदेसभागं लोमहत्थेणं पमज्जइ दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलं मंडलगं आलिहइ कयग्गाहगहिय-जाव धूवं दलयइ जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ लोमहत्थगं परामुसइ दारचेडीओ य सालभंजियाओ य वालरूवए य य लोमहत्थेणं पमज्जइ दिव्वाए दगधाराए० सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ पुप्फारुहणं जाव आभरणारुहणं करेइ आसत्तोसत्त० कयगाहग्गहिय० धूवं दलयइ जेणेव दाहिणिल्लमुहमंडवस्स उत्तरिल्ला खंभपंती तेणेव उवागच्छइ लोमहत्थं परामुसइ थंभे य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोहमत्थएणं पमज्जइ जहा चेव पच्चत्थिमिल्लस्स दारस्स जाव धूवं दलयइ जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स पुरत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ लोमहत्थगं परामुसति दारचेडीओ तं चेव सव्वं जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ दारचेडीओ य तं चेव सव्वं जेणेव दाहिणिल्ले पेच्छाघरमंडवे जेणेव दाहिणिल्लस्स पेच्छाघरमंडवस्स बहुमज्झदेसभागे जेणेव वइरामए अक्खाडए जेणेव मणिपेढिया जेणेव सीहसणे तेणेव उवागच्छइ लोमहत्थगं परामुसइ अक्खाडगं च मणिपेढियं च सीहासणं च लोमहत्थएणं पमज्जइ दिव्वाए दगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, पुप्फारुहणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसत्तोसत्त-जाव धूवं दलेइ जेणेव दाहिणिल्लस्स पेच्छाघरमंडवस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे तं चेव जं चेव पुरत्थिमिल्ले दारे तं चेव दाहिणे दारे तं चेव, जेणेव दाहिणिल्ले चेइयथूभे तेणेव उवागच्छइ थूभं मणिपेढियं च दिव्वाए दगधाराए सरसेण गोसीसचंदणेण चच्चए दलेइ।

पुप्फारु० आसत्तो० जाव धूवं दलेइ, जेणेव पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव पच्चत्थिमिल्ला जिणपडिमा तं चेव, जेणेव उत्तरिल्ला जिणपडिमा तं चेव सव्वं, जेणेव पुरत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव पुरत्थिमिल्ला जिणपडिमा तेणेव उवागच्छइ तं चेव, दाहिणिल्ला मणिपेढिया दाहिणिल्ला जिणपडिमा तं चेव, जेणेव दाहिणिल्ले चेइयरुक्खे तेणेव उवागच्छइ तंचेव, जेणेव महिंदज्झए जेणेव दाहिणिल्ला नंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति लोमहत्थगं परामुसति तोरणे य तिसोवाणपडिरूवए सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएणं पमज्जइ दिव्वाए दगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं० पुप्फारुहणं आसत्तोसत्त० धूवं दलयति—

सिद्धाययणं अणुपयाहिणीकरेमाणे जेणेव उत्तरिल्ला णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति तं चेव, जेणेव उत्तरिल्ले चेइयरुक्खे तेणेव उवागच्छति, जेणेव उत्तरिल्ले चेइयथूभे तहेव, जेणेव पच्चत्थिमिल्ला पेढिया जेणेव पच्चत्थिमिल्ला जिणपडिमा तं चेव, उत्तरिल्ले पेच्छाघरमंडवे तेणेव उवागच्छति जा चेव दाहिणिल्लवत्तव्वया सा चेव सव्वा पुरत्थिमिल्ले दारे, दाहिणिल्ला खंभपंती तं चेव सव्वं, जेणेव उत्तरिल्ले मुहमंडवे जेणेव उत्तरिल्लस्स मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तं चेव सव्वं, पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव० उत्तरिल्लेदारे दाहिणिल्ला खंभपंती सेसं तं चेव सव्वं, जेणेव सिद्धायतणस्स उत्तरिल्ले दारे तं चेव, जेणेव सिद्धायतणस्स पुरत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ तं चेव, जेणेव पुरत्थिमिल्ले मुहमंडवे जेणेव पुरत्थिमिल्लस्स मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ तं चेव, पुरत्थिमिल्लस्स मुहमंडवस्स दाहिणिल्ले दारे पच्चत्थिमिल्ला खंभपंती उत्तरिल्ले दारे तं चेव।

पुरत्थिमिल्ले दारे तं चेव, जेणेव पुरत्थिमिल्ले पेच्छाघरमंडवे एवं थूभे जिणपडिमाओ चेइयरुक्खा महिंदज्झया णंदा पुक्खरिणी तं चेव जाव धूवं दलइ जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छति सभं सुहम्मं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ जेणेव माणवए चेइयखंभे जेणेव वइरामए गोलवट्टसमुग्गे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता लोमहत्थगं परामुसइ वइरामए गोलवट्टसमुग्गए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोमहत्येणं पमज्जइ वइरामए गोलवट्टसमुग्गए विहाडेइ जिणसगहाओ लोमहत्थेणं पमज्जइ सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेइ पक्खालित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहि य मल्लेहि य अच्चेइ धूवं दलयइ ॐ जिणसकहाओ वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु पडिनिक्खिवइ माणवगं चेइयखंभं लोमहत्थएणं पमज्जइ दिव्वाए दगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, पुप्फारुहणं जाव धूवं दलयइ, जेणेव सीहासणे तं चेव, जेणेव देवसयणिज्जे तं चेव, जेणेव खुड्डागमहिंदज्झए तं चेव, जेणेव पहरणकोसे चोप्पालए तेणेव उवागच्छइ लोमहत्थगं परामुसइ पहरणकोसं चोप्पालं लोमहत्थएणं पमज्जइ दिव्वाए दगधाराए सरसेणं गोसीसचन्दणेण दलेइ पुप्फारुहण आसत्तोसत्त० [पृ० २५५ पं० २] धूवं दलयइ, जेणेव सभाए सुहम्माए बहुमज्झदेसभाए जेणेव मणिपेढिया जेणेव देवसयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ लोमहत्थगं परामुसइ देवसयणिज्जं च मणिपेढियं च लोमहत्थएण पमज्जइ जाव धूवं दलयइ जेणेव उववायसभाए दाहिणिल्ले दारे तहेव अभिसेयसभासरिसं जाव पुरत्थिमिल्ला णंदा पुक्खरिणी जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ तोरणे य तिसोवाणे य सालभंजियाओ य वालरूवए य तहेव, जेणेव अभिसेयसभा तेणेव उवागच्छइ तहेव सीहासण च मणिपेढियं च सेसं तहेव आययणसरिसं जाव पुरत्थिमिल्ला णंदा पुक्खरिणी जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ जहा अभिसेयसभा तहेव सव्वं, जेणेव ववसायसभा तेणेव उवागच्छइ तहेव लोमहत्थयं परामुसति पोत्थयरयण लोमहत्थएण पमज्जइ पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए अग्गेहिं वरेहि य गंधेहिं मल्लेहि य अच्चेति मणिपेढियं सीहासण च सेसं तं चेव पुरत्थिमिल्ला नंदा पुक्खरिणी जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ तोरणे य तिसोवाणे य सालभंजिया य वालरूवए य तहेव। जेणेव बलिपीढ तेणेव उवागच्छइ बलिविसज्जन करेइ, आभिओगिए देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पियाओ सूरियाभे विमाणे सिंघाडएसु तिएसु चउक्केसु चच्चरेसु चउमुहेसु महापहेसु पागारेसु अट्टालएसु चरियासु दारेसु गोपुरेसु तोरणेसु आरामेसु उज्जाणेसु वणेसु वणराईसु काणणेसु वणसंडेसु अच्चणियं करेह अच्चणियं करेत्ता एवमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह, तए णं ते आभिओगिया देवा सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा जाव पडिसुणित्ता सूरियाभे विमाणे सिंघाडएसु तिएसु चउक्कएसु चच्चरेसु चउम्मुहेसु महापहेसु पागारेसु अट्टालएसु चरियासु दारेसु गोपुरेसु तोरणेसु आरामेसु उज्जाणेसु वणेसु वणरातीसु काणणेसु वणसंडेसु अच्चणियं करेन्ति जेणेव सूरियाभे देवे जाव पच्चप्पिणंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धायतन में जहाँ देवच्छंद है और जो बाजु जिन प्रतिमायें हैं उस तरफ जाकर यह सुर्याभदेव और उसके सकल परिवार उसको प्रणाम किया। बाद में उसको मोरपिंछ से पूंजकर सुगन्धी जल से पखाली, सरस गोशीर्षचंदन का लेप किया। सुवासित अंगलूछणा से उसको लूंछ कर और बाद में उस प्रतिमाओं को अक्षत ऐसे देवदूष्य युगल पहनाया।

उसके बाद उस सवस्त्र प्रतिमाओं पर फूल, माला, गंध, चूर्ण, वर्ण, वस्त्र, आभरण आदि चढाकर उसको लम्बी-लम्बी मालायें पहनायी और पाँच प्रकार के पुष्प के पगर भरे। बाद में वह जिन प्रतिमाओं के सम्मुख रूपे की अखंड चोखा के स्वस्तिक दर्पण आदि आठ-आठ मंगल आलेखन किया।

वैडूर्य मय धूपधाणा में सुगन्ध धूप सलगायी और वह प्रत्येक प्रतिमाओं के आगे धूप किया। और बाद में गंभीर अर्थ वाले मोटे एक सौ आठ छन्द बोल कर उनकी स्तुति की।

उसके बाद वह सुर्याभदेव सात-आठ पैर वापस फिरा। बाद में बैठकर, बायाँ पैर ऊँचा रखकर, दायाँ पैर जमीन पर रखकर, मस्तक तीन बार नीचा नमा कर हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोला—

अरिहंत—भगवतों को नमस्कार यावत् अचलसिद्धि को प्राप्त हुए हैं उनको नमस्कार।

बाद में तो वह सिद्धायतन का मध्य भाग, उसके चार बाजुओं में द्वार प्रदेश, मुख-मंडप, प्रेक्षागृह मंडप, वज्रमय अखाडा, सर्व चैत्यस्तंभ, मणिपीठिकाओं के ऊपर की जिन-प्रतिमायें, सर्व चैत्य वृक्ष, महेन्द्रध्वजायें नन्दापुष्करियाँ, माणवक चैत्यस्तम्भों में सचवाई रहे हुए, जिन सक्थियाँ, देव शय्यायें, नाना महेन्द्रध्वजा, सुधर्मासभा, उपपातसभा, अभिषेक-सभा, अलंकारसभा और ये सर्व सभाओं, चार बाजु के प्रदेश, ये सर्व ने तथा सर्व स्थल में आयी हुई पुतलियाँ, शाल भंजिकायें, द्वारचेटीयें और अन्य सर्व भव्य उपकरण आदि को वह सुर्याभदेव मोरपींछी से पूँछा, दिव्य जल की धारा से पोंछा। उसके ऊपर गोशीर्ष चन्दन का लेप किया। वे बतीस थापा मारे और उसके सन्मुख फूल के पगर भरे। धूप दिया और वह शोभावर्धक सर्व सामग्री पर फूल चढाये। उसी प्रकार मालायें, घरेणा और वस्त्र आदि पहनाये और स्वयं की ऋद्धि को सूचित करते हुए वे प्रत्येक पदार्थ की ओर वह सुर्याभदेव स्वयं का सद्भाव बताया।

इस प्रकार करता-करता वह छेड़े अन्त में व्यवसाय सभा में आ पहुँचा। वहाँ उसने वहाँ के पुस्तक रत्न को मोर पींछ से पूजन किया। दिव्य जल की धारा से पोंखा और उत्तम-गन्ध, उसी प्रकार मालादि से पूर्ववत् उसकी अर्चना की। तथा वहाँ की पुतली आदि की ओर भी उसने उसी प्रकार स्वयं का सद्भाव सूचित किया।

यह सब करके जब वह बलिपीठ के पास आकर बलिका विसर्जन किया, तब उसने स्वयं अभियोगिक देवों को बुलाकर नीचे का हुकम कह कर सौंपा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे देवानु प्रियो ! तुम शीघ्र जाओ और इस सुर्याभविमान में आये हुए सिंगोड़े के घाट के मार्गों में, त्रिकोण में, चतुष्कोण में, चत्वारो में, चतुर्मुखों में और महापथों में तथा प्रकार अटारियों द्वार-गोपुर, तोरण, आराम, उद्यान, बन, बनराजिओं, कानन और बनखंडों में अर्थात् हमारे इस विमान में वास किये हुए देव और देवियाँ उक्त रीति से छोटे-मोटे सर्व स्थल में अर्चनिका करे ऐसा तुम फेलाव करो।

अभियोगिक देवों द्वारा स्वयं के स्वामी सुर्याभदेव की ऊपर प्रमाण की आघोषणा सुनकर वहाँ बसे हुए प्रत्येक देव और देवियों को उक्त घोषणा जनाई। प्रमाणपूर्वक वे-वे प्रत्येक स्थल की अर्चनिका की।

यह सब होने के बाद वह सुर्याभदेव नन्दा पुष्करिणी गया। वहाँ उसने हाथ-पैर पखाले और वहाँ से वह चार हजार सामानिक देव सभ्य, चार पट्टराणियाँ और सोलह हजार आत्मरक्षक देव आदि अनेक देव-देवियों के साथ में, मोटे ठाठमाठ से बाजते-गाजते वरघोड़ा फरे-वैसे ही फरता-फरता सीधा स्वयं की सुधर्म सभा की ओर आया। वहाँ पूर्व द्वार में बेठकर, वहाँ मुख्य सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बेठा।

.६ भगवान के सम्बन्ध में प्रवाद।

.६.१ बौद्ध भिक्षु का प्रवाद तथा आर्द्र कुमार का उत्तर।

(क) बौद्ध भिक्षु का प्रवाद।

पिण्णगपिंडीमवि विद्ध सूले, केइपएज्जा पुरिसे इमेत्ति
अलाउयं' वा, वि 'कुमारग' त्ति, स लिप्पई पाणिवहेण अम्हं।
अहवावि विद्धूण मिलक्खु सूले, पिण्णागबुद्धीएणरं पएज्जा।
कुमारगं वावि अलाउयंति, णलिप्पई पाणि वहेण अम्हं॥
पुरिसंच विद्धूण कुमारगं वा, सूलंमिकेई पए जायतेए॥
पिण्णागपिंडि सइमारुहेत्ता, बुद्धाण तं कप्पइ पारणाए॥
सिणायगाणं तु दुवे सहस्से, जे भोयए णितिए भिक्खुयाणं॥
ते पुणखंधं सुमहऽज्जणित्ता, भवंति आरोप्प महंतसत्ता॥

—सूय० श्रु २।अ ६।गा २६ से २९

गोशालक को परास्त करके भगवान् के पास जाते हुए आर्द्रक जी को मार्ग में शाक्य मतवाले भिक्षुओं से भेंट हुई। वे आर्द्रकुमार से कहने लगे—

कोई पुरुष खली के पिंड को भी यदि 'यह पुरुष है' यह मानकर शूल में बेध कर पकावे अथवा तुम्बे को बालक मानकर पकावे तो वह हमारे मत में प्राणी के वध करने के पाप का भागी होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा वह म्लेच्छ पुरुष यदि मनुष्य को खली समझकर तथा बालक को तुम्बा मानकर पकावे तो उन्हें प्राणी के वध का पाप नहीं होता है—यह हमारा सिद्धांत है।

कोई पुरुष मनुष्य को अथवा बच्चे को खल्ली का पिंड मानकर उसे शूल में वेधकर आग में पकावें तो वह पवित्र है। वह बुद्ध के पारणा के योग्य है।

हे आर्द्र कुमार! जो पुरुष प्रतिदिन दो हजार शाक्य भिक्षुओं को अपने यहाँ भोजन कराता है वह महान् पुण्यपुंज को उपार्जन करके आरोप्य नाम के सर्वोत्तम देवता होता है।

(ख) आर्द्र कुमार का उत्तर।

अजोग रूवं इह संजयाणं, पावं तु पाणाण पसज्झ काउं।
अबोहिए दोण्ह वि तं असाहु, वयंति जे यावि पडिस्सुणंति॥
उड्ढं अहेय तिरियं दिसासु, विण्णायलिंगं तसथावराणं।
भूयाभिसंकाए दुगंछमाणे, वदे करेज्जा वा कुओविहऽत्थी॥
पुरिसेत्ति विण्णत्ति ण एवमत्थि, अणारिए से पुरिसेतहाहु।
को संभवो? पिण्णगपिंडियाए, वायावि एसा बुइया असच्चा॥
वायाभिजोगेण जमावहेज्जा, णोतारिसं वायमुदाहरेज्जा।
अट्ठाणमेयं वयणं गुणाणं, णो दिक्खिए बूय सुरालमेयं॥
लद्धे अहट्ठे अहो एव तुब्भे, जीवाणुभागे सुविचिंतिते य।
पुव्वं समुद्दं अवरं च पुट्ठे, ओलोइए पाणितलट्ठिए वा॥
जीवाणुभागं सुविचिंतयंता, आहारिया अण्णविहीए सोहिं।
ण वियागरे छण्णपओपजीवी, एसोऽणुधम्मो इह संजयाणं॥
सिणायगाणं तु दुवे सहस्से, जे भोयए णितिए भिक्खुयाणं।
असंजए लोहियपाणि से ऊ, णियच्छई, गरहमिहेव लोए॥
थूलं उरब्भं इह मारियाणं, उद्दिट्ठभत्तं च पगप्पएत्ता।
तं लोणतेल्लेण उवक्खडेत्ता, सपिप्पलीयं पगरंतिमंसं॥
तं भुंजमाणा पिसियं पभूयं, णो उवलिप्पामो वयं रएणं।
इच्चेवमाहंसु अणज्जधम्मा, अणारिया बाल रसेसु गिद्धा॥
जे यावि भुंजंति तहप्पगारं, सेवंति ते पावमजाणमाणा।
मणं ण एयं कुसला करेंति, वायावि एसा बुइया उ मिच्छा॥
सव्वेसि जीवाणं दयट्ठयाए, सावज्जदोसं परिवज्जयंता।
तस्संकिणो इसिणो णायपुत्ता, उद्दिट्ठभत्तं परिवज्जयंति॥

४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूयाभिसंकाए दुगंछमाणा, सव्वेसि पाणाण णिहाय दंडं।
तम्हा ण भुंजंति तहप्पगारं, एसोऽणुधम्मो इह संजयाणं॥
'णिग्गंथधम्मम्मि इमासमाही, अस्सिं सुठिच्चा अणिहे चरेज्जा।
बुद्धे मुणी सीलगुणोववेए, इहच्चणं पाउणाई सिलोगं॥

—सूय० श्रु २।अ ६।गा ३० से ४२। पृ० ४६५-६६

शाक्यमत वालों के मत का खंडन करते हुए कहते हैं—हे शाक्य भिक्षुओ ! यह शाक्यमत संयमी पुरुषों के योग्य नहीं है। प्राणियों का घात करके पाप का अभाव कहना दोनों के लिए अज्ञान वर्धक और बुरा है। जो ऐसा कहते हैं, और जो सुनते हैं।

ऊपर, नीचे और तिरछे दिशाओं में त्रस और स्थावर प्राणियों के सद्भाव के चिह्न को जानकर जीव हिंसा की आशंका से विवेकी पुरुष हिंसा से घृणा करता हुआ विचार कर भाषण करे और कार्य भी विचार कर ही करे तो दोष किस प्रकार हो सकता है।

खल्ली के पिंड में पुरुष बुद्धि मूर्ख को भी नहीं होती है, अतः जो पुरुष खल्ली के पिंड में पुरुष बुद्धि अथवा पुरुष में खल्ली के पिंड की बुद्धि करता है यह अनार्य्य है। खलपिंडी में पुरुष बुद्धि होना संभव नहीं है, अतः ऐसा वाक्य करना भी मिथ्या है।

जिस वचन के बोलने से जीव को पाप लगता है, वह वचन विवेकी जीव को कदापि नहीं बोलना चाहिए। तुम्हारा पूर्वोक्त वचन गुणों का स्थान नहीं है। अतः दीक्षा धारण किया हुआ पुरुष ऐसा निःसार वचन नहीं कहता है।

अहो ! बौद्धों तुम ने ही पदार्थ का ज्ञान प्राप्त किया है तथा तुमने ही जीवों के कर्मफल का विचार किया है एवं तुम्हारा ही यश पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक फैला है तथा तुमने ही हाथ में रखी हुई वस्तु के समान इस जगत् को देख लिया है।

जैन शासन को मानने वाले पुरुष जीवों की पीड़ा को अच्छी तरह सोचकर शुद्ध को अन्न को स्वीकार करते हैं तथा कपटसे जीविका करने वाले बन कर मायामय वचन नहीं बोलते हैं। इस जैन शासन में संयमी पुरुषों का यही धर्म है।

जो पुरुष दो हजार स्नातक भिक्षुओं को प्रतिदिन भोजन कराता है। वह असंयमी तथा रुधिर से लाल हाथ वाला पुरुष इसी लोक में निन्दा को प्राप्त करता है।

इस बौद्ध मत को मानने वाले पुरुष मोटे भेड़े को मार कर उसे बौद्ध भिक्षुओं के भोजन के लिए बनाकर उसे लवण और तेल के साथ पकाकर पिप्पल्ली आदि से उस मांस को बघारते हैं।

अनार्य्यों का कार्य करने वले, अनार्य्य अज्ञानी रसलम्पट वे बौद्धभिक्षु यह कहते हैं कि बहुत मांस खाते हुए भी हम लोग पाप से लिप्त नहीं होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो लोग पूर्व में कहे हुए उस प्रकार के मांस का भक्षण करते हैं वे अज्ञानी जन पाप का सेवन करते हैं। अतः जो पुरुष कुशल है वे उक्त प्रकार के मांस को खाने की इच्छा भी नहीं करते हैं। तथा मांस भक्षण में दोष न होने का कथन भी मिथ्या है।

सब प्राणियों पर दया करने के लिए सावद्य दोष को वर्जित करने वाले तथा उस सावद्य की आशंका करने वाले महावीर स्वामी के शिष्य-ऋषिगण उद्दिष्ट भक्त को वर्जित करते हैं।

प्राणियों के उपमर्द की आशंका से सावद्य अनुष्ठान को वर्जित करने वाले साधु पुरुष सब प्राणियों को दण्ड देना त्यागकर उस प्रकार आहार को यानी दोष युक्त आहार को नहीं भोगते हैं। इस जैन शासन में संयमी पुरुषों का यही धर्म है।

इस निर्ग्रन्थ धर्म में स्थित पुरुष पूर्वोक्त समाधि को प्राप्त करके तथा इसमें भली-भाँति रहकर माया रहित होकर संयम का अनुष्ठान करे। इस धर्म के आचरण के प्रभाव से पदार्थों के ज्ञान को प्राप्त त्रिकाल वेदी तथा शील और गुणों से युक्त पुरुष अत्यन्त प्रशंसा का पात्र होता है।

.०३ ब्राह्मणों का प्रवाद

सिणायगाणं तु दुवे सहस्से, जे भोयए णितिए माहणाणं।
ते पुण्णखंधं सुमहज्जणित्ता, भवंति देवा इइ वेयवाओ॥

—सूय० श्रु २। अ ६। गा ४३। पृ० ४६६

ब्राह्मण लोग आर्द्रक से कहते हैं, कि—जो पुरुष दो हजार ब्राह्मणों को प्रति भोजन कराता है वह भारी पुण्य पुंज को उपार्जन करके देव होता है—यह वेद का कथन है।

आर्द्र कुमार का उत्तर—

सिणायगाणं तु दुवे सहस्से, जे भोयए णितिए कुलालयाणं।
से गच्छई लोलुवसंपगाढे, 'तिव्वाभितावी णरगाभिसेवी॥
दयावरं 'धम्मं दुगंछमाणे वहावहं धम्म पसंसमाणे।
एगं पि जे भोययई असीलं णिहोणिसं गच्छइ अंतकाले॥

—सूय० श्रु २। अ ६। गा ४४, ४५। पृ० ४६६

प्रत्युत्तर में आर्द्रकजी ने ब्राह्मणों को कहा—क्षत्रियादि कुलों में भोजनार्थ घूमने वाले दो हजार स्नातक ब्राह्मणों को जो प्रतिदिन भोजन कराता है वह पुरुष मांसलोभी पक्षियों से पूर्ण नरक में जाता है और वहाँ भयंकर ताप को भोगता हुआ निवास करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दयाप्रधान धर्म की निंदा और हिंसा प्रधान धर्म की प्रशंसा करने वाला जो राजा एक भी शील रहित ब्राह्मण को भोजन कराता है, वह अंधकार युक्त नरक में जाता है फिर देव होने की तो बात ही क्या ?

.०४ सांख्य का प्रवाद

दुहओ वि धम्मम्मि समुट्ठियामो, अस्सिं सुट्ठिच्चा तह एस कालं।
आयारसीले बुइएह णाणे, ण संपरायम्मि विसेसमत्थि॥
अव्वत्तरूवं पुरिसं महंतं, सणातणं अक्खयमव्वयं च।
सव्वेसु भूएसु वि सव्वओ से, चंदो व ताराहिं समत्तरूवे॥

—सूय० श्रु २। अ ६। गा ४६, ४७। पृ० ४६६

एक दंडी लोग—आर्हत मत से अपने मत की तुल्यता सिद्ध करते हुए कहते हैं—हम और तुम दोनों ही धर्म में प्रवृत्त हैं। हम दोनों भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल में धर्म में स्थित हैं। हमारे दोनों के मत में आचारशील पुरुष ज्ञानी कहा गया है। तथा हमारे और तुम्हारे मत में संसार के स्वरूप में कोई भेद नहीं है।

यह पुरुष यानी जीवात्मा अव्यक्त है यानी यह इन्द्रिय और मन का विषय नहीं है। तथा यह लोक व्यापक और सनातन यानी नित्य है। यह क्षय और नाश से रहित है। यह जीवात्मा सब भूतों में संपूर्णरूप से रहता है जैसे चंद्रमा संपूर्ण ताराओं के साथ संपूर्ण रूप से संबंध करता है।

आर्द्रकुमार का उत्तर

एवं ण मिज्जंति ण संसरंति, ण माहणा खत्तिय-वेस-पेसा।
कीडा य पक्खीय सरीसिवाय, णरा य सव्वे तह देवलोगा॥
लोगं अयाणित्तिह केवलेणं कहिंति जे धम्ममजाणमाणा।
णासेंति अप्पाण परं च णट्ठा, संसार घोरम्मि अणोरपारे॥
लोगं विजाणंतिह केवलेणं, पुण्णेण णाणेण समाहिजुत्ता।
धम्मं समत्तं च कहिंति जे उ, तारेंति अप्पाण परं च तिण्णा॥
जे गरहियं ठाणमिहावसंति, जे यावि लोए चरणोववेया।
उदाहडं तं तु समं मईए, अहाउसो! विप्परियासमेव॥

—सूय० श्रु २। अ ६। गा ४८ से ५१। पृ० ४६७

आर्द्रकुमार मुनि एक दंडियों के वाक्य को सुनकर उनका समाधान देते हुए कहते है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे एक दंडियो ! तुम्हारे सिद्धान्तानुसार सुभग और दुर्भग भेद नहीं हो सकते हैं। तथा जीव का अपने कर्म से प्रेरित होकर माना गतियों में जाना भी सिद्ध नहीं हो सकता। एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रूप भेद भी नहीं सिद्ध हो सकता है एवं कीट पक्षी और सरीसृप आदि गतियाँ भी सिद्ध न होंगी। एवं मनुष्य तथा देव आदि गतियों के भेद भी सिद्ध न होंगे।

इस लोक को केवल ज्ञान के द्वारा न जानकर जो अज्ञानी धर्म का उपदेश करते हैं वे स्वयं नष्ट जीव अपने को तथा दूसरे को भी अपार तथा भयंकर संसार में नाश करते हैं।

परन्तु समाधियुक्त जो पुरुष पूर्ण केवल ज्ञान के द्वारा इस लोक को ठीक-ठीक जानते हैं और सच्चे धर्म का उपदेश करते हैं। वे पाप से पार हुए पुरुष अपने को और दूसरे को भी संसार-सागर से पार करते हैं।

आर्द्रक मुनि फिर कहते हैं कि—इस लोक में जो पुरुष निन्दनीय आचरण करते हैं और जो पुरुष उत्तम आचरण का पालन करते हैं उन दोनों के अनुष्ठानों को असर्वज्ञ जीव अपनी इच्छा से समान बतलाते हैं।

.०५ हस्तितापस का प्रवाद

संवच्छरेणावि य एगमेगं बाणेण मारेउ महागयंतु।
सेसाण जीवाण दयट्ठयाए, वासं वयं वित्ति पकप्पयामो ॥

—सूय० श्रु २। अ ६। गा ५२। पृ० ४६७

हस्तितापस कहते थे—हम लोग शेष जीवों की दया के लिए वर्षभर में बाण के द्वारा एक बड़े हाथी को मारकर वर्षभर उसके मांस से अपना निर्वाह करते हैं।

आर्द्रकुमार का उत्तर

संवच्छरेणावि य एगमेगं, पाण हणंता अणियत्तदोसा।
सेसाण जीवाण वहेणलग्गा, सियाय थोवंगिहिणो वि तम्हा ॥
संवच्छरेणावि य एगमेगं, पाणं हणंते "समणव्वतेऊ"।
आयाहिए से पुरिसे अणज्जे, ण तारिसं केवलिणो भणंति ॥
बुद्धस्स आणाए इमं समाहिं, अस्सिं सुठिच्चा तिविहेण ताई।
तरिउं समुद्दं व महाभवोघं, आयाणवं धम्ममुदाहरेज्जासि ॥

—सूय० श्रु २। अ ६। गा ५३, ५४, ५५। पृ० ४६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष भर में एक-एक प्राणी को मारने वाले पुरुष भी दोष रहित नहीं है। क्योंकि शेष जीवों के घात में प्रवृत्ति न करने वाले गृहस्थ भी दोष-वर्जित क्यों न माने जायेंगे।

जो पुरुष श्रमणों के व्रतों में स्थित होकर वर्ष भर में भी एक-एक प्राणी को मारता है वह अनार्य्य कहा गया है—केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। तत्त्वदर्शी भगवान की आज्ञा से इस शांतिमय धर्म को अंगीकार करके और इस धर्म में अच्छी तरह स्थित होकर तीनों करणों से मिथ्यात्व की निन्दा करता हुआ पुरुष अपनी तथा दूसरे की रक्षा करता है। महादुस्तर समुद्र की तरह संसार को पार करने के लिए विवेकी पुरुषों को सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप धर्म का वर्णन और ग्रहण करना चाहिए।

५ गोशालक का प्रवाद तथा आर्द्रकुमार का उत्तर

(क) गोशालक का प्रवाद

पुराकडं अद्द! इमं सुणेह, एगंतयारी समणे पुरासी।
से भिक्खवो उवणेत्ता अणेगे, आइक्खतिण्हं पुढोवित्थरेणं॥
साऽऽजीविया पट्ठवियाऽथिरेणं, सभागओ गणओ भिक्खुमज्झे।
आइक्खमाणो बहुजण्णमत्थं, ण संधयाई अवरेण पुव्वं॥
एगंतमेव अदुवा वि इण्हिं, दोऽवण्णमण्णं ण समेंति जम्हा॥

—सूय० श्रु २। अ ६। गा १,२,३ पूर्वार्ध। पृ० ४६१

महावीर स्वामी पहले अकेले विचरने वाले श्रमण थे परन्तु अब वे अनेक भिक्षुओं को अपने साथ रखकर अलग-अलग विस्तार के साथ धर्म का उपदेश करते हैं। उस अस्थिर चित्त वाले महावीर ने यह आजीविका खड़ी की है। वे जो सभा में जाकर अनेक भिक्षुओं के मध्य में बहुत लोगों के हित के लिए धर्म का उपदेश करते हैं। यह इनका इस समय का व्यवहार इनके पहले व्यवहार से बिल्कुल नहीं मिलता है।

इस प्रकार या तो महावीर का पहला व्यवहार एकांतवास ही अच्छा हो सकता है अथवा इस समय का अनेक लोगों के साथ रहना ही अच्छा हो सकता है? परन्तु दोनों अच्छे नहीं हो सकते हैं क्योंकि दोनों का परस्पर विरोध है, मेल नहीं है।

आर्द्रकुमार का उत्तर

'पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च, एगन्तमेव पडिसंधयाइ॥
समेच्च लोगं तसथावराणं, खेमंकरे समणे माहणे वा॥
आइक्खमाणो वि सहस्समज्झे, एगंतयं सारयई तहच्चे॥
धम्मं कहंतस्स उ णत्थि दोसो, खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भासाय दोसे य विवज्जगस्स, गुणेय भासाय णिसेवगस्स।
महव्वए पंच अणुव्वए य तहेव पंचासव संवरे य।
विरइं इहस्सामणियम्मि पण्णे, लवावसक्की समणे त्ति बेमि ॥

—सूय० श्रु २। अ ६। गा ३ उत्तरार्ध, ४, ५, ६

पहले, अब तथा भविष्य में सर्वदा भगवान महावीर एकान्त का ही अनुभव करते है। उनकी पूर्व अवस्था और आधुनिक अवस्था में वस्तुतः कोई फर्क नहीं है। तथा पहले भगवान् महावीर अपने चतुर्विध घाती कर्मों का क्षय करने के लिए मौन रहते थे और एकांत का सेवन करते थे परन्तु अब उन कर्मों का नाश करके शेष चतुर्विध अघाती कर्मों का क्षपण करने के लिए एवं उच्च गोत्र, शुभ आयु और शुभ नाम आदि प्रकृतियों का क्षय करने के लिए महाजनों की सभा में वे धर्म का उपदेश देते है। अतः उनको चंचल बताना अज्ञान है।

बारह प्रकार की तपस्या से अपने शरीर को तपाये हुए तथा प्राणियों को 'मतमारो' ऐसा कहने वाले भगवान् महावीर केवल ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण चराचर जगत को जान कर त्रस-स्थावर प्राणियों के कल्याण के लिए हजारों जीवों के मध्य में धर्म का कथन करते हुए भी एकान्त का ही अनुभव करते हैं। क्योंकि उनकी चित्तवृत्ति उसी तरह की बनी हुई रहती है।

धर्म का उपदेश करते हुए भगवान् को दोष नहीं होता क्योंकि भगवान् समस्त परिषहों को सहन करने वाले, मन को वश में किये हुए और इन्द्रियों के विजयी हैं। अतः भाषा के दोषों से वर्जित करने वाले भगवान् के द्वारा भाषा का सेवन किया जाना गुण ही है दोष नहीं है।

कर्म से दूर रहने वाले तपस्वी भगवान् महावीर के श्रमणों के लिए पाँच महाव्रत और श्रावकों के लिए पाँच अणुव्रत तथा पाँच आस्रव और संवर का उपदेश करते हैं एवं पूर्ण साधुपने में वे विरति की शिक्षा देते हैं। यह मैं कहता हूँ।

(ख) गोशालक का प्रवाद

सीओदगं सेवउ बीयकायं, अहायकम्मं तह इत्थियाओ।
एगंतचारिस्सिह अम्ह धम्मे, तवस्सिणो णाभिसमेइ पावं ॥

—सूय० श्रु २। अ ६। गा ७। पृ० ४६२

कच्चा जल, बीजकाय, आधा कर्म तथा स्त्रियों का भले ही सेवन करता हो परन्तु जो अकेला विचरने वाला पुरुष है उसको हमारे धर्म में पाप नहीं लगता है।

आर्द्र कुमार का उत्तर

सीओदगं वा तह बीयकायं, आहायकम्मं तह इत्थियाओ।
एयाइं जाणं पडिसेवमाणा, अगारिणो अस्समणा भवंति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिया य बीयोदगइत्थियाओ, पडिसेवमाणा समणा भवंतु।
अगारिणो वि समणा भवंतु, सेवंति उ तेवितहप्पगारं ॥
जे यावि बीओदगभोइ भिक्खू, भिक्खं विहं जायइ जीवियट्ठी।
ते णाइसंजोगमविप्पहाय, काओवगा णंतकरा भवंति ॥

—सूय० श्रु० २।अ ६।गा ८, ९-१०। पृ० ४६२

कच्चा जल, बीजकाय, आधाकर्म और स्त्रियों—इनको सेवन करने वाले गृहस्थ है श्रमण नहीं है। बीजकाय कच्चा, जल, आधा कर्म एवं स्त्रियों को सेवन करने वाले पुरुष भी श्रमण हो तो गृहस्थ भी श्रमण क्यों नहीं माने जायेंगे, क्योंकि वे भी पूर्वोक्त विषयों को सेवन करते है।

(ग) गोशालक का प्रवाद

इमं वयं तु तुम पाउकुव्वं, पावाइणो गरहसि सव्व एव।
पावाइणो पुढो किट्टयंता, सयं सयं दिट्ठि करेंति पाउं ॥

—सूय० श्रु २।अ ६।गा ११।पृ० ४६२

गोशालक करता है—कि हे आर्द्रकुमार! तुम इस कथन को कहते हुए सम्पूर्ण प्रावादकों की निन्दा करते हो। प्रावादुकगण अलग-अलग अपने सिद्धांतों को बताते हुए अपने दर्शन को श्रेष्ठ कहते हैं।

आर्द्र कुमार का उत्तर

ते अण्णमण्णस्स उ गरहमाणा, अक्खंति ऊ समणामाहणाय।
सतो य अत्थी असतोय णत्थी, गरहामोदिट्ठिंण गरहामोकिंचि ॥
ण किंचि रूवेणऽभिधारयामो, सदिट्ठिमग्गं तुकरेमो पाउं।
मग्गे इमे किट्टिए आरिएहिं, अणुत्तरे सप्पुरिसेहिं अंजू ॥
उड्ढं अहे य तिरियं दिसासु, तसा य जे थावर जे य पाणा।
भूयाभिसंकाए दुगुंछमाणे, णो गरहइ वुसिमं किंचिलोए ॥

—सूय० श्रु० २।अ ६।गा १२ से १४।पृ० ४६२-३

आर्द्रक जी कहते हैं—कि वे श्रमण और माहण परस्पर एक दूसरे की निन्दा करते हुए अपने-अपने दर्शन की प्रशंसा करते हैं। वे अपने दर्शन में कथित क्रिया के अनुष्ठान से पुण्य होना और परदर्शनोक्त क्रिया के अनुष्ठान से पुण्य न होना बतलाते हैं अतः मैं उनकी इस एकांत दृष्टि की निन्दा करता हूँ। और कुछ नहीं।

हम किसी के रूप और वेष आदि की निन्दा नहीं करते हैं किन्तु अपने दर्शन के मार्ग का प्रकाश करते हैं। यह मार्ग सर्वोत्तम है और आर्य्य सत्पुरुषों के द्वारा निर्दोष कहा गया है।

ऊपर, नीचे और तिरछे दिशाओं में रहने वाले जोत्रस और स्थावर प्राणी है उन प्राणियों की हिंसा से घृणा करने वाले संयमी पुरुष इस लोक में किसी की भी निन्दा नहीं करते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान के सम्बन्ध में प्रवाद

(घ) गोशालक का प्रवाद

आगंतगारे आरामगारे, समणे उभीते ण उवेइ वासं।
दुक्खाहु संती बहवे मणुस्सा, ऊणातिरित्ता यलवालवाय ॥
मेहाविणो सिक्खिय बुद्धिमंता, सुत्तेहि अत्थेहि यणिच्छयण्णू।
पुच्छिसु मा णे अणगार अण्णे, इति संकमाणो ण उवेइतत्थ ॥

—सूय० श्रु २ । अ ६ । गा १५-१६ । पृ० ४६३

गोशालक आर्द्रक जी से कहते हैं कि तुम्हारे श्रमण महावीर स्वामी बड़े डरपोक हैं इसलिये वे जहाँ बहुत से आगन्तुक लोग उतरते हैं ऐसे गृहों में तथा आराम गृहों में निवास नहीं करते है। वे सोचते हैं कि—उक्त स्थानों में बहुत से मनुष्य कोई न्यून कोई अधिक वक्ता तथा कोई मौनी निवास करते है। एवं कोई बुद्धिवान् कोई शिक्षा पाये हुए कोई मेधावी तथा कोई सूत्र और अर्थों से पूर्ण रूप से निश्चय किये हुए वहाँ निवास करते हैं अतः ऐसे दूसरे साधु मेरे से कुछ प्रश्न पूछ बैठे ऐसी आशंका करके वहाँ महावीर स्वामी नहीं जाते हैं।

आर्द्रकुमार का उत्तर

णाकामकिच्चा ण य बालकिच्चा, रायाभिओगेण कुओ भएणं।
वियागरेज्जा पसिणं न वावि, सकामकिच्चेणिह आरियाणं ॥
गंता व तत्था अदुवा अगंता, वियागरेज्जा समियासुपण्णे।
अणारिया दंसणओ परित्ता, इति संकमाणोण उवेइ तत्थ ॥

—सूय० श्रु २ । अ ६ । गा १७, १८ । पृ० ४६३

आर्द्रक जी गोशालक से कहते हैं कि भगवान् महावीर स्वामी बिना प्रयोजन कोई कार्य्य नहीं करते हैं तथा वे बालक की तरह बिना विचारे भी कोई क्रिया नहीं करते हैं। वे राजभय से भी उपदेश नहीं करते हैं फिर दूसरे भय की तो बात ही क्या है? भगवान् प्रश्न का उत्तर देते हैं और नहीं भी देते हैं। वे जगत में आर्य्य लोगों के लिए तथा अपने तीर्थङ्कर नाम कर्म के क्षय के लिए धर्मोपदेश करते हैं।

सर्वज्ञ भगवान् महावीर स्वामी सुनने वालों के पास जाकर अथवा न जाकर समान भाव से धर्म का उपदेश करते हैं। परन्तु अनार्य्य लोग दर्शन से भ्रष्ट होते हैं—इस आशंका से भगवान् उनके पास नहीं जाते हैं।

(च) गोशालक का प्रवाद

पण्णं जहा वणिए उदयंट्ठी, आयस्स हेउं पगरेइ संगं।
तओवमे समणे णायपुत्ते, इच्चेव मे होइ मई वियक्का ॥

—सूय० श्रु २। अ ६। गा १६, । पृ० ४६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोशालक कहता है—कि हे आर्द्रकुमार ! जैसे कोई वैश्य कपूर, अगर कस्तुरी तथा अम्बर आदि बेचने योग्य वस्तुओं को लेकर लाभ के लिए दूसरे देश में आता है और वहाँ अपने लाभ के लिए महाजनों का संग करता है। इसी तरह तुम्हारे ज्ञातपुत्र महावीर स्वामी का भी व्यवहार है। वे अपने स्वार्थ साधन के लिए भी जन-समूह में आकर धर्मोपदेश आदि करते हैं—यह मेरा निश्चय है अतः तुम मेरी बात सत्य जानो।

आर्द्रकुमार का उत्तर

णवं ण कुज्जा विहुणे पुराणं, चिच्चाऽमइं ताइ य साह एवं
एतावता बंभवति त्ति वुत्ते, तस्सोदयट्ठी समणे त्तिबेमि ॥
समारभंते वणिया भूयगामं, परिग्गहं चेव ममायमाणा।
ते णाइसंजोगमविप्पहाय, आयस्स हेउं पगरेंति संगं ॥
वित्तेसिणो मेहुणसंपगाढा, ते भोयणट्ठा वणिया वयंति।
वयं तु कामेहिं अज्झोववण्णा, अणारिया पेमरसेसु गिद्धा ॥
आरंभगं चेव परिग्गहं च, अवि उस्सिया णिस्सिय आयदंडा।
तेसिं च उदए जंवयासी, चउरंतणंताय दुहाय णेह ॥
णेगंति णच्चंति तओदएसे, वयंति ते दो वि गुणोदयम्मि
से उदए साइमणं तपत्ते, तमुदयं साहयइ ताइ णाई।
अहिंसयं सव्वपयाणुकंपी, धम्मे ठियं कम्मविवेगहेउं
तमायदंडेहिं समायरंता, अबोहिए ते पडिरूवमेयं ॥

—सूय० श्रु० २। अ ६। गा २० से २५। पृ० ४६३-६४

भगवान् महावीर स्वामी नवीन कर्म नहीं करते हैं किन्तु वे पुराने कर्मों का क्षपण करते हैं। क्योंकि वे स्वयं यह कहते हैं कि प्राणी कुमति को छोड़ कर ही मोक्ष को प्राप्त करता है। इस प्रकार मोक्ष का व्रत कहा गया है। उसी मोक्ष की इच्छा के उदय की इच्छा वाले भगवान् है।

बनियें तो प्राणियों का आरम्भ करते हैं। तथा वे परिग्रह पर भी ममता रखते हैं एवं वे ज्ञाति के संबंध को न छोड़कर लाभ के निमित्त दूसरों से संग करते हैं।

वनिये धन के अन्वेषी और मैथुन में अत्यन्त आसक्त रहने वाले होते हैं। वे भोजन की प्राप्ति के लिए इधर-उधर जाते रहते हैं। अतः हम लोग तो बनियों को काम में आसक्त प्रेमरस में फंसे हुए और अनार्य्य कहते हैं। परन्तु भगवान् महावीर प्रभु ऐसे नहीं है इसलिये बनियों के साथ उनकी तुलयता बताना मिथ्या है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्द्रक जी गोशालक से कहते हैं—बनिये आरम्भ और परिग्रह को नहीं छोड़ते किन्तु वे उनमें अत्यन्त बद्ध रहते हैं तथा वे आत्मा को दंड देने वाले हैं। उनका वह उदय, जिसे तू उदय बतला रहा है वह वस्तुतः उदय नहीं है किन्तु वह चतुर्गतिक संसार को प्राप्त कराने वाला और दुःख का कारण है एवं वह उदय कभी नहीं भी होता है।

सावद्य अनुष्ठान करने से बनिये का जो उदय होता है वह एकांत आत्यन्तिक नहीं है—ऐसा विद्वान लोग करते हैं। जो उदय एकान्त तथा आत्यन्तिक नहीं है उसमें कोई गुण नहीं है परन्तु भगवान् जिस उदय को प्राप्त हैं वह आदि और अनन्त है। वे दूसरे को भी इसी उदय की प्राप्ति के लिए उपदेश करते हैं। भगवान् त्राण करने वाले और सर्वज्ञ है।

भगवान् प्राणियों की हिंसा से रहित हैं तथा वे समस्त प्राणियों पर कृपा करने वाले हैं। वे धर्म में सदा स्थित है और कर्म के विवेक के कारण है। ऐसे उस भगवान् को तुम्हारे जैसे आत्मा को दण्ड देने वाले पुरुष ही बनिये के सदृश कहते हैं। यह कार्य्य तुम्हारे अज्ञान के अनुरूप ही है।

.८ पार्श्वापत्यीय अणगार

.१ केशी कुमार श्रमण

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे जाति-संपण्णे कुलसंपण्णे बलसंपण्णे रूवसंपण्णे विनयसंपण्णे नाणसंपण्णे दंसण-संपण्णे चरित्तसंपण्णे लज्जासंपण्णे लाघवसंपण्णे लज्जालाघवसंपण्णे ओयंसी तेयंसी वच्चंसी।

जसंसी जियकोहे जियमाणे जियमाए जियलोहे जियणिद्दे जितंदिए जियपरीसहे जीवियासमरणभयविप्पमुक्के तवप्पहाणे गुणप्पहाणे करणप्पहाणे चरणप्पहाणे निग्गहप्पहाणे निच्छयप्पहाणे अज्जवप्पहाणे मद्दवप्पहाणे लाघव-प्पहाणे खंतिप्पहाणे गुत्तिप्पहाणे मुत्तिप्पहाणे विज्जप्पहाणे मंतप्पहाणे ॥

बंभप्पहाणे वेयप्पहाणे नयप्पहाणे नियमप्पहाणे सच्चप्पहाणे सोयप्पहाणे नाणप्पहाणे दंसणप्पहाणे चरित्तप्पहाणे ओराले…[पृ० १४७ पं० १-] घोर घोर गुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविपुलतेयलेस्से चउद्दसपुव्वी-चउणाणोवगए पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणु-पुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव सावत्थि नयरी जेणेव कोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ, सावत्थी—नयरीए बहिया कोट्ठए चेइए अहापडिरूवं उग्गहंउग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

—राय० सू० १४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस समय वहाँ—सावत्थी नगरी में पार्श्वनाथ के केशी नामक कुमार श्रमण भी आये हुए थे। ये केशी कुमार श्रमण जातवान् कुलीन, बलिष्ठ, विनयी, ज्ञानी, सम्यग् दर्शनी, चारित्रशील, लाजवान् निरभिमानी, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी थे।

उन्होंने क्रोध-मान माया और लोभ परजीत की रखी थी। निद्रा, इन्द्रिय और परीषह पर काबू किये हुए थे। उनको जीवन की तृष्णा अथवा मरण, का भय न था। इनके जीवन में तप, चरण, करण, निग्रह-सरलता, कोमलता, क्षमा, निर्लोभता—ये सब गुण मुख्यरूप से थे। तथा वे श्रमण, विद्यावान मांत्रिक ब्रह्मचारी और वेद तथा नयके ज्ञाता थे। उनको सत्य, शौच आदि सदाचारों के नियम प्रिय थे। तथा वे चतुर्दशपूर्वी और चार ज्ञान वाले थे। ऐसे वे केशी कुमार श्रमण स्वयं के पांच सौ भिक्षु शिष्यों के साथ अनुक्रम से ग्रामानुग्राम विरहण करते हुए रुखे-सुखे विचरण करते हुए श्रावस्ती नगरी के बाहर ईशान कोण में स्थित कोष्ठक चैत्य में आकर ठहरे। और वहाँ योग्य अभिग्रह धारण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए रहने लगे।

पार्श्वपत्यीय अणगार

केशीकुमार श्रमण—

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे केशी नाम कुमारसमणे जाति-संपण्णे कुलसंपण्णे बलसंपण्णे रूवसंपण्णे विणयसंपण्णे नाणसंपण्णे दंसण-संपण्णे चरित्तसंपण्णे लज्जासंपण्णे लाघवसंपण्णे लज्जालाघवसंपण्णे—ओयंसी तेयंसी वच्चंसी। जसंसी

राय० सू० १४७

उस काल उस समय में श्रावस्ती नगरी में पार्श्वापत्य केशी नामक कुमार श्रमण जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न, बल सम्पन्न, रूप सम्पन्न, विनय सम्पन्न, ज्ञान संपन्न, दर्शन संपन्न, चारित्र संपन्न, लज्या संपन्न, लाघव संपन्न, निरभिमानी, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी थे।

नोट—दीर्घनिकाय में इस स्थान में कुमार काश्यप (पाली—कुमार कस्सप) का नाम है। काश्यप का भिक्षु-समुदाय पांच सौ की संख्या में बताया है। कुमार काश्यप को श्रमण गौतम के (गौतम बुद्ध के) श्रावक रूप में वर्णन किया है। (बौद्ध शासन में त्यागी हो वह श्रावक और गृहस्थ हो उसे उपासक कहा है।) यह कुमार काश्यप सीधा ही सेयविया नगरी में आता है। तब केशी कुमार श्रमण के श्रावस्ती में आने के पश्चात् सेयविया की ओर जाता है जो आजन्म ब्रह्मचारी हो वह कुमार श्रमण कहा जाता है। मूलतो 'कुमार श्रमण' शब्द यौगिक है बाद में वह ब्राह्मण मुनि आदि शब्द की तरह रूढ हुआ लगता है। पाणिनीय के मूल अष्टाध्याय [२-१-७०] में भी इस शब्द का उल्लेख है अर्थात् यह शब्द प्राचीन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जियकोहे जियमाणे, जियमाए जियलोहे, जियणिद्दे जितिंदिए जियप-रीसहे जीवियासमरणभयविप्पमुक्के तवप्पहाणे गुणप्पहाणे करणप्पहाणे चरणप्पहाणे निच्छयप्पहाणे अज्जवप्पहाणे मद्दवप्पहाणे लाघवप्पहाणे खंतिप्प-हाणे गुत्तिप्पहाणे मुत्तिप्पहाणे विज्जप्पहाणे मंतप्पहाणे

—राय० सू १४७

उन्होंने क्रोध, मान, माया और लोभ पर विजय प्राप्त की थी। निद्रा, इन्द्रिय और परिषह को वशीभूत किया था। उनके जीवन में तप, चरण, करण, निग्रह, सरलता, कोमलता, क्षमा, निर्लोभता ये सब गुण प्रधान रूप में थे। तथा वे श्रमण विद्यावान् मांत्रिक ब्रह्मचारी और वेद तथा नयके ज्ञाता थे। उनको सत्य, शौच आदि सदाचार के नियम प्रिय थे। तथा वे चतुर्दश पूर्वधारी और चार ज्ञान वाले थे। ऐसे वे केशी कुमार श्रमण स्वयं के पांच सौ भिक्षु शिष्यों के साथ क्रमशः ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रावस्ती नगरी के बाहर ईशान कोण में कोष्ठक चैत्य में आकर ठहरे और वहाँ योग्य अभिग्रह-धारण कर संयम और तप से आत्मा को भावित कर रहने लगे।

बंभप्पहाणे वेयप्पहाणे नयप्पहाणे नियमप्पहाणे सच्चप्पहाणे सोयप्पहाणे नाणप्पहाणे दंसणप्पहाणे चरित्तप्पहाणे ओराले······चउदसपुव्वी चउणाणो-वगए पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणु-गामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेवसावत्थी नयरी जेणेव कोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ, सावत्थी-नयरीए बहिया कोट्ठए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

—राय० सू १४७

तएणं सावत्थीए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउमुह-महापहेसु महया जणसद्दे इ-वा-जणवूहे इ वा जणबोले इ वा जणकलकले इ वा जण उम्मी इ वा जणउक्कलिया इ वा जणसन्निवाए इ वा जाव परिसा पज्जुवासइ।

—राय० सू १४८

जिस समय केशी कुमार श्रमण श्रावस्ती नगरी आये—उस समय उस नगरी में बहुत-बहुतर भेट में, त्रिकमें, चोकमें, चाचरमें, चोकठे में, राजमार्ग में और बहुत-बहुत जहाँ सुना—वहाँ बहुत लोग परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि आज पार्श्वापत्य केशी कुमार श्रमण यहाँ आये हैं तो देवानुप्रिय! हमको उनके पास जाना चाहिए, जाकर वंदन, नमस्कार, सत्कार, सम्मान करना चाहिए।

ऐसा विचार कर जन-समुदाय-महाजन कोष्ठक चैत्य में जहाँ केशी कुमार श्रमण ठहरे थे वहाँ उनके दर्शनार्थ आया। केशी कुमार ने स्वयं के पास आये हुए लोगों से योग्य हित शिक्षा दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केशी कुमार श्रमण भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी थे अतः उन्होंने चार महाव्रत का उपदेश दिया।

केशी श्रमण का—

श्रावस्ती नगरी से श्वेताम्बिका नगरी की ओर विहार

तएणं केसी कुमारसमणे अण्णया कयाइ पाडिहारियं पीढफलगसेज्जा संथारग पच्चप्पिणइ सावत्थीओ नगरीओ कोट्ठगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ पंचहिं अणगारसएहिं जावविहरमाणे जेणेव केयइअद्धे जणवए जेणेव सेयविया नगरी जेणेवमियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति।

— राय० सू १५७

अन्य कोई दिवस केशी कुमार श्रमण जांच किये हुए पीढ-पाटिया-शय्या-संस्तारक वापस दिये और स्वयं पांच सौ अनगारों के साथ श्रावस्ती से विहार किया।

सावत्थी नगरी से विहार कर घूमते घूमते वे केकयि अर्धदेश की सेयविया नगरी के मृगवन उद्यान में पधारे और वहाँ यथोचित अवग्रह स्वीकार कर संयम और तप से आत्माको भावित करने लगे।

तएणं से चित्ते सारही केसिस्स कुमार समणस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे तहेव एवं वयासी—एवं खलु भंते। अम्हं पएसी राया अधम्मिए जाव सयस्स वि णं जणवयस्स नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेइ, तंजइणं देवाणुप्पिया! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणतरं खलु होज्जा पएसिस्स रण्णो तेसिं णं बहूणं दुपयचउप्पयमियपसुपक्खीसिरीसवाणं, तेसिं च बहूणं समणमाहणभिक्खुयाणं तं जइ णं देवाणुप्पिया! पएसिस्स बहुगुणतरं होज्जा सयस्सवि य णं जणवयस्स।

—राय० सू १५६

केशी श्रमण की धर्मदेशना सुनकर हर्षित और संतोष को प्राप्त सारथि ने कहा कि हे भगवन्! हमारा राजा प्रदेशी अधार्मिक है और स्वयं देश का कार्य भार बराबर नहीं चलाता है। वह किसी भी श्रमण-माहण का या भिक्षुओं का आदर नहीं करता है। उनको वंदन-नमस्कार, सत्कार नहीं करता है तथा उनकी पर्युपासना नहीं करता है। और श्रमण-माहण के पास जाकर स्वयं के प्रश्नों का उत्तर नहीं पूछता है। उसको केवली द्वारा प्ररूपित धर्मका लाभ नहीं मिल सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'९. भगवान् महावीर के समय के व्यक्ति विशेष—

छपनवें वर्ष की घटना—राजगृह में—

एक कुष्ट व्यक्ति का—देव का आगमन

तदा कुष्ठगलत्कायः कश्चिदेत्य प्रणम्य च।
निषसादो प तीर्थेशमलर्क इव कुट्टिमे॥ ५९ ॥
ततो भगवतः पादौ निजपूयरसेन सः।
निःशंकश्चन्दनेनेव चर्चयामास भूयसा॥ ६० ॥
तद्वीक्ष्य श्रेणिकः कुद्धो दध्यौ वध्योऽमुत्थितः।
पापीयान् यज्जगद् भर्तर्येव माशातनापरः॥ ६१ ॥
अत्रान्तरे जिनेन्द्रेण क्षुते प्रोवाच कुष्ठिकः।
म्रियस्वेत्यथ जीवेति श्रेणिकेन क्षुते सति॥ ६२ ॥
क्षुतेऽभयकुमारेण जीव वा त्वं म्रियस्व वा।
कालसौकरिकेणापि क्षुते मा जीव मा मृथाः॥ ६३ ॥
जिनं प्रति म्रियस्वेति वचसा रुषितो नृपः।
इतः स्थानादुत्थितोऽसौ ग्राह्य इत्यादिशद् भटान्॥ ६४ ॥
देशनान्ते महावीरं नत्वा कुष्ठी समुत्थितः।
रुरुधे श्रेणिकभटैः किरातैरिव सूकरः॥ ६५ ॥
सतेषां पश्यतामेव दिव्यरूपधरः क्षणात्।
उत्पपाताम्बरे कुर्वन्नर्कबिम्बविडम्बनाम्॥ ६६ ॥
पत्तिभिः कथिते राज्ञा स कः कुष्ठीति विस्मयात्।
पृष्टो विज्ञः प्रभुस्तस्मै देवः सइति शस्तवान्॥ ६७ ॥
पुनर्विज्ञपयामास सर्वज्ञमिति भूपतिः।
देवः कथमभूदेष कुष्ठी वा केन हेतुना॥ ६८ ॥
अथोचे भगवानेवमस्ति वित्सेषु विश्रुता।

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ६

जब भगवान् महावीर राजगृही में धर्म देशना दी। उस समय कुष्ठ रोग से जिसकी काया गल गई थी—ऐसा कोई पुरुष वहाँ आया और भगवान् को प्रणाम कर हड काया श्वान की तरह भगवान् के पास जमीन पर बैठा। बाद में चंदन की तरह स्वयं के पकसे उसने भगवान् के चरण को बारंबार निशंक रूप से चर्चित करने के लिये बैठा। यह देख कर श्रेणिक राजा क्रोधित हुआ तथा विचार करने लगा। यह महापापी जगत् स्वामी की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसी महा आशातना करता है। इस कारण यह जब कभी यहाँ से उठेगा—अवश्य ही वध करने के योग्य है उसी समय भगवान् को छींक आई। इतने में वह कुष्ठी बोला कि—"आप मृत्यु को प्राप्त हो।

इसके बाद श्रेणिक राजा को छींक आई तब वह बोला कि—दीर्घकाल तक जीवित रहो।

इसके थोड़ी देर बाद अभयकुमार को छींक आई तब वह बोला कि जीवित रहो अथवा मरण को प्राप्त हो।

इसके बाद कालसौरिक को छींक आई—तब वह बोला कि जीवित भी मत रहो और मरण को प्राप्त मत हो।

अस्तु भगवान् के लिए—मृत्यु को प्राप्त हो ऐसा कहा—इस प्रकार का वचन सुनकर क्रोध से प्राप्त हुआ श्रेणिक राजा स्वयं के सुभटों को आज्ञा की—जब वह कुष्ठी यहाँ से उठे तब उसे पकड़ लेना।

देशना समाप्त होने के पश्चात् वह कुष्ठी भगवान् को नमस्कार कर उठा। उस समय किरात लोग जैसे सुकर को घेर लेते हैं वैसे ही श्रेणिक के सुभटों ने उसे घेर लिया। परन्तु उनके देखते-देखते वह क्षणभर में दिव्य रूप धारण कर सूर्य के बिम्ब को निस्तेज करता हुआ आकाश में उड़ गया।

अस्तु सुभटों ने यह सब घटित घटना श्रेणिक राजा को कही तब श्रेणिक राजा ने विस्मत होकर भगवान् को विज्ञप्ति की कि—"हे भगवान्! वह कुष्ठी कौन था।

प्रत्युत्तर में भगवान् बोले—वह देव था।

राजा ने फिर सर्वज्ञ को पूछा कि तब वह कुष्ठी किस लिए हुआ था।

भगवान् ने कहा—उसकी चर्चा इस प्रकार है।

कौशाम्बी नाम पुरस्तस्यां शतानीकोऽभवन्नृपः ॥ ६९ ॥
तस्यां नगर्यां मेकोऽभून्नामतः सेडुको द्विजः।
सीमा स्रष्टा दरिद्राणां मूर्खाणामवधिः परः ॥ ७० ॥
गर्भिण्याऽभाणि सोऽन्ये द्युर्ब्राह्मण्या सूतिकर्मणे।
भट्टानय घृतं मह्यं सह्यं न ह्यन्यथा व्यथा ॥ ७१ ॥
सोऽप्यूचे तां प्रिये! नास्ति मम कुत्रापि कौशलम्।
येन किञ्चिल्लभे क्वापि कलाप्राह्या यदीश्वराः ॥ ७२ ॥
उवाच सा च तं भट्ट गच्छ सेवस्व पार्थिवम्।
पृथिव्यां पार्थिवादन्यो न कश्चित् कल्पपादपः ॥ ७३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथेति प्रतिपद्यासौ नृपं पुष्पफलादिना।
प्रवृत्तः सेवितुं विप्रो रत्नेच्छुरिव सागरम्॥ ७४॥

कदाचिदथ कोशाम्बी चम्पेशेनामितैर्बलैः।
घनर्तुनेव मेघौघैरवेष्ट्यत समन्ततः॥ ७५॥

सानीकोऽपि शतानिको मध्येकौशाम्बितस्थिवान्।
प्रतीक्षमाणः समयमन्तर्बिलमिवोरगः॥ ७६॥

चंपानिर्वाण कालेन बहुना सन्न सैनिकः।
प्रावृषि स्वाश्रयं यातुं प्रवृत्तो राजहंसवत्॥ ७७॥

तदा पुष्पार्थमुद्याने गतोऽपश्यच्च सेडुकः।
तं क्षीणसैन्यं प्रत्यूषे निष्प्रभोडुमिवोडुपम्॥ ७८॥

तूर्णमेत्य शतानीके व्यजिज्ञपद्दसाविदम्।
याति क्षीणबलस्तेऽरिर्भग्नदंष्ट्र इवोरगः॥ ७९॥

यद्यद्योत्तिष्ठसे तस्मै तदा ग्राह्यः सुखेन सः।
बलीयानपि खिन्नः सन्नखिन्ने नाभि भूयते॥ ८०॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ६

इस विश्व में प्रख्यात ऐसी कौशाम्बी नाम की नगरी में शतानिक नामक राजा राज्य करता था। उस नगरी में सेडुक नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह सदा दरिद्रीपन की सीमा और मूर्खपन की अवधि था।

अन्यदा उसकी स्त्री सगर्भा हुई फलस्वरूप उस ब्राह्मणी ने सेडुक को कहा कि—"भटजी! मेरे सूतिकर्म के लिए घृत लाकर दो। उसके बिना मेरे से व्यथा सहन नहीं होती।

प्रत्युत्तर में वह बोला—'प्रिया! मेरे में ऐसी कुछ भी कुशलता या कला नहीं है कि जिससे मुझे कुछ प्राप्त हो। क्योंकि धनाढ्य पुरुष गण कला से ही प्राप्त होते हैं।

फिर वह बोली कि—जाओ, किसी राजा के पास याचना करो। पृथ्वी में राजा जैसा दूसरा कल्पवृक्ष नहीं है। यह बात मान्यकर सेडुक उस दिन से पुष्पफल आदि से जैसे रत्नों का इच्छुक व्यक्ति सागर का सेवन करता है उसी प्रकार राजा को सेवन करने लगा।

अन्यदा चम्पानगरी का राजा जैसे वर्षा ऋतु बादलों को घेरती है उसी प्रकार अमित शक्ति से कौशाम्बी नगरी को घेर लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इधर शतानिक राजा बिल में स्थित सर्प की तरह सैन्य सहित कौशाम्बी के अंदर समय की बाट देखता हुआ दरवाजा बंध कर रहा। कितनेक काल में चंपापति का स्वयं का सैन्य का बहु भाग जाने से और बहु भाग का मरण प्राप्त होने से वर्षाऋतु में राजहंस की तरह स्वयं के नगर की ओर प्रस्थान किया। उस समय पेला सेडुक ब्राह्मण पुष्पादि लेने के लिए उद्यान में जाता था उस समय उसने सैन्य को प्रस्थान करते देखा।

सैन्य क्षीण हो जाने से प्रभात में निस्तेज को प्राप्त नक्षत्र युक्त चन्द्र की निस्तेज हुआ उसे देख कर वह तत्काल शतानिक राजा के पास आया और कहा कि—"दाढभंग हुए सर्प की तरह आपका शत्रु क्षीण बल वाला होकर स्वयं के नगर की ओर जा रहा है। इस कारण यदि अभी भी तुम उठो और उनके पीछे जाओ। फलस्वरूप आपको सुख की प्राप्ति होगी। क्योंकि लब्ध प्राप्त पुरुष यदि बलवान् होता है तो भी उसका पराभव कर सकता है।

तद्वचः साधु मन्वानो राजा सर्वाभिसारतः।
निःससार शरासारसार नासीरदारुणः॥ ८१ ॥
ततः पश्चादुपश्यन्तो नेशुश्चम्पेशसैनिकाः।
अचिन्तिततडित्पाते को वीक्षितुमपि क्षमः॥ ८२ ॥
चंपाधिपतिरेकांगः कांदिशीकः पलायितः।
तस्य हस्त्यश्वकोशादि कौशाम्बीपतिरग्रहीत्॥ ८३ ॥
हृष्टः प्रविष्टः कौशाम्बीं शतानीको महामनाः।
उवाच सेडुकं विप्रं ब्रूहि तुभ्यं ददामिकिम्॥ ८४ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ६

उसके वचन को युक्ति-युक्त मानकर शतानिक राजा तत्काल सर्व बलवान् और बाण की वृष्टि करने वाले प्रधान सैन्य से दारुण होकर नगर के बाहर निकला। उसे पीछे आते देखकर चम्पापति के सैनिक वापस देखे बिना भागने लगे। अकस्मात् पड़ती बिजली के सामने कौन देख सकता है? चंपापति अकेला ही—किस दिशि में जाना चाहिए" ऐसे भय को प्राप्त हुआ वह भाग गया। फल स्वरूप कौशाम्बी पति ने उसके हाथी, घोड़े और भंडार आदि ले लिया। बाद में मोटा मन वाला शतानिक राजा हर्ष से प्राप्त हुआ कौशांबी में वापस आया और सर्व प्रथम सेडुक विप्र को बुलाकर कहा—तुमको क्या दूं?

विप्रस्तमूचे याचिष्ये पृष्ट्वा निजकुटुम्बिनीम्।
पर्यालोचपदं नान्यो गृहिणां गृहिणीं विना॥ ८५ ॥
भट्टः प्रहृष्टो भट्टिन्यै तदशेषं शशंस सा।
चेतसा चिन्तयामास सा चैवं बुद्धिशालिनी॥ ८६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यमुना ग्राहयिष्ये नृपाद् ग्रामादिकं तदा ।
करिष्यत्यपरान् दारान्मदाय विभवः खलु ॥ ८७ ॥
दिनं प्रत्येकआलोचस्तथाऽग्रासनभोजनम् ।
दीनारो दक्षिणायां च याच्योऽथेत्यन्वशात्पतिम् ॥ ८८ ॥
ययाचे तत्तथा विप्रो राजाप्यदात्तद्वदन्निदम् ।
करंकोऽब्धिमपि प्राप्य गृह्णात्यात्मोचितं पयः ॥ ८६ ॥
प्रत्यहं तत्तथा लेभे प्राप संभावनां च सः ।
पुंसां राजप्रसादो हि वितनोति महार्घताम् ॥ ६० ॥
राजमान्योऽयमित्येष लोकैर्नित्यं न्यमंत्र्यत ।
यस्य प्रसन्नो नृपतिस्तस्य कः स्यान्न सेवकः ॥ ६१ ॥
अग्रे भुक्तं वामयित्वा बुभुजेऽनेकशोऽपि सः ।
प्रत्यहं दक्षिणा लोभाद्धिग्धि ग्लोभो द्विजन्मनाम् ॥ ६२ ॥
उपार्जीयत विप्रः स विविधैर्दक्षिणाधनैः ।
प्रासरत् पुत्रपौत्राद्यैः पादैरिववटद्रुमः ॥ ६३ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ६

विप्र ने कहा—हमारी स्त्री को पूछ कर बाद में मांग लूँगा। गृहस्थों को गृहणी के बिना विचार करने का दूसरा स्थान नहीं है। भट जी खुशी होते हुए घर आये तथा ब्राह्मणी को सब वार्त्ता कही।

बुद्धिशाली ब्राह्मणी ने मन में विचार किया—यदि राजा के पास से ग्रामादिक मांग लेगा तो भट जी वैभव के मद से जरूर दूसरी स्त्री से विवाह करेंगे। ऐसा विचार कर वह बोली—हे नाथ! आपके प्रतिदिन भोजन करने का और दक्षिणा में एक सोने का महोर राजा के पास से मांग लो।

इस प्रकार उसने स्वयं पति को समझाया।

अस्तु वह जाकर उस प्रकार राजा के पास से मांग लिया।

राजा ने कहा—सागर समुद्र में जाय तो भी स्वयं के योग्य हो उतना जल को प्राप्त होता है।

अब प्रतिदिन वह सेडुक ब्राह्मण उतना ही लाभ, उतना ही सम्मान पाने लगा। पुरुषों को राजा का प्रासाद महार्घ्यपन को विस्तार करता है।

यह राजा का मानित है—"ऐसा धारण कर लोक नित्य उसको आमन्त्रित करते थे।" जिस पर राजा प्रसन्न होता उसका सेवन कौन नहीं होता। इस प्रकार एक से एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबों का आमन्त्रण आने से वह प्रथम भोजन किया हो तो भी दक्षिणा के लोभ से प्रतिदिन प्रथम भोजन का वमन कर वापस अनेक बार भोजन करता था। "ब्राह्मणों के लोभ को धिक्कार है।" विविध दक्षिणा के द्रव्य से वह ब्राह्मण द्रव्य से वृद्धि को प्राप्त होता गया और वडवाइओं से वड के वृक्ष की तरह पुत्र-पौत्रादिक के परिवार से भी वृद्धि को प्राप्त हुआ।

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ६

स तु नित्यमजीर्णान्नवमनादूर्ध्वगै रसैः।
आमैरभूद् दूषितत्वगश्वत्थ इव लाक्षया॥ ९४॥

कुष्ठी क्रमेण संजह्रो शीर्णघ्राणांघ्रिपाणिकः।
तथैवाभुक राजाग्रे सोऽतृप्तो हव्यवाडिव॥ ९५॥

एकदा मन्त्रिभिर्भूपो विज्ञप्तो देव! कुष्ठ्यसौ।
संचरिष्णुः कुष्टरोगो नास्य योग्यमिहाशनम्॥ ९६॥

सन्त्यस्य नीरुजः पुत्रास्तेभ्यः कोऽप्यत्र भोज्यताम्।
व्यंगित प्रतिमायां हि स्थाप्यते प्रतिमान्तरम्॥ ९७॥

एवमस्त्विति राज्ञोक्तेऽमात्यैर्विप्रस्तथोदितः।
स्वस्थानेऽस्थापयत्पुत्रं गृहे तस्थौ स्वयं पुनः॥ ९८॥

मधुमंडकवत्क्षुद्रमक्षिकाजाल मालितः।
पुत्रैर्गृहादपि बहिः कुटीरेऽक्षेपि स द्विजः॥ ९९॥

बहिःस्थितस्य तस्याज्ञां पुत्रा अपि न चक्रिरे।
दारुपात्रे ददुः किन्तु शुनकस्येव भोजनम्॥ १००॥

जग्मुश्च तं भोजयितुं सजुगुप्साः स्नुषा अपि।
तिष्ठथुश्च वलद्ग्रीवं मोटनोत्पुटनासिकाः॥ १०१॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ६

परन्तु नित्य अजीर्ण अन्न के वमन से आम (अपक्व) रस ऊँचे जाते हुए उसकी त्वचा दूषित हो गई। इससे वह लाखवड पीपल के वृक्ष की तरह व्याधि ग्रस्त हो गया। अनुक्रम से नाक, चरण और हाथ सड़ गया और वह कुष्ठ हो गया। तथापि अग्नि की तरह अतृप्त होकर वह राजा के आगे जाकर प्रतिदिन भोजन करता था।

एकदा मन्त्रियों ने राजा से कहा कि—"हे देव! इस कुष्टी का रोग सम्पर्क से फैलेगा। अतः उससे भोजन कराना योग्य नहीं है। उसके बहुत पुत्र निरोगी है। उनमें से किसी एक को भोजन कराओ। क्योंकि जिस समय कोई प्रतिमा खंडित होती है तब उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान में दूसरी प्रतिमा स्थापित की जाती है।" फल स्वरूप राजा ने उसे करना स्वीकृत किया। तथा मंत्रिओं ने उस ब्राह्मण को वैसा कहा। उसने भी स्वयं के स्थान में स्वयं पुत्रों को स्थापित किया। और स्वयं घर पर रहा।

मधुमंडक की तरह क्षुद्र मक्षिकाओं के जल से भरपूर ऐसे ब्राह्मण को उनके पुत्रों ने भी घर के बाहर एक झोंपड़ी बाँधकर उसमें रखा।

उनकी पुत्रवधुओं ने जुगुप्सा पूर्वक उसे भोजन कराने के लिए जाया करती थी। और नासिका, मरडी-ग्रीवा बांकी करके थूकती थी। घर के बाहर रखे हुए उस ब्राह्मण की आज्ञा उसके पुत्र भी नहीं मानते थे। मात्र श्वान की तरह उसे एक काष्ठ के पात्र में भोजन दिया जाता था।

अथ सोऽचिन्तयद्विप्रः श्रीमन्तोऽमी मयाकृताः।
एभिर्मुक्तोऽस्म्यनादृत्य तीर्णाम्भोभिस्तरण्डवत् ॥ १०२ ॥
तोषयन्ति न वाचाऽपि रोषयन्त्येव माममी।
कुष्ठी रुष्टो न संतुष्टो भव्य इत्यनुध्यापिनः ॥ १०३ ॥
जुगुप्सन्ते यथैते मां जुगुप्स्याः स्युरमी अपि।
यथा तथा करिष्यामीत्यालोच्याथोचदात्मजान् ॥ १०४ ॥
उद्विग्नो जीवितस्याहं कुलाचारस्त्वसौ सुताः।
मुमूर्षुभिः कुटुम्बस्य देयो मंत्रोक्षितः पशुः ॥ १०५ ॥
पशुरानीयतामेक इत्थाऽऽकर्ण्यानुमोदिनः।
आनिन्यिरे तेऽथ पशुं पशुवन्मन्दबुद्धयः ॥ १०६ ॥
उद्वर्त्योद्वर्त्य च स्वांगमन्नेन व्याधिवर्तिकाः।
तेनाचारि पशुस्तावद्यावत् कुष्ठी बभूव सः ॥ १०७ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ६

एक समय उस ब्राह्मण ने विचार किया कि—"मैंने इन पुत्रों को श्रीमंत किया तब अब समुद्र तीरकर वाहण को छोड़ रहे वैसे ही उन्होंने मुझे छोड़ दिया है। वे वाणी के द्वारा मुझसे बोलते भी नहीं है। विपरीत मुझ पर क्रोध करते हैं।

इस प्रकार विचार कर असंतोषी अभव्य की तरह वह कुष्टी कोपायमान हुआ। फल स्वरूप उसने निश्चय किया कि—

जैसे ये पुत्र हमारी जुगुप्सा करते हैं वैसे ही वे भी जुगुप्सा करने के योग्य हैं। उस प्रकार मुझे करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् अपने पुत्रों को कहा कि—हे पुत्रो ! मैं अब जीवितव्य से उद्वेग को प्राप्त हो गया हूँ लेकिन अपने कुल का यह आचार है कि जो मरने की इच्छा करता है उसे स्वयं के कुटुम्ब को एक मंत्रोक्षित पशु देना चाहिए। अतः मुझे एक पशु को लाकर दो।

ऐसा उसका वचन सुनकर पशु की तरह मंद बुद्धि वाले पुत्र हर्षित होकर एक पशु अपने पिता को लाकर दिया।

बाद में उसके पिता ने स्वयं के अंग के ऊपर से पङ्क ले लेकर उसके साथ में अन्न की चोली उस पशु को खुलायी। इस उपचार से वह पशु कुष्टी हो गया।

ददौ विप्रः स्वपुत्रेभ्यस्तं हत्वा पशुमन्यदा।
तदाशयमजानन्तो मुग्धा बुभुजिरेऽथ ते ॥ १०८ ॥
तीर्थे स्वार्थाय यास्यामीत्यापृच्छ्य तनयान् द्विजः।
यदाद्रूर्ध्वमुखोऽरण्यं शरण्यमिव चिन्तयन् ॥ १०९ ॥
अत्यन्ततृषितः सोऽटन्नटव्यां पयसे चिरम्।
अपश्यत् सुहृदमिव देशे नानाद्रुमे ह्रदम् ॥ ११० ॥
नीरं तीरतरुस्रस्तपत्रपुष्पफलं द्विजः।
ग्रीष्ममध्यदिनार्कांशु क्वथितं क्वाथवत् पपौ ॥ १११ ॥
सोऽपाद्यथा यथा वारि भूयो भूयस्तृषातुरः।
तथा तथा विरेकोऽथ तस्याभूत् कृमिभिः सह ॥ ११२ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ६

बाद में वह विप्र उन पशु को मारकर स्वयं के पुत्रों को खाने के लिए दिया। मुग्ध अज्ञानी पुत्र पहले उनका आशय जाने बिना उससे खा गये।

इसके बाद 'मैं अब तीर्थ जाऊँगा। ऐसा कहकर और अपने पुत्रों की आज्ञा लेकर वह ब्राह्मण अरण्य का शरण लेकर वहाँ से चला गया। मार्ग में अत्यन्त तृषातुर होने के कारण वह अटवी में जल की खोज करने के लिए इधर-उधर घूमने लगा। फलस्वरूप विविध वृक्षवाले प्रदेश में मित्र की तरह एक जल का घर उसके देखने में आया।

तीर ऊपर के वृक्षों के ऊपर से पड़ते हुए अनेक जाति के पत्र, पुष्प और फलों से व्याप्त और दिवस के सूर्य की किरणों से उकला हुआ उनका जल उसने क्वाथ की तरह पीने के लिए तैयार हुआ।

उसने जैसे-जैसे तृषातुर रूप में उनका जल पिया, वैसे-वैसे कृमियों के साथ रेच लगने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स नीरुगासीत्कियद्भिरप्यहोभिस्तदम्भसा।
मनो ज्ञायवश्चो जज्ञे वसन्तेनेव पादपः॥ ११३॥
आरोग्य हृष्टो ववले विप्रःक्षिप्रं स्ववेश्मनि।
पुंसां वपुर्विशेषोऽयः श्रृंगारो जन्मभूमिषु॥ ११४॥
पुर्यां स प्रविशन् पौरैर्ददृशे जातविस्मयैः।
देदीप्यमानो निर्मुक्तनिर्मोक इव पन्नगः॥ ११५॥
पौरैः पृष्टः पुनर्जात इवोल्लाघः कथंन्वसि?।
देवताराधनादस्मीत्याचचक्षे स तु द्विजः॥ ११६॥
स गत्वा स्वगृहेऽपश्यत् स्वपुत्रान् कुष्ठिनो मुदा।
मयाऽवज्ञाफलं साधु दत्तमित्यवदच्च तान्॥ ११७॥
सुतास्तमेवमूचुश्च भवता तात! निघृणं।
विश्वस्तेषु कियस्मासु द्विषेवेदमनुष्ठितम्॥ ११८॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ९

उस प्रकार वह घर का जल पीने से, कितनेक दिवस में वह तद्‌न नीरोगी हुआ और बसन्त ऋतु में वृक्ष की तरह उसके सर्वांग वापस प्रफुल्लित हो गये। आरोग्य होने के कारण वह विप्र हर्षित होकर स्वयं के घर की ओर रवाना हुआ। पुरुष को शरीर की आरोग्यता प्राप्त होने से जन्मभूमि श्रृङ्गार रूप हो जाती है।

कांचली से मुक्त हुए सर्प की तरह देदीप्यमान शरीर वाले उसको नगर के लोगों ने विस्मित होकर नगरी में प्रवेश करते हुए देखा।

नगरजन उसे ऐसा आरोग्य वाला देखकर पूछने लगे कि—अरे! तुम जानो वापस जन्म लिया हो—वैसे ऐसा साज किस प्रकार हुआ।

प्रत्युत्तर में वह कहता था कि—देवता के आराधना से हुआ हूँ। अनुक्रमतः अपने घर आया। वहाँ उसने अपने सब पुत्रों को कुष्टी हुआ देखा। फलस्वरूप वह हर्षित होकर बोला कि—तुम लोगों को मेरी अवज्ञा का फल कैसे ही मिल गया। यह सुनकर पुत्र बोले—"अरे! निर्दय पिता! तुम द्वेषी की तरह हमारे जैसे विश्वासी पुत्रों पर यह क्या किया।

यह बात सुनकर लोग भी उस पर बहुत आक्रोश करने लगे।

लोकैराक्रुश्यमानः स राजन्नागत्य ते पुरम्।
आश्रयज्जीविकाहारं द्वारपालं निराश्रयः॥ ११९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदाऽत्र वयमायाता द्वाःस्थोऽस्मद्धर्मं देशनाम् ।
श्रोतुं प्रचलितोऽमुञ्चत्तं विप्रं निजकर्मणि ॥ १२० ॥
द्वारोपविष्टः स द्वारदुर्गाणामग्रतो बलिम् ।
जन्मादृष्टमिवाभुंक्त यथेष्टं कष्टितं क्षुधा ॥ १२१ ॥
आकण्ठं परिभुक्तान्नदोषाद् ग्रीष्मोष्मणा च सः ।
उत्पन्नया तृषाऽकारि मरुपान्थ इवाऽऽकुलः ॥ १२२ ॥
तच्च द्वास्थभिया स्थानं त्यक्त्वा नागात् प्रपादिषु ।
स तु वारिचराञ्जीवान् धन्यान्मेने तृषातुरः ॥ १२३ ॥
आरटन् वारि वारीति स तृषार्तो व्यपद्यत ।
इहैव नगरद्वारवाप्यामजनि दर्दुरः ॥ १२४ ॥
विहरन्तो वयं भूयोऽप्यागमामेह पत्तने ।
लोकोऽस्मद् वन्दनार्थं च प्रचचाल ससंभ्रमः ॥ १२५ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ६

लोगों के द्वारा भी आक्रुश्यमान हुआ वह वहाँ से भागकर राजा के पास आया और बोला हे राजन् ! तुम्हारे नगर में आकर निराश्रयरूप में आजीविका के लिये भ्रमण करते हुए तुम्हारे द्वारपाल के आश्रय में आकर रहा। उसी समय हमारा यहाँ आना हुआ।

फलस्वरूप द्वारपाल स्वयं के काम पर उस ब्राह्मण को जोड़ देकर हमारी (भगवान् महावीर) धर्म देशना को सुनने के लिए आया।

पहला विप्र दरवाजे के पास बैठा। वहाँ दुर्गा देवी के आगे बलिदान देने के लिए आया हुआ उसे देखकर अत्यन्त क्षुधा से कष्ट को प्राप्त हुआ उसे मानों जन्म में भी न देखा हो वैसे उसको पुष्कल ने खाया।

तत्पश्चात् कंठ तक अन्न को भरने के दोष से इस प्रकार ग्रीष्मऋतु की गरमी से दोष से उसको बहुत अधिक तृषा लगी। इस कारण मरुभूमि के पांथ की तरह वह आकुल-व्याकुल हो गया। परन्तु पहले द्वारपाल के भय से वह द्वार का स्थान छोड़कर किसी भी स्थान पर भी पर्व आदि में जल पीने के लिए जा नहीं सका। वह उस समय उन जलचर जीवों से खरखर धन्य मानने लगा। अन्त में जल-जल पुकारता हुआ वह ब्राह्मण तृणार्त्त रूप में मृत्यु प्राप्त कर इस नगर के द्वार के निकट की वापी में दर्दुर हुआ। मैं विहार करता हुआ कौशाम्बी नगरी में आया। फलस्वरूप लोक संभ्रम से मुझे वन्दन करने के लिए आये।

अस्मदागमनोदन्तं श्रुत्वाम्भो हारिणीमुखात् ।
स भेकोऽचिन्तयदिदं क्वाप्येवं श्रुतपूर्व्यहम् ॥ १२६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊहापोहं ततस्तस्य कुर्वाणस्य मुहुर्मुहुः।
स्वप्नस्मरणवज्जातिस्मरणं तत्क्षणादभूत ॥ १२७ ॥

स दध्यौ दर्दु रश्चैवं द्वारे संस्थाप्य मां पुरा।
द्वाःस्थो यं वन्दितुमगात् स आगाद्भगवानिह ॥ १२८ ॥

यथैते यान्ति तं द्रष्टुं लोका योस्याम्यहं तथा।
सर्वसाधारणी गंगा न हि कस्यापि पैतृकी ॥ १२९ ॥

ततोऽस्मद्वन्दनाहेतोरुत्प्लुत्योत्प्लुत्य सोऽध्वनि।
आपांस्तेऽश्वखुरक्षुण्णो भेकः पंचत्वमाप्तवान् ॥ १३० ॥

दर्दु रांकोऽयमुत्पेदे देवोऽस्मद् भक्तिभावितः।
भावना हि फलत्येव विनानुष्ठानमप्यहो ॥ १३१ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ९

उस समय पहली वापिका में से जल भरती हुई स्त्रियों के मुख से (भगवान् महावीर) आगमन का वृत्तांत सुना। उस वापिका में स्थित दर्दु र विचार करने लगा कि मैंने पहले सुना है। बारंबार उसका ऊहापोह करने से स्वप्न में स्मरण की तरह उसे तत्काल जाति स्मरण ज्ञान हुआ। फलस्वरूप वह दर्दुर चिंतन करने लगे कि—"पूर्व द्वार पर मुझे छोड़कर द्वारपाल जिसको वन्दनार्थ गया था। वे भगवान् जरूर यहाँ आये होंगे। उनको वन्दन करने के लिए जैसे ये लोक जाते हैं उसी प्रकार मुझे भी जाना चाहिए। क्योंकि गंगानदी सबको एक समान है किसी के पिता विशेष की नहीं है।

ऐसा विचार कर दर्दुर मुझे (वन्दनार्थ वापिका) के बाहर देखकर निकला। वहाँ से यहाँ आ ही रहा था कि मार्ग में तुम्हारे घोड़े की खरी से अकड़ा कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। परन्तु हमारी ओर के भक्तिभाव के साथ मृत्यु को प्राप्त होने से वह दर्दु रांक नामक देव हुआ। "अस्तु अनुष्ठान के बिना भी भावना फलित होती है।

मगध जनपद, विदेह जनपद, सूरसेन जनपद, पांचाल जनपद, कौशल जनपद, काशी जनपद, वत्स जनपद-वत्सभूमि, अंगज जनपद, कल्लाक सन्निवेश। तथा नालंदा, नन्दीपुर, वैशाली, महिच्छत्रा नगरी, राजपुर, छम्माणि, मध्यम पावा आदि में[१]।

---

१ नोट—वर्धमान महावीर ने इन ग्राम नगरों के अतिरिक्त कैवल्यावस्था में निम्नलिखित स्थलों में भी विचरण किया था—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.८ कुछ विशिष्ट व्यक्ति

.७१ भगवान् महावीर के समकालीन—प्रत्येक बुद्ध की कथाएँ

.१ कर-कंडु-प्रत्येक बुद्ध—

अंगाजणवए सग्गनयरि—संकासाए चंपाए नयरीए नरिंदलच्छि-संकेय-ट्ठाणो दहिवाहणो राया।

चेडनरिंहधूया जिणवयण-भाविय-मह सुरसुंदरि-संकासा पउमावह से भारिया।

तस्सय तीएसह विसय-सुहं पुव्वभव-निव्वत्तिय पुण-पब्भार-जणियं तिव्वगु-सारं नरलोग-सुहमणुहव-माणस्स वोलीणो कोइ कालो। अण्णया पहाण सुमिणय-पसूइया जाया आवण्ण-सत्ता।

समुप्पण्णो से मणे वियप्पो नरिंद-नेवत्थालंकिया करिवरारूढा जइ भयावि काणणुज्जाणाइसु।

पुच्छिया य राइणा। साहिओ पए (इ) णो डोहलओ।

तओ पसत्थ-वासरे मत्त-करि वरारूढा नरनाह-धरिज्जमाण-उद्दंड-पोंडरीया नरिंदाहरण वत्थ-मल्ल-वेसालंकिया महाविभूईए उज्जाणाईसु भमिडमाढत्ता।

तओ कण्ण-परंपराए करकंडु-दहिवाहणाण दारुणं जुज्झं निसामिऊण 'मा अणक्खओ होइ' त्ति भाविंती आगया पउमावई साहुणी। भणिओ तीए एगंते करकंडू राया—वच्छ? कीस जणएण सह जुज्झसि? तेणभणियं 'कहमेस ममंजणओ?।'

तओ साहिए सवित्थरे तीए नियय-वुत्तंते पुच्छिया जणणि-जणया। तेहिं वि कहिओ परमत्थो, दावियं मुद्दा-रयणं। तओ अहिमाणेण भणिया पउमावई करकंडुणा—

कहमियाणि कय-पए (इ) णो नियत्तामि?। तीए भणियं—वच्छ! वीसत्थो हवसु, जावते जणयं पेच्छामि।

गया एसा, पत्त (वि) ट्ठा नरिंद-अत्थाणं।

निविडिऊण से चलणेसु परियणो रोविउमाढत्तो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थंतरम्मि पणमिऊण सुहासणत्था पुच्छिया राइणा पउत्ति।
तीए सिसाहिया सवित्थयरा।
एसो य ते सुओ, जेण तुमं रोहिओ।
तओ महाविभूईए पइसारिओ नयरीए करकंडू।
तेणवि पणमिओ सबहुमाणं नरिंदो।
कयं महावद्धावणयं। आणंदिओ लोगोत्ति।

—धर्म० पृ० ११६ से १२०

अंगदेश की राजनगरी चंपापुरी का स्वामी था 'दधिवाहन'। उसकी महारानी का नाम था 'पद्मावती' जो इतिहास-प्रसिद्ध एवं द्वादश व्रती श्रावक महाराज 'चेटक' की पुत्री थी।

''पद्मावती' को धार्मिक संस्कार विरासत में ही मिले थे। पद्मावती गर्भवती हुई। गर्भयोग से इनके मन में दोहद उत्पन्न हुआ कि मैं महाराज की वेशभूषा में हाथी पर सवार होकर बैठूँ और महाराज मेरे सिर पर छत्र लिए मेरे पीछे बैठे; मैं इस प्रकार वन क्रीड़ा करूँ।

राजा के द्वारा पूछने पर रानी ने दोहद उत्पन्न होने की सारी बात कह सुनाई।

तत्क्षण राजा ने वैसी ही व्यवस्था की। महाराजा के वेश में महारानी हाथी पर सवार हुई। और महाराज पीछे छत्र लिए बैठे। गजराज वन की ओर चला। वह वन के समीप पहुँचा ही था कि इतने में अकस्मात् धुँआधार वर्षा और आँधी का आक्रमण हो उठा। वर्षा के कारण हाथी में मतवालापन चढ़ आया। वह उन्मत्त हुआ दौड़ने लगा। वे दोनों महाविभूषित उद्यान में भ्रमण करने लगे।

भयाकुल राजा ने रानी से कहा—अब तो बचाव का एक ही रास्ता है, सामने जो वृक्ष दिखाई दे रहा है, जैसे ही हाथी उसके समीप पहुँचे, हम उस वृक्ष की शाखा को पकड़ कर इस मौत के मुँह से बचें।

कालान्तर में दोनों—राजा-रानी बिछुड़ गये। रानी ने पुत्र प्रसव किया। पुत्र का नाम कालान्तर में करकंडुक रखा। पिता-पुत्र में—दोनों ओर से बात तन गयी। युद्ध की तैयारी होने लगी। दोनों ओर की विशाल सेनायें सामने आ लगी।

अस्तु दधिवाहन राजा की रानी तथा करकंडु की माता पद्मावती दीक्षित हो चुकी थी। जैसे ही साध्वी पद्मावती को यह बात ज्ञात हुई वे गुरुजी की आज्ञा लेकर युद्धभूमि में आई और सारे रहस्य का उद्घाटन स्पष्ट रूप में कर दिया कि दधिवाहन और करकण्डु आपस में पिता-पुत्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब तो पिता और पुत्र को गले लगकर मिलना ही था। पद्मावती को साध्वी रूप में देखकर दधिवाहन का हृदय भी विरक्त हो उठा। अंग और कलिंग का एक माना शासक करकण्डु को बना कर स्वयं दीक्षित हो गया।

करकण्डु को गोओं से अधिक प्रेम था। उसकी गोशाला भी विशाल थी। राजा स्वयं उसकी देखरेख में सजग रहता था। एक दिन एक श्वेत गोवत्स को देखकर राजा पुलकित हो उठा। राजा को वह बहुत ही प्रिय लगा। राजा की आज्ञा से उसकी अधिक सार-सम्भाल होने लगी। थोड़े ही दिनों में वह एक पुष्ट कंधों द्वारा सबल वृषभ बन गया। सारी गोशाला में वही नजर आता था। राजा करकण्डु भी उसे देखकर बहुत प्रसन्न होता था।

कालान्तर में वह वृषभ वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ। कालान्तर में करकंडु राजा उस गोशाला में आया। उसने वृषभ को देखा जिस पर मक्खियाँ भिनभिना रही है।

राजा के विचारों में अकल्पित ज्वर आया। वृद्धावस्था के इस दृश्य से दिल को झकझोर डाला। चिन्तन में सराबोर हो उठा। सहसा जातिस्मरण ज्ञान हो गया—मन ही मन संयम स्वीकार कर लिया। देवताओं ने करकण्डु को मुनि वेश प्रदान किया। करकण्डु वन की ओर चल पड़े। प्रत्येक बुद्ध बनकर पृथ्वी पर विचरण करने लगे। अन्त में केवल ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में विराजमान हो गये।

२. दुर्मुख राजा—प्रत्येक बुद्ध-(द्विमुख)

(क) पंचालेसु य दुम्मुहो।

—उत्त० अ १८।गा ४६।पूर्वार्ध

(ख) तह पंचाल-जणवए कंपिल्लपुरे नयरे गुण-रयण-जलनिही दुम्मुहो राया। तस्सय सुकयकम्म-जणियं तिवग्ग-सारं जीयलोय-सुहमणुहवंतस्स। आणंदिय-रायहंसो निम्मलगयरंगणो केष्फंत-वरिय-वसहालंकिओ निष्फण्ण-सव्वसासो नच्चिर-नड (च)-नट्ट-छत्त सुट्ठिय-सुसोहिल्लो पत्तो सरयागमो। तओ आस-वाहणियाए नीसरंतेण दिट्ठो इंदकेऊ महाविभूईए पूइज्जमाणो, पडिनियत्तेण य विसाय-साणे दिट्ठो भूमीए पडिओ कट्ठावसेसो विलुप्पंतो। तं च दट्ठूण चिंतियमणेण—

—धर्म० पृ० १२०, १२१

पाँचाल देश के 'कंपिलपुर' नगर का स्वामी था 'जय'। उसकी महारानी का नाम था 'गुणमाला'। दोनों को ही जैन धर्म में अगाध श्रद्धा थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जमीन खोदने से एक रत्नों का भव्यतम मुकुट निकला। कारीगरों ने महाराज को सूचित किया। महाराज ने उसे अपने मस्तक पर लगाकर ज्योंही अपना मुख दर्पण में देखा तो उस मुकुट के योग से दो मुख नजर आये, इसलिए महाराज जय का नाम द्विमुख पड़ गया।

चित्रशाला सांगोपांग तैयार कराई गई। शुभ मुहूर्त्त में उसका उद्‌घाटन समारोह हुआ। चित्रशाला के मध्य में एक इन्द्रध्वज आरोपित किया गया। अनेकानेक ध्वजाओं में वह इन्द्रध्वज बहुत ही मोहक लग रहा था। समारोह संपन्न हुआ। साज-सज्जा की सभी सामग्री यथा-स्थान रख दी गई। इन्द्रध्वज वाले लकड़े को भी एक तरफ फेंक दिया गया। अब उसे कौन संभाले। एक ओर पड़े उस स्तम्भ पर मिट्टी जमने से वह विरूप सा लग रहा था। महाराजा द्विमुख सहसा उसे देख लिया। पूछने पर महाराज को बताया कि यह वही इन्द्रध्वज वाला स्तम्भ है।

यह सुनकर महाराज की तो भावना ही बदल गई। चिंतन चला—यह सारी शोभा पर-वस्तुओं से है। सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से है। सारी चमक-दमक उधार ली हुई है, ऐसी मोहकता मुझे नहीं चाहिए। पराये पूतों से कब घर बसा है? अपने आप में ही मुझे लीन हो जाना चाहिए।

यों चिन्तन कर राजा द्विमुख सारे वस्त्राभूषणों को उतारकर पंचमुष्टि लोच करके महामुनि 'द्विमुख' बन गये। अद्‌भुत संयम और तप की साधना के द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पद प्राप्त किया और प्रत्येक बुद्ध कहलाये।

एवं संसारि-सत्ताण वि संपय-विवयाउ त्ति।

अविय—दट्‌ठूण सिरितह आवइं च जो इंद केउणो बुद्धो।
एस गई सव्वेसिं दुम्मुह-रायावि धम्मंमि॥

एसोवि गहिय-सामण्णो विहरिउं पवत्तोत्ति।

३. नमीराजा—प्रत्येक बुद्ध

तहा विदेहा-जणवए मिहिला-नयरीए नमी राया। तस्स य दाहजरा-भिभूयस्स विज्जेहिं चंदणरसो कहिओ। तं च घसंताण महिलियाण वलय झंकारो जाओ। तमसहंतेण रायणा अवणेयावियाओ एक्केक्कं वलयं।

तहावि न खीणो सद्दो पुणो दुइय-तइय-च-उत्थमवणीयं, तहा वि न निट्ठिओ सद्दो। पुणो एक्केक्कं धाभूयं। तओ एसंतो सव्वो विसद्दो। इत्थंतरम्मि चिंतियं राइणा—

अहो! जावइओ धण-धन्न-रयण-सयणाइ संजोगो। तावइओ दुक्ख-नियरो त्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जत्तिय-मित्तो संगो दुक्खाण गणो वि तत्तिओ चेव।
अहवा सील 'पमाणा हवंति खलु वेयणाओ वि ॥

'तम्हा एगागित्तं सुंदरं' ति भण्णंतो संबुद्धो एसो वि। खओवसमेण वेयणीस्स पउणीहूओ सरिय-पुव्व-जम्मो गहिय—सामण्णो विहरेउं पयत्तो त्ति। अविय—

रेणुं व पड-विलग्गं राय-सिरिं उज्झिऊण निक्खंतो।
म (मि) हिलाए नमी राया परिमुणियासेस-परमत्थो ॥

—धर्मो० पृ० १२१

मालव प्रदेश में 'सुदर्शन' नगर का स्वामी था मणिरथ। उसके एक छोटा भाई 'युगबाहु' था। उसकी पत्नी 'मदन रेखा' वास्तव में ही मदन-कामदेव की रेखा ही थी।

युगबाहु के एक पुत्र था। उसका नाम नमि था।

मदनरेखा के पुत्र को वृक्ष की डाली से उतार कर मिथिला नरेश पद्मरथ अपने यहाँ ले गया। उसके कोई पुत्र न होने के कारण उसे ही अपना ही पुत्र मानकर लालन-पालन किया। संयोग भी बात उस पुत्र के वहाँ पहुंचते ही जो राजा 'पद्मरथ की आज्ञा स्वीकार नहीं करते थे, ये अब सारे उसके पैरों में नतमस्तक है। इसलिए उसका नाम 'नमि' रखा गया।

वास्तव में नमि के पिता का नाम 'युगबाहु' था। युगबाहु के बड़े भाई का नाम मणिरथ था। तथा उसकी पत्नी का नाम 'मदनरेखा' था।

'नमिराज' उधर युवावस्था में पहुँचा। एक हजार स्त्रियों के साथ उसका विवाह हुआ। 'पद्मरथ' अपना सारा साम्राज्य नमि को सौंपकर स्वयं साधु बन गया।

एकदा नमिराज के शरीर में दाह-ज्वर का भीषण प्रकोप हुआ। उसे शांत करने हेतु रानियाँ मिलकर बावना चंदन घिसने लगी। घिसते समय हाथों के हिलने से हाथों की चूड़ियो की ध्वनि 'नमिराज' के कानों को अप्रिय लगने लगी। अतः आवाज को बंद करने के लिए कहा। महारानियों ने सुहाग के चिह्न स्वरूप एक-एक चूड़ी हाथों में रखकर शेष चूड़ियाँ निकालकर अलग रख दी। अब आवाज बंद होनी ही थी। आवाज को बंद देखकर 'नमिराज' ने कारण जानना चाहा। तब बताया गया कि अकेली चूड़ी कैसे शोर कर सकती है।

यों सुनते ही नमिराज प्रबुद्ध हो उठे। चिंतन की धारा ही बदल गई। नमिराज सोचने लगे सारी चूड़ियाँ मिलकर कितना शोर कर रही थी। अकेलेपन में ही सुख है। ये सारे नौकर-चाकर, धन-वैभव, परिजन, पुरजन, पुत्र, कलत्र आदि का समुदाय ही दुःखदाता है। अकेलेपन में सुख है, दो मिलने पर दुःख है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यों विचार कर नमिराज सारी राज्य संपत्ति को ठुकरा कर चल पड़े। स्त्रियों, नगर जनों का विलाप भी उनके संयम पथ में बाधक न बन सकी। दीक्षा लेने के लिए उत्सुक बने नमि से देवेन्द्र ने आकर प्रश्न किये। राज्य की संरक्षण करना समुचित बताकर संयम न लेने के लिए कहा पर विदेह बने नमिराज ने उन प्रश्नों का समुचित और समयोचित उत्तर देकर देवेन्द्र को संतुष्ट किया।

संयमी बनकर उग्र तपस्या के द्वारा कर्मक्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और सिद्धि स्थान में जा विराजे। ये प्रत्येक बुद्ध कहलाये।

'४ नग्गई राजा—प्रत्येक बुद्ध

तहा गंधार—जणवए पुरिसपुरे नगरे जयसिरिकुलमंदिर नग्गई राया। तस्स पियाहिं सहभोगे भुंजंतस्स संपत्तो कणिर-कलयंठि भुंजंतस्स संपत्तो कणिर-कलयंठि-खाबूरिय-वणंतरालो, विरहानलतविय-नियत्तमाण-पावासुओ, विलहमाण-कंहोट्ट-रयरेणु-रंजिय दियंतरालो, माहंदगाहि-गंधायड्ढिय-भमिर-भमरोलि-झंकार-मणहरो, दीसंत-नाणाविह-तियस-जत्ता-महूसयो, पडु-पडह-झल्लरि-पडहिय-सद्दापूरिज्जमाण-गयणंगणो वसंतो त्ति। अविय—

गलयानिलो वियंभइ चूओ महमहइ परहुया रसइ।
अखिज्जइ विसमसरो हियथारूढो पियथमोव्व॥
एयारिसे वसंते उज्जाणं पट्टिएण नरवइणा।
मंजरि-निवह-सणाहो साणंदं पुलइओ चूओ॥

अइकोऊहल्लेणं गहियाताओ मंजरी राइणा, तयणु समत्थ-खंधावारेण वि। विलुत्तो जाओ खाणुय मेत्तो। रमिऊण नियत्तमाणेण पुच्छिया आसण्ण नरा—'भो भो! कत्थ सो चूओ! तेहिं भणियं-देव! जावतए गहिया मंजरी। ताव तव खंधावारेण; एवमा वत्थंतरं पाविए एसो सो चुओ' त्ति।

तओ सविसायं चिंतियं राइणा—'अव्वो! करिकण्ण-चंचलाओ जीविय-जोव्वण-धण-सयण-रयण-पिय-पुत्त-मित्ताइयाओ विभूइओ। तकिमणेण भव-निबंधणेण रज्जेण?'

संबुद्धो सो वि गहिय-सामण्णो विहरिउं पयत्तो ति।

—धर्म॰ पृ॰ १२२
उत्त॰ अ ६।वृत्ति

'गांधार' देश का राजनगर था पुण्डूवर्धन। उसके राजा का नाम था 'सिंहरथ'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा सिंहरथ एक बार वक्रु शिक्षित अश्व पर सवारी करने के कारण जंगल में बहुत दूर भटक गये। जब घोड़ा रुका और राजा उसके नीचे उतरा तो देखा सामने एक ऊँचे पर्वत पर एक सुन्दर राजमहल है। राजा मन ही मन कौतूहल लिए उस महल में घुसा। महल भव्य था। चारों ओर साज-सज्जा अच्छी थी पर था सुनसान। मन ही मन विस्मय लिए राजा ज्योंही महल में बढ़ा तो एक रूपवती कन्या ने राजा का स्वागत किया। राजा ने जब उस सुन्दरी का परिचय जानना चाहा, तब कन्या ने कहा—वैताढ्य पर्वत के 'तोरणपुर' नगर के महाराज दृढशक्ति की मैं पुत्री हूँ, मेरा नाम 'कनकमाला' है। मेरे रूप पर मुग्ध बना एक विद्याधर मुझे वहाँ से यहाँ ले आया। जब मेरे भाई को पता लगा तो वह भी यहाँ आया। दोनों परस्पर भिड़ पड़े। और दोनों एक दूसरे को मार गिराया। मैं असहाय बनी यहाँ रह रही हूँ। आपको देखते ही मैं आपके प्रति समर्पित हूँ। आप मुझे स्वीकार कीजिये।

सिंहरथ ने उसके साथ वहीं गांधर्व विवाह कर लिया। उसे लेकर विमान में बैठकर अपने राज्य में लौट आया। प्रतिदिन विमान में बैठकर उसके साथ इधर-उधर घूमने जाने लगा। पर्वत पर विशेष रूप में जाता इसलिए सिंहरथ का नाम 'नग्गति'[१] पड़ गया।

नग्गति एक दिन अपने सेवकों के साथ वन भ्रमण को गया, मार्ग में फल-फूल से लदा हुआ आम्र वृक्ष देखा।

राजा उस पर अतिशय मुग्ध हो उठा और उसे बार-बार देखता रहा। उसने हाथ ऊँचा करके एक गुच्छा तोड़ लिया। उसके पीछे आने वाले सेवकों ने भी फलफूल पत्ते तोड़े। पेड़ ठूंठ रह गया। शाम को जब राजा नग्गति वन विहार से लौटा तो उसी आम्र वृक्ष को सूखा हुआ, फलफूलों से हीन देखकर चौंका। चिंतन ने करवट ली। सोचा—यह सारी पौद्‌गलिक रचना नाशवान् है। सरस से सरस दिखने वाली वस्तु कितनी नीरस लग जाती है। यों चिंतन करते ही उन्हें जाति-स्मरण ज्ञान हो गया। वैराग्य जगा। स्वयं के हाथ से पंचमुष्टि लुंचन करके साधु बन गया। और प्रत्येक बुद्ध कहलाया।

.७२ कालोचित्तक्रियायां केशिगणधर कथा

कालाणुरूवं-किरियं सुयाणुसारेण कुरू अहाजोगं।
जह केसिगणहरेणं गोयम-गणहारिणो विहिया॥

कालाणुरूपं-क्रियां पंचमहाव्रतादिलक्षणामागमानुसारेण यथा गौतम-समीपे पार्श्वनाथीयकेसि (शि) गणधरेण कृतीति।

---

१ नग्गति—नगगति पहाड़ पर जाने वाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तंजहा—पाससामिणो तेवीसइम-तित्थयरस्स केसिनाओ अणेग-सीस-गण-परिवारो ससुरासुर-नरिंद-पणय-पय पंकओ बोहिंतो भव-कमलायरे, नासितो मिच्छत्तमन्धयारं, अवणेंतो मोह-निद्दं, मासकप्पेण विहरमाणो समोसरिओ सावत्थीए नयरीए मुणि-गणपाओग्गे फासुए तिंदुगाहिहाणे उज्जाणे। विउरुव्वियं तियसेहिं विव्वमच्चंत मणाभिरामं कंचण सयवत्तं। ठिओ तत्थ। समाढत्ता धम्म-कहा। संपत्ता देव-दाणव-नरिंदाइणो त्ति। अवि य—

तियसासुर-नय-चलणो धम्मं साहेइ गणहरो केसी।
दइव-दिट्ठ-सारो मोक्ख-फलं सव्व-सत्ताणं॥
तीए चिय नयरीए उज्जाणे कोट्ठगम्मि वीरस्स।
सीसो गोयम गोत्तो समोसढो इंदभूइ त्ति॥
कंचण-पउम-निसण्णो धम्मं साहेइ सोवि सत्ताण।
पुव्वावराविरुद्धं पमाण-नय-हेउ-सह-कलियं॥
नाणाविह-वत्थ-धरासीसा केसिस्स सियवड-समेया।
गोयम-गणहर-सीसा मिलिया एगत्थ चिंतंति॥

अव्वो! मोक्ख कज्जे साहेयव्वे किं पुण कारणं पास-सामिणा चत्तारि महव्वयाणि निद्दिट्ठाणि? कारणजाए य पडिक्कमणं?। अण्णस्स मुणिणो कयमण्णस्स कप्पइ। नाणाविह-वत्थ-गहणं, सामाइय-संजमाईणि य। वीसवद्धमाणसामिणा पंच महव्वयाणि, उभयकाल-परिक्कमणमवस्सं सियवत्थ-गहणं, एगस्स मुणिणो कयं आहाकम्माइ सव्वेसिं न कप्पणिज्जं सेज्जायरपिंड-विवज्जं, समाइयं छेदोवत्था (व) णाईणि त्ति।

इय एवंविहचित्तं (न्तं) सीसाणं जाणिऊण ते दो वि।
मिच्छत्त - नासणत्थं संगम-चिंताउरा जाय॥

तओजेट्ठं कुलमवेक्खमाणो अणेग-सस-गण-परिवारो वुच्चंतो विज्जाह-राईहिं संपट्ठिओ गोयमो तिंदुगुज्जाणे भगवओ केसिगणहरस्स वंदणवडियाए। भणियंच परममुणिया—

× × ×

तक्खणं च सीसेहिं रयाउ निसेज्जाओ कय जहारिह-विणयकम्मो गोयमो केसी य त्ति।

× × ×

४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तओ ताणं भगवंताणं समागमं सोऊण कोऊहल-विम्हाण-हेउँ पूयाइ-दंअणत्थमागया सव्वे पासंडिणो, गिहत्था, भवणवइ-वाणमंतर-जोइसवेमाणिया (ण) य देवाणमणेगाउ कोडीउ त्ति।

कुलगिरिणो विव धणियं उण्णयवसा सहंतिते दो वि।
निद्दि (ट्ठ) विय-मयण-पसरा गेविज्जय-तियस संकासा॥

जिय-विसय-राग-पसरा महानहिंद व्व विसुद्ध-नर-महिया।
गयणं व निरुवलेवा सकीसाणव्व जण-पयडा॥

करिणोव्व-दिण्ण-दाणा गय-केसरिणोव्व खविय मय पसरा।
रविणोव्व खविय-दोसा तरुणो विव सउण-गण-निसया॥

साहिय-विज्ञानमि-विणमिणो व्व ससिणो व्व वड्ढियाणंदा।
मणिणु व्व दलिय-तिमिरा हरिणो व्व पसत्थ-सम्मत्ता॥
दोन्नि वि अवसर (अइलय)-कलियादोन्नि वि निय-तेय-तविय-दढ-पावा।
दोन्नि वि तवलिरि-सहिया दोन्नि वि सिद्धीए गय-चित्ता॥
दोन्नि वि गरुय पयावा दोन्नि वि जिणवयण-नहयल-मियंका।
दोन्नि वि वित्थरिय-जसा दोन्नि वि तियलोय-नय-चलण्णा॥
इय ते दोन्नि वि दिट्ठा तियसासुर-खयर-नर-गण-पहूहिं।
दट्ठव्व-दिट्ठ-सारा तेलोक्क-नमंसिया धीरा॥

तओ तित्थाहिव-गणहरो त्ति काऊण सीसाईण बोहणत्थं सविणयं जाणमाणेणावि पुच्छिओ गोयमसामी केसिगणहरेण पुव्वुत्त-संसर (य)। गोयमेण भणियं————'उसभसामि [तित्थ-साहु] णो अच्चंतभुज्ज (ज्जु) य-जडा, वद्धमाणसामि-तित्थ-साहुणो पुण अच्चंत-वक्क-जडा। अओ पुव्विल्ल-साहूण दुव्विसोहओ, पच्छिमाण पुण दुरणुपालओ। इमिणा कारणेण दोण्हं पि पंच महव्वयाइ-लक्खणो। मज्झिम-जिण-तित्थ-साहुणो पुण उजुया विसेसण्णुणो, तेण धम्मे दुहा कए त्ति। निच्छएण पुण सम्मदंसण-नाण-चरित्ताणि निव्वाण-मग्गो, ताणि य सव्वेसिं पि तित्थयर-सीसाणं सरिसाणि त्ति। अवि य।

× × ×

केसी-गोयमणामं तेवीसइमं तु उत्तरज्झयणं।
एवंविह-पुच्छाओ वयाओ तत्थ केसिस्स॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छिण्णा ताओ सव्वाओ जहागमं गोयमेण संतुट्ठो।
संथुणइ महासत्तं इमेहि सिद्ध तवयणेहिं॥
नमो ते संसयातीत! सव्व-स (सु) त्त-महोदधे।
जिणपवयण-गयण-ससी पयासियासेस-परमत्थ॥

तओ पडिवण्णो पंच-महव्वयलक्खणो गोयमसामिणो समीवे केसिणा धम्मो त्ति।

"तोसिया परिसा सव्वा संमत्तं पज्जुवट्ठिया।
सथुया ते पसीयंतु भगवं केसि-गोयमा।

—धर्मो पृ० १४१ से १४२

केशी स्वामी (केशी श्रमण) भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के महान् तेजस्वी आचार्य थे। तीन ज्ञान के धारक, चारित्र सम्पन्न और महान यशस्वी साधक थे। वे अपने शिष्यों सहित एक बार श्रावस्ती नगरी के 'तिंदुक' वन में आकर विराजमान हुए। उन्हीं दिनों 'गणधर' गौतम जो भगवान् महावीर की परम्परा के सफल संवाहक थे। वे अपनी शिष्य मंडली सहित उसी श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान में विराजमान थे। जब दोनों के शिष्यों ने भिक्षार्थ शहर में घूमते एक दूसरे को देखा। तब उनके वेष की विभिन्नता देखकर शंकाशील होना सहज था। सब ने अपने-अपने अधिशास्ता के सामने अपने शंकाएँ रखीं। शिष्यों को आश्वस्त करने हेतु गौतम स्वामी केशी स्वामी के कुल के ज्येष्ठ गिनते हुए उनके पास तिन्दुक वन में आये। केशी स्वामी ने भी आसन प्रदान करके उनका समादर किया। वहाँ विराजमान दोनों ही चंद्र और सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे। उस समय अनेक कौतूहल प्रिय, जिज्ञासु तथा तमाशबीन लोग वहाँ इसलिये इकट्ठे हो गये थे कि देखें क्या होता है? केशी स्वामी ने अपने शिष्यों की शंकाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए कहा—गौतम! पार्श्वप्रभु ने चार महाव्रत रूप धर्म तथा भगवान् महावीर ने पाँच महाव्रत रूप धर्म कहा, यह भेद क्यों?

गौतम ने समाधान देते हुए कहा—महात्मन्! जहाँ प्रथम तीर्थंकर के साधु सरल और जड़ तथा अंतिम तीर्थंकर के मुनि वक्र और जड़ होते हैं, वहाँ बीच वाले बावीस तीर्थंकरों के साधु सरल और प्राज्ञ (बुद्धिमान) होते हैं। इसलिये प्रभु ने धर्म के दो रूप किये। आशय यह है कि प्रथम तीर्थंकर के साधु धर्म को जल्दी से समझ नहीं सकते पर समझने के बाद उसकी आराधना अच्छी तरह से कर सकते हैं तथा अंतिम तीर्थंकर के श्रमण धर्म की व्याख्या समझ तो जल्दी से लेते हैं पर पालन करने में वे शिथिल हो जाते हैं इसलिए उनके लिए पाँच महाव्रत रूप धर्म की प्ररूपणा की तथा बीच वाले बावीस तीर्थंकरों के साधुओं के लिए समझना और पालना दोनों ही आसान है इसलिए चार महाव्रत रूप धर्म की प्ररूपणा की।

गौतम स्वामी के उत्तर से सबको समाधन मिला और सभी आश्वस्त हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केशी स्वामी ने दूसरा प्रश्न किया—महानुभाव। ये वेश में विविधता क्यों? जब एक ही लक्ष्य को लेकर दोनों चल रहे हैं? तब पार्श्व प्रभु ने कीमती और रंगीन वस्त्रों के प्रयोग की साधुओं को छूट दी। वहाँ भगवान् महावीर ने केवल अल्प मूल्य वाले श्वेत वस्त्रों की ही आज्ञा दी, इसका क्या कारण है।

गौतम ने समाधान देते हुए कहा—वक्रजड़, ऋजुप्राज्ञ तथा ऋजुजड़ साधुओं के मन में आसक्ति के भाव पैदा न हो, संयम की यात्रा का सकुशल निर्वाह कर सके। लोगों में प्रतीती हो तथा कोई भी अकार्य करते हुए वेश को देखकर मन में झिझक हो कि मैं साधु हूँ—यह काम मेरे लिए अनाचीर्ण है, इसलिए वेषभूषा की उपयोगिता है। साधकों की मनो-भूमिका को लक्ष्य करके ऐसा किया गया है।

यों केशी स्वामी ने विविध विषयों पर १२ प्रश्न किये और गौतम स्वामी ने सबका समुचित समाधान किया। इस समाधन से सम्पूर्ण परिषद को संतोष हुआ। शिष्यों की जिज्ञासाएँ समाप्त हुईं। स्वयं केशी स्वामी अपनी शिष्य मंडली सहित पाँच महाव्रत धर्म का स्वीकरण करके गौतम स्वामी के गण में सम्मिलित हो गये। अंत में केशी स्वामी केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में विराजमान हुए।

.७३ भगवान् महावीर की सर्वज्ञावस्था और गोशालक

.१ जिन प्रलापी गोशालक का रोष

तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अण्णयाकयावि इमे छ दिसाचरा अंतियं पाउब्भवित्था, तंजहा—साणेतं चेव, सव्वंजाव अजिणे जिणसद्दं पगासे-माणे विहरइ, तं णो खलु गोयमा! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे, जिणप्पलावी जाव जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ, गोसालेण मंखलिपुत्ते अजिणे, जिणप्पलावी जाव पगासेमाणे विहरइ। तएणं सा महतिमहालया महच्च-परिसा जहा सिवे जाव पडिगया।

तए णं सावत्थीए णयरीए सिंघाडग० जाव बहुजणो अण्णमण्णस्स जाव परूवेइ—'जं णं देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव विहरइ, तं मिच्छा।

समणे भगवं महावीरे एवं आइक्खइ जाव परूवेइ—'एवं खलु तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स मंखलीणामं मंखे पिया होत्थां।

तए णं तस्स मंखलिस्स एवं चेव तं सव्वं भाणियव्वं, जाव अजिणे जिणसद्दं पगासे विहरइ, तंणो खलु गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे, जिणप्पलावी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव विहरइ, गोसाले मंखलिपुत्ते अजिणे जिणप्पलावी जाव विहरइ, समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी जाव विहरइ, समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी जाव जिण सद्द पगासेमाणे विहरइ।

—भग० श १५।प्र६३

अन्यदा किसी एक दिन गोशालक से वे छह दिशाचर आकर मिले। यथा—शान आदि। (पूर्वोक्त वर्णन यह जिन न होते हुए भी अपने लिए 'जिन', शब्द भी प्रकाश करता हुआ विचरता है।) हे गौतम! मंखलिपुत्र गोशालक वास्तव में जिन नहीं है परन्तु जिना शब्द का प्रलाप करता हुआ यावत् 'जिन' शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरता है।

गोशालक अजिन है। तत्पश्चात् वह अत्यंत बड़ी परिषद् ग्यारहवें उद्देश्यक के नववें उद्देशक में शिव राजर्षि के चरित्रानुसार धर्मोपदेश सुनकर और वंदना नमस्कार कर चली गयी।

श्रावस्ती नगरी में शृंगाटक (त्रिक मार्ग) यावत् राजमार्गों में बहुत से मनुष्य इस प्रकार यावत् प्ररूपणा करने लगे—हे देवानुप्रियो! मंखलिपुत्र गोशालक 'जिन होकर अपने आपको 'जिन' कहता हुआ विचरता है। यह बात मिथ्या है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि मंखलिपुत्र गोशालक का मंखलि नामक मंख (भिक्षाचर विशेष) पिता था, इत्यादि।

पूर्वोक्त सारा वर्णन यावत् गोशालक जिन नहीं होते हुए भी 'जिन' शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरता है—तक जानना चाहिए।

इसलिये मंखलिपुत्र गोशालक जिन नहीं है। वह व्यर्थ ही—'जिन' शब्द का प्रलाप करता हुआ विचरता है, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जिन है यावत् 'जिन' शब्द का प्रकाश करते हुए विचरते है।

जिन प्रलापी गोशालक का रोष—

इत्याख्याय ततो नाथः श्रावस्तीं विहरन् ययौ।
तस्यां च समवायार्थीदुद्याने कोष्ठकाभिधे॥ ३५४॥
तस्थौ प्रागागतस्तेजो लेश्याहतविरोधिकः।
अष्टांगनिमित्तज्ञानज्ञात लोकमनोगतः॥ ३५५॥
अजिनोऽपि जिनशब्दमात्मना संप्रकाशयन्।
हालाहलाकुंभकार्या गोशालोऽवसरापणे॥ ३५६॥
तस्य चार्हन्निति ख्यातिलोक आकर्ण्य मुग्धधीः।
उपेत्योपेत्य विदधे निरन्तरमुपासनम्॥ ३५७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतश्च समये प्राप्ते गौतमः स्वाम्यनुज्ञया।
प्राविशत् पुरि भिक्षार्थं चिकीर्षुः षष्ठ पारणम् ॥ ३५८ ॥
गोशालोऽत्रास्ति सर्वज्ञोऽर्हन्नित्याकर्ण्य तत्र च।
गौतमः सविषादोऽगादात्तभिक्षोऽन्तिके प्रभोः ॥ ३५६ ॥
यथावत् पारणं कृत्वा गौतमः समये प्रभुम्।
पश्यतां पौरलोकानामपृच्छत् स्वच्छधीरिति ॥ ३६० ॥
स्वामिन्नगर्यामेतस्यां व्याहरन्त्यखिला जनाः।
सर्वज्ञ इति गोशालं किमेतद् घटते न वा ॥ ३६१ ॥
अथा ख्यद् भगवानेष सूनुर्मंखस्य मंखलेः।
अजिनोऽपि जिनंमन्यो गोशालः कपटालयः ॥ ३६२ ॥
मयैव दीक्षितश्चायं शिक्षां च ग्राहितो मया।
मिथ्यात्वं प्रतिपन्नो मे सर्वज्ञो न एष गौतम! ॥ ३६३ ॥
तत्तु स्वामिवचः श्रुत्वा पौराः पूर्यामितस्ततः।
एवं बभाषिरेऽन्योन्यं चत्वरेषु त्रिकेषु च ॥ ३६४ ॥
हं हो अर्हन्निहायातो वीरस्वामी वदत्यदः।
गोशालो मंखलिसुतो मिथ्या सर्वज्ञमान्य सौ ॥ ३६५ ॥
जन श्रुत्या ततः श्रुत्वा गोशालः कालसर्पवत्।
आपूर्णमाणः कोपेन तथावाजीवकावृतः ॥ ३६६ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० (सर्ग ८)

जिन प्रलापी

तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे आयावणभूमिओ पच्चोरुहइ, आयावणभूमिओ पच्चोरुहित्ता सावत्थि णयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणंसि आजीवियसंघसंपरिवुडे महया मरिसं वहमाणे एवं यावि विहरइ।

—भग० श १५/प्र६४

यह बात गोशालक ने बहुत से मनुष्यों से सुनी। सुनते ही वह अत्यंत कुपित हुआ, यावत् मिसमिसाहट करता हुआ (क्रोध से दांत पीसता हुआ) आतापना भूमि से नीचे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उतरा और श्रावस्ती नगरी के मध्य में होता हुआ, हालाहला कुंभारिन की बर्तनों की दुकानपर आया। वह अजीविक संघ से परिवृत्त होकर अत्यंत अहर्ष (क्रोध) को धारण करता रहा।

·२ गोशालक का आणंद निर्ग्रंथ से वार्तालाप

(क) इतश्च स्वामिनः शिष्य आनन्दः स्थविरागुणी।
षष्ठपारणकं कर्तुं भिक्षार्थं प्राविशत् पुरि॥ ३६७॥
हालाहलागृहासीनो गोशालस्तत्प्रदेशगम्।
आनन्दमुनिमाहूय साधिक्षेपमदोऽवदत्॥ ३६८॥
भो आनन्द! तवाचार्यो लोकात् सत्कारमात्मनः।
इच्छन्नधीरः समान्वक्षं मां तिरस्कुरुतेतराम्॥ ३६९॥
मंखपुत्रमनर्हंश्रमसर्वज्ञं च वक्ति माम्।
तेजोलेश्यां न म वेत्ति विपक्षदहनक्षमाम्॥ ३७०॥
भस्मराशीकरिष्यामि तमहं सपरिच्छदम्।
त्वामेवैकं विमोक्ष्यामि दृष्टांतोऽत्र निशम्यताम्॥ ३७१॥
अवसरः प्रसरश्च संवादः कारकस्तथा।
भलनो वणिजोऽभूवन् क्षेमिलाख्यां पुरा पुरि॥ ३७२॥

× × ×

धक्ष्यामि त्वद्गुरुं सर्पोऽधाक्षीत्तांश्चतुरो यथा।
मोक्ष्यामि त्वामहं सोऽहिर्मुमो चावसरं यथा॥ ३९०॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ८

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी आणंदे णामं थेरे पगइभद्दए जाव विणीए छट्ठं-छट्ठेणं अणिक्खत्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तएणं से आणंदे थेरे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए एवं जहा गोयमसामी तहेव आपुच्छइ, तहेव जाव उच्चणीय-मज्झिम० जाव अडमाणे हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणस्स अदूरसामंते वीइवयइ।

तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते आणंदं थेरं हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—'एहि ताव आणंदा! इओ एगं महं उवमियं णिसामेहि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तएणं से आणंदे थेरे गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे जणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणे, जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ।

—भग० श १५।प्र ६५

उस समय श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य आनंद नामक स्थविर थे। वे प्रकृति से भद्र यावत् विनीत थे और वे निरंतर छट्ठ-छट्ठ की तपस्या करते हुए और संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

वे आनंद स्थविर छट्ठक्षमण के पारणे के दिन प्रथम पोरिसी में स्वाध्याय यावत् गौतम स्वामी के समान भगवान् से आज्ञा मांगी, और ऊँच-नीच और मध्यम कुलों में गोचरी के लिए चले। वे हालाहाला कुंभारिन की दूकान के समीप होकर जा रहे थे। कि गोशालक ने आनंद स्थविर को देखा। गोशालक ने स्थविर को संबोधित कर कहा— हे आनंद! यहाँ आ और मेरे एक दृष्टांत को सुन। गोशालक से संबोधित होकर आनंद स्थविर, हालाहला कुंभारिन की दूकान में गोशालक के पास आये।

(ग) एवामेव आणंदा! तव वि धम्मायरिएणं धम्मोवएसएणं समणेणं णायपुत्तेणं ओराले परियाए आसाइए, ओराला कित्तिवण्ण-सद्द-सिलोगा सदेवमणुयासुरे लोए पुव्वंति, गुवंति थुवंति इति खलु 'समणे भगवं महावीरे' इति खलु 'समणे भगवं महावीरे'। तं जइ मे से अज्ज किंचि वि वदइ तो णं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेमि, जहा वा वालेणं ते वणिया। तुमं च णं आणंदा! सारक्खामि, संगोवामि, जहा वा से वणिए तेसिं वणियाणं हियकामए, जाव णिस्सेसकामए अणुकंपयाए देवयाए सभंड० जाव साहिए। तं गच्छ णं तुमं आणंदा! तव धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स समणस्स णायपुत्तस्स एयमट्ठं परिकहेहि। भग० श १५।प्र ६६।पृ० ६७४

गोशालक ने आनंद को कहा—हे आणंद! तेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, श्रमण ज्ञातपुत्र ने उदार (प्रधान) पर्याय प्राप्त की है और देव, मनुष्य एवं असुरों सहित इस लोक में 'श्रमण भगवान् महावीर' श्रमण भगवान महावीर, इस प्रकार की उदार कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक (यश) व्याप्त हुआ है, प्रसृत हुआ है और सर्वत्र उनकी प्रशंसा और स्तुति हो रही है। यदि वे आज मुझे कुछ भी कहेंगे, तो मेरे तप तेज से, जिस प्रकार सर्प ने एक ही प्रहार से वणिकों को कूटाघात के समान जलाकर भस्म कर दिया, उसी प्रकार मैं भी जला कर भस्म कर दूँगा। हे आनंद! जिस प्रकार वणिकों के उस हितकामी यावत् निःश्रेयसकामी वणिक् पर नागदेव ने अनुकंपा की और उसे भंडोपगरण सहित अपने नगर में पहुँचा दिया, उसी प्रकार मैं तेरा संरक्षण और संगोपन करूँगा। इसलिए हे आनंद! तू जा और अपने धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञात पुत्र को यह बात कह दे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.३ आणंद अणगार का भगवान के पास आना

तएणं से आणंदे थेरे गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे भीए, जाव संजायभए गोसालस्स मंखलिस्स अंतियाओ हालाहलाए कुंभकारीए कुंभ-कारावणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सिग्घं तुरियं सावत्थिणयरिं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ णिग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइणमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—'एवं खलु अहं भंते ! छट्ठक्खमणपारणगंसि तुब्भेहिं अब्भंणुण्णाए समाणे सावत्थीए णयरीए उच्च-णीय० जाव अडमाणे हालाहलाए कुंभकारीए० जाव वीईवयामि, तएणं गोसाले मंखलिपुत्ते ममं हालाहलाए० जाव पासित्ता एवं वयासी—'एहि ताव आणंदा ! इओ एगं महं उवमियं णिसामेहि। तएणं अहं गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणे, जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते, तेणेव उवागच्छामि। तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवं वयासी—एवं खलु आणंदा ! इओ चिराईयाए अद्धाए केइ उच्चावया वणिया० एवं तं चेव सव्वं णिरवसेसं भाणियव्वं, जाव 'णियगणयरं साहिए।' तं गच्छ णं तुमं आणंदा ! धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स जाव परिकहेहि।

भग० श० १५/ प्र ६७/पृ० ६७५

ततोऽसमाप्तभिक्षार्थं एवाऽऽनन्दो ययौ प्रभुम्।
गोशालकं तदाख्यायपृच्छच्चेति शंकितः॥ ३६१ ॥
भस्मकाशीकरिष्यामीत्युक्तं गोशालके न यत्।
उन्मत्तभाषितं तत् किं तत्कर्तुमथवा क्षमः॥ ? ॥ ३६२ ॥
अथा च चक्षे भगवानर्हद्भ्यः सोऽन्यतः क्षमः।
अर्हतामपि संतापमात्रं कुर्यादनार्यधीः॥ ३६३ ॥
तद्गत्वा गौतमादीनां शंसेदं ते यथा हितम्।
इहागतं नोदनया धर्म्यकयापि मुदन्ति न॥ ३६४ ॥
तेषां गत्वाऽऽख्यदानन्दस्तदा गोशालकोऽपिहि।
तत्राऽऽगात् स्वामिनोऽग्रे चावस्थाय व्यज्ञवीदिति॥ ३६५ ॥

—त्रिशलाका० पर्व० १० /सर्ग ८

गोशालक की बात सुनकर आनंद स्थविर भयभीत हुए। वे वहाँ से लौटकर त्वरित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गति से शीघ्र ही कोष्ठक उद्यान में, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप आये और तीन बार प्रदक्षिणा एवं वंदन नमस्कार कर इस प्रकार बोले—'हे भगवन् ! आज छट्ठ-क्षमण के पारणेके लिए आपकी आज्ञा लेकर श्रावस्ती नगरी में ऊँच, नीच और मध्यम कुलों में गोचरी के लिए जाते हुए जब मैं हालाहला कुंभारिन की दूकान के अदूर सामन्त होकर जा रहा था, तब मंखलिपुत्र गोशालक ने मुझे देखा और मुझे बुला कर कहा—"हे आनंद ! यहाँ आ और मेरे एक दृष्टांत को सुन।" तब मैं उसके पास आ गया। गोशालक ने मुझे इस प्रकार कहा—हे आनंद ! आज से बहुत काल पहले कुछ वणिक् इत्यादि पूर्ववत् यावत् नागदेव ने उसे अपने शरीर में रख दिया। इसलिए हे आनंद ! तुम्हारे और अपने धर्माचार्य, धर्मोपदेशक से यावत् कह।

·४ श्रमण एवं श्रमण भगवंत का तपतेज

तं पभूणं भंते ! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए, विसएणं भंते ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स जाव करेत्तए, समत्थे णं भंते ! गोसाले जाव करेत्तए ?

पभूणं आणंदा ! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं जाव करेत्तए। विसएणं आणंदा ! गोसाल० जाव करेत्तए। समत्थे णं आणंदा ! गोसाले जाव करेत्तए, णो चेव णं अरहंते भगवंते, परियावणिय पुण करेज्जा। जावइए णं आणंदा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवत्तेए, एत्तो अणंतगुणविसिट्ठयराए चेव तवतेए अणगाराणं भगवंताणं, खंतिखमा पुण अणगारा भगवंतो। जाव-इएणं आणंदा ! अणगाराणं भगवंताणं तवतेए एत्तो अणंतगुणविसिट्ठयराए चेव तवतेए थेराणं भगवंताणं खंतिखमा पुण थेरा भगवंतो। जावइए णं आणंदा थेराणं भगवंताणं तवतेए एत्तो अणंतगुणविसिट्ठयतराए चेव तवतेए अरहंताणं भगवंताणं खंतिखमा पुण अरहंता भगवंतो ! तं पभूणं आणंदा ! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं जाव करेत्तए, विसएणं आणंदा, जाव करेत्तए, समत्थेणं आणंदा ! जाव करेत्तए, णो चेव णं अरहंते भगवंते, परियावणियं पुणं करेज्जा।

—भग० श १५/प्र० ९८

आनंद निर्ग्रन्थ ने भगवान् से प्रश्न किया—हे भगवन् ! मंखलिपुत्र गोशालक अपने तपतेज से एक ही प्रहार में कूटाघात के समान जलाकर भस्म करने में प्रभु (समर्थ) है। हे भगवन् ! मंखलिपुत्र गोशालक का यह यावत् विषय मात्र है या वह ऐसा करने में समर्थ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे आनंद ! मंखलिपुत्र गोशालक अपने तपतेज से यावत् भस्म करने में प्रभु (समर्थ) है। हे आनंद ! वह ऐसा करने में समर्थ है, परन्तु अरिहंत भगवान् को जलाकर भस्म करने में समर्थ नहीं है, तथापि उनको परिताप उत्पन्न करने में समर्थ है।

हे आनंद ! गोशालक का जितना तपतेज है, उससे अनगार भगवंतों का तपतेज अनंतगुण विशिष्ट है, क्योंकि अनगार भगवंत शान्ति-शान्ति क्षम (क्षमा करने में समर्थ) है।

हे आनंद ! अनगार भगवंतों का जितना तपतेज है, उससे अनंतगुण विशिष्ट तेज स्थविर भगवंतों का है, क्योंकि स्थविर भगवंत क्षान्ति क्षम होते हैं।

हे आनंद ! स्थविर भगवंतों का जितना तपतेज है उससे अनंत गुण विशिष्ट तपतेज अरिहंत भगवंतो का होता है क्योंकि अरिहंत भगवंत क्षांति क्षम होते हैं। हे आनंद ! मंखलिपुत्र गोशालक अपने तपतेज द्वारा यावत् भस्म करने में प्रभु (समर्थ) है। यह उसका विषय (शक्ति) है और वह वैसा करने में समर्थ भी है। परन्तु अरिहंत भगवंतों को भस्म करने में समर्थ नहीं है—केवल परिताप उत्पन्न कर सकता है।

विवेचन—प्रभुत्व दो प्रकार का है—विषय मात्र की अपेक्षा और संप्राप्ति रूप अर्थात् कार्य रूप में परिणत कर देने की अपेक्षा।

इसलिए यहाँ मूल पाठ में विषय की अपेक्षा से और सामर्थ्य की अपेक्षा से पुनः प्रश्न किया गया है।

·५ भगवान का आदेश

तीर्थंकरकाल

तं गच्छ णं तुमं आणंदा ! गोयमाईणं समणाणं निग्गंथाणं एयमट्ठं परिकहेहि—'मा णं अज्जो ! तुब्भं केइ गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएउ, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेउ, धम्मिएणं पडोयारेणं पडोयारेउ, गोसाले णं मंखलिपुत्ते समणेहिं णिग्गंथेहिं मिच्छं विपडिवण्णे। तएणं से आणंदे थेरे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव गोयमाइसमणा णिग्गंथा तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता गोयमाइसमणे णिग्गंथे आमंतेइ, अमंतित्ता एवं वयासी—'एवं खलु अज्जो ! छट्ठक्खमणपारणगंसि समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे सावत्थीए णयरीए उच्चणीय तं चेव सव्वं जाव णायपुत्तस्स एयमट्ठं परिकहेहि, तं मा णं अज्जो। तुब्भं केइ गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएउ, जाव मिच्छं विपडिवण्णे।

भग० श १५।प्र ९९।१०० पृ० ६७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे आनंद! इसलिये तुम और गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थों से कह कि—हे आर्यों! गोशालक के साथ उसके मत में प्रतिकूल तुम कोई भी धर्म सम्बन्धी चर्चा, प्रतिसारणा (उसके मत के प्रतिकूल अर्थ को स्मरण करने रूप) तथा प्रत्युपचार (तिरस्कार रूप वचन) मत करना। गोशालक ने श्रमन-निर्ग्रन्थों के प्रति विशेषतः मिथ्यात्व (म्लेच्छपन अथवा अनार्यपन) धारण किया है। भगवान् को वंदना-नमस्कार करके आनंद स्थविर, गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थों के पास आये और उन्हें संबोधन कर इस प्रकार कहा—'हे आर्यों! आज छद्वक्षमण पारणे के लिये श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की आज्ञा प्राप्त कर मैं श्रावस्ती नगरी में आया, हे आर्यों! आप कोई भी गोशालक के साथ उनके मत के प्रतिकूल धर्म-चर्चा मत यावत् उसने श्रावण निर्ग्रन्थों के साथ अनार्यपन किया है।

·६ गोशालका आगमन

(क) तेषां गत्वाऽऽख्यदानन्दस्तदा गोशालकोऽपि हि।
तत्र ऽऽगत स्वामिनोऽग्रे चावस्थ य व्यब्रवीदिति ॥ ३९५ ॥
भोः काश्यप! वदस्येवं गोशालो मंखलेः सुतः।
अन्तेवासी ममेत्यादि तन्मृषा भाषितं तथा ॥ ३९६ ॥
गोशालस्तव यः शिष्यः स हि शुक्लाभिजातिकः।
धर्मध्यानस्थितो मृत्वा त्रिदशेषूदपद्यत ॥ ३९७ ॥
तद् देहेऽस्मिन्नुपसर्गपरीषह सहेऽधिशम्।
उदायनामाऽहमृषिः परित्यज्य निजं वपुः ॥ ३९८ ॥
ततो मामपरिज्ञाय गोशालं मंखले सुतम्।
स्वशिष्यं कथमाख्यासि न खल्वसि गुरुर्मम ॥ ३९९ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ८

(ख) जावं च णं आणंदे थेरे गोयमाईणं समणाणं णिग्गंथाणं एयमट्ठं परिकहेइ तावं च णं से गोसाले मंखलिपुत्ते हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता आजीवियसंघसंपरिवुडे महया अमरिसं वहमाणे सिग्घं तुरियं जाव सावत्थिं णयरिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ. तेणेव उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—'सुट्ठु णं आउसो कासवा! ममं एवं वयासी, साहूणं आउसो कासवा! ममं एवं वयासी—गोसाले मंखलिपुत्ते ममं धम्मंतेवासी, गोसाले० २ जे णं से मंखलिपुत्ते तव धम्मंतेवासी से णं सुक्के सुक्काभिजाइए भवित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उववण्णे, अहं णं उदाइमाणं कुंडियायणीए, अज्जुणस्स गोयमपुत्तस्स सरीरगं विप्पजहामि, अज्जुणस्स गोयमपुत्तस्स सरीरगं विप्पजहित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं अणुप्पविसामि गो० २ अणुप्पविसित्ता इमं सत्तमं पउट्टपरिहारं परिहरामि जे वि आइं आउसो कासवा ! अम्हं समयंसि केइ सिज्झिसु वा सिज्झंति वा सिज्झिस्संति वा सव्वे ते चउरासीइं महाकप्पसय-सहस्साइं सत्त दिव्वे, सत्त संजूहे, सत सण्णिगब्भे, सत्त पउट्टपरिहारे, पंच कम्मणि सयसहस्साइं सट्ठि च सहस्साइं छच्चसए तिण्णि य कम्मंसे अणु-पुव्वेणं खवइत्ता तओ पच्छा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु वा करेंति वा करिस्संति वा ।

—भग० श १५।प्र १०१।पृ० ६७७

जब आनंद स्थविर, गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों से भगवान् की आज्ञा सुना रहे थे, इतने में ही गोशालक आजीविक संघ सहित हालाहला कुंभारिन की दुकान से निकलकर, अत्यन्त रोष को धारण करता हुआ शीघ्र और त्वरित गति से कोष्ठक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर के पास आया। श्रमण भगवान् महावीर से न अतिदूर, न अतिनिकट खड़ा रहकर उन से इस प्रकार कहने लगा—"हे आयुष्मान् ! काश्यप गोत्रीय ! मेरे विषय में तुम अच्छा कहते हो, हे आयुष्यमान् काश्यप ! तुम मेरे विषय में ठीक कहते हो कि मंखलि-पुत्र गोशालक मेरा धर्मान्तेवासी शिष्य है। (परन्तु आप को ज्ञात चाहिए कि) जो मंखलि पुत्र गोशालक तुम्हारा धर्मान्तेवासी शिष्य था, वह तो शुक्ल (पवित्र) और शुक्लाभिजात (पवित्र परिणाम वाला) होकर काल के समय काल करके किसी देवलोक में देवपने उत्पन्न हुआ है। मैं तो कौंडिन्यायन गोत्रीय उदायी हूँ। मैंने गौतम पुत्र अर्जुन के शरीर का त्याग करके मंखलि पुत्र गोशालक के शरीर में प्रवेश कर यह सातवाँ परिवृत्तपरिहार (शरीरान्तर प्रवेश) किया है। हे आयुष्मान् ! काश्यप ! तुम्हारे सिद्धांतानुसार जो मोक्ष में गये हैं, जाते हैं और जावेंगे, वे सभी चौरासी लाख महाकल्प (काल विशेष) सात देवभव, सात संयूथति काय, सात संज्ञी गर्भ (मनुष्य गर्भावास), सात परिवृत्त परिहार (शरीरान्तर प्रवेश) और पाँच लाख साठ हजार छह सौ तीन कर्मों के भेदों से अनुक्रम से क्षय करने के बाद सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं और समस्त दुःखों का अंत करते हैं। भूतकाल में ऐसा किया है, वर्तमान काल में करते हैं और भविष्य में करेंगे।

·७ गोशालक को सही स्थिति बताना

स्वाऽभ्यथोचे यथाऽऽरक्षैः कुम्भमाणो मलिम्लुचः ।
गर्तं दुर्गं वनं वाऽपि स्वान्तर्धानमथाप्नुवन् ।। ४०० ।।
ऊर्णालोम्ना शणलोम्ना तूलांशेन तृणेन वा ।
मन्यतेऽन्तरहस्तेनात्मान मावृतमल्पधीः ।। ४०१ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं त्वमपि गोशालोऽनन्योऽप्याख्यान् स्वमन्यथा।
किमर्थं भाषसेऽलीकं स एवास्यपरो न हि ॥ ४०२ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ८

गोशालक को सही स्थिति बताना

तएणं समणे भगवं महावीरे गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—'गोसाला! से जहाणामए तेणए सिया, गामेल्लएहिं परब्भमाणे प० २ कत्थ य गड्ड' वा दरिं वा दुग्गं णिण्णं वा पव्वयं वा विसमं वा अणस्सादेमाणे एगेणं महं उण्णालोमेण वा सणलोमेण वा कप्पासपम्हेण वा तणसूएण वा अत्ताणं आवरित्ता णं चिट्ठेज्जा से णं अणावरिए आवरियमिति अप्पाणं मण्णइ, अप्पच्छण्णे य पच्छण्णमिति अप्पाणं मण्णइ अणिलुक्के णिलुक्कमिति अप्पाणं मण्णइ, अपलाए पलायमिति अप्पाणं मण्णइ एवामेव तुमं वि गोसाला! अणण्णे संते अण्णमिति अप्पाणं उपलभसि, तं मा एवं गोसाला! णारिहसि गोसाला! सच्चेव ते सा छाया णो अण्णा।'

—भग० श १५।प्र१०२ पृ० ६८०

(गोशालक के उपर्युक्त कथन पर) श्रमण भगवान् महावीर ने मंखलिपुत्र गोशालक से कहा—"हे गोशालक! जिस प्रकार कोई चोर ग्रामवासियों के द्वारा पराभव पाता हुआ, खड्डा, गुफा, दुर्ग (दुःखपूर्वक कठिनता से जाने योग्य स्थान) निम्न (नीचा स्थान) पर्वत या विषम स्थान को प्राप्त नहीं करता हुआ, एक उनके बड़े रोम (केश) से, शण के रोम से, कपास के रोम से और तृण के अग्र भाग से अपने से ढक कर बैठ जाय और वह नहीं ढका हुआ भी अपने आपको ढका हुआ माने, अप्रच्छन्न होते हुए भी अपने आप को छिपा हुआ माने लुका हुआ न होते हुए भी अपने आपको लुका हुआ माने, अपलापित (गुप्त) नहीं होते हुए अपने आपको गुप्त माने, उसी प्रकार हे गोशालक! तू अन्य (दूसरा) नहीं होते हुए भी अपने आपको अन्य बता रहा है। हे गोशालक! तू ऐसा मत कर! तू ऐसा करने के योग्य नहीं है। तू वही है, तेरी वही प्रकृति है। तू अन्य नहीं है।

.८ गोशालक की तेजो लेश्या से—दो साधु को पंडित मरण—

.१ सर्वानुभूति

सर्वज्ञशिष्यः सर्वानुभूतिर्गुर्वनुरागतः।
अक्षमस्तद्वचः सोढुं गोशालकमभाषत ॥ ४०४ ॥

गुरुणा दीक्षितोऽनेन शिक्षितोऽप्यमुनैव हि।
निह्नुषे हेतुना केन गोशाल! त्वं स्वयमहि ॥ ४०५ ॥

अथ गोशालकः कोपात्तेजोलेश्यामनाहताम् ।
सर्वानुभूतयेऽमुञ्चद् दग्ज्वालामिव दग्विषः ॥ ४०६ ॥
निर्दह्यमानः सर्वानुभूतिर्गोशालकलेश्यया ।
शुभध्यानपरो मृत्वा सहस्रारे सुरोऽभवत् ॥ ४०७ ॥
गोशालोऽपि हि तत्कालं स्वलेश्याशक्तिगर्वितः ।
निर्भर्त्सयितुमारेभे भगवन्तं पुनः पुनः ॥ ४०८ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ८

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी पाईणजाणवए सव्वाणुभूई णामं अणगारे पगइभद्दए, जाव विणीए, धम्मायरियाणुरागेणं एयमट्ठं असद्दहमाणे उट्ठाए उट्ठेइ, उ० २ उट्ठित्ता जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, ते० २ गच्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—'जे वि ताव गोसाला ! तहारुवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतियं एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं णिसामेइ, से वि ताव वंदइ णमंसइ, जाव कल्लाणं मंगलं देवयं पज्जुवासइ, किमंगपुण तुमं गोसाला ! भगवया चेव पव्वाविए, भगवया चेव मुंडाविए, भगवया चेव सेहाविए, भगवया चेव सिक्खाविए, भगवया चेव बहुस्सुईकए, भगवओ चेव मिच्छं विप्पडिवण्णे, तं मा एवं गोसाला। सच्चेव ते सा छाया णो अण्णा। तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते सव्वाणुभूइणामेणं अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ५ सव्वाणुभूइं अणगारं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेइ। तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते सव्वाणुभूइं अणगारं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करित्ता दोच्चं पि समणं भगवं महावीरं उच्चावयाहिं आउसणाहिं आउसइ, जाव सुहं णत्थि।

—भग० श १५।प्र १०४ १०६ पृ० ६८१

उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पूर्व देश में उत्पन्न सर्वानुभूति अनगार था। जो प्रकृति का भद्र और विनीत था। वह अपने धर्माचार्य के अनुराग से गोशालक की बात पर श्रद्धा न करता हुआ उठा और गोशालकके पास जाकर इस प्रकार कहने लगा—हे गोशालक। जो मनुष्य तथा रूप श्रमण माहण के पास एक भी आर्य (निर्दोष) धार्मिक सुवचन सुनता है वह उनको वंदन नमस्कार करता है, यावत् उन्हें कल्याणकारी, मंगलकारी, देवरूप, ज्ञान स्वरूप मानकर पर्युपासना करता है, तो हे गोशालक तेरे लिए तो कहना ही क्या ? भगवान ने तुझे दीक्षा दी, तुझे शिष्य रूप से स्वीकार किया और तुझे मुंडित किया ? भगवान् ने तुझे व्रत सामाचारी सिखाई—भगवान् ने

तुझे उपदेश देकर (तेजोलेश्या आदि विषयक) शिक्षित किया और भगवान् ने तुझे बहुश्रुत बनाया, इतने पर भी तू भगवान के साथ अनार्यपक्ष कर रहा है। हे गोशालक! तू ऐसा मत कर। हे गोशालक! तू ऐसा करने के योग्य नहीं है। तू वही मंखलिपुत्र गोशालक है, दूसरा नहीं, तेरी वही प्रकृति है। सर्वानुभूति अनगार की बात सुनकर गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ—और अपने तपतेज के द्वारा एक ही प्रहार में कूटाघात की तरह सर्वानुभूति अनगार को जलाकर भस्म कर दिया। उन्हें भस्म करके गोशालक फिर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को अनेक प्रकार के आक्रोश वचनों से बकने लगा यावत् 'आज मेरे से तुम्हें' सुख होने वाला नहीं है।

नोट—यद्यपि गोशालक के सामने बोलने की भगवान् ने मनाई की थी। तथापि अपने धर्माचार्य के अनुराग से सर्वानुभूति अनगार से नहीं रहा गया और उसने गोशालक को उचित बात कही। जिस पर कुपित होकर उसने उनको जलाकर भस्म कर दिया।

.२ सुनक्षत्र मुनि का हनन पंडितमरण

स्वामिशिष्यः सुनक्षत्रस्तमथ स्वामिनिन्दकम्।
गुरुभक्त्याऽनुशास्ति स्म भृशं सर्वानुभूतिवत्॥ ४०९॥
गोशालमुक्तया तेजोलेश्यया प्रज्वलत्तनुः।
प्रभुं प्रदक्षिणीकृत्याऽऽदाय भूयो व्रतानि च॥ ४१०॥
आलोच्याथ प्रतिक्रम्य क्षमयित्वाऽखिलान्मुनीन्।
सुनक्षत्रमुनिर्मृत्वाऽच्युतकल्पे सुरोऽभवत्॥ ४११॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ८

तेणं कालेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी कोसल-जणवए सुनक्खत्ते णामं अणगारे पगइभद्दए, जावविणीए, धम्मायरियाणुरागेणं जहा सव्वाणुभूइ तहेव जाव सच्चेव ते सा छाया णो अण्णा। तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते सुणक्खत्तेणं अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ५ सुणक्खत्तं अणगारं तवेणं तेएणं परितावेए। तएणं से सुणक्खत्ते अणगारे गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेणं तेएणं परिताविए समाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, ते० २—गच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेइ, स० २ आरुहित्ता समणा य समणीओ य खामेइ, सम० २ खामित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए।

—भग० श १५।प्र १०७।१०९।पृ० ६८१।८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का अंतेवासी कोशलदेश (अयोध्या देश) में उत्पन्न हुआ सुनक्षत्र नामक अनगार था जो प्रकृति से भद्र और विनीत था। उसने भी धर्माचार्य के अनुराग से सर्वानुभूति के समान गोशालक को यथार्थ बात कहीं। यावत् हे गोशालक! तू वही है, तेरी वही प्रकृति है, तू अन्य नहीं है। सुनक्षत्र अनगार के ऐसा कहने पर गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ और अपने तपतेज से सुनक्षत्र अनगार को भी जलाया। मंखलिपुत्र गोशालक के तपतेज से जला हुआ सुनक्षत्र अनगार, श्रमण भगवान महावीर के निकट आया और तीन बार प्रदक्षिणा कर वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके स्वयं पंच महाव्रतों का उच्चारण किया और सभी साधु साध्वियों को खमाया, फिर आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधि प्राप्तकर अनुक्रम के कालधर्म को प्राप्त किया।

सर्वानुभूति के समान सुनक्षत्र अनगार पर भी गोशालक ने तेजोलेश्या छोड़ी, जिससे वे तुरन्त तो भस्म नहीं हुए किन्तु जलने से घायल हो गये। उन्हें भगवान को वन्दना-नमस्कार कर, साधु साध्वियों को खमाकर और आलोचना प्रतिक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो गया। वे समाधिपूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए।

·९ गोशालक द्वारा भगवान के वचनों का अनादर

तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ५ समणं भगवं महावीरं उच्चावयाहिं आउसणाहिं आउसइ, उच्चा० २ आउसित्ता उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसेइ, उद्धंसेत्ता उच्चावयाहिं णिब्भच्छणाहिं णिब्भंछेइ, उ० २ णिब्भंछेत्ता उच्चावयाहिं णिच्छोडणाहिं, णिच्छोडेइ, उ० २ णिच्छोडेत्ता एवं वयासी—'णट्ठे सि कयाइ, विणट्ठे सि कयाइ, भट्ठे सि कयाइ, णट्ठ-विणट्ठ-भट्ठे सि कयाइ, अज्ज ण भवसि णाहि ते ममाहिंतो सुहमत्थि।'

—भग० श १५।प्र १०३।पृ० ६८०।८१

जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार कहा—तब गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को अनेक प्रकार के अनुचित एवं आक्रोश पूर्ण वचनों से तिरस्कार करने लगा। वह अनेक की उद्धर्षणा (पराभव) युक्त वचनों से अपमान करने लगा। अनेक प्रकार की निर्भर्त्सना द्वारा निर्भर्त्सित करने लगा। अनेक प्रकार के कर्कश वचनों से अपमानित करने लगा। यह सब करके गोशालक बोला—मैं मानता हूँ कि कदाचित् आज तू नष्ट हुआ है, कदाचित् आज तू विनष्ट हुआ है, कदाचित् आज तू भ्रष्ट हुआ है, कदाचित् आज तू नष्ट, विनष्ट और भ्रष्ट हुआ है। आज तू जीवित नहीं रह सकता। मेरे द्वारा तेरा सुख (शुभ) होने वाला नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं स्वामिगिरा क्रुद्धो गोशालोऽप्यब्रवीत् प्रभुम् ।
अद्य भ्रष्टोऽसि न भवस्येष काश्यप ! ॥ ४०३ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ८

·१० भगवान पर गोशालक द्वारा छोड़ी गई तेजोलेश्या वापस गोशालक पर पड़ी

·१ तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते सुणक्खत्तं अणगारं तवेणं तेएणं परिताविता तच्चं पि समणं भगवं महावीरं उच्चावयाहिं आउसणाहिं आउसइ, सव्वं तं चेव जाव सुहं णत्थि । तएणं समणे भगवं महावीरे गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—'जे वि ताव गोसाला ! तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा तं चेव जाव पज्जुवासइ, किमंग पुण गोसाला ! तुमं मए चेव पव्वाविए, जाव मए चेव बहुस्सुईकए, ममं चेव मिच्छं विप्पडिवण्णे ! तं मा एवं गोसाला ! जाव णो अण्णा । तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ५ तेयासमुग्घाएणं समोहण्णइ, तेया०—हणित्ता सत्तट्ठ पयाइं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स वहाए सरीरगंसि तेयं णिसिरइ । से जहा—णामए वाउक्कलिया इ वा वायमंडलिया इ वा सेलंसि वा कुड्डंसि वा थंभंसि वा थूभंसि वा आवरिज्जमाणी वा णिवारिज्जमाणि वा सा णं तत्थ णो कमइ, णो पक्कमइ, एवामेव गोसालस्स वि मंखलिपुत्तस्स तवे तेए समणस्स भगवओ महावीरस्स वहाए सरीरगंसि णिसिट्ठे समाणे से णं तत्थ णो कमइ, णो पक्कमइ, अंचियंचियं करेइ, अंचि० २ करित्ता आयाहिण पयाहिणं करेइ, आ० २ करित्ता उड्ढं वेहासं उप्पइए ; से णं तओ पडिहए पडिणियत्ते समाणे तमेव गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं अणुडहमाणे २ अंतो अणुप्पविट्ठे ।

—भग० श १५।प्र ११०।११२।पृ० ६८२.८३

·२ जितकाशी च गोशालस्ततोऽतिपरुषाक्षरम् ।
समाक्रोशन्निगदे स्वामिना करुणाजुषा ॥ ४१२ ॥
दीक्षितः शिक्षितश्चासि श्रुतभाक् च मया कृतः ।
ममैवावर्णवादी त्वं कोऽयं ते धीविपर्ययः ॥ ४१३ ॥
स्वामिना स्वयमित्युक्तो गोशालः कुपितो भृशम् ।
उपेत्य किंचिदमुचत्तेजो लेश्यां प्रभुं प्रति ॥ ४१४ ॥
स्वामिन्य प्रभविष्णुः सा महावात्येव पर्वते ।
प्रभुं प्रदक्षिणीचक्रे भक्तिभागनुहारिणी ॥ ४१५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतापमात्रं स्वाम्यंगेऽभूत्तेजोलेश्यया तया।
तीरकक्षोद्भु भवेनेव दावेन सरिदम्भसः ।। ४१६ ।।
अकार्याय प्रयुक्ता धिगनेनेति क्रुधेव सा।
तेजोलेश्या निवृत्यांगे गोशालस्याविशद्बलात् ।।४१७।।

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ८

अपने तप-तेज से सुनक्षत्र अनगार को जलाकर गोशालक तीसरी बार फिर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर अनेक प्रकार के अनुचित वचनों द्वारा आक्रोश करने लगा, इत्यादि पूर्ववत् यावत् आज मुझ से तुम्हारा शुभ होनेवाला नहीं है। तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मंखलिपुत्र गोशालक को इस प्रकार कहा—हे गोशालक जो तथा प्रकार के श्रमण-माहण से एक भी आर्य धार्मिक सुवचन सुनता है, इत्यादि यावत् वह भी उसकी पर्युपासना करता है, तो हे गोशालक ! उसविषय में तो कहना ही क्या है। मैंने तुझे प्रव्रजित किया यावत् मैंने तुझे बहुश्रुत किया, अब मेरे साथ ही तूने इसे प्रकार मिथ्यात्व (अनार्यपन) स्वीकार किया है। हे गोशालक ! ऐसा मत कर। ऐसा करना तुझे योग्य नहीं है। यावत् तू वही है, अन्य नहीं है। तेरी वही प्रकृति है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ऐसा कहने पर गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ और तैजस समुद्घात करके, सात, आठ चरण पीछे हटा और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का वध करने के लिए अपने शरीर में से तेजोलेश्या निकाली। जिस प्रकार वातोत्कलिका (ठहर ठहर कर चलने वाली वायु) और मंडलाकर वायु पर्वत, भींत, स्तंभ या स्तूप द्वारा स्खलित एवं निवृत्त हो जाती है, किन्तु उसे गिराने में समर्थ—विशेष समर्थ नहीं हो सकती, इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का वध करने के लिए मंखलिपुत्र गोशालक द्वारा अपने शरीर में से बाहर निकाली हुई तपोजन्य तेजो लेश्या, भगवान् को क्षति पहुँचाने में समर्थ नहीं हुई। परन्तु वह गमनागमन करने लगी, फिर उसने प्रदक्षिणा की और आकाश में ऊँची उछली। फिर आकाश से नीचे गिरती हुई वह तेजो लेश्या गोशालक के शरीर में प्रविष्ट हो गई और उसे जलाने लगी।

.११ अपनी तेजोलेश्या में पीड़ित गोशालक से भगवान् की वार्ता

.१ तयाऽन्तर्दह्यमानोऽपि गोशालो धाष्टर्यमाश्रितः।
भगवन्तं महावीरमभ्यधत्तैवमुद्धतः ।। ४१८ ।।
मत्तेजोलेश्यया व्याप्तस्तः षण्मासान्ते हि काश्यप।
पित्तज्वरपराभूतश्छद्मस्थोऽपि विपत्स्यसे ।।४१९।।
स्वाम्यथोचाच गोशाल! मृषा ते वागहं यतः।
अन्यानिषोडशाब्दानि विहरिष्यामि केवली।। ४२० ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वतेजोलेश्ययैव त्वं पुनः पित्तज्वरार्दितः।
विपत्स्यसे सप्तदिनपर्यन्ते नात्र संशयः॥ ४२१ ॥

—त्रिशलाका पर्व १०।सर्ग ८

·२ तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते सएणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—'तुमं णं आउसो कासवा! ममं तवेणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हँ मासाणं पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करेस्ससि। तएणं समणे भगवं महावीरे गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—'णो खलु अहं गोसाला! तव तवेणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं जाव कालं करिस्सामि, अहं णं अण्णाइं सोलस वासाइं जिणे सुहत्थी विहरिस्सामि तुमं णं गोसाला! अप्पणा चेव सएणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो सत्तरत्तस्स पित्तज्जरपरिगयसरीरे जाव छउमत्थे चेव कालं करिस्ससि।'

—भग० श १५।प्र ११३।११४।पृ० ६८३

वह अपनी ही तेजो लेश्या से पराभव को प्राप्त हुआ। क्रुद्ध गोशालक ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को कहा—"आयुष्यमन् काश्यप! मेरी तपोजन्य तेजो लेश्या द्वारा पराभव को प्राप्त होकर, तू पित्त ज्वर युक्त शरीर वाला होगा और छह मास के अंत में दाह की पीड़ा से छद्मस्थावस्था में ही मर जायेगा।" तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गोशालक ने इस प्रकार कहा—हे गोशालक। तेरी तपोजन्य तेजो लेश्या से पराभव को प्राप्त होकर मैं छह मास के अंत में यावत् काल नहीं करूँगा, परन्तु दूसरे सोलह वर्ष तक जिनपने गंध हस्ती के समान विचरूँगा। परन्तु हे गोशालक! तू स्वयं अपनी ही तेजो लेश्या से पराभव को प्राप्त होकर सात रात्रि के अंत में पित्त ज्वर से पीड़ित होकर, छद्मस्थावस्था में भी काल कर जायेगा।

·१२ भगवान महावीर और गोशालक के संबंध में जनचर्चा

तएणं सावत्थीए णयरीए सिंघाडग जाव पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, जाव एवं परूवेइ—'एवं खलु देवाणुप्पिया! सावत्थीए णयरीए बहिया कोट्ठए चेइए दुवे जिणा संलवंति, एगे वयइ—तुमं पुव्विं कालं करिस्ससि, तत्थ णं के पुण सम्मावाई के पुण मिच्छावाई? तत्थ णं जे से अहप्पहाणे जणे से वयइ—'समणे भगवं महावीरे सम्मावाई, गोसाले मंखलिपुत्ते मिच्छावाई।

—भग० श १५।प्र ११५।पृ० ६८३।८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावस्ती नगरी में शृंगारक यावत् राजमार्ग में बहुत से मनुष्य कहने लगे यावत् प्ररूपणा कहने लगे—"हे देवानुप्रियो! श्रावस्ती नगरी के बाहर, कोष्ठक उद्यान में दो जिन परस्पर संलाप करते हैं, उनमें से एक इस प्रकार कहता है कि तू पहले काल कर जायेगा और दूसरा उसे कहता है कि तू पहले मर जायेगा। इन दोनों में न मालूम कौन सत्यवादी है और कौन मिथ्यावादी है। उन लोगों में से जो प्रधान मनुष्य हैं वे कहते हैं कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी सत्यवादी है और मंखलिपुत्र गोशालक मिथ्यावादी है।

·१३ श्रमण निर्ग्रंथों को गोशालक के साथ वार्तालाप करने का आदेश

'अज्जो' त्ति समणे भगवं महावीरे समणे णिग्गंथे आमंतित्ता एवं वयासी—'अज्जो'! से जहाणामए तणरासी इ वा कट्ठरासी इ वा पत्तरासी इ वा तयारासी इ वा तुसरासी इ वा भुसरासी इ वा गोयमरासी इ वा अवकररासी इ वा अगणिझामिए अगणिझूसिए अगणिपरिणामिए हयतेए गयतेए णट्ठतेए भट्ठतेए लुत्ततेए विणट्ठतेए जाव एवामेव गोसाले मंखलिपुत्ते मम वहाए सरीरगंसि तेयं णिसिरेत्ता हयतेए गयतेए जाव विणट्ठतेए जाए, तं छंदेणं अज्जो! तुब्भे गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोयह, धम्मि० २ पडिचोएत्ता धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेह, धम्मि० २ पडिसारित्ता धम्मिएणं पडोयारेणं पडोयारेह, धम्मि० २ पडोयारेत्ता अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य वागरणेहि य कारणेहि य। णिप्पट्ठपसिणवागरणं करेह।

—भग० श १५।प्र ११६।पृ० ६८४

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमणो निर्ग्रन्थों को संबोधित कर कहा—हे आर्यो! जिस प्रकार तृण-राशि, काष्ठराशि, पत्रराशि, त्वचा (छाल) राशि, तुष-राशि, भूसाराशि, गोमय (गोबर) राशि, और अवकर (कचरा) राशि, अग्नि से दग्ध, अग्नि से नष्ट एवं परिणामान्तर को प्राप्त होती है और जिसका तेज हत हो गया हो, तेज चला गया हो, नष्ट हो गया हो, भ्रष्ट हो गया हो, लुप्त हो गया हो यावत् उसी प्रकार मंखलिपुत्र गोशालक ने मेरे वध के लिए अपने शरीर से तेजो लेश्या बाहर निकाली थी, अब उसका तेज हत (नष्ट) हो गया है यावत् उसका तेज नष्ट विनष्ट, भ्रष्ट हो गया है। इसलिये हे आर्यो! अब तुम अपनी इच्छानुसार गोशालक के साथ धर्म-चर्चा करो। धार्मिक प्रतिप्रेरणा, प्रतिसारणा आदि करो और अर्थ, हेतु, प्रश्न, व्याकरण और कारणों के द्वारा पूछे हुए उत्तर का प्रश्न बन सके, इसप्रकार उसे निरुत्तर करो।

विवेचन—गोशालक के साथ धार्मिक चर्चा और प्रश्नोत्तर आदि करने के लिए भगवान् ने पहले साधुओं को मना किया था, परन्तु अब गोशालक के तेजो लेश्या के प्रभाव से रहित होने के बाद भगवान् ने धर्मचर्चा करने की छूट दी। इसका कारण यह है कि चर्चा सुनकर गोशालक के अनुयायी अनेक स्थविर, उसके मत का त्याग कर सत्य मार्ग को अंगीकार कर सके।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'१४ गोशालक—श्रमणनिर्ग्रंथों द्वारा धर्मचर्चा में निरुत्साह

तएणं ते समणा णिग्गंथा समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदइ, णमंसइ, वंदिता णमंसित्ता जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोयंति, ध० २ पडिचोएत्ता धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेंति, ध० २ पडिसारेत्ता धम्मिएणं पडोयारेणं पडोयारेंति, ध० २ पडोयारित्ता अट्ठेहि य हेऊहि य कारणेहि य जाव वागरणं करेंति।

—भग० श १५।प्र११७ पृ० ६८४

जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ऐसा कहा, तब श्रमण निर्ग्रन्थों ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वंदना नमस्कार किया और गोशालक के साथ धर्म सम्बन्धी प्रतिचोदना (उसके मत के प्रतिकूल वचन) प्रतिसारणा (उसके मत के प्रतिकूल अर्थ का स्मरण कराना) तथ्य प्रत्युपचार किया और अर्थ हेतु तथा कारण आदि के द्वारा उसे निरुत्तर किया।

तेजोलेश्याक्लिश्यमामनवपुष्को।
भूमौ पपात गोशालः शालद्रुरिव वायुना॥ ४२२॥
गुर्ववज्ञाप्रकुपिता मुनयो गौतमादयः।
एवं मर्मा विधा वाचोच्चकैर्गोशालमूचिरे॥ ४२३॥
धर्माचार्यकातिकूल्यभाजांमो! भवति ह्शम्।
तेजोलेश्या क्वतवसा धर्माचार्ये नियोजिता?॥४२४॥
सुचिरं विभ्रुवाणोऽपिनिघ्नन्नपि महामुनि।
कृपयोपेक्षितो भर्त्रा स्वयमेव विपत्स्यसे॥ ४२५॥
व्यपरस्यथाः पुराऽपि त्वं वैशिकायनलेश्यया।
स्वलेश्यया शीतया त्वां नारक्षिष्यद्यदि प्रभुः॥ ४२६॥
शार्दूल इव गर्ताऽन्तः पतितस्तेषु साधुषु।
निःकर्तु' सोऽसमस्तस्थावुद्वेल्लनपरः क्रुधा॥ ४२७॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ८

गोशालका शरीर तेजो लेश्या से ग्लानि को प्राप्त हो गया गोशालक विलाप करता वहाँ की वायु से शाल वृक्ष की तरह पृथ्वी पर पड़ गया।

उस समय गुरु की अवज्ञा से कोप प्राप्त गौतम आदि मुनि मर्मभेदी वचनों से गोशालक से उच्च स्वर से कहने लगे। अरे मूर्ख! यदि कोई स्वयं के धर्माचार्य से प्रतिकूल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। उसकी ऐसी ही दशा होती है। अरे! धर्माचार्य पर प्रक्षिप्त तेजो लेश्या कहाँ गयी। बहुत समय तक जैसा-वैसा बोलने वाला और दो मुनियों की हत्या करने वाला—होने पर प्रभु ने तुम्हारे पर अनुकंपा की, परन्तु अब तू स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त होगा।

यदि पूर्व में भगवान् शीत तेजो लेश्या से तुम्हारी रक्षा नहीं करते तो तुम वैश्यायन से छोड़ी गयी तेजो लेश्या से मर जाता—याद कर। उनके वचनों को सुनकर गढे में पड़े हुए सिंह की तरह असमर्थ बना हुआ गोशालक उसे वह कुछ भी नहीं कर सकता—क्रोध से उछाल मारने लगा।

.१५ अपनी तेजोलेश्या से प्रतिहत गोशालक को छोड़कर उसके कुछ साधु भगवान के पास आये

तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते समणेहिं णिग्गंथेहिं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोइज्जमाणे जाव णिप्पट्ठपसिणवागरणे कीरमाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे णो संचाएइ समणाणं णिग्गंथाणं सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएत्तए, छविच्छेयं वा करेत्तए। तएणं ते आजीविया थेरा गोसालं मंखलिपुत्तं समणेहिं णिग्गंथेहिं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएज्जमाणं धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारिज्जमाणं, धम्मिएणं पडोयारेण य पडोयारेज्जमाणं अट्ठेहि य हेऊहि य जाव करेमाणं, आसुरुत्तं जाव मिसिमिसेमाणं समणाणं णिग्गंथाणं सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेयं वा अकरेमाणं पासंति, पासित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियाओ आयाए अवक्कमंति, आयाए अवक्कमित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति आ०२—करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता समणं भगवं महावीरं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति, अत्थेगइया आजीविया थेरा गोसालं चेव मंखलिपुत्तं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति।

—भग० श १५।प्र ११८।११९।पृ० ६८४।८५

गोशालक को छोड़कर भगवान् के आश्रय में—

श्रमण निर्ग्रन्थों द्वारा प्रतिचोदना एवं अर्थ हेतु, व्याकरण एवं प्रश्नों से यावत् निरुत्तर किया गया, तब गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ। यावत् मिसमिसाहट करता हुआ क्रोध से अत्यन्त प्रज्वलित हुआ, परन्तु श्रमण-निर्ग्रन्थों के शरीर को कुछ भी पीड़ा, उपद्रव तथा अवयव छेद करने में समर्थ नहीं हुआ। जब आजीविक स्थविरोंने यह देखा कि श्रमण निर्ग्रन्थों से धर्म सम्बन्धी प्रतिचोदना, प्रति सारणा और प्रत्युपचार द्वारा तथा अर्थ, हेतु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याकरण, प्रश्नोत्तर के द्वारा गोशालक निरुत्तर कर दिया गया है। जिसमें गोशालक अत्यन्त कुपित यावत् क्रोध से प्रज्वलित हो रहा है, किन्तु श्रमण निर्ग्रन्थों के शरीर को कुछ भी पीड़ा उपद्रव एवं अवयव छेद नहीं कर सका, तब वे आजीविक, मंखलिपुत्र गोशालक के आश्रय से निकलकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आश्रय में आये और तीन बार प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया तथा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का आश्रय लेकर विचरने लगे और कुछ आजीविक स्थविर, मंखलिपुत्र गोशालक का आश्रय लेकर विचरने लगे। और कुछ आजीविक स्थविर मंखलिपुत्र गोशालक का आश्रय लेकर ही विचरते रहे।

'१६ गोशालक की दुर्दशा

'१ निःश्वसन् दीर्घमुष्णं च दंष्ट्रालोमानि चोत्खनन्।
पदाभ्यां ताडयन्नुर्वीं हतोऽस्मीति मुहुर्ब्रुवन् ॥ ४२८ ॥
निष्क्रम्य स्वामिसदसो दस्युवद्वीक्षितो जनैः।
हालाहला कुंभकार्या गोशालोऽगमदापणम् ॥ ४२९ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ८

गोशालक की दुर्दशा—

'२ तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते जस्सट्ठाए हव्वमागए तमट्ठं असाहेमाणे रुंदाइं पलोएमाणे, दीहुण्हाइं णीससमाणे, दाढियाए लोमाए लुंचमाणे अवडुं कंडूयमाणे पुयलिं पप्फोडेमाणे, हत्थे विणिद्धुणमाणे, दोहि वि पाएहिं भूमिं कोट्टेमाणे, 'हा हा अहो! हओ अहिमंसि त्ति कट्टु समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सावत्थी णयरी, जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणंसि अंबकूणगहत्थगए, मज्जपाणगं पियमाणे, अभिक्खणं गायमाणे अभिक्खणं णच्च-माणे, अभिक्खणं हालाहलाए कुंभकारीए अंजलिकम्मं करेमाणे, सीयलएणं मट्टियापाणएणं आयंचणि उदएणंगायाइं परिसिंचमाणे विहरइ

—भग० श १५

मंखलिपुत्र गोशालक जिस कार्य को सिद्ध करने के लिए आया था, वह सिद्ध नहीं कर सका, तब वह दिशाओं की ओर लंबी दृष्टि फेंकता हुआ, दीर्घ और गरम-गरम निःश्वास छोड़ता हुआ, दाढी के बालों को नोचता हुआ, गर्दन के पीछे के भाग को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जलाता हुआ, पुत-प्रदेश को प्रस्फोटित करता हुआ, हाथों को हिलाता हुआ और दोनों पैरों को भूमि पर पटकता हुआ—हा हा ! अरे ! मैं मारा गया "ऐसा विचार कर श्रमण भगवान् महावीर के समीप से और कोष्ठक उद्यान से निकल कर श्रावस्ती नगरी में हाला-हला कुंमारिन की दुकान में आया।

इसके बाद हाथ में आम्रफल (आम की गुठली) लिया और मद्यपान करता हुआ बारम्बार गाता हुआ, बारम्बार नाचता हुआ, बारम्बार हालाहला कुंभारिन को अंजलि करता हुआ और मिट्टी के बर्तन में रखे हुए मिट्टी मिश्रित शीतल पानी से अपने शरीर को सींचन करता हुआ विचरने लगा—

'१७ गोशालक की तेजशक्ति और दाम्भिकचेष्टा

'१ 'अज्जो' त्ति समणे भगवं महावीरे समणे णिग्गंथे आमंतित्ता एवं वयासी—'जावइए णं अज्जो! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं ममं वहाए सरीरगंसि तेये णिसट्ठे, से णं अलाहि पज्जत्ते सोलसण्हं जणवयाणं, तं जहा—१ अंगाणं २ वंगाणं ३ मगहाणं ४ मलयाणं ५ मालवगाणं ६ अच्छाणं ७ वच्छाणं ८ कोच्छाणं ९ पाढाणं १० लाढाणं ११ वज्जाणं १२ मोलीणं १३ कासीणं १४ कोसलाणं १५ अवाहाणं १६ संभुत्तराणं घायाए, वहाए, उच्छादणयाए, भासीकरणयाए।

—भग० श १५।प्र

"हे आर्यों !" इस प्रकार संबोधन कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाकर कहा—हे आर्यो ! मंखलिपुत्र गोशालक ने मेरा वध करने के लिए अपने शरीर में से जो तेजो लेश्या निकाली थी, वह निम्नलिखित सोलह देशों का घात करने में, वध करने में, उच्छेदन करने में और भस्म करने में समर्थ थी। यथा—१ अंग, २ बंग, ३ मगध, ४ मलय, ५ मालव, ६ अच्छ, ७ वत्स, ८ कौत्स, ९ पाट, १० लाट, ११ वज्र, १२ मौलि, १३ काशी, १४ कौशल, १५ अबाध और १६ संभुक्त तर।

'२ अथ स्वामी मुनीधूचे तेजो गोशालकेन यत्।
भस्मसाद्भाय प्रक्षिप्तं तस्येयं शक्तिसर्जिता ॥ ४३० ॥
वत्साच्छकुत्समगध वंगमालव कोशलान्।
पाढलाढवज्रिमालिमलयाबाहुकांगकान् ॥ ४३१ ॥
काशीन् सुह्मोत्तरान् देशान् निर्दग्धुं षोडशेश्वरा।
तेजोलेश्या गोशालस्य तपसोग्रेण साधिता ॥ ४३२ ॥
ते विसिष्मियिरे सर्वे मुनयो गौतमादयः।
सम्तः शक्तौ परस्यापि मात्सर्यं नहिविभ्रूति ॥ ४३३ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'१८ गोशालक द्वारा फेंकी गई तेजो लेश्या से भगवान के शरीर में दाह-ज्वर

'१ तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगंसि विपुले रोगायंके पाउब्भूए, उज्जले जाव दुरहियासे, पित्तज्जरपरिगयसरीरे, दाहवक्कंतीए यावि विहरइ, अवियाइं लोहियवच्चाइं पि पकरेइ चाउवण्णं वागरेइ—'एवं खलु समणे भगवं महावीरे गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करिस्सइ।

—भग० श १५। प्र १४६। पृ० ६६२।६३

'२ स्वामी तु रक्तातीसारपित्तज्वरवशात् कृशः।
गोशाललेश्यया जज्ञे चकार नतुभेषजम् ॥५४३॥
गोशालतेजसा वीरः षण्मासान्त विपत्स्यते।
इति लोकप्रवादोऽभूत्ताहृगामय दर्शनात् ॥५४४॥

उस समय श्रमण भगवान् महावीर के शरीर में महापीड़ाकारी अत्यन्त दाह करने वाला यावत् कष्टपूर्वक सहन करने योग्य तथा जिसने पित्तज्वर के द्वारा शरीर को व्याप्त किया है एवं जिससे अत्यन्त दाह होता है—ऐसा रोग उत्पन्न हुआ। उस रोग के कारण रूप-राद (पीव) युक्त दस्त लगने लगे। भगवान् के शरीरकी ऐसी दशा जानकर चारों वर्ण केमनुष्य इस प्रकार कहने लगे—"श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, गोशालक के तप तेज से पराभूत पित्तज्वर और ज्वर से पीड़ित होकर छह मास के अंत में छद्मस्थावस्था में मृत्यु प्राप्त करेंगे।

'१९ सीह अणगार काशोक और रेवती गाथापत्नी

'१ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी सीहे णामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए मालुयाकच्छगस्स अदूरसामंते छट्ठं-छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढंबाहा जाव विहरइ। तएणं तस्स सीहस्स अणगारस्स झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु ममं धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगंसि विउले रोगायंके पाउब्भूए, उज्जले जाव छउमत्थे चेव कालं करिस्सइ, वदिस्संति य णं अण्णतित्थिया 'छउमत्थे चेव कालगए'। इमेणं एयारूवेणं महया मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे आयावणभूमिओ पच्चोरूहइ आयावणभूमियो पच्चोरुहित्ता जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता मालुयाकच्छगं अंतो अणुपविसइ, मालुयाकच्छगं अंतो अणुपविसित्ता महया महया सद्देणं कुहुकुहुस्स परुण्णे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'२ तं च श्रुत्वा स्वामिशिष्यः सिंहो नामानुरागवान् ।
गत्वैकान्ते रुरोदोच्चैः क्व धैर्यं तादृक्षागिरा ॥५४५॥

—त्रिशलाका पर्व १०।सर्ग ८

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अंतेवासी 'सिंह' नामक के अनगार थे। वे प्रकृति से भद्र और विनीत थे। वे मालुकाकच्छ के निकट निरंतर बेला-बेला के तप से दोनों हाथ को ऊपर उठाकर यावत् आतापना लेते थे। जब सिंह अनगार एक ध्यान को समाप्त कर दूसरा ध्यान प्रारम्भ करने वाले थे, उस समय उन्हें विचार उत्पन्न हुआ—'मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक भगवान् महावीर स्वामी के शरीर में अत्यन्त दाहक और महापीड़ाकारी-रोग उत्पन्न हुआ है। इत्यादि यावत् वे छद्मस्थावस्था में काल करेंगे, व अन्यतीर्थिक कहेंगे कि वे छद्मस्थ अवस्था में कालधर्म को प्राप्त हो गये। इस प्रकार महामानसिक दुःख से पीड़ित बने हुए वे सिंह अनगार, आतापना भूमि से नीचे उतरे और मालुका कच्छ में प्रवेश करके आवेश पूर्वक अत्यन्त रुदन करने लगे।

'३ तथा रेवती भगवत औषधदात्री, कथं ?, किलै कदा भगवतो मेण्ढिकग्राम नगरे विहरतः पित्तज्वरो दाह बहुलो बभूवलोहितवर्च्चश्च प्रावर्त्तत, चातुर्वर्ण्यं व्याकरोति स्म यदुत गोशालकस्य तपस्तेजसा दग्ध शरीरोऽन्तः षण्मासस्य कालं करिष्यतीति, तत्र च सिंहनामा मुनिरातापनाऽऽतान एवममन्यत—मम धर्माचार्यस्य भगवतो महावीरस्य ज्वर रोगो रुजति, ततोहर वदिष्यन्त्यन्य-तीर्थिकाः यथा छद्मस्थ एव महावीरो गोशालक तेजोपहतः काल गतइति एवम्भूतभावनाज नितमान समहादुःखखेदित शरीरो मालुकाकच्छाभिधानं विजनं वनमनु प्रविश्य कुहुक हेत्येव महाध्वनिना प्रारोदित, भगवांश्च स्थवि-रैस्तया कार्योक्तवान्—हे सिंह। यत्त्वया ध्यकल्पित तद्भावि, यत इतोऽहं देशो-नानि षोडश वर्षाणि केवलिपर्यायि पूरयिष्यामि, ततो गच्छ त्वं नगर मध्ये, तत्र रेवत्यभिधानया गृहपतिपत्न्या मदर्थं द्वे कुष्माण्डफलं शरीरे उपस्कृते, न च ताभ्यां प्रयोजनं, तथाऽन्यदस्ति तद्गृहे परिवासितं मार्जाराभिधानस्य वायोर्नि-वृत्तिकारकं कुक्कुटमासकं बीजपूर कटाहमित्यर्थः तदाहर, तेन नः प्रयोजन-मित्येवमुक्तोऽसौ तथैव कृतवान्, रेवती च सबहुमान कृतार्थमात्मानं मन्यमाना यथायाचित तत्पात्रे प्रक्षिप्तवती, तेनाप्यानीय तद्भगवतो मध्ये विसृष्टं, भगवतापि वीतरागतये चौदर कोष्ठके निक्षिप्तं, ततस्तत्क्षणमेव क्षीणरागो जातः, जाता नष्टोयदि वर्गो मुदितो निखिलो देवादिलोक इति।

—ठाण० स्था ९।सू. २६०। टीका

एक बार भगवान् महावीर मेंढिकग्राम नगर में आए। वहाँ उनके पित्त-ज्वर का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोग उत्पन्न हुआ और वे अतिसार से पीड़ित हुए। यह जन-प्रवाद फैल गया कि भगवान् महावीर गोशालक की तेजोलेश्या से आहत हुए हैं और छह महिनों के अन्दर काल कर जायेंगे।

भगवान् महावीर के शिष्य मुनि सिंह ने अपनी तपस्या-आतापना सम्पन्न कर सोचा—मेरे धर्माचार्य भगवान् महावीर पित्तज्वर से पीड़ित है। अन्यतीर्थिक यह कहेंगे कि भगवान् गोशालक की तेजो लेश्या से आहत होकर मर रहे हैं। इस चिंता से अत्यन्त दुखित होकर मुनि सिंह मालुका कच्छ वन में गए और सुबक-सुबक कर रोने लगे। भगवान् ने यह जाना और अपने शिष्यों को भेजकर उसे बुलाकर कहा—सिंह! तूने जो सोचा वह यथार्थ नहीं है। मैं आज से कुछ कम सोलह वर्ष तक केवली पर्याय में रहूँगा। जा, तू नगर में जा। वहाँ रेवती नामक श्राविका रहती है। उसने मेरे लिए दो कुष्मांड फल पकाएँ है। वह मत लाना। उसके घर बिजोरापाक भी बना है। वह वायुनाशक है। उसे ले आना। वही मेरे लिए हितकर है।

सिंह आया। रेवती ने अपने भाग्य की प्रशंसा करती हुई, मुनि सिंह ने जो मांगा, वही दे दिया। सिंह स्थान पर आया महावीर ने बीजोरापाक खाया। रोग उपशांत हो गया।

·२० भगवान् का रोग और लोकापवाद

·१ तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णयाकयाइ सावत्थीओ णयरीओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं मेंढियगामे णामं णयरे होत्था, वण्णओ। तस्सणं मेंढियगामस्सणयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए एत्थणं साल कोट्ठए णामंचेइए होत्था, वण्णओजाव पुढविसिलापट्टओ। तस्स णं साल कोट्ठगस्स णं चेइयस्स अदूरसामंते एत्थणं महेगे मालुया कच्छए यावि होत्था, किण्हे किण्होभासे जावणिउरंबभूए, पत्तिए, पुप्फिए फलिय, हरियगरेरिज्जमाणे, सिरीए अईव अईव उपसोभेमाणे चिट्ठइ।

तत्थ णं मेंढियगामे णयहरे रेवईणामं गाहावइणी परिवसइ, अड्ढा जाव अपरिभूया।

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव जेणेव मेंढियगामे णयरे जेणेव सालकोट्ठए चेइए जाव परिसा पडिगया।

भग० श० १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान से निकलकर अन्य देशों में विचरने लगे। उस काल उस समय मेंढिक ग्राम नामक नगर था। उस मेंढिक ग्राम नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में शाल कोष्ठक नामक उद्यान था। यावत् पृथ्वी शिलापट था। उस शाल कोष्ठक उद्यान के निकट एक मालुका (एक बीज वाले वृक्षों का वन) महा कच्छ था। वह श्याम-श्याम कांति वाला यावत् महामेघ के समूह के समान था। वह पत्र, पुष्प, फल और हरित वर्णसे देदीप्यमान और अत्यन्त शोभित था। उस मेंढिक ग्राम नगर में रेवती नाम की गाथापत्नी रहती थी। वह आढ्य यावत् अपरिभूत थी। अन्यदा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम के विहार करते हुए मेंढिक ग्राम नगर के बाहर शाल कोष्ठक उद्यान में पधारे। यावत् परिषद् वंदना करके लौट गयी।

·२ 'अज्जो' त्ति समणे भगवं महावीरे समणे णिग्गंथे आमंतेइ, आमंतित्ता एवं वयासी—'एवं खलु अज्जो ! ममं अंतेवासी सीहे णामं अणगारे पगइभद्दए तं चेव सव्वं भाणियव्वं, जाव परुण्णे, तं गच्छह णं अज्जो ! तुज्झे सीहं अणगारं सद्दह'। तएणं ते समणा णिग्गंथा समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ साल कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमंति, सा० २ पडिणिक्खमित्ता जेणेव मालुयाकच्छए जेणेव सीहे अणगारे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता सीहं अणगारं एवं वयासी—'सीहा ! धम्मायरिया सद्दावेंति'। तएणं से सीहे अणगारे समणेहिं णिग्गंथेहिं सद्धिं मालुयाकच्छगाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सालकोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं जाव पज्जुवासइ।

—भग० श १५।प्र१४६।१५१।पृ० ६९३।६४

उसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण-निर्ग्रंथों को बुला कर कहा—"हे आर्यों ! मेरा अंतेवासी सिंह अणगार को यहाँ लिवा लाओ। भगवान् को वंदन नमस्कार कर के वे श्रमण निर्ग्रंथ शालकोष्ठक उद्यान से चलकर मालुका कच्छ में सिंह अणगार के समीप आये और कहने लगे—हे सिंह ! धर्माचार्य तुम्हें बुलाते हैं। तब सिंह अणगार उन श्रमण निर्ग्रन्थों के साथ मालुका कच्छ से निकलकर शाल कोष्ठक उद्याम में श्रमण भगवान् महावीर के पास आये और भगवान को तीन बार प्रदक्षिणा कर के यावत् पर्युपासना करने लगे।

·२२ सिंह अणगार को सांत्वना

·१ 'सीहाई !' समणे भगवं महावीरे सीहं अणगारं एवं वयासी—"से णूणं ते सीहा ! झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अयमेयारूवे जाव परुण्णे, से णूणं ते

सीहा ! अट्ठे समट्ठे "हंता अत्थि"। तं णो खलु अहं सीहा। गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेयएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं जाव कालं करिस्सं, अहं णं अण्णाइं सोलसवासाइं जिणे सुहत्थी विहरिस्सामि, तं गच्छह णं तुमं सीहा ! मेंढिय गामं णयरं, रेवईए गाहावइणीए ममं अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया, तेहिं णो अट्ठो, अत्थि से अण्णे पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए, तमाहराहि, एयणं अट्ठो'।

—भग० श १५।प्र१५२ पृ० ६६४

सिंह अणगार को सांत्वना—

'२ केवलेन प्रभुर्ज्ञात्वा तमाहूयेवमब्रवीत्।
जनप्रवादात् किंभीतः साधो! संतप्यसे हृदि ॥ ५४६ ॥

न ह्यापदा तीर्थकृतो विपद्यन्ते कदाचन।
किं न संगमकादिभ्य उपसर्गा वृथाऽभवन् ॥ ५४७ ॥

उवाच सिंहो भगवन्! यद्यप्येवं तथापि हि।
आपदा वोऽखिलः स्वामिन्जनः संतप्यतेतराम् ॥ ५४८ ॥

मादृशां दुःखशान्त्यै तत् स्वामिन्नादत्स्व भेषजम्।
स्वामिनं पीड़ितं द्रष्टुं न हि क्षणमपि क्षमाः ॥ ५४९ ॥

तस्योपरोधात्स्वाम्यूचे रेवत्या श्रेष्ठिभार्यया।
पक्व कूष्माण्डकटाहो यो मह्यं तं तु मा गृहीः ॥५५०॥

बीजपूरकटाहोऽस्ति यः पक्वो गृहहेतवे।
तं गृहीत्वा समागच्छ करिष्ये तेन वो धृतिम् ॥ ५५१ ॥

—त्रिशलाका० पर्व१० ।सर्ग ८

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कहा—"हे सिंह ! ध्यानांतरिका में वर्तते हुए हुए तुम्हें इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है यावत् अत्यंत रुदन करने लगे, हे सिंह ! क्या यह बात सत्य है ? (उत्तर) "हाँ भगवान्। सत्य है।" "हे सिंह ! गोशालक के तप तेज द्वारा पराभूत होकर मैं छह मास के अंत में यावत् काल नहीं करूँगा। मैं अन्य सोलह वर्ष तक जिनमें गंध हस्ती के समान विचरूँगा। हे सिंह ! तु मेंढिक ग्राम नगर में रेवती गाथा पत्नी के घर जा। उस रेवती गाथा पत्नी ने मेरे लिए दो कोहला के फलों को संस्कारित कर तैयार किया है। उनसे मुझे प्रयोजन नहीं है, उसके वहाँ मार्जारनामक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वायु को शांत करने वाला बिजोरा पाकजो कल तैयार हुआ है, उसेला। वह मेरे लिए उपयुक्त है।

नोट :—मार्जार नामक उदरवायु को शांत करने वाला कुर्कुट मांस अर्थात् बिजोरे का गिर अथवा मार्जार का अर्थ है—बिरालिका नामक वनस्पति विशेष। उससे भावित बिजोरे की गिर अर्थात् बिजोरा का पान—

·२३ सिंह अणगार—रेवती के घर

तएणं से सीहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० जाव हियए समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता अतुरिय-मचवलमसंभंतं मुहपोत्तियं पडिलेहेइ मु० २ पडिलेहित्ता जहा गोयमसामी जाव जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता भगवं महा-वीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ साणकोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अतुरिय० जाव जेणेव मेंढियगामे णयरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता मेंढियगामं णयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव रेवईए गहावइणीए गिहे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवा-गच्छित्ता रेवए गाहावइणीए गिहं अणुप्पविट्ठे। तएणं सा रेवई गाहावइणी सीहं अणगारं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ० खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सीहं अणगारं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ स० २ अणु-गच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ आ० २ करित्ता वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-'संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! किमागमणप्प-ओयणं'? तएणं से सीहे अणगारे रेवइं गाहावइणिं एवं वयासी—'एवं खलु तुमे देवाणुप्पिए! समणस्स भगवओ महावीरस्स अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया, तेहिं णो अट्ठो, अत्थि ते अण्णे पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमं-सए एयमाहराहि, तेणं अट्ठो।'

—भग० श १५।म १५३।१५५।पृ० ६६५

सिंहोऽगादथ रेवतीगृहमुपायस्त प्रदत्त तया।
कल्प्यं भेषजमाशु तत्र ववृषे स्वर्णं च हृष्टैः सुरैः॥

सिंहानीतमुपास्य भेषजवरं तद्वर्धमानः प्रभुः।
सद्य संघचकोरपार्वण शशी प्रापद्वपुः पाटवम्॥

—त्रिशलाका० पर्व० १० सर्ग ८

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से आदेश पाकर सिंह अनगार प्रसन्न एवं संतुष्ट यावत् प्रफुल्लित हुए। और भगवान् को वंदना-नमस्कार करके त्वरा, चपलता और उतावल से रहित, मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन किया यावत् गौतम स्वामी के समान भगवान् को वंदना नमस्कार करके शालकोष्ठक उद्यान से निकलकर, त्वरा और शीघ्रता रहित यावत् मेंढ़िक ग्राम नगर के मध्यभाग में होकर रेवती गाथा पत्नी के घर पहुँचे और घर में प्रवेश किया।

सिंह अनगार को आते हुए देखकर रेवती गाथा पत्नी प्रसन्न एवं संतुष्ट हुई। वह शीघ्र ही अपने आसन पर से उठी और सात, आठ चरण सिंह अनगार के सामने गई और तीन बार प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोली—"हे देवानुप्रिय! आपके पधारने का प्रयोजन क्या है?" तब सिंह अनगार ने कहा—हे रेवती! तुमने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के लिए जो कोइले के दो फल संस्कारित करके तैयार किये हैं उनसे मेरा प्रयोजन नहीं है, किन्तु मार्जार नामक वायु को शांत करने वाला, बिजोपाक जो कलका बनाया हुआ है, वह मुझे दो, उसी से प्रयोजन है।

·२४ रेवती को आश्चर्य और औषधिदान

तएणं सा रेवई गाहावणी सीहं अणगारं एवं वयासी—'केस णं सीहा! से णाणी वा तवस्सी वा, जेणं तव एस अट्ठे मम ताव रहुस्सकडे हव्वमक्खाए, जओ णं तुमं जाणासि? एवं जहा खंदए जाव जओ णं अहं जाणामि। तएणं सा रेवई गाहावइणी सीहस्स अणगारस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठा जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता पत्तगं मोएइ, पत्तगं मोएत्ता जेणेव सीहे अणगारे उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता सीहस्स अणगारस्स पडिग्गहगंसि तं सव्वं संमं णिस्सिरइ। तएणं तीए रेवईए गाहावइणीए तेणं दव्वसुद्धेणं जाव दाणेणं सीहे अणगारे पडिलाभिए समाणे देवाउए णिबद्धे, जहा विजयस्स जाव जम्मजीवीयफले रेवईए गाहावइणीए रेवई० २।

—भग० श १५।प्र१५६।१६०।पृ० ६६५।६६

रेवती गाथा पत्नी ने सिंह अनगार की बात सुनकर कहा—हे सिंह! ऐसे कौन ज्ञानी और तपस्वी हैं, जिन्होंने मेरी यह गुप्त बात जानी और तुम से कहा—जिससे कि तुम जानते हो। सिंह अनगार ने कहा—कि भगवान् के कहने से मैं जानता हूँ। सिंह अनगार की बात सुनकर रेवती गाथा पत्नी अत्यन्त हृष्ट एवं संतुष्ट हुई। उसने रसोई घर में आकर पात्र को खोला और सिंह अनगार के निकट आकर वह सारा पाक उनके पात्र में डाल दिया। रेवती गृह पत्नी के द्रव्य की शुद्धि युक्त प्रशस्त भावों से दिये हुए दान से सिंह अनगार को प्रतिलाभित करने से रेवती गाथा पत्नी ने देव का आयु बांधा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२५ तीर्थंकर काल—भगवान् के रोग का उपशमन

·१ तएणं से सीहे अणगारे रेवईए गाहावइणीए गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता मेंढियगामं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जहा गोयमसामी जाव भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स पाणिंसि तं सव्वं संमं णिस्सिरइ। तएणं समणे भगवं महावीरे अमुच्छिए जाव अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं सरीरकोट्ठगंसि पक्खिवइ। तएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स तमाहारं आहारियस्स समाणस्स से विपुले रोगायंके खिप्पामेव उवसमं पत्ते, हट्ठे जाए आरोग्गे, बलियसरीरे तुट्ठा समणा तुट्ठाओ समणीओ, तुट्ठा सावया, तुट्ठाओ सावियाओ, तुट्ठा देवा, तुट्ठाओ देवीओ, सदेवमणुयासुरे लोए तुट्ठे 'हट्ठे जाए समणे भगवं महावीरे' हट्ठे० २।

—भग० श१५।प्र१६१।१६३।पृ०६६६।६७

तत्पश्चात् वे सिंह अनगार रेवती गाथापत्नी के घर से निकलकर मेंढिकग्राम नगर के मध्य होते हुए भगवान् के पास पहुँचे और गौतम स्वामी के समान यावत् आहार पानी दिखाया। फिर वह सब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के हाथ में भली प्रकार रख दिया। इसके बाद श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने मूर्च्छा (आसक्ति) रहित यावत् तृष्णा रहित बिल में सर्प प्रवेश के समान उस आहार को शरीर रूप कोठे में डाल दिया। उस आहार को खाने के बाद श्रमण भगवान महावीर स्वामी का वह महापीड़ा कारी रोग शीघ्र ही शांत हो गया। वे हृष्ट, रोग रहित और बलवान शरीर वाले हो गये। इससे सभी श्रमण, तुष्ट (प्रसन्न) हुए, श्रमणियाँ तुष्ट हुईं, श्रावक तुष्ट हुए, श्राविकाएँ तुष्ट हुईं, देव तुष्ट हुए, देवियाँ तुष्ट हुईं और देव, मनुष्य, असुरों सहित समग्र विश्व संतुष्ट हुआ।

·२५ भगवान् महावीर और सिंह अणगार

तए णं से सीहे अणगारे रेवईए गाहावइणीए गिहाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता मेंढियगामं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छइत्ता जहा गोयमसामी जाव भत्तपाणं पडिदंसेइ २ त्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स पाणिंसि तं सव्वं सम्मं निस्सिरइ, तए णं समणे भगवं महावीरे अमुच्छिए जाव अणज्झोववन्ने बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं सरीरकोट्ठगंसि पक्खिवइ, तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स तमाहारं आहारियस्स समाणस्स से विउले रोगायंके खिप्पामेव उवसमं पत्ते हट्ठे जाए आरोग्गे बलियसरीरे तुट्ठा समणा तुट्ठाओ समणीओ तुट्ठा सावया तुट्ठाओ सावियाओ तुट्ठा देवा तुट्ठाओ देवीओ सदेवमणुयासुरे लोए तुट्ठे हट्ठे जाए समणे भगवं महावीरे हट्ठे० २।

—भग० श १५।सू० १६१/१६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे सिंह अनगार रेवती गाथापत्नी के घर से निकलकर मेंढिक ग्राम नगर के मध्य में होते हुए भगवान् के पास पहुँचे और गौतम स्वामी के समान यावत् आहार-पानी दिखाया। फिर वह सब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के हाथ में भली प्रकार रख दिया। इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मूर्च्छा (आसक्ति) रहित यावत् तृष्णा रहित, बिल में सर्पप्रवेश के समान उस आहार को शरीर रूप कोठे में डाल दिया। उस आहर को खाने के बाद श्रमण भगवान् महावीर का वह महापीड़ाकारी रोग शीघ्र ही शांत हो गया। वे हृष्ट, रोग रहित और बलवान् शरीर वाले हो गये। इस से सभी श्रमण तुष्ट (प्रसन्न) हुए, श्रमणियाँ तुष्ट हुईं, श्रावक तुष्ट हुए, श्राविकाएँ तुष्ट हुईं, देव तुष्ट हुए, देवियाँ तुष्ट हुईं और देव, मनुष्य, असुरों सहित समग्र विश्व संतुष्ट हुआ।

·२६ गोशालक—एक प्रसंग

·१ अनन्तरं भगवद्गोशालयोः प्रत्येकं विहारोऽभवत् ततो गोशालो तेसिं चोराण सन्निवासमागतो, तेहिं पंचहिवि चोरस-एहिं पिसाओ (माउलओ) त्तिकाउं वाहितो, पच्छा चिंतेइ—वरं सामिणा समं, अवियकोइ मोयइ सामि तस्सिल्लाए ममविमोयणं भवइ, ताहे सामि मग्गिउमारद्धो।

—आव० निगा ४८४ टीका

तेणेहि पहे गहिओ गोसालो माउलुत्ति वाहणया।

—आव० निगा ४८५ पूर्वार्ध

टीका—स्तेनैः पथि गोशालो गृहीतः मातुल इति

·२ ततो जगाम भगवान् वैशालीगामिनाऽध्वना।
प्रच्चालं च गोशाल एको राजगृहाऽध्वना ॥ ५९५ ॥
गोशालोऽयान्महारण्यं चोरपंच शतान्वितम्।
विवेश मूषक इव सर्पाकीर्णं महाबिलम् ॥ ५९६ ॥
वृक्षारूढश्चौरपुमान् गृध्रवद् दूरतोऽपि तम्।
ददर्शाऽरण्यच्च चौराणां नग्नः कोऽप्यैत्यकिंचनः ॥५९७॥
तेऽप्यूचिरे तथाप्येष न मोच्यः स्याच्चरोऽप्ययम्।
किं चैष न पराभूय यातीदमपि नोचितम् ॥ ५९८ ॥
एवं चाभ्यर्णमायातं गोशालं मातुलेहि भोः।
वदन्तः पृथगिति तेऽध्यारुह्य तमवाहयन् ॥ ५९९ ॥
पृथक् पृथग्वाहनया तेषां गोशालकोऽभवत्।
श्वासशेषपुस्ते च चौराः प्रययुरन्यतः ॥ ६०० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचिन्तयच्च गोशालो विपत्प्रथमतोऽप्यसौ।
शुनेव स्वामिहीने न मया लब्धाऽद्य दुःसहा। ६०१ ॥
भर्तुरस्य विपदं घ्नन्ति देवाः शक्रादयोऽपि हि।
तस्मादशरणस्थस्य मयापि विपदोऽस्यनुः ॥ ६०२ ॥
क्षमं स्वयमपि त्रातुमुदासीनं तु कारणात्।
मन्दभाग्यो निधिमिव तं प्राप्स्यामि कथं पुनः ॥ ६०३ ॥
अन्वेष्यामि तमेमेवति निश्चित्यातीत्य तद्वनम्।
गोशालोऽभ्राम्तमभ्राम्यत् प्रभुपाददिदृक्षया ॥ ६०४ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ३

भगवान से गोशालक का पृथक्करण—अनेक यातनायें

पंचम चतुर्मास के बाद तथा छट्ठे चतुर्मास के पूर्व भगवान् वहाँ से *विशाला नगरी* के मार्ग में चले और गोशालक अकेला राजगृह के मार्ग में चला। आगे चलते सर्प वाले मोटे शकडा में उंदर की बैठे—उस तरह उसमें पाँच सौ चोर रहते थे—ऐसे मोटे अरण्य में गोशालक ने प्रवेश किया।

उनमें से एक चोर ने गीध की तरह वृक्ष के ऊपर से गोशालक को दूर से आता हुए देखा—और उसने अन्यान्य चोरों को कहा—"द्रव्य के बिना कोई नग्न पुरुष आता है। उसने कहा—भले ही नग्न हो—अपने को उसे छोड़ना नहीं चाहिए। क्योंकि वह किसी का प्रेषित चर पुरुष भी हो सकता है। इसलिए अपना पराभव करके कहीं चला न जाय। यह उचित नहीं है।

ऐसा विचार कर नजदीक में आया हुआ गोशालक को—मामा ! मामा ! कहकर उसके कंधे पर चढ़कर उसे चलाने लगे।

इस प्रकार बारम्बार चलाने से गोशालक के शरीर में श्वास मात्र अवशेष रहा। फलस्वरूप चोर लोग उसे छोड़कर अन्यत्र चले गये।

तत्पश्चात् गोशालक ने विचार किया—"भगवान् से अलग होने से प्रारंभ से ही श्वान की तरह मैंने ऐसी दुःसह विपत्ति का भोग किया। प्रभु की विपत्ति को इन्द्रादिक देव आकर दूर करते हैं तो उनके चरण की शरण आने से हमारी भी विपत्ति का नाश होता है।

जो प्रभु रक्षण करने के लिए स्वयं समर्थ होते हुए भी किसी कारण उदासीन रहते हैं। ऐसे प्रभु को मन्द भाग्यवान् पुरुष उनकी निधि को प्राप्त करते हैं उस प्रकार मैं किस प्रकार प्राप्त करूँगा। अतः मुझे चलकर उसे प्राप्त करना चाहिए।

ऐसा निश्चय कर गोशालक प्रभु के दर्शनार्थ वन का उल्लंघन कर अभ्रांत रूप से भ्रमण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(क) चोरा मंडवभुज्जं गोसाले वहण तेयझावणया

—आवनि गा ४८१ । पूर्वार्ध

मलय टीका—चोराको नाम सन्निवेशास्तत्र कश्चित् मंडपे गोष्ठिभोज्य कर्त्तुमारब्धं, तत् गोशाल उत्कुडुको निष्कुडुकश्च भूत्वा निरीक्षितवान् ततश्चौर इति कृत्वा तस्य वचनं—ताडनं, ततः शाप-प्रदानेन तेजस्स तस्य मंडपस्य ध्यामना—दाहः ।

(ख) ततश्च प्रययो स्वामी चोराके सन्निवेशने।
तत्रैकत्र रहः स्थाने तस्थौ च प्रतिमाधरः ॥ ५४३ ॥
गोशालः क्षुधितोऽविक्षद् ग्रामे भिक्षार्थमुत्सुकः ।
गोष्ठीभक्तं तदा तत्र राध्यमानं ददर्श च ॥ ५४४ ॥

(ग) भिक्षाक्षणाऽभून्नवात लीनो गोशाल पैक्षत।
तत्र ग्रामे तदानीं चाऽभवच्चोरभयं महत् ॥ ५४५ ॥
चौरोऽयं चौरचारो वा निलीनो यदुदीक्षते।
एवं वितर्क्य ते ग्राम्या गोशालकमकुट्टयन् ॥ ५४६ ॥
मम धर्म गुरोस्तेजस्तपो वा यदि तद्द्रुतम्।
दह्यतां मंडपोऽमीषामिति गोशालकोऽशपत् ॥ ५४७ ॥
व्यन्तरैर्भगवद्भक्तैरदह्यत स मंडपः।
जगाम च जगन्नाथः सन्निवेशं कलम्बुकम् ॥ ५४८ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३

भगवान् महावीर छद्मस्थावस्था में जब चोराक ग्राम पधारे थे उस समय गोशालक भी उनके साथ था। क्षुधातुर गोशालक भिक्षार्थ ग्राम में गया। वहाँ उसे चोर समझ कर पीटा। गोशालक क्रोधित होकर श्राप दिया कि यदि मेरे धर्मगुरु महावीर का तप तेज हो तो यह गोष्ठि मंडप भस्म हो जाना चाहिए। फलस्वरूप भगवान् के भक्त व्यंतर देवों ने उस मंडप को जला दिया।

गोशालकोऽपि भैक्षेण कुक्षिपूरण तत्परः।
भगवन्तं महावीरमसेवत दिवानिशम् ॥ ३९० ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०।सर्ग ३

भगवान् महावीर के नालंदा के द्वितीय चतुर्मास में गोशालक भी भिक्षा के अन्न के उदरपोषण कर भगवान महावीर के पास अहर्निश सेवा करने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

·२७ छः दिशाचर

तएणं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अण्णदाकदाइ इमे छः दिसाचरा अंतियं पाउब्भवित्था, तंजहा—साणे, कण्णियारे, अच्छिदे, अग्गिवेसायण, अज्जुणे, गोमायुपुत्ते।

तए णं से छः दिसाचरा अट्ठविहं पुव्वगयं मग्गदसमं 'सएहिं-सएहिं' मतिदंसणेहिं निज्जूहंति निज्जूहित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं उवट्ठाइंसु। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तेणं अट्ठंगस्स महानिमित्तस्स...इमाइं छ अणइक्कमणिज्जाइं वागरणाइं वागरेति, तंजहा लाभ, अलाभ, सुहं, दुक्ख, जीवियं, मरणंतहा।

—भग० श १५। सू०५-६

गोशालक के पास छः दिशाचर आये (श्रावस्ती नगर के हालाहला नामक कुंभारण की कुंभारायण में—) यथा शान, कलंद-कर्णिकाकार, अछिद्र, अग्निवेश्यायन और गोमायु पुत्र अर्जुन। इन छह दिशाचरों ने पूर्व श्रुत में कथित आठ प्रकार के निमित्त, नौवाँ गीतमार्ग तथा दसवाँ नृत्य मार्ग को अपने-अपने मति दर्शन से पूर्वश्रुत में से उद्धृत कर मंखलि पुत्र का शिष्य भाव से आश्रय ग्रहण किया।

इसके बाद मंखलिपुत्र गोशालक, अष्टांग महानिमित्त के स्वल्प उपदेश द्वारा सभी प्राण, भूत, जीव और सत्वों को इन छह बातों के विषय में अनतिक्रमणीय ये जो अन्यथा असत्य न हो ये छह विषय ये हैं—लाभ, अलाभ, सुख, दुःख और जीवन और मरण।

·२८ गोशालक के प्रसंग

तत्र 'अच्चासाएमाणे' त्ति उपसर्गं कुर्वन् गोशालकयत्तेजो निसृजेत् 'से य तत्थ' त्ति तच्च तेजस्तत्र-श्रमणे निसृष्टं महावीर इव नो क्रमते ईषत् नो प्रक्रमते प्रकर्षेण न प्रभवती त्यर्थः केवलं अंचिअंचियंति उत्पत निपतां पार्श्वतः करोति, ततश्चादक्षिणतः पार्श्वस् प्रदक्षिणा—पार्श्वभ्रमणमादक्षिणप्रदक्षिण्या तां करोति, ततश्चोद्ध्र्वम्—उपरिदिशि 'वेहासं' ति विहाय आकाशमित्यर्थः उत्पतति, उत्पत्य च 'से' त्ति तत्तेजः ततः श्रमणशरीरसन्निधेस्तन्महात्म्यप्रति हतं सत् प्रति निपत्तते प्रतिनिवृत्त्य च तदेव शरीर कमुपसर्गकारिसंबंधि यतस्तन्निर्गतं तमनुदहन्—निसर्गानन्तरमुपतापयन् किं भूतं शरीरकं?—सह तेजसा वर्त्तमानं—तेजोलब्धिमत् भस्म कुर्यादिति।

अयमनोपत्यापि वीतरागस्य प्रभावो यत्परतेजो न प्रभवति, अत्रार्थे दृष्टांतमाह—'जहा वा' यथैव गोशालकस्य—भगवच्छिष्याभासस्य मङ्खल्यभिधानमंखपुत्रस्य, मंखश्च-चित्रफलकप्रधानो भिक्षुकविशेष।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तवतेपति तपोजनितत्वात्तपः किं तत्? —तेषस्तेजोलेश्येति।

तत्र किलैकदा भगवान् महावीरः श्रावस्त्यां विहरति स्म गोशालकश्च, तत्र च गौतमो गोचरगतो बहुजनशब्दमश्रौषीत्—यथा इह श्रावस्त्यां द्वौ जिनौ सर्वज्ञौ—महावीरो गोशालकश्चेति श्रुत्वा भगवदन्तिकमागत्य गोशालकोत्थानं पृष्टवान्, भगवांश्चोवाच—यथा अयं शरवणग्रामे गोबहुलब्राह्मणगोशालायां जातो मंखलिनाम्नो मंखस्य सुभद्राभिधान तद् भार्यायाश्च पुत्र षड्वर्षाणि यावच्छद्मस्थेन मया सार्द्धं विहृतोऽसमत्त एवबहुश्रुतीभूत इति नायं जिनो न च सर्वज्ञः इदं च भगवद्वचनमनुश्रुत्य बहुजनो नगर्यां त्रिकचतुष्कादिषु परस्परस्य कथयामास—गोशालको मंखलिपुत्रो न जिनो न सर्वज्ञा, इदं च लोकवचनमनुश्रुत्य गोशालकः कुपितः आनंदाभिधानं च भगवदन्तेवासिनं गोचरगतमपश्यत्, तमवादीच्च—भो आनन्द! एहि तावदेकमौपम्यं निशामय, यथा केचन वणिजो—ऽर्थार्थिनो विविधपण्यभृतशकटा देशान्तरं गच्छन्तो महाटवीं प्रविष्टाः पिपासितास्तत्र जलं गवेषयन्तश्चत्वारि वल्मीकशिखराणि शाड्वलवृक्षस्यान्तरद्राक्षुः, क्षिप्रं चैकं विभिक्षिपुस्ततोऽतिविपुलममलजलमवापुः, तत्पयो यावत्पिपासमापीतवन्तः पयापात्राणि च पयसा परिपूरयात्मासुः, अपायसंभाविना वृद्धेन निवार्यमाणा अप्यतिलोभाद् द्वितीयतृतीयशिखरे बिभिदुः, तयोः क्रमेण सुवर्णं च रत्नानि च सरासादयामासुः, पुनस्तथैव चतुर्थं भिन्दानाः घोरविषमतिकायमंजनपुञ्जते जसमतिचंचलजिह्वायुगलमनाकलित-कोपप्रसर महीश्वरं संघट्टितवन्तः।

ततोऽसौ कोपाद्वल्मीकशिखरमरुह्य मार्त्तण्डमण्डलमवलोक्य निर्नि-मेषया दृष्ट्या समन्तादव लोकयंस्तान् भस्मसाच्चकार, तन्निवारकवृद्धवाणि-जकं तु न्यायदर्शीत्यनुकंपया वनदेवता स्वस्थानं सञ्जहारेति, एवं त्वदीयधर्मा-चार्यमात्मसंपदाऽपरितुष्ट भस्मद्वर्ण वाद्विधाविनमहं।

स्वकीयेन तपस्तेजसाऽद्यैव भस्मसात्करिष्यामीत्येष प्रचलितोऽहं, त्वं तु तस्येममर्थमावेदय, भवन्तं च वृद्धवाणिजमिव न्यायवादित्वाद्रक्षिष्यामीति श्रुत्वाऽसावानन्दमुनिर्भीतो भगवदन्तिकमुपागत्य तत्सर्वमावेदयत्, भगवतप्य-सावभिहितः—

एष आगच्छति गोशालकस्ततः साधवः शीघ्रमितोऽपसरन्तु प्रेरणां च तस्मै कश्चिदपि मा दाहिति गौतमादीनां निवेदयेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथैव कृते गोशालक आगत्य भगवन्तमभि समभिदधौ—सुष्ठु आयुष्मान् काश्यप ! साधु आयुष्मन् काश्यप ! मामेवं वदसि—

गोशालको मंखलिपुत्रोऽयमित्यादि, योऽसौ गोशालकस्तवान्तेवासी स देवभूयं गत अहं त्वन्य एव तच्छरीरकं परीषहसहनसमर्थमास्थाय वर्त्ते इत्यादिकं कल्पितं वस्तूद्‌ग्राहयन् तत्प्रेरणाप्रवृत्तयोर्द्वयोः साध्वोः सर्वानुभूति-सुनक्षत्रनाम्नोस्तेजसा तेन दग्धयोर्भगवताभिहितो—हे गोशालक ! कश्चिच्चोरो प्रारभ्यमाणस्तदाविधं दुर्गमलभमानोऽङ्गुल्या तृणेन शूकेन वाऽऽत्यानमावृण्वन्ना-वृतः किं भवति ? अनावृत एवासौ, त्वमप्येवमन्यथाजल्पनेनात्मान माच्छादयन् किमाच्छादितो भवति ? स एव त्वं गोशालको यो मया बहुश्रुतीकृतस्तदेवं मावोचः ।

एवं भगवतः समभावतया यथावत् ब्रुवाणस्य तपस्तेजोऽसौ कोपाग्निस-सर्ज, उच्चावचाक्रोशैश्चाक्रोशयामास, तत्तेजश्च भगवत्यप्रभवत् तं प्रदक्षिणी-कृत्य गोशालकशरीरमेव परितापयदनुप्रविवेश, तेन च दग्धशरीरोऽसौ दर्शिता-नेकविधविक्रियः सप्तमरात्रौ कालमकार्षीदिति ।

महावीरस्स भगवतो नमन्निखिलनरनाकिनिकायनाथकस्यापि जघन्य-तोऽपि कोटीसंख्यभक्ति भैरनिर्भरामरघट पदपटलजुष्टपादपद्मस्यापि विविध-ऋद्धिमद्वरविनेयसहस्रपरिवृतस्यापि स्वप्रभावप्रशमितयोजनशतमध्यगतवर मारि-विड्वरदुर्भिक्षाद्युपद्रवस्याप्ययमनुत्तरपुण्यसम्भमारस्यापि यद्गोशालकेन मनुष्य-मात्रेणापिचिरपिरिचितेनापि शिष्यकल्पेनाप्युपसर्गः क्रियते ।

—ठाण० स्था १०। सू० १५६ । टीका

राजगृही नगरी के पास 'श्रवण' नाम का एक गाँव था। वहाँ एक 'मंखली' नाम का चित्रकार था। उसकी पत्नी का नाम सुभद्रा था। मंखली जैसे तैसे अपनी आजी-विका चलाता था। सुभद्रा गर्भवती थी 'मंखली' अपनी गर्भवती पत्नी को साथ लिए हुए एक गाँव में पहुँचा। वहाँ गोबहुल नाम के एक धनाढ्य के यहाँ गौशाला में ठहरा। उसी गौशाला के एक भाग में 'सुभद्रा के एक पुत्र पैदा हुआ। गोशाला में पैदा होने से इसका नाम 'गोशालक पड़ गया। यह भी बड़ा होकर हाथ में एक चित्रपट लेकर भिक्षा कर के अपनी आजीविका चलाने लगा।

उधर भगवान महावीर ने प्रव्रजित होकर अपना प्रथम चतुर्मास अस्थियाममें बिताया दूसरा चतुर्मास 'राजगृह' में एक बुनकर की शाला में बिता रहे थे। संयोगवश घूमता-घूमता गोशालक भी वहाँ आ गया। अपना सामान उसी शालाके एक कोने में रख कर वहीं ठहर गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् के प्रथम मासोपवास का पारणा विजय सेठ के यहाँ किया। सुपात्र दान के कारण विजय सेठ के यहाँ विपुल रत्नों की वर्षा हुई। सभी ने विजय सेठ के भाग्य की सराहना की। चारों ओर विजय सेठ की महिमा फैल गयी।

गोशालक ने जब यह सारा चामत्कारिक वर्णन सुना, तब मन में सोचा, मैं भी भगवान महावीर का शिष्य बन जाऊँ तो निहाल हो जाऊँगा। इस प्रकार विचार कर 'महावीर' के पास आया और शिष्य बनने की प्रार्थना की। पर महावीर प्रभु मौन रहे। यों दूसरे महिने के पारणे दिन, तीसरे महिने के पारणे के दिन भी शिष्य बनने की गोशालक ने प्रार्थना की, परन्तु प्रभु मौन रहे। चौथी बार स्वयं लुंचित होकर साधु के वेश में शिष्य बनने की प्रार्थना की। तब प्रभु ने उसे स्वीकार कर लिया। पर उसका बर्ताव सदा ही उच्छृंखलता पूर्वक ही रहा। प्रभु की जहाँ-जहाँ महिमा होती वह उसे सुनकर जल-भुनकर खाक हो जाता। फिर भी भगवान् महावीर से अनुभाव प्राप्त करने लिए साथ-साथ रहता था।

एक बार 'गोशालक भगवान महावीर के साथ 'कूर्मग्राम की ओर जा रहा था। मार्ग में एक खेत में तिल का पौधा था, जिसके सात फूल आये हुए थे। 'गोशालक ने प्रभु से पूछा—प्रभु। ये सात फूलों के जीव कहाँ पैदा होंगे।

भगवान महावीर ने कहा—ये सात फूलों के जीव इसी तिल के पौधे में एक फली में पैदा होंगे।

महावीर आगे चले गये तब 'गोशालक ने प्रभु के कथन को असत्य करने के लिए उस पौधे को उखाड़ कर एक ओर फेंक दिया।

संयोग की बात थी, वर्षा का मौसम था। उस पौधे को जहाँ से फेंका था, मिट्टी और जल का योग पाकर वह वहीं पल्लावित हो गया।

कुछ समय के बाद जब प्रभु उधर आये तब गोशालक ने उसकी फली को तोड़कर देखा तो उसमें सात तिल थे। सात तिलों को देखकर 'गोशालक मौन हो गया।

कूर्मग्राम के बाहर एक वेश्यायन नाम का बाल तपस्वी तपस्या में रत था। वह बेले-बेले की (दो दिन का उपवास) की तपस्या करता और सूर्य का आताप लिया करता। उसके सिर में जुएँ अधिक थीं। धूप के कारण जुएँ सिर से ज्यों-त्यों नीचे गिरती थीं, त्यों-त्यों वह उन्हें उठाकर वापिस सिर पर डाल लेता। गोशालक उसे देर तक देखता रहा और उसे यों करते देखकर उसकी भर्त्सना करते हुए कहा—अरे, ओ। जुओं के शय्यातर यह क्या ढोंग रच रखा है?

वेश्यायनको क्रोध आ गया। कुपित होकर उसने गोशालक को भस्म करने के लिए तेजोलेश्या का प्रयोग किया। तेजोलेश्या ज्यों ही गोशालक पर आक्रमण करने वाली थी कि भगवान् महावीर ने शीतलेश्या फेंककर गोशालक की रक्षा की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैश्यायन ने कहा—प्रभु ! मैंने पहचान लिया। आपके प्रताप से यह अधम बच निकला, अन्यथा यह आज भस्म हो ही जाने वाला था।

चमत्कृत होकर 'गोशालक ने तेजोलेश्या कैसे प्राप्त की जा सकती है, यह सारा भेद प्रभु से पूछा।

प्रभु ने कहा—छह महिने तक बेले-बेले का तप कर के सूर्य की आतापना ले तथा पारणे के दिन (व्रत खोलने का दिन) एक मुट्ठी उड़दों के बाकुलोंका भोजन करे तो तेजोलेश्या प्राप्त की जा सकती है।

गोशालक दुस्साहसी था ही, लग गया तेजो लेश्या की साधना में। छह महिने की साधना करके तेजोलेश्या प्राप्त कर ली।

गोशालक छह वर्ष तक भगवान् महावीर के साथ रहा, फिर उन से पृथक् हो गया। उधर भगवान् 'पार्श्वनाथ के छह साधु उस में आ मिले। उनके संसर्ग से वह अष्टांग निमित्त का विशेषज्ञ हो गया। लोगों को हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि की भविष्यवाणियाँ करने लगा। लोगों में उसका अच्छा प्रभाव बढ गया। अब वह अपने आप को तीर्थंकर बताने लगा। भगवान् महावीर को असर्वज्ञ, अल्पज्ञ बताकर अपने आपको सर्वज्ञ की भाँति पुजवाने लगा।

एक बार सावत्थी नगरी में भगवान् महावीर के पास समवशरण में आया। वहाँ अलंजलूल बातें करते देखकर सुनक्षत्र और सर्वानुभूति ने उसे टोका। गोशालक ने कुपित होकर उन पर तेजोलेश्या का प्रयोग किया और दोनों संतों को भस्म कर दिया। प्रभु को भी तेजोलेश्या का प्रयोग करके भस्म करना चाहा, पर अनंतबली प्रभु के शरीर में वह प्रविष्ट न हो सकी। लोटकर सारी तेजोलेश्या गोशालक के ही शरीर में प्रविष्ट हो गयी। उनका सारा शरीर जलने लगा। अंटसर बोलता हुआ प्रभु से बोला—आज से सातवें दिन तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। प्रभु ने कहा—मैं तो अभी १६ वर्ष तक पृथ्वी पर विचरूँगा, हाँ, तेरा आयुष्य अवश्य सात दिन का है।

तेजोलेश्या के योग से गोशालक के शरीर में भयंकर गर्मी बढ़ गई। अंतिम समय में जब मौत देखने लगी तब अपने श्रावकों के सामने अपनी आत्म निंदा करते हुए कहा—मैं असत्यभाषी हूँ, दोनों संतों का संहारक हूँ, धर्मगुरु के साथ मिथ्या प्रवृत्ति करने वाला हूँ। मेरे मरने के बाद मेरे पैर में रस्सी बाँधकर 'सावत्थी' नगरी में घसीटना। मेरे सारे कुकृत्यों को सबके सामने प्रकट कर देना। यों कहकर मृत्यु को प्राप्त करके बारहवें स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। अंतिम समय में की गई आत्मालोचना का सुफल हाथोंहाथ पा लिया।

पीछे से श्रावकों ने मकान के भीतर ही सावत्थी का नक्शा बनाकर गोशालक के कहे अनुसार सारी विधि आचरित की। किंतु प्रकट रूप में सब ही धूमधाम से दाह क्रिया का कार्य सम्पन्न किया।

५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.२९ गोशालक की गति

एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कुसिस्से गोसाले णामं मंखलिपुत्ते से णं भंते ! गोसाले मंखलिपुत्ते कालमासे कालं किच्चा कहिं गए कहिं उववण्णे ?

एवं खलु गोयमा ! ममं अंतेवासी कुसिस्से गोसाले णामं मंखलिपुत्ते समणघायए जाव छउमत्थे चेव कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम-सूरिय० जाव अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववण्णे। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं गोसालस्स वि देवस्स बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

—भग० श १५।प्र १६६।पृ० ६६८

श्रमण भगवान् महावीर का अंतेवासी कुशिष्य मंखलिपुत्र गोशालक, जो श्रमणों का घात करने वाला था यावत् वह छद्मस्थावस्था में ही काल के समय में कालकरके ऊँचा चंद्र और सूर्य का उल्लंघन कर यावत् अच्युत कल्प में देवपने उत्पन्न हुआ है। गोशालक देव की स्थिति बाइस सागरोपम की है।

.३० गोशालक और सद्दालपुत्र श्रमणोपासक—

.१ तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—जिम्हाणं देवाणुप्पिया ! तुब्भे ममं धम्मायरियस्स जाव महावीरस्स संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं भावेहिं गुणकित्तणं करेइ तम्हाणं अहं तुब्भे पाडिहारिएणं पीढ० जाव संथारएणं उवनिमन्तेमि, नो चेवणंधम्मोत्ति वा तवोत्ति वा, तं गच्छहणं तुब्भे मम कुम्भारावणेसु पाडिहारियं पीढफलग० जाव ओगिण्हित्ताणं विहरइ।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुतस्स समणोवासयस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ताकुंभारावणेसु पाडिहारियं पीढ जाव ओगिण्हित्ता णं विहरइ।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्ते समणोवासयं जाव नो संचाइए बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य निग्गन्थाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे सन्ते तन्ते परितन्ते पोलासपुराओ नगराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणावयविहारं विहरइ।

—उवा० अ ७।सू १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके बाद श्रमणोपासक सद्दाल पुत्र ने मंखलिपुत्र गोशालक को इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! जिसके लिए हमारे धर्माचार्य महावीर के विद्यमान, सत्य, तथा प्रकार के सद्भूत भावों से गुणकीर्तन किये हो—इस कारण मैं तुमको (गोशालक) वापस देने योग्य पीठ, आसन, यावत् संस्तारक द्वारा आमन्त्रण करता हू। परन्तु धर्म और तप की बुद्धि से नहीं करता हूँ।

उसके लिए तुम जाओ और हमारी कुंभकार की शाला में प्रातिहारिक, पीठ, फलक, यावत् ग्रहणकरके रहो।

उसके बाद वह मंखलि पुत्र गोशालक श्रमणोपासक सद्दाल पुत्र को जब आघवन्न—कथन, प्रज्ञापना, संज्ञापना और विज्ञापना से निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलायमान कराने में, क्षोभ कराने में, विपरिणाम कराने में समर्थ नहीं हुआ तब श्रांत हुआ, तांत-ग्लानि को प्राप्त हुआ और परितान्त-खिन्न हुआ पोलासपुर नगर से निकला और बाहर के देशों में विचरने लगा।

.२ गोशालक—वाद्-विवाद करने में समर्थ नहीं—

सद्दाल पुत्र को आह्वान

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! इयच्छेया इयदच्छा इयपट्ठा इय निउणा इयनयवादी इयउवएसलद्धा इयविण्णाणपत्ता ! पभू णं तुब्भे मम धम्मायरिएणं धम्मोवए-सएणं समणेणं भगवया महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए ? नो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—नो खलु पभू तुब्भे मम धम्माय-रिएणं (धम्मोवएसएणं समणेणं भगवया) महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए ? सद्दालपुत्ता ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जुगवं बलवं अप्पायंके थिरग्गहत्थे पडिपुण्णपाणिपाए पिट्ठंतरोरुसंघायपरिणए घणनिचियवट्टवलिय-खंधे लंघण-पवण-जयण-वायाम-समत्थे चम्मेट्ठ-दुघण-मुट्ठिय-समाहय-निचयगत्ते उरस्सबलसमण्णागए तालजमलजुयलबाहू छेए दक्खे पत्तट्ठे, निउणसिप्पोवगए एगं महं अयं वा एलयं वा सूयरं वा कुक्कुडं वा तित्तरं वा वट्टयं वा लावयं वा कवोयं वा कविंजलं वा वायसं वा सेणयं वा, हत्थंसि वा पायंसि वा खुरंसि वा पुच्छंसि वा पिच्छंसिवा सिंगंसि वा विसाणंसि वा रोमंसि वा जहिं-जहिं गिण्हइ, तहिं तहिं निच्चलं निप्फंदं करेइ, एवामेव समणे भगवं महावीरे ममं बहूहिं अट्ठेहिं य हेऊहिं य पसिणेहिं य कारणेहिं य वागरणेहिं य जहिं जहिं गिण्हइ, तहिं तहिं निप्पट्ठ—पसिणवागरणं करेइ। से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता !

एवं वुयइ—नो खलु पभू अहं तव धम्मायरिएणं (धम्मोवएसएणं समणेणं भगवया) महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए। ५०॥

—उवा० अ ७

उसके बाद सद्दाल पुत्र श्रमणोपासक ने मंखलि पुत्र गोशालक को इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! तुम 'इतिच्छेकाः' इस प्रकार छेक—प्रस्ताव को जानने वाले यावत् इस प्रकार निपुण सूक्ष्मदर्शी, इस प्रकार नयवादी नीति के उपदेशक, ऐसे उपदेशलब्धा—आप्त के उपदेश का श्रवण किया है और इस प्रकार विज्ञान प्राप्त है—तो तुम हमारे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर के साथ में विवाद करने में समर्थ हो। यह अर्थ-युक्त नहीं है।

हे देवानुप्रिय ! ऐसा किस कारण से कहते हो, कि तुम हमारे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर के साथ में विवाद करने में समर्थ नहीं हो।

हे सद्दाल पुत्र ! जैसे कोई पुरुष तरुण, बलवान्, युगवान्—उत्तमकाल में उत्पन्न हुआ यावत् निपुण शिल्प को प्राप्त हुआ—वह एक अज, एडक—घेटा, सुकर, कुकड़, तेतर, बतक, लावा, कपोत, कपिंजल, वायस और श्वेत—बाज को हाथ में, पैर में, खरी में, पुंछड़े, पिंछाए, शीगड़े, विषाण—सुकर के दांत के रुंवाटे जहाँ जहाँ पकड़े वहाँ-२ निश्चल और स्पंद रहित धारण कर सकता है।

इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर मुझे बहुत अर्थों, हेतुओं यावत् उत्तरों से जहाँ-२ पकड़े वहाँ-वहाँ निरुत्तर करते हैं

इस कारण हे सद्दाल पुत्र ! मैं ऐसा कहता हूँ कि मैं तुम्हारे धर्माचार्य यावत् भगवान् महावीर के साथ में विवाद करने में समर्थ नहीं हूँ।

·३ गोशालक द्वारा भगवान महावीर का गुणकीर्त्तन

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तेणं समणोवासएणं अण्णढिज्ज-माणे अपरिजाणिज्जमाणे पीढ-फलग-सेज्जा-संथारट्ठयाए समणस्स भगवओ महावीरस्स गुणकित्तणं करेइ आगए णं देवाणुप्पिया ! इह महामाहणे ? तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—के णं देवाणुप्पिया ! महामाहणे।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—समणे भगवं महावीरे महामाहणे।

से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ-समणे भगवं महावीरे महामाहणे ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं खलु सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पण्णणाण-दंसणधरे (तीयप्पडुपण्णाणागयजाणए अरहा जिणे केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी तेलोक्क-वहिय-महिय-पूइए सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स अच्चणिज्जे पूयणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जे) तच्च-कम्मसंपया-संपउत्ते । से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया । एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महामाहणे ॥ ४५ ॥

आगए णं देवाणुप्पिया ! इह महागोवे ?
के णं देवाणुप्पिया ! महागोवे ?
समणे भगवं महावीरे महागोवे ।

से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! (एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे) महागोवे ? एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे धम्ममएणं दंडेणं सारक्खमाणे संगोवेमाणे निव्वाणमहावाडं साहत्थि संपावेइ । से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महागोवे ॥ ४६ ॥

आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महासत्थवाहे ?
के णं देवाणुप्पिया ! महासत्थवाहे ?
सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे ।

से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे ? एवं खलु देवाणुप्पिया । समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे (खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे) विलुप्पमाणे उम्मग्गपडिवण्णे धम्ममएणं पंथेणं सारक्खमाणे निव्वाणमहापट्टणे साहत्थि संपावेइ । से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे ॥ ४७ ॥

आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महाधम्मकही ?
के णं देवाणुप्पिया ! महाधम्मकही ?
समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही ।

से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महाधम्म-कही ? एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे महइमहालयंसि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसारंसि बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे उम्मग्गपडिवण्णे सप्पहविप्पणट्ठे मिच्छत्तबलाभिभूए अट्ठविहकम्मतमपडल—पडोच्छण्णे बहूहिं अट्ठेहि य (हेऊहिं य पसिणेहिं य कारणेहिं य वागरणेहिं य निप्पट्ठपसिण) वागरणेहि य चाउरंताओ संसारकंताराओ साहत्थिं नित्थारेइ। से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही ॥ ४८ ॥

आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महानिज्जामए ?
के णं देवाणुप्पिया! महानिज्जामए ?
समणे भगवं महावीरे महानिज्जामए।

से केणट्ठेणं (देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महानिज्जामए ?)

एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे संसारमहासमुद्दे बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे (खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे) विलुप्पमाणे बुड्डमाणे निबुड्डमाणे उप्पियमाणे धम्ममईए नावाए निव्वाणतीराभिमुहे साहत्थिं संपावेइ। से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महानिज्जामए ॥ ४९ ॥

उवा० अ ७

[आजीविक संप्रदाय को त्यागकर सद्दाल पुत्र श्रमणोपासक श्रमण भगवान् महावीर की दृष्टि स्वीकार की है—यह बात गोशालक ने जानी और उसने सोचा कि आजीविकोपासक सद्दाल पुत्र को श्रमण निर्ग्रन्थों की दृष्टि का त्याग कराकर फिर से आजीविक दृष्टि ग्रहण कराउं।

फलस्वरूप गोशालक आजीविक के संघ सहित पोलासपुर नगर में सद्दाल पुत्र के पास आया।

सद्दाल पुत्र श्रमणोपासक ने मंखलिपुत्र गोशालक को आते हुए देखकर आदर नहीं किया। उसे जनाया नहीं। आदर नहीं करता हुआ मौन रूप में खड़ा रहा।

उसके बाद श्रमणोपासक सद्दाल पुत्र द्वारा नहीं आदरित, नहीं जाना हुआ और पीठ, फलक, शय्या, संथारे के लिए श्रमण भगवान महावीर का गुणकीर्त्तन करते हुए मंखलिपुत्र गोशालक ने श्रमणोपासक सद्दालपुत्र को इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय! महामाहण आये थे। तब उस सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने कहा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे देवानुप्रिय ! महामाहण है। तब मंखलिपुत्र गोशालक ने कहा—श्रमण भगवान् महावीर महामाहण है। हे देवानुप्रिय ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि श्रमण भगवान् महावीर महामाहण है।

हे सद्दालपुत्र सचमुच श्रमण भगवान् महावीर महामाहण, उत्पन्न हुए ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले यावत् महित-स्तुति कराये हुए और पूजित है यावत् तथ्य कर्म की संपत्ति से युक्त है इस कारण हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर महामाहण है।

हे देवानुप्रिय ! यहाँ महागोप आये थे। हे देवानुप्रिय ! 'महागोप' कौन है ? श्रमण भगवान् महावीर 'महागोप' है।

हे देवानुप्रिय ! किस कारण से श्रमण भगवान् महावीर 'महागोप है ?

हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर संसाराटवी में नाश को सन्मार्ग से दूर होते हुए, विनाश—अनेक प्रकार से मरते हुए, मृगादि अवस्था में बाघ आदि से भक्षण कराते हुए, मनुष्यादि भव में खंग आदि से छिदाते हुए, भालादि से भेदाते हुए, कान, नासिका आदि के छेदन करने से लुप्त हुए, बाह्य उपधि-उपकरण के हरण करने से लोप को प्राप्त होते हुए, गाय की तरह—ऐसे जीवों को निर्वाह रूप महावाड़ा में—सिद्धि रूप गायों के स्थान विशेष में स्वयं के हाथ में साक्षात् पहुँचा देते है।

इस कारण हे सद्दाल पुत्र—ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर महागोप है।

हे देवानुप्रिय ! यहाँ महासार्थवाह आये थे।

हे देवानुप्रिय ! महासार्थवाह कौन है ? सद्दाल पुत्र ! श्रमण भगवान् महावीर महासार्थवाह है। किस कारण से आप कहते है ?

हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर संसार रूपी अटवी में नाश को प्राप्त होते हुए, विनाश को प्राप्त यावत् विलुप्त होते हुए बहुत से जीवों को धर्ममय मार्ग से संरक्षण करते हुए निर्वाण रूप महापट्टण—नगर के सन्मुख स्वयं के हाथ से पहुँचाते है। इस कारण से श्रमण भगवान महावीर को महासार्थवाह कहा जाता है।

हे देवानुप्रिय ! यहाँ महाधर्म कथी आये थे। हे देवानुप्रिय महाधर्मकथी कौन है। श्रमण भगवान् महावीर महाधर्मकथी है। किस कारण से श्रमण भगवान् महावीर धर्मकथी है।

हे देवानुप्रिय ! वास्तव में श्रमण भगवान् महावीर अत्यंत मोटे संसार में नाश को प्राप्त, विनाश को प्राप्त, भक्षण कराते हुए, छेदाते हुए, भेदाते हुए, लुप्त हुए, विलुप्त हुए, उन्मार्ग को प्राप्त होते हुए, सन्मार्ग से भूले पड़े हुए, मिथ्यात्व के बल से पराभव को प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए, और आठ प्रकार के कर्मरूप अन्धकार के समूह से ढंके हुए, बहुत जीवों को बहुत अर्थों यावत् व्याकरणों—उत्तर से चार गतिरूप संसार रूपी अटवी से स्वयं के हाथ से पार उतारते हैं।

इस कारण हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर महाधर्मकथी है

हे देवानुप्रिय ! यहाँ महानिर्यामक आये थे। हे देवानुप्रिय ! महानिर्यामक कौन है ?

श्रमण भगवान् महावीर महानिर्यामक है। ऐसा किस कारण से कहा जाता है ?

हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर संसार रूपी महासमुद्र में नाश को प्राप्त, विनाश को प्राप्त होते हुए यावत् विलुप्त होते हुए, डुबता, अत्यन्त डुबता, गोथे खाते बहुत से जीवों को धर्म-बुद्धि नौका से निर्वाण रूप तीर के सम्मुख स्वयं के हाथ से पहुँचाते हैं।

इस कारण से हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान् महावीर महानिर्यामक है।

.३१ गौशालक के प्रश्न और आर्द्रक का उत्तर—

.१ गौशालक के प्रश्न

१—पुराकडं अद्द ! इमं सुणेह, एगंतयारी समणे पुरासी।
से भिक्खवो उवणेत्ता अणेगे, आइक्खतिण्हं पुढोवित्थरेण॥
२—साऽऽजीविया पट्ठवियाऽथिरेणं,
सभागओ गणंओ भिक्खुमज्झे।
आइक्खमाणो बहुजन्नमत्थं, णं संधयाई अवरेण पुव्वं॥
३—एगन्तमेव अदुवा वि इण्हिं, दोऽवण्णमण्णं ण समेंतिजम्हा।

—सूय० श्रु २।अ ६

हे आर्द्रक ! यह सुनो कि पहले वह श्रमण महावीर एकांत में विचरने वाला तपस्वी था और अब वह अनेक भिक्षुओं को अपने आसपास जमा करके बड़े विस्तार से धर्मकथा कहता है।

इस प्रकार उस अस्थिर चित्तवाले महावीर ने अपनी आजीविका खड़ी की है कि जिससे वह सभा में जनसमूह और भिक्षुओं के बीच में बैठकर, बहूजन्य—समूह के योग्य आशय को कहता है। उसकी इस अवस्था से पहले की अवस्था मेल नहीं खाती है।

[यदि एकान्त ही या यह वर्तमान अवस्था ही योग्य थी तो उसे पहले से ही] एकान्त अवस्था को ही या वर्तमान अवस्था को ही (स्वीकार करना चाहिए था) अथवा उसकी उस एकान्त वृत्ति और वर्तमान अवस्था में तीव्र विरोध है। इसलिये वह सम या शान्त अवस्था वाला नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

.१- आर्द्र क का उत्तर—

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च एगंतमेव पडिसंधयाइ ॥ ३ ॥
समेच्च लोगं तसथावराणं खेमंकरे समणे माहणे वा।
आइक्खमाणो वि सहस्समज्झे, एगंतयं सारयई तहच्चे ॥ ४ ॥
धम्मं कहंतस्स उ णत्थि दोसो खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स।
भासाय दोसे य विवज्जगस्स गुणेय भासाय णिसेवगस्सा ॥ ५ ॥
महव्वए पंच अणुव्वए य तहेव पंचासव संवरे य।
विरइं इह स्सामणियम्मि पण्णे लवावसक्की समणे त्तिबेमि ॥ ६ ॥

—सूय० श्रु २।अ ६।गा ३ से ६

पहले की, अभी की और आगे की अवस्थाओं में एकांत—साम्य या आत्मभाव ही उनमें रहता है।

क्योंकि लोक को जान—देखकर, त्रस और स्थावर जीवों के क्षेमंकर-मंगलकारी श्रमण या ब्राह्मण हजारों के मध्य में धर्मकथा करते हुए भी एकान्तवृत्ति साधे रहते हैं। या अन्तर्मुखता बनाये रहते है—उनकी चित्तवृत्ति पहले जैसी ही (शुक्ल) रहती है अथवा देह-विभूषा या देहाभिमान से रहित होते हैं।

क्षान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, भाषा के दोषों को टालने वाले और भाषा के गुणों को सेवन करने वाले पुरुष को धर्मकथा कहने में दोष नहीं लगता है।

ये श्रमण पाँच महाव्रत, पाँच अणुव्रत, पाँच आश्रव-कर्म के प्रवेश द्वार, संवर-कर्म-शोधन के उपाय, विरति और श्रामण्य-शम-साधना में बुद्धि रखने की (धर्म देशना देते हैं) और कर्म के लेश को दूर करते हैं—मेरा ऐसा कहना है।

·२.२ गोशालक का प्रश्न—

सीओदगं सेवउ बीयकायं, आहायकम्मं तह इत्थियाओ।
एगंतचारिस्सिह अम्ह धम्मे, तवस्सिणो णाभिसमेइ पावं ॥ ७ ॥

—सूय० श्रु २। अ ६।

इस मेरे धर्म में एकान्तचारी तपस्वी को शीतल जल और बीजकाय के सेवन में आधाकर्मी आहार खाने में और स्त्री प्रसंग में पाप होना नहीं माना जाता है।

आर्द्र क का उत्तर—

८—सीओदगं वा तह बीयकायं आहायकम्मं तह इत्थियाओ।
एयाइं जाणे पडिसेवमाणा अगारिणो अस्समणा भवंति ॥ ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीतल जल, बीजकाय, आधाकर्मी आहार और स्त्रियों का सेवन करने वाले गृहस्थ है—अश्रमण है।

९—सिया य बीओदगइत्थियाओ पडिसेवमाणा समणा भवंतु।
अगारिणो वि समणा भवन्तु, सेवंति उतेवि तहप्पगारं॥

यदि बीज, उदक और स्त्रियों का सेवन करने वाले श्रमण होते हों तो गृहस्थ भी श्रमण है, क्योंकि वे भी उन वस्तुओं का सेवन करते हैं।

१०— जे यावि बीओदगभोइ भिक्खू भिक्खं विहं जायइ जीवियट्ठी।
ते णाइ संजोगमविप्पहाय कायोवगा णंतकरा भवंति॥

जो भिक्षु बीज और सचित्त जल के भोगी हैं उनकी भिक्षा वृत्ति जीविका के अर्थ—आशय वाली हो जाती है अथवा जो जीवन-रक्षा के लिये भिक्षा-वृत्ति धारण करते हैं वे काया के पोषक बन्धु-बान्धवों के संसर्ग को छोड़ कर भी, कर्मों का अंत करने नहीं हो सकते हैं।

'३ गोशालक का प्रश्न—

११— इमं वयं तु तुम पाउकुव्वं पावाइणो गरहसि सव्व एव।
पावाइणो पुढो किट्टयंता सयं सयं दिट्ठी करेंति पाउं॥

आर्द्रक—तुम ऐसा कहकर, सभी प्रवादियों की निन्दा करते हो। क्योंकि सभी प्रवादी अलग-अलग बताते हुए, अपनी-अपनी दृष्टि को प्रकट करते है।

आर्द्रक का उत्तर—

१२— ते अण्णमण्णस्स उगरहमाणा अक्खंति ऊ समणा माहणाय।
सतो य अत्थी असतो य णत्थि गरहामो दिट्ठि ण गरहामो किंचि॥

वे प्रवादी एक दूसरे की निन्दा करते हुए, अपने पक्ष के स्वीकारने से ही सिद्धि। (आस्तिकता) और पर पक्ष के स्वीकारने से सिद्धि नहीं (नास्तिकता ही) बताते हैं, उनकी उस एकाग्रही दृष्टि की ही मैं निन्दा करता हूँ और किसी बात की निंदा नहीं करता हूँ।

१३— ण किंचि रुवेणऽभिधारयाओ सदिट्ठिमग्गं तु करेमो पाउं।
मग्गे इमे किट्टिए आदिएहिं अणुत्तरे सप्पुरिसेहिं अंजू॥

और हम किसी के रूप निंदित अंग या वेष की खिल्ली नहीं उड़ाते हैं, पर उनके दृष्टिमार्ग को ही प्रकट करते हैं अथवा मैं वह दृष्टिमार्ग प्रकट करता हूँ जो कि सर्वश्रेष्ठ और निर्दोष है और जिसे आर्य सत्पुरुषों ने कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४— उड्ढं अहे य तिरियं दिसासु, तसाय जे थावर जेव पाणा।
भूमियाभि संकाए दुगुं छमाणे, णो गरणइ वुसिमं किंचि लोए ।।

तथा ऊँची, नीची और तिरछी दिशा में स्थित त्रस और स्थावर प्राणियों की हिंसा से घृणा करने वाले संयमी मुनि लोक में किसी की निंदा नहीं करते हैं।

·४ गोशालक का प्रश्न—

१५— आगन्तगारे आरामगारे समणे उभीते ण उवेइ वासं।
दुक्खा हु संती बहवे मणुस्सा, ऊणातिरित्ता य लवालवा य ।।

तुम्हारा वह श्रमण डरपोक है क्योंकि वह जहाँ बहुत से दक्ष, थोड़ा बहुत जानने वाले तार्किक और सिद्ध मौनी रहते हैं उन धर्मशालाओं में और उद्यान गृहों में नहीं ठहरता है।

१६— मेहाविणो सिक्खिय बुद्धिमंता सुत्तेहि अत्थेहि य णिच्छयण्णू।
पुच्छिंसु माणे अणगार अण्णे इति संकमाणो ण उवेइ तत्थ ।।

और वह वहाँ इस भय में नहीं ठहरता है कि वहाँ रहनेवाले मेधावी, शिक्षित, बुद्धिमान और सूत्र एवं अर्थ में पारङ्गत दूसरे साधु मुझ से कुछ पूछ न बैठे।

आर्द्रक का उत्तर—

१७— णाकामकिच्चा ण य बाल किच्चा रायाभियोगण कुओ भएणं।
वियागरेज्जा पसिणं ण वावि सकामकिच्चेणिह आरियाणं ।।

(तुम्हारा यह कहना व्यर्थ है।) भगवान् निष्प्रयोजन और बाल कृत्य नहीं करते हैं—वे राजा के अभियोग से भी नहीं करते हैं। तो फिर दूसरे भय से उनकी प्रवृत्ति कैसे हो सकती है। वे प्रश्न का उत्तर देते भी हैं और नहीं भी देते हैं। क्योंकि वे आर्यों के कल्याण के उद्देश्य से धर्म उपदेश करते हैं या अपने (तीर्थंकर नाम कर्म) के निर्जरा के उद्देश्य से आर्यों के प्रश्न का उत्तर देते है।

१८— गंता च तत्था अदुवा अगंता वियागरेज्जा समियासुपण्णे।
अणारिया दंसणओ परित्ता इति संकमाणो ण उवेइ तत्थ ।।

वे आशुप्रज्ञ वहाँ जाय या न जाय, पर समता से या यत्ना से ही बोलते हैं—प्रश्न का उत्तर देते हैं। पर प्रायः वे वहाँ यह जानकर नहीं जाते हैं कि अनार्य लोग दर्शन से भ्रष्ट होते हैं।

·५ गोशालक का प्रश्न

१९— पण्णं जहा वणिए उदयट्ठी आयस्स हेउं पगरेइ संगं।
तओवमे समणे नायपुत्ते इच्चेव मे होइ मई वियक्का।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब तो मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारे ज्ञात पुत्र श्रमण वैसे ही हैं, जैसे लाभ की इच्छा वाला बनिया अपनी स्वार्थ की बुद्धि से महाजनों का संग करता।

आर्द्रक का उत्तर—

२०— णवं ण कुज्जा विहुणे पुराणं चिच्चाऽमइं 'ताइ' य साह एवं।
एतावता बंभवतित्ति वुत्ते तस्सोदयट्ठी समणेत्ति बेमि॥

(तुम्हारा यह दृष्टांत बराबर नहीं है, क्योंकि) वे रक्षा करने वाले भगवान् यह कहते हैं कि नये कर्म नहीं करना चाहिए और पुराने कर्मों का, अबुद्धि का त्याग करके क्षय कर देना चाहिए। और इसे ही वे व्रत कहते हैं। हाँ, यह तो मैं भी कहता हूं कि इसकी लाभ की इच्छावाले वे श्रमण हैं।

२१— समारभंते वणिया भूयगामं परिग्गहं चेव ममायमाणा।
ते णाइ संजोगमविप्पहाय आयस्स हेउं पगरेंति संगं॥

परन्तु बनिये तो प्राणियों की हिंसा करते हैं, परिग्रह में अपनत्व की बुद्धि रखते हैं और ये बन्धु-बान्धवों को छोड़कर अपने स्वार्थ के लिये महाजनों के संग—व्यापारियों के काफिले के साथ हो जाते हैं।

२२— वित्तेसिणो मेहुणसंपगाढा ते भोयणट्ठा वणिया वयंति।
वयं तु कामेहिं अज्झोववण्णा अणारिया पेमरसेसु गिद्धा॥

वे बनिये धन के खोजी, मैथुन में फँसे हुए और भोग-सामग्री के लिये आतुर रहने वाले होते हैं, इसलिये हम उन्हें इच्छाओं में डूबे हुए, अनार्य और प्रेमरस में आसक्ति रखने वाले कहते हैं।

२३— आरंभगं चेव परिग्गहं च अविउस्सिया णिस्सिय आयदंडा।
तेसिं च से उदए जं वयासी चउरंतणंताय दुहाय णेह॥

वे बनिये हिंसात्मक कार्य और परिग्रह को नहीं छोड़ते हैं, जिसमें उनकी आत्मा की भी हिंसा होती है। जिसे तुम उनका लाभ कहते हो, जिसकी प्राप्ति हो या न हो, वह लाभ उनके चतुर्गति के भ्रमण का अन्त करने के लिये नहीं परन्तु अनिच्छनीय दुःख के लिये होता है।

२४— णेगंति णच्चंति तओदए से वयंति ते दोवि गुणोदयम्मि।
से उदए साइमणंतपत्ते तमुदयं साहयइ ताइ णाई॥

और उनका लाभ आत्यन्तिक नहीं कहा जा सकता। उनमें लाभ और अलाभ—दोनों गुणों का या विकृत गुणों का मिश्रण रहता है। परन्तु वह लाभ आदिवाला और अंत रहित होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५— अहिंसयं सव्वपयाणुकंपी धम्मे ठियं कम्मविवेगहेउं।
तमायदंडेहि समायरंता, अबोहिए ते पडिरूवमेयं ॥

उस अहिंसक, सभी प्राणियों की अनुकम्पा से युक्त धर्म में स्थित और कर्म विवेक के हेतु को आत्म पीड़क और हिंसक आचरण करने वाले के बराबर बताते हो—यह तुम्हारे अज्ञान की प्रतिच्छाया (द्योतक) ही है।

'७४ जंबुस्वामी

'१ पूर्वभव

आहिंडिवि मंडिवि सयल महि
धम्मे रिसि परमेसरु।
ससिरिहि विउलरिहि आइयउ
काले वीरु-जिणेसरु ॥

सेणिउ गउ पुणु वंदण-हत्तिइ।
समवसरणु जोयंतउ भत्तिइ ॥
पुणु मगहाहिउभावें घोसइ।
देवचरम-केवलिको होसइ ॥

भारहु-वरिसि गणेसरुभासइ।
एहु सु विज्जुमालि सुरु दीसइ ॥
भूसिउ अच्छराहिं गुणवंतहिं।
विज्जुवेय - विज्जुजिया - कंतहिं ॥

पिक्कउ सालि-छेत्तु जलि ओसिहि।
मय-मत्तउ करिंदु बहु-मय-णिहि ॥
देव - दिण्ण - जंबूहल - दायइ।
इय-सिविणय-दंसणि संजाइयइ ॥

अरुहयास-वणियद्दुधु घण-थणिवहि।
सुरवरु जिणदासिहि सेट्ठिणिवहि ॥
सत्तम-दिवसि गब्भि थाएसइ।
जंबू सुरहु पुज्ज पावेसइ ॥
जंबूसामि णाम इहुधु होसइ।
तक्कालइ णिव्वुइ जाएसइ ॥

—वीरजि० संधि ४/कड १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा श्रेणिक द्वारा अंतिम केवली विषयक प्रश्न व गौतम गणधर का उत्तर—

भगवान् महावीर विचरण करते हुए तथा अपने धर्मोपदेश से समस्त जगत् को अलंकृत करते हुए यथा समय विपुलाचल पर्वत पर आकर विराजमान हुए।

तब मगध के राजा श्रेणिक भक्तिपूर्वक उनकी वंदना के लिए गया और भगवान् के समोसरण के दर्शन किये। फिर मगध नरेश ने धर्मभाव से प्रश्न किया—हे देव इस भारतवर्ष में अन्तिम केवलज्ञानी कौन होगा ? इस पर गणधर गौतम बोले—हे राजन् ! यह जो तुम अपने सम्मुख विद्युत् के समान कांतिवान् और गुणवती अप्सराओं सहित विद्युत्माली देव को देख रहे हो, यही आज से सातवें दिन अरहदास सेठ की उस जिनदासी सेठानी के गर्भ में उत्पन्न होगा। जब वह पके हुए शालिक्षेत्र, जलती हुई अग्नि, मदोन्मत्त तथा बहुत से मद से आच्छादित हाथी और देव द्वारा दिये हुए जम्बूफल के आहार को अपने स्वप्न में देखेगी, तब उस स्वप्न के फलस्वरूप उनका पुत्र जम्बूदेव द्वारा पूजा प्राप्त करेगा—और इस पृथ्वी पर उसका 'नाम जम्बूस्वामी होगा और वह उसी जन्म में निर्वाण प्राप्त करेगा।

·२ जंबूस्वामी से प्रसंग में—

वड्ढमाणु पावापुर - सर - वणि।
णिद्ध-णील-णव-चउरंगुल-तणि ॥
तइयहुँ जाएसइ णिव्वाणहु।
अचलहु केवल-णाण-पहाणहु।

घत्ता—हउँ केवलु अइणिम्मलु पाविवि समउ सुहम्मे।
पउ जि पुरु तोसिय-सुरु आवेसमि हय-कम्में॥

—वीरजि० संधि ४/कड २

उसी समय स्निग्ध नीलवर्ण चौरानवें अंगुल ऊँचे शरीर के धारी वर्धमान पावापुर के सरोवर युक्त वन में ऐसे निर्वाण को प्राप्त होंगे, जो अचल है और केवलज्ञान प्रधान है। उस समय में अर्थात् गौतम गणधर अति निर्मल केवलज्ञान प्राप्त करेगा और कर्मघाती गणधर सुधर्म सहित इसी देवों को संतुष्ट करने वाले राजगृह नगर में आऊँगा।

·३ जंबूस्वामी का विवाह—

सुणि सेणिय कूणिउ तुह णंदणु।
संबोहेसमि सुपुणा णंदणु ॥
जंबूसामि वि तहिं आवेसइ ॥
अवह-दिक्ख भत्तिइ मग्गेसइ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयणहिँ सो णिज्जेसइ मढ्ढु ।
णिय-पुरि-सत्त-भूमि-थिय-मंडइ ॥
तहु विवाहु तहिँ पारंभेव्वउ ॥
तेण वि णिय-मणि अवहेरिव्वउ ॥
सायरदत्त-तणय पोमावइ ॥
अवर सुलक्खण सुर-गय-वर-गइ ॥
पोमसिरित्ति कणयसिरि सुंदरि ।
विणयसिरि त्ति अवर वर धणसिरि ॥
भवण-मज्झि माणिक्क-पईवइ ।
रयण-चुण्ण-रंगावलि भावइ ।
एयहिँ सहुँ तहिँ अच्छइ मणहरु ॥
उण्णाँधिय हण-णव-कंकण-करु ।
वरु वहुयहुँ करयलु करि ढोयइ ।
जणणि तासु पच्छण्णु पलोयइ ।

—विरजि० संधि ४/कड २

गौतम गणधर कहते हैं कि हे श्रेणिक ! तुम्हारे पुत्र कूणिक को मैं सम्बोधित करूँगा और वह श्रुतज्ञान पाकर आनन्दित होगा। उसी समय जम्बूस्वामी भी वहाँ आयेगा और वह भक्तिपूर्वक अरहंत दीक्षा मांगेगा। किन्तु उसके बंधुजन उसे बलपूर्वक रोकेंगे और वह अपने नगर में सप्त भूमि प्रासाद अर्थात् सतखण्डे महल में रहने लगेगा। फिर उसके विवाह की तैयारी की जायेगी। किन्तु वह अपने मन में अवहेलना करेगा, तथापि सागरदत्त सेठ की पुत्री पद्मावती, देवगजगामिनी सुलक्षणा, पद्मश्री, सुन्दरी, कनकश्री, विनयश्री, धनश्री, भवन के मध्य माणिक्य प्रदीप के समान माणिक्यवती और रत्नों के चूर्णों से निर्मित रंगावली के समान सुन्दरी रंगावली, इनके साथ वह वर के रूप में नये कंकन बांधे हाथ उठाकर उन वधुओं का पाणिग्रहण करेगा।

उसी रात्रि में जब उसकी माता चुपचाप देख रही थी।

•४ गृह में चोर-प्रवेश—

तहिँ अवसरि सुरम्म देसंतरि ।
विज्जुराय-सुउ, पोयणपुरवरि ॥
विज्जुप्पहु णामें सुहऽग्गणि ।
कुद्धउ सो अरि-गिरि-सोदामणि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केण वि कारणेण णं विग्गउ ।
णिय-पुरु-मेल्लिवि सहस्सा णिग्गउ ॥
अदंसणु कवाउ - उग्घाडणु ।
सिक्खिवि लोय-बुद्धि-णिद्धाडणु ॥
विज्ज-चोरु णिय-णाउ कहेप्पिणु ।
पंचसयाहँ सहायहँ लेप्पिणु ॥

घत्ता—बलवंतहिं मंतहिं तंतहिं गाविउ दुक्कउ तक्करु ।
अंधारइ घोरइ पसरियइ रयणिहि दूसियभक्खरु ॥२५

—वीरजि० संधि ४/कड २

(जब जम्बूस्वामी रात्रि में अपनी पत्नियों को धर्मोपदेश से समझा रहे थे) तभी उनके घर में एक चोर ने प्रवेश किया। यह चोर यथार्थतः उसी समय सुरम्यदेश की राजधानी पोतनपुर के विद्युतराय नामक राजा का पुत्र था। उसका नाम विद्युच्चर था। और वह सुभटों का अग्रणी था। वह शत्रु रूपी पर्वतों के लिए वज्रसमान विग्गज किसी कारण से क्रुद्ध हो गया और अकस्मात् अपना नगर छोड़कर चला गया। उसने अदृश्य होने, कपाट खोलने तथा लोगों की बुद्धि विनष्ट करने की विद्या सीख लीं एवं अपना नाम विद्युच्चोर रख लिया। वही अपने पाँच सौ सहायकों को लेकर तथा मंत्र-तंत्रों का गर्व रखता हुआ रात्रि के घोर अंधकार में दूषित अन्नभक्षी तस्कर के रूप में उस घर में पहुँचा।

माणवेण णउ केणविदिट्ठउ ।
अरुहदास - वणि - भवणि पइट्ठउ ॥
दिट्ठी तेण तेत्थु पसरिय - णस ।
जिणवरदासि णट्ठ - णिद्दालस ॥

पुच्छिय कुसुमालें किं चेयसि ।
भणु भणु माइरि किं णउ सोवसि ॥
ताइं पवोल्लिउ महु सुउ सुह-मणु ।
परइ अप्प पइसरइ तवो वणु ।

पुत्त - विओय - दुक्खुतणु तावइ ।
तेण णिद्द महु किं पि ण आवइ ॥
बुद्धिमंतु तुहुँ बुह विण्णयहिं ।
एहु णिवारहि सुहडोवायहिं ॥

पइँ हउँ बंधवु परमु वियप्पमि।
जं मग्गहि तं दविणु समप्पमि॥
तं णिसुणिवि णिरुक्कु गउ तेत्तहि।
अच्छइ सहुँ बहुयहिं वरुजेत्तहि॥

जंपइ भो कुमार णउ जुज्जइ।
जणु परलोय - गहेण जिखिज्जइ॥
णियडु ण माणइ दूरुजि पेच्छइ।
पल्लउ तणु मुएवि मडुवंछइ॥

णिवडिउ ककरि सेलि सिलायली।
जिह सो तिह तुहुँ मरहि म णिप्फलि॥
तवि किं लग्गइ माणहि कण्णउ।
ता पभणइ वरु तुहुँ विजि सुण्णउ॥

जीवहु तित्ति भोए णउ विज्जइ।
इंदिय - सोक्खें तिट्ठ ण छिज्जइ॥

घत्ता—ता घोरें चोरें बोल्लियउ सचरें विद्धउ कुंजरु।
सो भिल्लु ससल्लु दुभासियण फणिणा दट्ठउ दुद्धरु॥

—विरजि० संधि ४/कड ३

चोर की जंबूस्वामी की माता से बातचीत और फिर जंबूस्वामी से वार्तालाप—

अरुहदास सेठ के भवन में प्रवेश करने पर भी उसे किसी भी मनुष्य ने नहीं देख पाया। उस चोर ने वहाँ यशस्विनी जिनदासी सेठानी को निद्रा और आलस्य रहित जागती हुई देखा। तब चोर ने उसे पूछा कि हे माता! तुम जाग क्यों रही हो, सोती क्यों नहीं। सेठानी ने कहा—मेरा शुद्धमन पुत्र अगले दिन तपोवन में प्रवेश करेगा। यही पुत्र-वियोग का दुःख मेरे शरीर को तप्त कर रहा है और इसलिए हे बाबू, मुझे तनिक भी निद्रा नहीं आती। तू बुद्धिमान है अतएव हे सुभट, किन्हीं बुद्धिमानों द्वारा जाने हुए उपायों से इसको रोक ले। मैं तुझे अपना परम बन्धु समझती हूँ। अतएव यह काम कर देने पर तू जितना धन मांगेगा मैं उतना ही दूंगी। सेठानी की यह बात सुनकर विद्युच्चोर उसी स्थान पर गया जहाँ अपनी वधुओं के साथ वर बैठा था। वह चोर बोला—हे कुमार! यह तुम्हें उचित नहीं है कि अपने परलोक के आग्रह से तुम अपने स्वजनों को खेद उत्पन्न करो। तुम निकट की बात को तो देखते नहीं, दूर की वस्तु देखते हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस प्रकार हाथी का शावक निकटवर्ती पल्लव और तृण को छोड़कर ऊपर लगी हुई मधु की इच्छा करता हुआ कंकर-पत्थरों से पूर्ण शिला तल पर गिरकर मरण को प्राप्त होता है, उसी प्रकार तुम निष्फल अपना मरण मत करो। तपस्या में क्यों लगते हो। इन कन्याओं से प्रेम करो। इस पर वर ने कहा—तू बुद्धि से शून्य है। भोग से जीव की तृप्ति नहीं होती। इन्द्रिय सुखों से उसकी तृष्णा नही बुझती।

जंबूस्वामी की इस बात पर उस घोर चोर ने कहा—किसी एक शबर ने अपने बाण से एक हाथी को वेधा। उस बाणधारी दुर्धर-दुष्ट भिल्ल को वृक्ष वासी सर्प ने डस लिया।

५ जंबूस्वामी और विद्युच्चोर चोर के बीच युक्तियों और दृष्टांतों द्वारा वाद-विवाद—

इस पर उसने सांप को भी मार डाला। इस प्रकार वह हाथी भी मरा, धनुर्धारी शबर भी मरा और सर्प भी। उसी समय एक श्रृगाल मांसाहार की इच्छा से वहाँ आया। उस लोभी ने उस धनुष की प्रत्यंचा रूप स्नायु को खाना प्रारम्भ किया और वह अपने ही शरीर के रक्त से प्रसन्न होने लगा।

धनुष के छोरों से बंधन टूट जाने के कारण श्रृगाल के दाँत मुड़ गये और तालु छिद गया।

इसी प्रकार अपनी अति तृष्णा के कारण बेचारा श्रृगाल भी मारा गया। इसी प्रकार उसकी दशा होती है जो परलोक के पीछे दौड़ता है। अतएव मरो मत। भोग विलास के सुख का उपभोग करो।

इस पर युवक ने कहा—हे चोर! सुन, एक पथिक ने मार्ग में नाना रत्नों को देखा। उनको सुलभ जान वह अपने नेत्रों को ढांककर इसलिये आगे चला गया कि इन्हें कोई दूसरा देख न पाये और मैं लौटते हुए इन्हें लेता जाऊँगा। किन्तु लौटने पर उसे वे रत्न नहीं मिले। इसी प्रकार जिनेन्द्र के वचन रूपी रत्न जिस जीव को नहीं भाते वह संसार में भ्रमण करता हुआ नाना प्रकार की विपत्तियां पाता है। वह क्रोध, लोभ और मोह से मूढ बनकर आठों प्रकार के कर्म बंधन में पड़ता है। तब चोर कहता है—एक श्रृगाल मांस का टुकड़ा लिये हुए नदी पार जा रहा था। उसने देखा कि उस वेगवती नदी के पानी में एक मत्स्य अपने शरीर को ऊँचा कर उछल रहा है। उसकी तृष्णावश श्रृगाल ने अपने मुँह से मांस खण्ड को छोड़कर मत्स्य को पकड़ने का प्रयत्न किया। मत्स्य मुँह में न आया। किन्तु उसके मुख से छूटे हुए मांस खण्ड को एक गृद्ध झपट कर ले उड़ा। श्रृगाल स्वयं जल के प्रवाह में बहकर मर गया और मत्स्य जल में जीवित बच गया।

इस पर वर ने चोर की पुनः भर्त्सना की और कहा—एक वणिक् मार्ग में सुख से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो गया और वहीं उसके रत्नों की पिटारी को कोई चुरा ले गया। उसी वन में तुम्हारे समान अज्ञानी प्राणी हिंसकों ने कुशील बना दिया और वह आपत्ति में पड़कर घोर दुःखों से पीड़ित हुआ। यही दशा होती है उस जीव की जो जिन वचन रूपी रत्नों से रहित होकर नरक में पहुँचता है।

५ जंम्बूस्वामी और विद्युच्चर चोर के बीच युक्तियों और दृष्टांतों द्वारा वाद-विवाद

तेणवि सो तं मारिउविसहरु।
मुउकरि मुउ सवरुल्लु धणुद्धरु॥
तेत्थु समीहिवि मासाहारउ।
तहिं अवसरि आयउ कोट्टारउ॥
लुद्धउ णिय-तणु लोहें रंजइ।
ताव सिंधणाऊ किर भुंजइ॥
तुट्ट-णिबंधणि मुहरुह मोडिइ।
तालु विहिण्णु सरासण-कोडिइ॥
मुउ जंबुउ अइतिट्ठइ भग्गउ।
जिह तिह सो परलोयहु लग्गउ॥
म मरम मरुरइ-सुहु अणुहुंजहि।
भणइ तरुणु तक्कर पडिवज्जहि॥
सुलहइँ पेच्छिवि विविहइँ रयणइँ।
गउ पंथिउ ढंकिवि णिय-णयणइँ॥
जिणवर वयणु जीवणउ भावइ।
संसरंतु विविहावइ पावइ॥
कोहें लोहें मोहें मुज्झइ।
अट्ठ पयारें कम्में वज्झइ॥
कहइ थेणु एक्केण सियालें।
मास खंडु छंडिवि तिट्ठालें॥
तणुधल्लिय उप्परि परिहच्छहु।
तीरिणि-सलिलुच्छलियहु मच्छहु॥
आमिसु गहियउ पक्खिणि-णाहें।
सो कड्ढवि णिउ सलिल-पवाहें॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुउ गोमाउ मच्छु जलि अच्छिउ।
ता लंपेक्खु वरें णिब्भच्छिउ॥
वणिवरु पंथि कोवि सुहु-सुत्तउ।
रयण करंडउ तहु तहिं हित्तउ॥
वणि तुम्हारिसेहिं अण्णाणहिं।
सो कुसीलु कउ हिंसिय-पाणहिं॥

घत्ता—दुप्पेक्खें दुक्खें पीडियउ वणिवइआवइ पत्तउ।
जिण-वयणें रयणें वज्जियउ जीउ विणासइ
णिहित्तउ॥ ४॥

—वीरजि० संधि ४/कड ४

६ दृष्टांत द्वारा वाद-विवाद चालू—

गउ पाविट्ठु दुट्ठु उम्मग्गें।
विसय - कसाय - चोर संसग्गें॥
तं आयण्णिवि पर - धण - हारें।
उत्तरु दिण्णु बुद्धि - वित्थारें॥
सासुय कुद्ध सुण्ह गइणालइ।
मरण - काम दिट्ठी तरु मूलइ॥
णिसुणि सुवण्णदारु पाडहिए।
आहरणहु लोहें मह-रहिएँ॥
मरणोवाउ सिट्ठु धवलच्छिहि।
गय मयणहि घर-पंकय-लच्छिहि॥
महलि पाय दिण्णगलि पासउ।
तण्णिवाइ मुउ दुट्ठु दुरासउ॥
सो मुउ जोइवि णीसासुण्हइ।
गेइ - गमणु पडिवण्णउ सुण्हइ॥
जिह सो मुउ धण - कंकण - मोहें।
तिह तुहुँ म मरु मोक्ख सुह लोहें॥

—वीर जि० संधि ४/कड ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूस्वामी—

दृष्टांतों द्वारा वाद-विवाद चालू—

विषय और कषाय रूपी चोरों के संसर्ग से जीव उन्मार्ग गामी, पापी और दुष्ट बन जाता है। जम्बूस्वामी की यह बात सुनकर उस पराये धन का अपहरण करने वाले चोर ने अपने बुद्धि-विस्तार से इस प्रकार उत्तर दिया—कोई एक पुत्र वधू अपनी सास से क्रुद्ध होकर वन में चली गयी और वहाँ वृक्ष के मूल में आत्मघात की इच्छा करने लगी।

इस अवस्था में उसे सुवर्णदारु नामक एक मृदंग बजाने वाले ने देखा। इसकी बात सुनकर उस मूर्ख ने उसके आभूषणों के लोभ से उस घर की कमल लक्ष्मी धवलाक्षी काम-रहित जीवन से विरक्त हुई महिला को मरने का उपाय बतलाने का प्रयत्न किया।

उसने अपने मृदंग पर पैर रखकर वृक्ष से लटकते हुए पाश को अपने गले में डाला किन्तु इसी बीच वह मृदंग फिसलकर गिर गया और वह दुष्ट दुराशय फाँसी से लटक कर मर गया। उसको मरा देखकर उस पुत्रवधू ने उष्णनिःश्वास छोड़ते हुए घर लौट जाना उचित समझा।

जिस प्रकार वह मृदंग वादक उस वधू के धन-कंकन आदि के मोह से मरा वैसे ही तू मोक्ष सुख के लोभ से मत मर।

दृष्टांतों द्वारा वाद्-विवाद चालू

जम्बूकुमार का उत्तर—

भणइ कुमारु धुत्तु लज्जियंगउ।
एक्कहिं णयरि अत्थिरइ रंगउ॥
तं जोयंति का वि मणि-मेहल॥

कय मयणें मइएवि विसंठुल।
आणिउ धाइइ पच्छिमदारें।
देविइ रमिउ मुणिउ परिवारें।

राएं जाणिउ सो लिहकाविउ।
असुइ-पवणि विवरि घल्लाविउ॥

किमि-खज्जंतु दुक्खु पावेप्पिणु।
गउ सो णरयहु पाण मुएप्पिणु॥

जिह सो तिह जणु भोयासत्तउ।
मरइ बप्प णारि-यणहु रत्तउ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घत्ता—णिय-इच्छइ पच्छइ भीरुयहु जीवहु वेय समग्गउ।
णासंतहु अंतहु भव-गहणि मच्चु-णामकरि लग्गउ॥

—वीरजि० संधि ४/कड ६

कुमार ने उत्तर दिया—एक ललितांग धूर्त किसी नगर में रहता था और राग-रंग में आसक्त था। इसको देखकर राजा की मणि-मेखला-धारिणि एक रानी काम पीड़ा से विह्वल हो उठी। उसने अपनी धात्री के द्वारा उसे पश्चिम द्वार से बुलवा लिया और उसके साथ रमण किया। यह बात सुनकर परिवार को ज्ञात हो गयी और राजा को उसकी सूचना मिल गयी।

तब रानी ने उसको छिपाने के लिए अपने अशुचि मल से पूर्ण शौच स्थान में डलवा दिया। वहाँ कीड़े उसे खाने लगे और वह दुःख पाते हुए प्राण छोड़कर नरक को गया।

जिस प्रकार वह धूर्त भोगासक्त होने के कारण इस विपत्ति में पड़ा, वैसे ही स्त्री के प्रेम में अनुरक्त हुआ मनुष्य मरण को प्राप्त होता है।

एक भीरु मनुष्य भवरुपी वन में जा रहा था। उसके पीछे स्वेच्छा से मृत्यु नामक वेगवान् हाथी लग गया। उसके भय से वह जीव भाग खड़ा हुआ।

·८ जम्बूस्वामी को केवलज्ञान-प्राप्ति

पत्तइ वारहमइ संवच्छरि।
चित्त - परिट्ठिइ वियलिय - मच्छरि॥
पंचमु णाणु पहु पावेसइ।
भवु णामेण महारिसि होसइ॥
तेण समउ महियलि विहरेसइ॥
दह-गुणियइँ चत्तारि कहेसइ।
वरिसइँ धम्मु सव्व - भवोहहं।
विद्धंसिय बहु - मिच्छा मोहहं॥
अन्तिमकेवलि उप्पज्जेसइ।
महु पहु - वंसहु उण्णइ होसइ॥

—वीरजि० संधि ४/कड ७

इसके पश्चात् बारहवाँ वर्ष आने पर वे अपने मन को समाधि में स्थित कर राग-द्वेष रहित होते हुए पंचम ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान को प्राप्त करेंगे।

उनके शिष्य भवनामक ऋषि होवेंगे।

उसके पास जम्बूस्वामी महितल पर विहार करते हुए दश गुणित चार अर्थात् चालिस वर्ष तक समस्त भव्य जीवों को धर्म का उपदेश देवेंगे।

और उनके मिथ्यात्व और मोह का विध्वंस करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार जम्बूस्वामी अंतिम केवली होवेंगे और मेरे विशाल वंश रूपी शिष्य परम्परा की उन्नति होगी।

'७ जन्मकूप का दृष्टांत व जम्बूस्वामी तथा विद्युच्चर की प्रव्रज्या

णिवडिउजम्म - कूइ विहि - विहियइ ।
कुल - तरु - मूल - जाल - संपिहियइ ॥
लंबमाणु परमाउसु - वेल्लिहि ।
पंचिंदिय - महु - बिंदु सुहेल्लिहि ॥
कालें कसण - सियहिं चिहिण्णी ।
सा दियहुंदुरेहिं विच्छिण्णी ॥
णिवडिउ णरय-भीम-विसहर-मुहि ।
पंच - पयार - घोर - दाविय - दुहि ॥
इय आयण्णिवि तहु आहासिउ ।
सव्वहिं धम्मि स - हियउ णिवेसिउ ॥
जणणिइ तक्करेण वर - कण्णहिं ।
मरगय - मणहर - कंचण वण्णहिं ॥
तां अम्बरि उग्गमिउ दिवायरु ।
जम्बूदेउ पराइउ सायरु ।
कूणिएण राएँ गय - गामिहि ॥
णिक्खवणाहिसेउ किउ सामिहि ॥
सिवियहि रयण - किरण-विप्फुरियहि ।
आरुढउ वर - मंगल - भरियहि ॥
णाणा - सुर - तरु - कुसुम - पसत्थई ।
चिउलि विउल - धरणीहर - मत्थइ ॥
बंभण - वणियहिं पत्थिव - पुत्तहिं ।
पुत्त - कलत्त - मोह - परिचत्तहि ॥
विज्जूचोरें समउ स - तेयउ ।
चोरहँ - पंच - सएहिं समेयउ ॥
णिव्वाराहिय - वीर - जिणिंदहु ।
पासि सधम्माहु धम्माणंदहु ॥

घत्ता—तउ लेसइ होसइ पर-जइ होएप्पिणु सुयकेवलि ।
इय-कम्मि-सुधम्मि सुणिव्वुयइ जिण-पय विरइय पंजलि ॥

—वीर जि० संधि ४/कड ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मकूप का दृष्टांत व

जम्बूस्वामी तथा विद्युच्चर की प्रव्रज्या—

भागते-भागते वह एक विधि-विहित जन्म रूपी कूप में जा गिरा जो कुलरूपी वृक्ष की जड़ों के जाल से आच्छन्न था। कूप के मध्य में ही वह उत्कृष्ट आयुरूपी वल्ली से लटक गया।

वहाँ उसे पंचेन्द्रिय रूपी मधु के बिंदु का सुख प्राप्त हुआ किन्तु उस वेलि को काल द्वारा कृष्ण और श्वेत वर्णों से विभिन्न रात्रि और दिवस रूपी चूहों ने काट डाला। उस वेलि के कटने से वह जीव नरक रूपी भयंकर सर्प के मुख में जा पड़ा, जहाँ उसे पाँच प्रकार के घोर दुःखों को भोगना पड़ा।

कुमार के इस दृष्टांत को सुनकर उन सभी श्रोताओं अर्थात् कुमार की माता, चोर और मरकत-मणि तथा सुवर्ण के समान मनोहर वर्णवाली उन श्रेष्ठ कन्याओं की धर्म में श्रद्धा उत्पन्न हो गयी।

इसी समय आकाश में सूर्य का उदय हो गया और जम्बूस्वामी घर से निकल पड़े।

राजा कूणिक ने गजगामी जम्बूस्वामी का निष्क्रमण-अभिषेक किया। कुमार रत्नों की किरणों से स्फुरायमान तथा श्रेष्ठ मंगल द्रव्यों से भरी हुई शिविका में आरूढ़ हुए। वे तेजस्वी कुमार नाना कल्प वृक्षों के पुष्पों से शोभायमान विपुलाचल पर्वत के मस्तक पर पहुँचकर, अपने पुत्र और स्त्रियों के मोह का परित्याग करने वाले ब्राह्मण, वणिक् तथा क्षत्रिय पुत्रों सहित एवं उस विद्युच्चोर तथा उसके पाँच सो साथी चोरों सहित वीर जिनेंद्र के पास धर्मनंदी सुधर्माचार्य से तप ग्रहण करेंगे, वा श्रेष्ठ यति होवेंगे और फिर सुधर्म आचार्य के कर्मों का विनाश कर निर्वाण प्राप्त कर लेने पर, वे जिनेंद्र भगवान के चरणों में हाथ जोड़कर श्रुत केवली होवेंगे।

·७५ वर्धमान महावीर—पूर्व भव प्रसंग—उत्तम पुराण से

पुरूरवाः सुरः प्राच्यकल्पेऽभूद्भरतात्मजः।
मरीचिर्ब्रह्म कल्पोत्थस्ततोऽभूज्जटिलद्विज ।।५३४।।

भगवान् महावीर स्वामी का जीव पहले पुरुरवा नामक भील था, फिर पहले स्वर्ग में देव हुआ, फिर भरत का पुत्र मरीचि हुआ, फिर ब्रह्म स्वर्ग में देव हुआ फिर जटिल नाम का ब्राह्मण हुआ।

सुरः सौधर्म कल्पेऽनु पुष्यमित्रद्विजस्ततः।
सौधर्मजोऽमाएस्ततस्माद्द्विजन्माग्निसमाह्वय ।। ५३५ ।

फिर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ, फिर पुण्य मित्र नाम का ब्राह्मण हुआ, फिर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ, फिर अग्निसम नामका ब्राह्मण हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सनत्कुमार देवोऽस्मादग्नि मित्राभिधो द्विजः।
मरुन्माहेन्द्र कल्पेऽभूद्भारद्वाजो द्विजान्वये ॥ ५३६ ॥
आतो माहेन्द्रकल्पेऽनु मनुष्योऽनु ततश्च्युतः।
नरकेषु त्रसस्थावरेष्वसंख्यातवत्सरान् ॥ ५३७ ॥

फिर सनत्कुमार स्वर्ग में देव हुआ, फिर अग्निमित्र नाम का ब्राह्मण हुआ, फिर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ, फिर भारद्वाज नामक ब्राह्मण हुआ, फिर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ, फिर वहाँ से च्युत होकर मनुष्य हुआ, फिर असंख्यात वर्षों तक मद को और त्रस-स्थावर योनियों में भ्रमण करता रहा।

भ्रान्त्वा ततो निर्गत्य स्थावराख्यो द्विजोऽभवत्।
ततश्चतुर्थकल्पेऽभूद्विश्वनन्दी ततश्च्युतः ॥ ५३८ ॥
महाशुक्रे ततो देवस्त्रिखण्डे रास्त्रिपृष्ठवाक्।
सप्तमे नरके तस्मात्तस्माच्च गतविद्विषः ॥ ५३९ ॥

वहाँ से निकलकर स्थावर नाम का ब्राह्मण हुआ, फिर चतुर्थ स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से च्युत होकर विश्वनन्दी हुआ, फिर महाशुक्र देव हुआ, फिर त्रिपृष्ठ नाम का तीन खण्ड का स्वामी नारायण हुआ, फिर सप्तम नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से निकलकर सिंह हुआ।

आदिमे नरके तस्मात्सिंहः सद्धर्मनिर्मलः।
ततः सौधर्मकल्पेऽभूत्सिंहकेतुः सुरोत्तमः ॥ ५४० ॥

फिर पहले नरक में गया, वहाँ से निकलकर फिर सिंह हुआ, उसी सिंह की पर्याय में उसने समीचीन धर्म धारण कर निर्मलता प्राप्त की, फिर सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का उत्तम देव हुआ।

कनकोज्ज्वलनामाभूत्ततो विद्याधराधिपः।
देवः सप्तमकल्पेऽनु हरिषेणस्ततो नृपः ॥ ५४१ ॥
महाशुक्रे ततोदेवः प्रियमित्रोऽनु चक्रभृत्।
स सहस्रारकल्पेऽभूद्देवः सूर्यप्रभाह्वयः ॥ ५४२ ॥
राजानन्दाभिधस्तस्मात्पुष्पोत्तरविमानजः ।
अच्युतेन्द्रस्ततश्च्युत्वा वर्धमानो जिनेश्वरः ॥ ५४३ ॥
प्राप्तपंचमहाकल्पाणर्द्धिः प्रस्तुतसिद्धिभाक्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर कनकोज्ज्वल नाम का विद्याधरों का राजा हुआ, फिर सप्तम स्वर्ग में देव हुआ। फिर हरिषेण राजा हुआ, फिर महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ, फिर प्रियमित्र नाम का चक्रवर्ती हुआ, फिर सहस्रार स्वर्ग में सूर्यप्रभ नाम का देव हुआ, वहाँ से आकर नन्द नाम का राजा हुआ, फिर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में उत्पन्न हुआ और फिर वहाँ से च्युत होकर वर्धमान तीर्थंकर हुआ है—जो पंचकल्याण रूप महाऋद्धि को प्राप्त हुआ है तथा जिन्हें मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त हुई है।

.८ फुटकर प्रसंग—भगवान् के सम्बन्ध में—

.१ भगवान महावीर का परिनिर्वाण—

समणे भगवं महावीरे अंतिमराइयंसि पणपण्णं अज्झयणाइं कल्लाण फलविवागाइं पणपण्णं अज्झयणाणि पावफलविवागाणि वागरित्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

—सम० सम ५५।सू४

टीका—'अन्तिमरायंसि' त्ति सर्वायुःकालपर्यवसान रात्रौ रात्रेरन्तिमे भागे पापायां मध्यमायां नगर्यां हस्तिपालस्य राज्ञः करण सभायां कार्तिक-मासामावस्यायां स्वाति नक्षत्रेण चन्द्रमसा युक्तेन नागकरणे प्रत्युषसि पर्यंङ्कासननिषण्णः पंचपंचाशदध्ययनानि 'कल्लाणफलविवागाइं' त्ति कल्याणस्य—

पुण्यस्य कर्मणः फलं—कार्यं विपाच्यते—व्यक्ती क्रियते यैस्तानि कल्याणफलविपाकानि, एवं पापफलविपाकानि व्याकृत्य-प्रतिपाद्य सिद्धो बुद्धः यावत्करणात्, मुत्ते अंतकडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणं। त्ति दृश्यं।

भगवान् महावीर ने पचपन अध्ययन कल्याणफल व पचपन अध्ययन पापफल विपाक के कथन कर—हस्तिपाल राजा की सभा में, कार्तिक कृष्ण अमावस्या को पर्यंकासन में सिद्ध हुए यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

.२ सनिदाने तपसि त्रिपृष्ठवासुदेव कथा—

रायगिहे विसनंदी विसाहभूई यतस्स जुवराया।
जुवरण्णो विसभूई विसाहनंदी य इयरस्स॥

—धर्मो ४७/१२४

रायगिहं नयरं विस्सनंदी राया महादेवी—गब्भुब्भवो य विसाहनंदी तणओ विसाहभूई जुवराया, धारिणी से भारिया। तीए पहाण-सुमिणय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसूइओ जाओ दारओ। कयं च से नामं विस्सभूई। वड्ढिओ देहोवचएण, कला-कलावेण य। संपत्तो जुवणं। अण्णया चूय तरु-पल्लवुवेल्ल कणिर-कलयंठि-सद्द-मणहरो आणंदिय-जियलोगो सुरय-सोक्खमओ विव-समर-संगओ विव-तरुण-मिहुणय-पहरिसमओ विव संपत्तो वसंतूसवोत्ति। अविय—

पप्फुल्लं-वियड-केसर-मयरंदुद्दाम-कुसुम-सोहिल्लो।
निव्वत्तिय-सुरय-सुहो सहइ वसंतो वसंतोव्व॥

तओ निग्गओ कुमारो नयराओ, ठिओनंदणवणसंकासे पुप्फकरंडए उज्जाणे तत्थाभिरमंतस्स समइक्कंतो वसंतूसवो। अण्णया नरनाह-महादेवि-चेडीए दट्ठूण जुवराय-सुअं रमंतं भणिया महादेवी—'सामिणि'! रज्जं परमत्थओ जुवराय सुयस्स, जो पुप्फकरंडयत्थो देवो व्व विचित्त-कीडाहिं रमइ। ता अहुते सुओ तत्थ न रमइ। ता निरत्थयं रज्जं मन्नामि। तओ ईसानल-तविया पविट्ठा महादेवी कोव-हरियं। मुणिय-वुत्तंतेण य भणिया राइणा—पिए! न एस अम्हाण कुलकयो, जमण्णंमि पुव्वपविट्ठे अण्णो वि पविस्सइ। तीए भणियं—'जइ एवं, ता अवस्सं मए अप्पा मारेयव्वो।'

अविय—दइया-वयणम्मि कए कुल-ववएसो न पालिओ होइ।
कुल-ववएसंमि कए न जियइ दइयत्ति य विसण्णो॥

तओ भणियं मंतिणा—'देव! कूडलेह-ववएसेणं तरं (इ) सत्तूणं उवरि जत्ताए निग्गए जुवराज-सूयम्मि रणुच्छाहे निग्गए तुह सुयस्स उज्जाणे पवेसोभविस्सइ'।' तहा कए गओ पच्चंत-राईण उवरि जुवराय सुओ।

सव्वविया निरुवद्दवा देसा, ठिया आणापरा पच्चंत-राइणो। खेमं ति भण्णमाणो पडिनियत्तो, कमेण य पत्तो रायगिहं, पुप्फकरंडए य पविसमाणो भणिओ दुवारपालेहिं—'मा पविसह, राय-सुओएत्थ रमंतो चिट्ठइ' 'अव्वो! इमिणा पवंचेण नीणिओ म्हि' त्ति। अविय—

उपकारिणी विश्रब्धे आर्यजने यः समाचरति पापम्।
तं जनमसत्य-संधि (धं) भगवति वसुधे! कथं वहसि॥

'ता किं जुगंत-पवणो व्व तरुणो उम्मूलेमि सव्वे? अहवा न, जुत्तमिणमो तुच्छविसयाण कए। तओ फल-भर-नमियाए कविट्ठीए मुट्ठि-पहारेण पाडियाणि सव्वाणि फलाणि। भणियं च णेण —'एवं चिय ते सीसाणि पाडिउं समत्थो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

म्हि' ता किमणेहिं सारीर-माणस्स-दुक्ख-निबंधणेहिं भोगेहिं ? त्ति वेरग्ग-मग्गावडिओ गओ संभूय-साहुणो समीवं। तेण वि समाइट्ठो साहु-धम्मो, पडिवण्णो भाव-सारं। भणियं च णेण—'जावज्जीवाए मासाओ मासाओ भोत्तव्वो'। एवं च अणाहारेण तव-तविय देही गओ महुराए। पविट्ठो भिक्ख-ट्ठा-मास-पारणए। पसूय-तं (ग) वा पणोल्लियं पडियं दट्ठूण माउल-धूया-वारेज्जय-निमित्तमागयस्स विसाह नंदिणो पुरिसेहिं कओ कलयलो इमं भणंतेहिं—'कत्थ-तं कविट्ठ-फल-पाडण-बलं'।

मुणिय-वुत्तंतो य विसाहनंदी हसिउमाढत्तो। 'अज्जवि एसो कय—पावकम्मो ममोवरि वेराणु-बंधमुवेइ। त्ति चिंतितेण विप्फुरिय-कोवानलेण सिंगेहिं घेत्तूण भामिया सुरही साहुणा, भणियो य विसाहनंदी—'अरे दुरायार ! न दुब्बलस्स वि केसरिणो गोमाऊएहिं बलं खंडिज्जइ'। अहिंडिय—भिक्खो पडिनियत्तो कय-भत्त-परिच्चागेण य कयं नियाणं—मणुवत्ते तवफलेण महाबलं-परक्कमो होज्जा।

मओ य समाणो उप्पण्णो महासुक्के। मुणिय-पुव्वभव-वुत्तंतो विहिणा विहिय-देव-कायव्वो भोगे भोत्तुं पयत्तो।

जहा तओ चुत्तो संतो पोयणपुरे पयावइ—राइणो मियावईए सत्तमहा-सुमिणय सुरओ पढम-वासुदेवो तिविट्ठु (ट्टु) नामो संभुत्तो। जहा से धूया-कामणाओ पयावई—नामं जाय। जहा सुभद्दा गब्भुभवो अइ (य) जाहिहाणो पढमबलदेवो आगओ। जहा अयलतिविट्ठुणो दो वि बलदेव-वासुदेवा संवड्ढिया।

जहा आसग्गीवस्स निमित्तिणो पुच्छिया, पुच्छिएण मरणं सिट्ठं। त (ज)हा दूओ खलीकओ, सीहो य वावाइओ। जहा आसग्गीवेण सह दुवालस-संवच्छरिओ संगामो जाओ। जहाय आसग्गीवो वावाइओ। जहा कोडिसिला उक्खित्ता, जहा अड्ढभरहं भुत्तं, जहा सत्तम-महीए गओ। जहाय अयलो सिद्धो, तहोवएसमाला-विवरणाणुसारेण नायव्वं त्ति।

—धर्मो० पृ० १२४ से १२६

राजगृह नामक उत्तम नगर में विश्वनन्दी नामक राजा राज्य करता था। उसकी महादेवी नाम की पत्नी से विशाखनन्दी नामक एक पुत्र हुआ। उस राजा के विशाखभूति नामक एक छोटा युवराज था। उस युवराज की पत्नी का नाम धारिणी था। मरिचि का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव विशाखभूति युवराज की धारिणी नाम की स्त्री से विश्वभूति नाम से पुत्र रूप में अवतरित हुआ। वह विश्वभूति अनुक्रम से यौवन वय को प्राप्त हुआ।

एक समय नन्दनवन में देवकुमार की तरह वह विश्वभूति अन्तःपुर सहित पुष्पकरंडक उद्यान में क्रीड़ा करने के लिए गया। वह क्रीड़ा कर रहा था कि उस समय राजा का पुत्र विशाखनन्दी क्रीड़ा करने की इच्छा से वहाँ आया। किन्तु विश्वभूति अन्दर होने से वह बाहर रहा। उस समय पुष्प लेने के लिए उसकी माता की दासियाँ वहाँ आई। उन्होंने विश्वभूति को भीतर और विशाखनन्दी को बाहर देखा।

अपनी दासियों से यह सब वृत्तांत सुना फलस्वरूप महादेवी रानी कोपायमान हुई। कोपायमान होकर वह बैठने के घर में जाकर बैठी। राजा-रानी की इच्छा पूर्ति करने के लिए यात्रा की भेरी बजाई और कपटपूर्वक सभा में कहा कि—अपना पुरुषसिंह नामक सामन्त उद्धत होकर गया है उसको जीतने के लिए मैं जाऊँगा। यह समाचार सुनकर सरल स्वभावी विश्वभूति वन में से राजसभा में आया और भक्ति से राजा को छोड़कर स्वयं लश्कर के साथ प्रस्थान किया। वह पुरुषसिंह सामन्त के पास गया। वहाँ उसको आज्ञावंत देखकर स्वयं वापस आया। मार्ग में पुष्पकरंडक वन के पास आया। वहाँ द्वारपाल ने सूचित किया कि अन्दर विशाखनन्दी कुमार है। यह सुनकर चिन्तन करने लगा कि मुझे कपट से पुष्पकरंडक उद्यान से निकाला। बाद में उसने कोपित होकर मुष्टि से एक कोठे के वृक्ष पर प्रहार किया—फलस्वरूप सर्वफल टूटकर पड़ने से पृथ्वी चारों ओर आच्छादित हो गई। यह सब बताकर विश्वभूति द्वारपाल से बोला कि यदि मेरे पिता पर भक्ति न होती तो मैं इस कोठे के फल की तरह तुम सबका मस्तिष्क भूमि पर गिरा देता। परन्तु उसके पर की भक्ति से मैं ऐसा नहीं कर सकता। परन्तु इस वंचनायुक्त भोग की मुझे आवश्यकता नहीं है।

ऐसा बोलता हुआ वह विश्वभूति संभूति मुनि के पास गया और उनके पास सामायिक चारित्र स्वीकार किया।

उसको दीक्षित हुआ सुनकर विश्वनन्दी राजा अनुज भाई सहित वहाँ आया और उसको नमस्कार किया तथा क्षमायाचना की तथा वापस राज्य लेने का अनुरोध किया। परन्तु विश्वभूति को राज्य की इच्छा बिना जानकर राजा वापस अपने घर आया।

इधर विश्वभूति मुनि ने गुरु के साथ अन्यत्र विहार किया।

तपस्या से अति कृश हुए और गुरु की आज्ञा से एकाकी विहार करते हुए विश्वभूति मुनि अन्यदा मथुरापुरी पधारे। उस समय वहाँ राजा की पुत्री से विवाह करने के लिए विशाखनन्दी राजपुत्र भी मथुरा आया हुआ था। मुनि विश्वभूति मासक्षमण के अन्त में पारण करने के लिए मथुरा नगरी में गोचरी के लिए गये।

जहाँ विशाखनन्दी की छावनी थी—उसके नजदीक आये—फलस्वरूप उसके लोगों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने "इन विश्वभूति कुमार की जय हो।" ऐसा कहकर विशाखनन्दी को जनाया। शत्रु की तरह उसे देखते ही विशाखनन्दी क्रोधित हुआ। उस समय तत्काल मुनि विश्वभूति किसी गाय के साथ अकड़ जाने से पृथ्वी पर पड़ गये। यह देखकर, कोठे के फल को उखाड़ने का उनका बल कहाँ गया। ऐसा कहकर विशाखनन्दी हँस पड़ा। यह सुनकर विश्वभूति क्रोध के वशीभूत होकर उस गाय के सींग को पकड़ कर आकाश में घुमाया और बाद में ऐसा निदान किया कि—'इस उग्र तपस्या के प्रभाव से मैं भवान्तर में बड़ा भारी पराक्रम वाला होकर इस विशाखनन्दी के मृत्यु का कारण बनूं।

तत्पश्चात् कोटि वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर पूर्व पाप की आलोचना किये बिना ही मृत्यु प्राप्त कर वह विश्वभूति महाशुक्र देवलोक में उत्कृष्ट आयुष्य वाला देव (सतरह सागरोपम) हुआ।

इस भरत क्षेत्र में पोतनपुर नामक नगर में प्रजापति नामक राजा था। उसकी सुभद्रा नामक रानी थी। उसने शयन कक्ष में चार महास्वप्न को देखा फलस्वरूप उसके अचल नामक एक बलभद्र पुत्र हुआ और उसके बाद मृगावती नामक एक पुत्री हुई।

एक समय यौवनवती और रूपवती ऐसी वह पुत्री जब पिता को प्रणाम करने के लिए गयी तब राजा ने उसे स्वयं की गोद में बैठाया और उसके साथ विवाह करने का विचार किया। राजा ने गांधर्व विधि से अपनी पुत्री से विवाह किया।

मृगावती ने शयनकक्ष में सात महास्वप्न देखे फलस्वरूप उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम त्रिपृष्ठ वासुदेव था।

इधर में विशाखनन्दी का जीव अनेक भवों में भ्रमण कर तुंगगिरि में केशरी सिंह हुआ। वह शंखपुर प्रदेश में उपद्रव करने लगा। उस समय अश्वग्रीव नामक प्रतिवासुदेव ने एक निमित्तज्ञ को पूछा कि—हमारी मृत्यु किसके द्वारा होगी। फलस्वरूप निमित्तज्ञ ने कहा कि जो तुम्हारे चंडवेग दूत पर प्रहार करेंगे और तुंगगिरि पर स्थित केशरी सिंह को एक लीला मात्र में मार देंगे—वही आपको मारने वाले होंगे।

अश्वग्रीव और त्रिपृष्ठ वासुदेव का संग्राम बारह वर्ष तक रहा। त्रिपृष्ठ वासुदेव ने चक्र के द्वारा अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव को मार गिराया।

त्रिपृष्ठ वासुदेव ने स्वयं की भुजा से कोटिशिला उपाड़कर छत्र की तरह लीलामात्र में मस्तक तक ऊँचा किया। अर्द्ध भरत क्षेत्र का राज्य किया। राज्य का भोगकर मरण समय में मृत्यु को प्राप्त होकर सप्तम नरक भूमि गये। अचल बलदेव साधुत्व को प्राप्त कर, काल समय में कालकर सिद्धगति को प्राप्त हुए।

नोट—कहा जाता है कि त्रिपृष्ठ वासुदेव के वियोग में अचल बलदेव दीक्षित होकर मृत्यु प्राप्त कर मोक्ष पधारे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*३ चातुर्मास—

भगवान महावीर ने कुल बयालीस चातुर्मास किए। उनमें प्रथम बारह छद्मस्थ अवस्था में और शेष तीस केवली अवस्था में किये थे।

१—अस्थिकग्राम	२२—राजगृह
२—नालन्दा	२३—वाणिज्यग्राम
३—चम्पा	२४—राजगृह
४—पृष्ठचम्पा	२५—मिथिला
५—भद्दियानगर	२६—मिथिला
६—भद्दियानगर	२७—मिथिला
७—आलंभिया	२८—वाणिज्यग्राम
८—राजगृह	२९—राजगृह
९—वज्रभूमि	३०—वाणिज्यग्राम
१०—श्रावस्ती	३१—वैशाली
११—वैशाली	३२—वैशाली
१२—चंपा	३३—राजगृह
१३—राजगृह	३४—नालंदा
१४—वैशाली	३५—वैशाली
१५—वाणिज्यग्राम	३६—मिथिला
१६—राजगृह	३७—राजगृह
१७—वाणिज्यग्राम	३८—नालन्दा
१८—राजगृह	३९—मिथिला
१९—राजगृह	४०—मिथिला
२०—वैशाली	४१—राजगृह
२१—वाणिज्यग्राम	४२—पावा

नोट :—

१—राजगृह में	११ वर्षावास
२—वैशाली में	६ वर्षावास
३—मिथिला में	६ वर्षावास
४—वाणिज्यग्राम में	६ वर्षावास
५—चंपा में	२ वर्षावास
६—नालंदा में	३ वर्षावास
७—भद्दियानगर में	२ वर्षावास

शेष छह स्थानों में एक-एक वर्षावास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'४ विहार और आवास स्थल

पहला वर्ष

कुंडग्राम
ज्ञातखंडवन
कर्मारग्राम
कोल्लागसन्निनेश
मोराक सन्निवेश
दुईज्जंतग आश्रम
अस्थिकग्राम

दूसरा वर्ष

मोराक सन्निवेश
दक्षिण वाचाला
कनकखल आश्रमपद
उत्तर वाचाला
श्वेताम्बी
सुरभिपुर
थूणाक सन्निवेश
राजगृह
नालंदा

तीसरा वर्ष

कोल्लाग सन्निवेश
सुवर्णखल
ब्राह्मणग्राम
चंपा

चौथा वर्ष

कालाय सन्निवेश
पत्तकालाय
कुमारक सन्निवेश
चोराक सन्निवेश
पृष्ठ चंपा

पाँचवां वर्ष

कयंगला सन्निवेश
श्रावस्ती
हलेद्दुकग्राम
नंगलाग्राम (वासुदेव मंदिर में)
आवर्त्त (बलदेव मंदिर में)
चोराक सन्निवेश
कलंबुका सन्निवेश
लाढदेश
पूर्णकलश ग्राम
भद्दिया नगरी

छट्ठा वर्ष

कदली समागम
जम्बूसंड
तम्बाय सन्निवेश
कूपिय सन्निवेश
वेशाली (कम्मारशाला में)
ग्रामाक सन्निवेश (विभेलक यक्ष मंदिर में)
शाली शीर्ष
भद्दिया नगरी

सातवां वर्ष

मगध के विभिन्न भाग
आलंभिया

आठवां वर्ष

कुंडाक सन्निवेश (वासुदेश के मंदिर में)
मद्दन्न सन्निवेश (बलदेव के मंदिर में)
बहुसाल ग्राम (शालवन के उद्यान में)
लोहार्गला
पुरिमताल (शकटमुख उद्यान में)
उन्नाग
गोभूमि
राजगृह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नववां वर्ष

लाढ (राढ देश)
वज्रभूमि
सुम्हभूमि

दसवां वर्ष

सिद्धार्थपुर
कूर्मग्राम
सिद्धार्थपुर
वैशाली
वाणिज्यग्राम
श्रावस्ती

ग्यारहवां वर्ष

सानुलट्ठिय सन्निवेश
दृढभूमि
पेढालग्राम (पोलास चैत्य में)
बालुका
सुयोग
सुच्छेता
मलय
हस्तिशीर्ष
तोसलिगाँव
मोसलि
सिद्धार्थपुर
वज्रग्राम
आलंभिया
सेयविया
श्रावस्ती
कौशाम्बी
वाराणसी
राजगृह
मिथिला
वैशाली
(समरोद्यान के बलदेव मंदिर में)

बारहवां वर्ष

सुंसमारपुर
भोगपुर
नन्दग्राम
मेंढियग्राम
कौशाम्बी
सुमंगल
सुच्छेत्ता
पालक
चंपा (यज्ञशाला में)

तेरहवां वर्ष

जंभियग्राम
मेंढियग्राम
छम्माणि
मध्यमपावा
जंभियग्राम
राजगृह

चौदहवां वर्ष

ब्राह्मणकुंडग्राम
(बहुशाल के चैत्य में)
विदेह जनपद
वैशाली

पन्द्रहवां वर्ष

वत्सभूमि
कौशाम्बी
कोशल जनपद
श्रावस्ती
विदेह जनपद
वाणिज्यग्राम

सोलहवां वर्ष

मगध जनपद
राजगृह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्रहवां वर्ष

चंपा
विदेह जनपद
वाणिज्यग्राम

अठारहवां वर्ष

बनारस
आलंभिका
राजगृह

उन्नीसवां वर्ष

मगध जनपद
राजगृह

बीसवां वर्ष

वत्स जनपद
आलंभिया
कौशाम्बी
वैशाली

इक्कीसवां वर्ष

मिथिला
काकन्दी
श्रावस्ती
अहिच्छत्रा
राजपुर
कांपिल्य
पोलासपुर
वाणिज्यग्राम

बाईसवां वर्ष

मगध जनपद
राजगृह

तेइसवां वर्ष

कयंगला
श्रावस्ती
वाणिज्यग्राम

चौबीसवां वर्ष

ब्राह्मणकुंडग्राम (बहुशाल चैत्य)
वत्स जनपद
मगध जनपद
राजगृह

पच्चीसवां वर्ष

चंपा
मिथिला
काकन्दी
मिथिला

छब्बीसवां वर्ष

अंग जनपद
चंपा
मिथिला

सत्ताईसवां वर्ष

वैशाली
श्रावस्ती
मेंढियग्राम (सालकोष्ठक चैत्य)

अठाइसवां वर्ष

कौशल-पांचाल
श्रावस्ती
अहिच्छत्रा
हस्तिनापुर
मोकानगरी
वाणिज्यग्राम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनतीसवां वर्ष

राजगृह

तीसवां वर्ष

चंपा
पृष्ठचंपा
विदेह
वाणिज्यग्राम

इकतीसवां वर्ष

कौशल-पांचाल
साकेत
श्रावस्ती
कांपिल्य
वैशाली

बत्तीसवां वर्ष

विदेह जनपद
कौशल जनपद
काशी जनपद
वाणिज्यग्राम
वैशाली

तैंतीसवां वर्ष

मगध
राजगृह
चंपा
पृष्ठचंपा
राजगृह

चौंतीसवां वर्ष

राजगृह (गुणशील चैत्य में)
नालंदा

पैंतीसवां वर्ष

विदेह जनपद
वाणिज्यग्राम
कोल्लागसन्निवेश
वैशाली

छत्तीसवां वर्ष

कौशल जनपद
पांचाल जनपद
सूरसेन जनपद
साकेत
कांपिल्यपुर
सौर्यपुर
मथुरा
नन्दीपुर
विदेह जनपद
मिथिला

सैंतीसवां वर्ष

मगध जनपद
राजगृह

अड़तीसवां वर्ष

मगध जनपद
राजगृह
नालन्दा

उनतालीसवां वर्ष

विदेह जनपद
मिथिला

चालीसवां वर्ष

विदेह जनपद
मिथिला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इकतालीसवां वर्ष	**बयालीसवां वर्ष**
मगध जनपद	राजगृह
राजगृह	पावा

अध्ययन, गाथा, सूत्र आदि की संकेत सूची

अ	अध्ययन, अध्याय
आव	आवश्यक
उ	उद्देश, उद्देशक
गा	गाथा
चू	चूर्णी
पृ	पृष्ठ
दिग्	दिगम्बर
श	शतक
श्रु	श्रुतस्कंध
श्लो	श्लोक
श्वे	श्वेताम्बर
सम	समवाय
सू	सूत्र
स्था	स्थान
कड	कडवक
भा	भाग
नि	निर्युक्ति
मलय	मलयगिरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकलन-संपादन-अनुसंधान में प्रयुक्त ग्रन्थों की सूची

आयारो—(जैन आगम)—वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल, (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—जैन विश्वभारती, लाडणूं (राजस्थान) वि० सं० २०३१

सूयगडो—(जैन आगम)—वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल, (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—जैन विश्वभारती, लाडणूं (राजस्थान) वि० सं० २०३१

ठाणं—(जैन आगम)—वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडणूं (राजस्थान) वि० सं० २०३१

समवाओ—(जैन आगम)—वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल, (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडणूं (राजस्थान) वि० सं० २०३१

भगवई (विवाह पण्णत्ती)—(जैन आगम)—वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल, (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ), प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडणूं (राजस्थान) वि० सं० २०३१

नायाधम्म कहाओ (जैनागम)—वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडणूं (राजस्थान) वि० सं० २०३१

उवासगदसाओ (जैनागम)—वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडणूं (राजस्थान) वि० सं० २०३१

अंतगडदसाओ—(जैन आगम) वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडणूं (राजस्थान) वि० सं० २०३१

अनुत्तरोवाइयदसाओ—(जैन आगम) वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडणूं (राजस्थान) वि० सं० २०३१

पण्हावागरणाइ—(जैन आगम) वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडणूं (राजस्थान) वि० सं० २०३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवागसूयं—(जैन आगम) वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ)—प्रकाशक जैन विश्व भारती, लाडणूं (राजस्थान) वि० सं० २०३१

ओववाइयं—(जैनागम) वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्रकाशक—श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, ई० सं० १९७०

रायपसेणइयं—(जैनागम)—सम्पादक—स्वर्गीय पं० बेचरदासजी डोशी, प्रकाशन—गुर्जरग्रन्थरत्न कार्यालय, अहमदाबाद—१९३९

जीवाजीवाभिगमो—(जैनागम)—समलयगिरि प्रणीत विवृति प्रकाशक—देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धारक फंड, सूरत

पण्णवणासुत्तं—(जैनागम)—समलयगिरिकृत वृत्ति—दो भाग, प्रकाशक—आगमोदय समिति, मेहसाना

जंबुद्दीव पण्णत्ती—(जैनागम) शांतिचंद्रविहित वृत्ति, प्रकाशक—देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फंड, सूरत १९२०

चंदपण्णत्ती—(जैनागम)—प्रकाशक—लालासुख सहाय. ज्वाला प्रसाद, हैदराबाद ।

सूरपण्णत्ती—(जैनागम)—समलयगिरि विहित विवरण, प्रकाशक—आगमोदय समिति, मेहसाना ।

निरयावलियाओ—(जैनागम)—सम्पादन—गोपानी तथा चोकसी, प्रकाशन—गुर्जरग्रंथरत्न कार्यालय, अहमदाबाद १९३४ ।

ववहारो—(जैनागम)—सम्पादन—प्रो० वोलथर श्युब्रिंग प्रकाशन—डा० जीवराज घेलाभाई डोसी, अहमदाबाद १९२५

बिहकप्पो—(जैनागम)—६ भाग, सम्पादन—चतुर विजय, पुण्यविजय, प्रकाशन—श्री आत्मानन्द सभा, भावनगर-१९३४ से १९४२ । (निर्युक्ति भाष्य-टीका)

निसीहज्झयणं—(जैनागम) वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ), प्रकाशक—श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता, सन् १९६७

दसासुयक्खंधो—(जैनागम)—सम्पादक व अनुवादक—आत्मारामजी महाराज, प्रकाशक—जैन शास्त्रमाला, लाहौर—१९३६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसवेआलियं सुत्तं—(जैनागम)—वाचना प्रमुख--आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ), प्रकाशक—श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता-१ वि. सं. २०२३

उत्तरज्झयणाइं—(जैनागम)—वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ), प्रकाशक—श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता-१ वि. सं. २०२३

नन्दीसुत्तं—(जैनागम)—सम्पादक—मुनि पुण्यविजय, पं. दलसुख मालवणिया, प्रकाशक—श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, १९६८

अणुओगद्दाराइं—(जैनागम)—सम्पादक—मुनि पुण्यविजय, पं. दलसुख मालवणिया, प्रकाशक—श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, १९६८

आवस्सयं सुत्तं—(जैनागम)—प्रकाशक—जैन श्वेताम्बर जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट।

कप्पसुत्तं—प्रकाशक—साराभाई, मणिलाल नवाब, अहमदाबाद, १९४१

आचारांग चूर्णी—रचयिता—जिनदास गणि, प्रकाशक—ऋषभदेव केशरीलाल संस्था—रतलाम १९४१, छट्ठी शती

आवश्यक चूर्णी—(भाग २)—रचयिता—जिनदास गणि, प्रकाशक—ऋषभदेव केशरीलाल संस्था, रतलाम, १९२८

आवश्यक निर्युक्ति—आचार्य भद्रबाहु—मलयगिरि वृत्ति सहित, प्रकाशक—आगमोदय समिति, बम्बई, १९२८

आवश्यक निर्युक्ति—आचार्य भद्रबाहु—हारिभद्रीय वृत्ति सहित, आगमोदय समिति, १९१६

ठाणं टीका—अभयदेव सूरि टीका, प्रकाशक—सेठ माणेकचन्द चुनीलाल, सेठ कांतिलाल चुनीलाल, अहमदाबाद, सन् १९३७

समवाओ टीका—अभयदेवसूरि टीका, प्रकाशक—सेठ माणेकचन्द चुनीलाल, अहमदाबाद, सन् १९३८

सूत्रकृतांग चूर्णी—रचयिता—जिनदास गणि, प्रकाशक—ऋषभदेव केशरीमल जैन, जैन श्वेताम्बर संस्था, सन् १९४७

सूत्रकृतांग टीका—शीलांगाचार्य टीका—प्रकाशक—छगनलालजी साहेब सुन्था, बेंगलोर, सन् १९६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभयकुमार चरित—चन्द्रतिलक उपाध्याय, वि १३वीं सदी।

आगम और त्रिपिटक—प्रकाशक—श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता सन् १९६९

आख्यानक मणिकोष—आचार्य देवेन्द्र गणि वि. १२वीं सदी।

आचारांग टीका—टीका—शीलांकाचार्य कृत, तदुपरि श्री जिनहंस कृत दीपिका, तदुपरि पार्श्वचन्द्रसूरि कृत, बालावबोध, प्रकाशक—धनपतसिंह बहादुरसिंह, अजीमगंज, सन् १९३६।

आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति—आचार्य हरिभद्र, छठी सदी।

आवश्यक मलयगिरि वृत्ति—आचार्य मलयगिरि, १२वीं सदी।

उत्तराध्ययन—कमलसंयमीयावृत्ति—आचार्य कमलसंयम।

उत्तज्झयणाइं टीका—(भाग ४) लक्ष्मीवल्लभकृत टीका, अनुवादक—पं. हीरालाल हंसराज, प्रकाशक—मणिबाई राजकरण, अहमदाबाद, सन् १९३५।

उत्तराध्ययन—भावविजया वृत्ति—श्री भावविजय गणि।

उत्तरपुराण—आचार्य गुणभद्र (१०वीं सदी), प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९६८।

उपदेशप्रासाद—श्री विजयलक्ष्मी सूरि।

उवदेशपद—आचार्य हरिभद्र कृत (स्वोपज्ञवृत्ति)

उपदेशकथा रत्नकोष—श्रीमज्जयाचार्य।

उपदेशमाला—धर्मदास गणि

अभिधान चिन्तामणि कोष—आचार्य हेमचन्द्र।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र—आचार्य हेमचन्द्र, १२वीं शदी, प्रकाशक—श्रीमती गंगाबाई जैन चेरिटेबल ट्रस्ट, बम्बई।

ऋषिमंडल प्रकरण वृत्ति—धर्मघोषसूरि (वृत्ति पद्मनंदि गणि) १६वीं सदी।

कथाकोश प्रकरण—जिनेश्वरसूरि, वि. ११०८।

कथाकोश—प्रभाचन्द्र, ११००वीं शदी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पसूत्र सुबोधिका—विनयविजय उपाध्याय, १७वीं सदी।

कहारयण कोश—देवभद्रसूरि, ११५८ वि. सं.।

कथानक कोश—जिनेश्वरीसूरि।

कथाकोश—भरतेश्वरसूरि बाहुबलि, वृत्ति—शुभशील गणि।

कल्पसूत्र कल्पलता व्याख्या, प्रकाशक—वेलजी शीवजी कम्पनी, दाणानगर, बम्बई, सन् १९१८।

ज्ञाता सूत्रवृत्ति—अभयदेव सूरि, १२वीं सदी।

चउप्पन्न महापुरिसचरियं-शीलांगाचार्य (वि० सं० ९२५)। प्रकाशक—प्राकृत ग्रंथपरिषद, वाराणसी-सन् १९६१।

चतुर्विंशतिस्तवन-श्रीमज्जयाचार्य प्र० ओसवाल प्रेस, कलकत्ता।

चंदन मलयागिरिरास—भाणविजय, १८१२।

तिलोयपण्णत्ती-रचयिता—आचार्य यतिवृषभ, प्रकाशक—जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर-१९५१।

दशवैकालिक निर्युक्ति—आचार्य भद्रबाहु, छठी सदी।

धन्यशालिभद्रचरित्र—भद्रगुप्त, १४वीं सदी।

धर्मरत्न प्रकरण (वृत्ति)—आचार्य शांतिसूरि।

धर्मोपदेशमाला—जयसिंह सूरि, वि० सं० ९१५, प्रकाशक—सिंघी जैनशास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्याभवन, बम्बई-१९४९।

नंदीवृत्ति—मलयगिरि-१२वीं सदी।

निशीथचूर्णी—जिनभद्रगणिमहत्तर, छठी सदी।

पाण्डव पुराण—भट्टारक शुभचंद्र, १३वीं सदी।

पार्श्वनाथ चरित्र—उदयवीरगणि, १६वीं सदी।

पुहवीचंद चरित्र (पृथ्वीचंद्र चरित)—सत्याचार्य, वि० १६वीं सदी।

बृहत्कथा कोष—आचार्य हरिषेण, वि० सं० ९५५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवती सूत्रवृत्ति—अभयदेव सूरि, १२वीं सदी। (व्याख्या प्रज्ञप्ति) प्रकाशक—ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वेताम्बर सभा सन् १६४७।

भत्त पइण्णाप्रकीर्णक—प्रकीर्णकआगम

भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति—शुभशीलगणि।

युजुर्वेद—वैदिक मंत्रालय, अजमेर।

युक्त्यनुशासनम्—

वर्धमान देशना—शुभवर्धनगणि।

वसुदेवहिंडी—संघदासगणि, ५वीं सदी।

विविध तीर्थ-कल्प—जिनप्रभ सूरि, १३वीं सदी।

व्यवहार सूत्र-वृत्ति—मलयगिरि, १२वीं सदी।

समत्त सत्तति—आचार्य हरिभद्र सूरि, छठी सदी।

सिरिसिरि वालकहा—रत्नशेखर सूरि, १३वीं सदी।

लेश्या-कोश पर विद्वानों की सम्मति

स्व० प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजी संघवी, अहमदाबाद

लेश्या-कोश के प्रारम्भिक ३४ पृष्ठों को पूरा सुन गया हूँ। अगला भाग अपेक्षा के अनुसार देखा है। पर उसका पूरा ख्याल आ गया है। प्रथम तो यह बात है कि एक व्यापारिक फिर भी अस्वस्थ तबीयतवाला इतना गहरा श्रम करे और शास्त्रीय विषयों में पूरी समझ के साथ प्रवेश करे यह जैन समाज के लिए आश्चर्य के साथ खुशी का विषय है। आपने कोशों की कल्पना को मूर्त बनाने का जो संकल्प किया है वह और भी आश्चर्य तथा आनन्द का विषय है। इतना बड़ा भारी जवाबदेही का काम निर्विघ्न पूरा हो—यही कामना है।

Dr. A. N. Upadhye, M. A. D. Litt., Shivaji University, Kolhapur.

"I have read the major portion of this KOSA. You are to be congratulated on having brought out a valuable source book on the Lesya Doctrine. I appreciate your methodology and have all praise for the pains you have taken in collecting and systematically

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

presenting the material. Such works really advance the cause of Jainological studies. Please accept my greetings on this useful work and convey the same to your colleagues who have collaborated with you in this project. Such Kosas for 'PUDGAL' etc. would be welcome in the interest of the progress of Jainological studies".

Dr. P. L. Vaidya, M. A. D Litt. Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.

"I am very grateful to you for your sending me a copy of your book 'Lesya-Kosa'. I have read a goodly portion of it and am deeply impressed by your methodical work on an important topic of Lesya in Jain Philosophy. All students of Jain Literature and Philosophy would surely be grateful to you for your having placed in their hand a work of tremendous utility".

Dr. Suniti Kumar Chatterjee, National Professor of India, Calcutta.

"I am not a student of Philosophy, much less of Jain Philosophy. But I have learnt a lot from your work, which is very thorough study, with a wealth of quotations from both Prakrita and Sanskrita, on the concept of Lesya. This, as it would appear, is not known in Brahmanical and Buddhistic philosophy. I did not know anything about it before I got your book. This, as it would appear from your study, is a vary important concept in Jain Philosophy with regard to the nature of Soul, both in the static or contemplative and its dynamic or active aspect.

I am sure specialists will give a welcome accord to your book."

"Wishing you all success in your noble work of interpreting one of the most important aspects of our Indian civilisation and thought namely, the Jaina."

Dr. Prof. L. Alsdorf, Seminar fur Kultur und Geschichte Indiens, Universitat Hamburg.

"I acknowledge receipt of your Lesya-Kosa and acceptmy very-sincere thanks for this most valuable and welcome gift. The theory of Karmani of which Lesya Doctrine is an integral part is the very

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

centre and heart of Jainism; at the same time it is a most intricate and complex subject the study of which presents a great many difficulties and problems, not all of which have been solved so far. With erudition and acumen, you have furnished a most useful contribution and successfully advanced our knowledge."

Prof. Dr. K. L. Janert, Director, Institut fur Indologie Der Universitat Zu Koln.

"I have received your book Lesya Kosa, I also owe you a valuable addition to my Library. It is always a matter of great satisfaction to me to see a scholar not recoil from the arduous task of compiling dictionaries, indexes etc.—even that great English Critic and Lexicographer, Dr. Samuel Johnson, called it drudgery some two hundred years ago. And it is of course only diligent collection and comparison of all relevent material that genuine advance in knowledge is based on. So we shall have to thank you for having made work easier for those who come after you.

Prof. Padmanath S. Jain, Dept. of Linguistics, The University of Michigan, U.S.A.

"Please forgive me for the delay in acknowledging the receipt of your excellent gift of the Lesya-Kosa. This is an extraordinary work and you deserve our gratitude for publishing it. You have opened a new field of research and have established a new model for all future Jain studies. The subject is fascinating not only for its antiquity but also fo its value in the study of Indian Psychology."

क्रिया-कोश पर प्राप्त समीक्षा

Prajnachakshu Pandit Sukhlal D. Litt., Ahmedabad.

After Lesya-Kosa I have received your Kriya Kosa, Trhanks. I have heard the Editorial, Forward, Preface in full and certain portions thereafter. I am surprised to find such dilligence, such concentration and such devotion to learning. Particularly so because such person is rarely found in business community who dedicates himself to learning like a BRAHMIN.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Dr. Adinath Neminath Upadhya D. Litt. Shivaji University, Kolhapur.

I am in receipt of the copy of the 'Kriya-Kosa' so kindly sent by you. It is a remarkable source book which brings in one place so systematically, the references and extracts which shed abundent light on the usage of the term Kriya in Jainism. The Kosas that are being brought out by you will prove of substantial help to the future compilation of an encyclopaedia on Jainism. I shall eagerly look forth to the publication of your DHYAN KOSA.

With felicitations on your scholarly achievements.

Dr. P. L. Vaidya, D. Litt. Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona-4

I am very grateful to you for your sending me a copy of your Cyclopaedia of Kriya. I have read a few pages already and find it as useful as your Lesya Kosa. Please do bring out similar volumes on different topics of Jain Philosophy, Of course, this may not bring you any material wealth, but I am sure students of Jain Literature will surely bless you for having offered them a real help in their study.

Prof. Hiralal Rasikdas, Kapadiya, Surat, Bombay,

This work (Kriya Kosa) will be very useful to scholars interested in Jainology. The learned editors deserve hearty congratulations for having undertaken such a laborious and tedious task.

मिथ्यात्वीका आध्यात्मिक विकास पर अभिमत

Mithyatvi Ka Adhyatmika Vikasa written by Sri Srichand Choraria, Jain Darsana Samiti 16C, Dover Lane, Calcutta-29. PP-24 and 360.

This is a philosophical treaties. It describes carefully the manifestation of the soul according to Jain tradition. It deals with the problem whether the mithyatva can have a manifestation and the auther has proved that in a possible way.

The book is divided into nine chepters including conclusion. Each chapter has several sub sections, or rather points on which the author has discussed a lot, each section of each chapter is replete with ample quotations proving the conclusion of the author.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

This book shows the masterly scholarship of Sri Srichand Choraria over the subject. The language of the author is simple, but forceful and the analysis is praise-worthy. The author has consulted quite a number of books and has given a sustained effort for the batter production of the thesis. The work is more than a D, Lit.

The printing of the book is good and the binding as well. The book must be in the shelf of the library of every learned scholar.

University of Calcutta —SATYA RANJAN BANERJEE
20th Sept. 1984

भँवरलाल जैन न्यायतीर्थ, जयपुर। पुस्तक में नो अध्याय है—विभिन्न दृष्टिकोणों से मिथ्यात्वी अपना आत्म विकास किस रूप में किस प्रकार कर सकता है—यह दर्शाया है। जैन सिद्धान्त के प्रमाणों के आधार पर इस विषय को स्पष्टतया पाठकों के समक्ष लेखक ने सरल सुबोध भाषा में रखा है। जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। शास्त्रीय चर्चा को अभिनव रूप में प्रस्तुत करने में लेखक सफल हुए हैं। (वीर वाणी)

राम सुरी (डेलावाला), कलकत्ता। 'मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास' पुस्तक में आलेखित पदार्थों के दर्शन से जैन दर्शन व जैनागमों की अजैनों की तरफ उदात्त भावना और आदरशीलता प्रकट होती है। एवं जैन धर्म को अप्राप्त आत्माओं में कितने प्रमाण में आध्यात्मिक विकास हो सकता है—इत्यादिक विषयों का आलेखन बहुत सुन्दरता से जैनागमों के सूत्रपाठों से दिखाया गया है। इसलिए विद्वान् श्रीचन्द चोरड़िया का प्रयास बहुत प्रशंसनीय है और यह ग्रन्थ दर्शनीय है।

डा० नरेन्द्र भणावत, जयपुर। लेखक की यह कृति पाठकों का ध्यान एक नई दिशा की ओर खींचती है। शास्त्र मर्मज्ञ विद्वानों को विविध विषयों पर गहराई से चिन्तन करने की ओर प्रवृत्ति करने में यह पुस्तक सहायक बनेगी।

डा० ज्योति प्रसाद जैन, लखनऊ। प्रायः यह समझा जाता है कि मिथ्यात्वी व्यक्ति धर्माचरण का अधिकारी नहीं है और उसका आध्यात्मिक विकास नहीं हो सकता। भ्रान्ति का निरसन विद्वान लेखक ने सरल-सुबोध किन्तु विवेचनात्मक शैली में और अनेक शास्त्रीय प्रमाणों को पुष्टिपूर्वक किया है।

जमनालाल जैन, वाराणसी। यह अपने विषय की अपूर्वकृति है। मनीषी लेखक ने लगभग दो सौ ग्रंथों का गम्भीर परायण एवं आलोडन करके शास्त्रीय रूप में अपने विषय को प्रस्तुत किया है। परिभाषाओं और विशिष्ट शब्दों में आबद्ध तात्विक प्ररूपणाओं एवं परम्पराओं को उन्मुक्त भाव से समझने के लिए यह कृति अतीव मूल्यवान है। (श्रमण पत्रिका)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भँवरलाल नाहटा, कलकत्ता। शास्त्र प्रमाणों से परिपूर्ण इस ग्रंथ में विद्वान लेखक ने नौ अध्यायों में प्रस्तुत विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है।

पं० चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी, राजगृह। लेखक ने काफी विस्तार के साथ उक्त चर्चा को पुनः चिन्तन का आयाम दिया है। पुस्तक एक अच्छी चिन्तन सामग्री उपस्थित करती है।

दलसुख मालवणिया, अहमदाबाद। श्री चोरड़ियाजी ने इस विषय में जो परिश्रम किया है वह धन्यवाद के पात्र है। यह ग्रन्थ इस पूर्व प्रकाशित लेश्या-कोश क्रिया-कोश की कोटिका ही है। इन ग्रन्थों में श्री चोरड़ियाजी का सहकार था। हमें आशा है कि वे आगे भी इस कोटि के ग्रन्थ देते रहेंगे। विशेषता यह है कि आगमों में जितने भी अवतरण इस विषय में उपलब्ध थे—उनका संग्रह किया है। इतना ही नहीं आधुनिक काल के ग्रन्थों के भी अवतरण देकर ग्रन्थ को संशोधकों के लिए अत्यन्त उपादेय बनाया है—इसमें सन्देह नहीं है।

GLORY OF INDIA, दिल्ली। 'मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास' यह पुस्तक अनेक विशिष्टताओं से युक्त है। एक मिथ्यात्वी भी सद्अनुष्ठानिक क्रिया से अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। साम्प्रदायिक मतभेदों की बातें या तो आई ही नहीं है अथवा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों का समभाव से उल्लेख कर दिया गया है।

श्री चोरड़ियाजी ने विषय का प्रतिपादन बहुत ही सुन्दर और तलस्पर्शी ढंग से किया है, विद्वज्जन इसका मूल्यांकन करें। निःसन्देह दार्शनिक जगत के लिए चोरड़ियाजी की यह एक अप्रतिम देन है।

मुनिश्री अशकरण, सुजानगढ़। अनुमानतः लेखक ने इस ग्रन्थ को लिखने के अनेकानेक ग्रन्थों का अवलोकन किया है। टीका भाष्यों के सुन्दर संदर्भों से पुस्तक अतीव आकर्षक बनी है।

डा० भागचन्द्र जैन, नागपुर। विद्वान लेखक ने यह स्पष्ट करने का साधार प्रयत्न किया है कि मिथ्यात्वी का कब और किस प्रकार विकास हो सकता है। लेखक और प्रकाशक इतने सुन्दर ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए बधाई के पात्र हैं।

डा० दामोदर शास्त्री, दिल्ली। लेखक ने अपने इस ग्रन्थ में शोधसार समाविष्ट कर शोधार्थी विद्वजनों के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। यत्र-यत्र पेचीदे प्रश्नों को उठाकर उसका सोदाहरण व शास्त्र सम्मत समाधान भी किया गया है।

मुनिश्री राकेशकुमार, कलकत्ता। श्रीचन्द चोरड़िया के विशिष्ट ग्रन्थ 'मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास' में शास्त्रीय दार्शनिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण प्रतिपादन हुआ है। जैन धर्म के तात्विक चिन्तन में रूचि रखनेवालों के लिए तो यह पुस्तक ज्ञानवर्द्धक और रसप्रद है ही, किन्तु साम्प्रदायिक अनाग्रह और वैचारिक उदारता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के इस युग में हर बौद्धिक और चिन्तनशील व्यक्ति के लिए इसका स्वाध्याय उपयोगी भी है।

मुनिश्री लाभचन्दजी—यह अपने विषय की अपूर्वकृति है। मनीषी लेखक ने १८६ ग्रन्थों का गम्भीर पारायण एवं आलोडन करके शास्त्रीय रूप में अपने विषय को प्रस्तुत किया है।

मिथ्यात्वीका आध्यात्मिक विकास के सम्बन्ध में विद्वान लेखक ने सरल सुबोध किंतु विवेचनात्मक शैली में अनेक शास्त्रीय प्रमाणों की पुष्टिपूर्वक किया है। एक मिथ्यात्वी भी परिवर्तन करके कितना, कैसा, किस दिशा में और सीमात्मक आध्यात्मिक विकास कर सकता है। यह पुस्तक अनेक विशिष्टताओं से युक्त है। श्री चोरड़िया जी ने विषय का प्रतिपादन बहुत ही सुन्दर और तलस्पर्शी ढंग से किया है। टीका और भाष्यों के सुन्दर सन्दर्भों से पुस्तक बड़ी सुन्दर बनी है।

प्रस्तुत ग्रंथ नौ अध्यायों में विभक्त है और प्रत्येक अध्याय में अनेक उपविषय है। प्रस्तुत विषय पर लेखक ने सप्रमाण क्रमवार विवेचन किया है।

लेखक ने आगम साहित्य के महासागर में से विषय संबद्ध समस्त प्रकरणों को एकत्रित कर एक महान कार्य किया है। आगमों में अनेक स्थानों पर ऐसे प्रसंग विकीर्ण है जो मिथ्यात्वी के आध्यात्मिक विकास की पुष्टि करते हैं।

मिथ्यात्वीका आध्यात्मिक विकास जैन तत्व दर्शन का एक बहुचर्चित पहलू है।

२७, पोल्लाक स्ट्रीट, —तपस्वी मुनिश्री लाभचंदजी महाराज
कलकत्ता
ता० १८-१२-८६

वर्धवान जीवन कोश-प्रथम खण्ड पर प्राप्त समीक्षा

डा० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ। यह ग्रन्थ भगवान् महावीर के जीवन सम्बन्धी संदर्भों का विस्तृत विश्वकोश है। लेश्याकोश क्रिया कोष की भांति इसका निर्माण भी अन्तरराष्ट्रीय दशमलव वर्गीकरण पद्धति से किया गया है। इसमें सन्देह नहीं है कि शोधार्थियों के लिए यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी सिद्ध होगा।

डा० नेमीचन्द जैन, इन्दौर। 'वर्धमान जीवन कोष' जैन विद्या के क्षेत्र का एक अपरिहार्य, अपूर्व, बहुमूल्य संदर्भ ग्रन्थ है। पूर्व प्रकाशित लेश्या कोश, क्रिया कोशों का जो स्वागत देश-विदेश में हुआ है वह उजागर है। इसी तरह का मूल्यवान् संदर्भ ग्रन्थ यह भी है। अस्तु कोश उपयोगी है और भगवान् महावीर के जीवन के सम्बन्ध में बहुविध जानकारी दे रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिश्री लाभचन्द (श्रमण संघीय), कलकत्ता। 'श्री वर्धमान जीवन कोश' प्रथम खण्ड देखने को मिला। यह पुस्तक सर्वप्रथम पुस्तक है जिसमें भगवान् महावीर की जीवनी यथार्थ रूप से लिखने में आई है।

श्री कन्हैयालाल सेठिया, कलकत्ता। सम्पादक द्वय का गहन अध्ययन और अथक श्रम इस ग्रन्थ में प्रतिभिंबित हुआ है। शोधार्थियों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है।

अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन, ३१वां अधिवेशन में। जैन दर्शन समिति (—१६ सी डोवर लेन, कलकत्ता-२९) द्वारा श्रीचन्द चोरड़िया के सम्पादन में 'वर्धमान जीवन कोश' कृति का प्रकाशन हुआ है। प्रारम्भ में स्वनामधन्य आदरणीय जैनरत्न श्री मोहनलालजी बांठिया इस योजना के प्रवर्तक थे। श्री चोरड़ियाजी के सहयोग से यह ग्रन्थ तैयार हुआ था। भगवान् महावीर की जीवनी से सम्बन्धित सामग्री को प्रस्तुत करने वाला यह ग्रन्थरत्न अत्यन्त उपयोगी एवं संग्रहणीय है।

प्राकृत एवं जैन विद्या विभाग—अध्यक्षीय भाषण

२९ से ३१-१०-८२

डा० भागचन्द्र जैन, नागपुर। प्रस्तुत समीक्ष्य ग्रन्थ 'वर्धमान जीवन कोश' का प्रकाशन जैन विषय कोष योजना के अन्तर्गत हुआ। सम्पादक द्वय ने इस ग्रन्थ की सामग्री साम्प्रदायिकता के दायरे से हटकर उपलब्ध समस्त वाङ्मय से एकत्रित की है। प्रस्तुत प्रकाशित प्रथम खण्ड में तीर्थंकर महावीर के जीवन विषयक, च्यवन से परिनिर्वाण तक का विषय संयोजित हुआ है। सामग्री की प्रस्तुति में सम्पादन कला का निर्दोष उपयोग हुआ है।

यशपाल जैन, दिल्ली। भगवान् महावीर के जीवन से सम्बन्धित यह 'विश्व-कोश' है। भगवान् महावीर के जीवन और सिद्धान्तों के विषय में विपुल साहित्य की रचना हुई है, किन्तु वह इतना फैला हुआ है कि शोधकर्त्ताओं को इसकी पूरी जानकारी प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती है। आलोच्य कोश ने उस कठिनाई को बहुत कुछ अंशों में दूर कर दिया।

भंवरलाल नाहटा, कलकत्ता। भगवान् महावीर की जीवनी सम्बन्धी समस्त पहलुओं के अवतरणों का संग्रह करने में विद्वान सम्पादकों ने बड़े ही धैर्यपूर्वक श्रुतसमुद्र का अवगाहन कर बहुत ही महत्वपूर्ण भागीरथ प्रयत्न किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगलप्रकाश मेहता, वाराणसी। यह ग्रन्थ जैन आगम और आगमेतर साहित्य पर शोध कर रहे छात्रों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

डा० नरेन्द्र भाणावत, जयपुर। वर्धमान महावीर के जीवन की आधारभूत सामग्री का यह प्रामाणिक संदर्भ ग्रन्थ शोधार्थियों के लिए अत्यन्त ही उपयोगी और पथ-प्रदर्शक है।

श्री रतनलाल डोसी, सैलाना। यह ग्रंथ अपने आप में अद्वितीय अनूठा और विद्वानों के लिए बहुमूल्य निधि है। इसके पीछे सूझ-बुझ के साथ कष्ट साध्य पुरुषार्थ हुआ है। भगवान् के जीवन सम्बन्धी जो और जितनी सामग्री इसमें संकलित हुई है, पहले किसी ग्रंथ में नहीं हुई। जिस निष्ठा, अनुभव और धैर्य से यह कोश सम्पन्न हुआ है, वह अभिवन्दनीय है।

मंगलदेव शास्त्री, राजगृह। महाश्रमण भगवान् महावीर पर अब तक अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है, पर प्रस्तुत ग्रंथ का अपना विशेष महत्व है। यह सम्पादक द्वय की उदार एवं समन्वयवादी दृष्टि को उजागर करता है। प्रस्तुत ग्रंथ विद्वानों के लिए, विशेष रूप से शोध छात्रों के लिए विशेष उपयोगी है।

श्री भंवरलाल जैन न्यायतीर्थ, जयपुर। भगवान् महावीर के च्यवन से परिनिर्वाण तक का विस्तारपूर्वक विवेचन इस कोष में किया गया है। दिगम्बर-श्वेताम्बर एवं जैनेतर सामग्री का यथास्थान संकलन कर इतिहास प्रेमियों एवं शोध छात्रों के लिए इसे एक संदर्भ ग्रन्थ बना दिया है।

कंवर साहब मानसिंहजी, लावा सरदारगढ़। भगवान् महावीर के जीवन की अपूर्व व विशद सामग्री है। इस कार्य को पूरा कर दिखाने में यह आपके परिश्रम व तप का ही फल है।

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी। इसमें भगवान् महावीर के जीवन से सम्बन्धित काफी सामग्री एकत्रित है। इस विषय में शोध करने वालों के लिए यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी बन सकेगा—ऐसा विश्वास है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Vardhamana-Jivana-Kosha—compiled and edited by Mohanlal Banthia and Srichand Choraria, Jain Darsan Samiti, 16C, Dover Lane, Calcutta-700 029, 1980 p.p. 51 + 584.

The publication of Vardhamana-Jivana-Kosha (Cyclopaedia of the life of Vardhamana, compiled and edited by Mohanlal Banthia and Srichand Choraria, is a unique contribution to the scholarly world of Jainistic studies. The conception of compiling a dictionary on the life and teaching of Lord Mahavira is itself a new one, and the compilers must be thanked for such a venture.

This type of cyclopaedia has been a dessideraturn for a long time. The book is divided into several sections as far as 99 and sub-divided into several other decimal points for the easy reference. The system followed in this classification is the International decimal system. Each decimal point is arranged in accordance with the topic connected with the life and history of Vardhamana Mahavira. In each section and under each topic the original quotations from nearly 100 books followed by Hindi translation are given. These quotations ara not only valuable, but they represent the authenticity of the incidents of the life of Mahavira. To compile such quotations in one place is a monumental one and tremendous labour is involved therein.

The Jain Darsana samiti has published two other Kosas Les'ya Kos'a (1966) and Kriya Kos'a (1969). The Pudgala Kos'a and the Dhyana-Kosa seen to have been compiled and awaiting publications for a decade now.

The Vardhamana Jivana-Kosa is not only unique but also very useful for the handy reference, to the source material on Mahavira's life story. The author has ransacked both the Swetambara and Digambara materials. This is an exceptionally good book and must

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

be used by all scholars who want to work on Jainism, particularly on Mahavira's life.

The book is well-printed and carefully executed. The printing mistakes are exceptionally few. The book is well bound as well. I hope this book will receive good demand from the libraries of the world.

University of Calcutta.
20th Sept. 1984 —SATYA RANJAN BANERJEE

वर्धमान जीवनकोश, द्वितीय खण्ड पर प्राप्त समीक्षा

डा० ज्योति प्रसाद जैन, लखनऊ

यह युग विधिवद्ध खोज व शोध का है। अन्वेषक कार्य को सहज और सुगम करने के लिए ही विभिन्न प्रकार के संदर्भ ग्रन्थों की बड़ी उपयोगिता है। इस संदर्भ ग्रन्थों से भी अधिक उपयोगिता है वर्गीकृत कोषों की। वर्गीकृत कोश ग्रन्थ जैसा कि—

वर्धमान जीवन कोश द्वितीय खण्ड, पूर्व प्रकाशित सभी ग्रन्थों से भिन्न है।

इस कार्य के लिए आगम ग्रन्थ उनकी टीकायें, श्वेताम्बर व दिगम्बर आगमेतर ग्रन्थ, कुछ बौद्ध एवं ब्राह्मण्य ग्रन्थ एवं परवर्तीकालीन कोश, अभिधान आदि का भी उपयोग किया है। इस खण्ड में उनके ३३ या २७ भवों का विवरण जो कि श्वेताम्बर व दिगम्बर परम्परा से लिया गया है। इससे तुलनात्मक अध्ययन सुगम ही हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें भगवान् महावीर के पाँचों कल्याणक, नाम एवं उपनाम, उनकी स्तुतियाँ, समवसरण, दिव्यध्वनि, संघविवरण, इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधरों का पृथक्-पृथक् विवरण आदि संकलित है। आर्या चन्दना का भी विवरण प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया है।

इस भाग में संकलित अनेक विषय बहुधा प्रथम भाग में संकलित विषयों के परिपूरक है। विषयों को इसमें अंतर्जातीय दशमलव के रूप में विभाजित व संकलित किया गया है जैसा कि सम्पादकों ने उपरोक्त वर्गीकृत कोश ग्रन्थों में किया है।

विद्वानों अन्वेषकों के लिए तीर्थंकर भगवान् महावीर के इस भाँति के वर्गीकृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोश ग्रन्थों की उपादेयता के विषय में कोई दो मत नहीं हो सकता। परिश्रम साध्य व समय सापेक्ष इस कार्य को इतने सुचारु रूप से संपादन करने के लिए हम विद्वान पण्डित श्रीचन्द चोरड़िया का आन्तरिक भाव से अभिनन्दन करते हैं। साथ ही जैन दर्शन समिति और उनके कार्यकर्त्ताओं को भी इसके प्रकाशन के लिए धन्यवाद देते हैं।

मुनिश्री जसकरण, सुजान, बोरावड़ (सुजानगढ़ वाले) ता० ६-५-८७

वर्धमान जीवन कोश (द्वितीय खण्ड) में भगवान् महावीर के जीवन संबंधित अनेक भवों की विचित्र एवं महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह कार्य अति उत्तम एवं प्रशंसनीय है।

इसके लेखक मोहनलाल जी बांठिया तथा श्रीचन्द जी चोरड़िया के श्रम का ही सुफल है। यह ग्रन्थ इतना सुन्दर एवं सुरम्य बन सका है। शोधकर्त्ताओं के लिए यह ग्रन्थ काफी उपयोगी होगा—ऐसा विश्वास है। रिसर्च करने वालों को भगवान् वर्धमान के संबंध में सारी सामग्री इस ग्रन्थ में उपलब्ध हो सकेगी।

वर्धमान जीवन कोश, द्वितीय खण्ड पर प्राप्त समीक्षा

मानकमल लोढा, दीनापुर (नागालैंड) ता० ३-६-८७

वर्धमान जीवन कोश (द्वितीय) कड़ी मेहनत से तैयार किया गया है। इस समय का यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ मंथन है। यह पढ़ने वालों से भी मनन करने वालों के लिए सरल और बिलकुल सही साबित हुआ है और होता रहेगा। इसमें प्रसंग क्रमशः है परन्तु ऐसा होते हुए भी अलग-अलग है।

साध्वीश्री यशोधरा, ता० २६-८-८७

प्रस्तुत समीक्ष्य ग्रन्थ 'वर्धमान जीवन कोश' का द्वितीय खण्ड अपने आपमें अनूठा और अद्वितीय है। महावीर-जीवन सम्बन्धी सन्दर्भ ग्रन्थ में सम्पादक द्वय का भागीरथ प्रयत्न और गम्भीर अध्ययन प्रतिबिम्बित हो रहा है। आगमों में यत्र-तत्र बिखरी सामग्री को एकत्र कर इस तरीकेसे सजाया है कि शोध विद्यार्थियोंके लिए बड़ी सुगमता कर दी है। प्रस्तुत ग्रन्थ के संकलन-संपादन में शताधिक ग्रन्थोंका उपयोग संपादककी 'एग्गा चित्तोभ-विस्सामित्ति' एकाग्र चित्तता का अवबोधक है।

आगम-सिन्धुका अवगाहनकर अनमोल मोतियों के प्रस्तुतीकरण का यह प्रयास सचमुच महनीय और प्रशस्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीचन्द जी चोरड़िया का 'वर्धमान-जीवन-कोश द्वितीय खण्ड' समाप्त हुआ। ग्रन्थ-प्रेषण हेतु आभार-ज्ञापन।

भगवान् महावीर पर सम्प्रति-पर्यन्त बहुविध स्तरीय कार्य हुए हैं, किन्तु यह ग्रन्थ अपने आप में अभूतपूर्व है। शोध-स्नातकों के लिए तो यह ग्रन्थ सारस्वत वरदान सिद्ध होगा, ऐसा मेरा आत्म-विश्वास है। 'वर्धमान जीवन-कोश' का प्रथम खण्ड भी उपादेय सिद्ध हुआ था। यद्यपि सामान्यतया लोग कोश-निर्माण के कार्य को महत्ता की दृष्टि से नहीं देखते, परन्तु मेरा विचार है कि मौलिक चिन्तनमूलक ग्रन्थ-लेखन उतना वैदुष्यपूर्ण और श्रमसाध्य नहीं है, जितना कि कोश-संग्रहीत करना। मैं ऐसे ग्रन्थों का हृदय से स्वागत किया करता हूँ।

शिवस्ते पन्थाः।

—मुनि चन्द्रप्रभसागर

"वर्धमान जीवन कोश' पर प्राप्त समीक्षा"

The present work is the third volume in the series of Cyclopaedia of Jainism proposed to be published on behalf of Late Shri Mohan Lal Banthia. The first volume was the Cyclopaedia of Lesya and the second volume was the cyclopaedia of kriya. Both these volumes promed to be the complete cyclopaedia of two highly technical subjects of Jain Philosophy. Now, this third volume, which is an exhaustive collection of material related to the life of Bhagawan Mahavira, whose birth-name was Vardhamana.

The learned compilers of this cyclopaedic work, Late Shri Mohan Lal Banthia and Shri Shrichand Choraria, have taken pains to collect all the available material concerning the life of Bhagawan Mahavira from all literary sources—the Jain canons, the commentaries on the Jain canons, the later non-canonical Prakrit and Sanskrit works, the Buddhist Pali texts, as well as other available sources.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The present work is only the first part of the volume, which will be published in three parts. The decimal system used for classification of topics signifies a scientific approach in topical classification and makes it easy to find out any sub-topic.

It is definitely an unique work on the life of Bhagawan Mahavira, elucidating simultaneously all the aspects including those of historical significance. The combedeo deserve congratulations for their hard labour. The cyclopaedic publications in the series will become a valuable repository of Jain learning for ages to come.

Muni Shri Mahendra Kumar
(Disciple of Acharya Shri Tulsi)

The *"Spiritual Development of a Perverted One"* elucidates one of the most difficult topics of Jain Philosophy. The subject itself is controversial and requires a very through understanding of the subtle points of Jain Ethics. In this work the author has substantiated the view that even a perverted one can partially make an advancement in the direction of spiritual development. The author has collected all the evidence from the available Jain sources—the Shvetamber as well as the Digamber Canonical Texts. At some places, he also quotes the non-Jain Texts which Clearly accept the thense.

The whole work is a logical treatment based on the authentic texts and authentic commentaries. The book itself has become a sort of *"cyclopaedia"* on the subject.

Incidentally, the author has explained many other topics concerning other aspects of Jain Philosophy, such as the nature of jnana and ajnana, darsana labdehis ; etc.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

It is hoped that the work will go a long way in helping the Jain students and scholars for understanding the technical subjects which are otherwise very difficult to comprehand.

Muni Shri Mahendra Kumar
(Disciple of Acharya Shri Tulsi)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें भगवान महावीर का समग्र जीवनकथा के विषय में जो सामग्री आगमों में उपलब्ध होती है उसका संकलन हुआ ही है। साथ ही उस मूल सामग्री को बाद के आचार्यों ने किस प्रकार सजाया है उसका भी ज्ञान इस कोश से जिज्ञासुकों को सहज ही में हो जाता है।

इसमें मूल श्वेताम्बर जैन आगमों से तो सामग्री ली ही गई है और आगमों की टीकाओं—निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, संस्कृत टीका से भी सामग्री एकत्र की गई है। इतना ही नहीं उसके अलावा दिगम्बर मौलिक ग्रन्थों कसाय-पाहुड आदि का भी उपयोग किया गया है इतना ही नहीं किन्तु श्वेताम्बर और दिगम्बर पुराणों और आचार्यों लिखित संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषा में लिखे गए महावीर के चरित ग्रन्थों से भी सामग्री का संकलन किया गया है। इस तरह यह वास्तविक रूप से 'वर्धमान जीवन कोश' नाम को सार्थक करता है।

—दलसुख मालवणिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org